हिन्दी कहानी कला

हिन्दी समिति ग्रन्थमाला संख्या—१७१

हिन्दी कहानी कला

लेखक

डा० प्रतापनारायण टंडन

बी० ए० (आनर्स), एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

हिन्दी समिति

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

लखनऊ

प्रकाशकीय

आधुनिक साहित्य-जगत् में 'कहानी' की लोकप्रियता बहुत बढ़ गयी है। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा इसके सर्वाधिक प्रयोग हो रहे हैं और इसके विकास के लिए सभी सभ्य देशों के कहानीकार विशेष रूप से प्रयत्नशील हैं। अत: कहानियों के विभिन्न नमूने नित्य-प्रति हमारे सामने आते हैं और प्रयोजन, उद्देश्य, तकनीक आदि के दृष्टिकोण से उनकी मीमांसा की जाती है। प्रस्तुत ग्रन्थ में विद्वान् लेखक ने कहानी-कला, मुख्यतः हिन्दी कहानी के उद्गम, विकास और स्वरूप की विशद विवेचना करते हुए उसके साहित्यिक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। आलोचना की कसौटी पर कसकर भारत की प्राचीन एवं अर्वाचीन कहानियों के विविध भेदों का इसमें मूल्यांकन किया गया है तथा साहित्य की अन्य विधाओं की 'कहानी' के साथ तुलना की गयी है। कहानी की भाषा, कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण आदि पर भी इस ग्रन्थ में सम्यक् रूप से विचार किया गया है और उच्चस्तरीय अध्ययन हेतु विषय को विस्तारपूर्वक समझाने की सफल चेष्टा की गयी है।

डा० प्रतापनारायण टण्डन की इस कृति को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हम हर्ष का अनुभव करते हैं। इसके पूर्व हिन्दी समिति 'हिन्दी उपन्यास कला' विषय पर उनका एक ग्रन्थ और प्रकाशित कर चुकी है, जिसका विद्यार्थियों मे यथेष्ट आदर हुआ है। हमें विश्वास है, उनकी इस रचना को भी उसी भाति अपनाकर वे लाभान्वित होंगे।

लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय'

सचिव, हिन्दी समिति

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक की रचना का उद्देश्य पाठकों को हिन्दी कहानी कला के विकास की अवगति कराना है। इसके लेखन में जहाँ एक ओर कहानी के सैद्धांतिक तत्वों का निरूपण करते समय शास्त्रीय दृष्टिकोण का आश्रय लिया गया है, वहाँ दूसरी ओर कहानी के आधुनिक स्वरूप से सम्बन्धित भारतीय और पाश्चात्य साहित्य चिन्तकों की मान्यताओं की व्याख्या भी की गयी है। कहानी के मूल उपकरणों में शीर्षक, कथा-वस्तु, पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण, कथोपकथन अथवा संवाद, भाषा, शैली, देशकाल अथवा वातावरण तथा उद्देश्य का विवेचन पृथक् पृथक् अध्यायों में करते हुए इसमें अनेक उपयुक्त उद्धरणो से उनकी पुष्टि भी की गयी हैं। वस्तुतः कहानी के ये सभी तत्व स्वतंत्र होते हुए भी पारस्परिक अन्तःसम्बद्धता रखते हैं। साहित्य की समस्त विधाओं में सम्भवतः कहानी ही एक मात्र ऐसा माध्यम है, जो अपने लघु परिवेश में भी बृहत् जीवन को अभिव्यंजित करने में समर्थ है। यद्यपि अपने आधुनिक रूप में यह साहित्य की एक नवीन विधा है, परन्तु प्राचीन कथात्मक रूप में इसका प्रसार विश्व की अधिकाश भाषाओ मे सुदूर अतीत तक मिलता है। इस पुस्तक में हिन्दी कहानी कला का सम्यक् विवेचन उसकी इसी व्यापक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया गया है जो उसके विकासशील रूपों और उपलब्धियो का द्योतक है।

इस कृति के पहले अध्याय में विषय प्रवेश के अन्तर्गत सर्वप्रथम कहानी के स्वरूप का परिचय दिया गया है। प्राचीन संस्कृत साहित्य शास्त्र में गद्य काव्य के विविध भेदों के अन्तर्गत कहानी आदि कथारूपों की व्याख्या की गयी है। भामह, दंडी, आनंद-वर्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट, हेमचन्द्र तथा विश्वनाथ आदि साहित्य शास्त्रियों ने इन विधाओं का वैज्ञानिक विवेचन किया है। आधुनिक युग में श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय, प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद', नन्ददुलारे वाजपेयी, हजारी-प्रसाद द्विवेदी, 'सुदर्शन', राय कृष्णदास, यशपाल, जगन्नाथप्रसाद शर्मा, विनोदशंकर व्यास, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्रीकृष्ण लाल, प्रकाशचंद्र गुप्त, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', उपेन्द्रनाथ

'अश्क,' नरेश मेहता तथा भैरवप्रसाद गुप्त आदि हिन्दी लेखकों ने कहानी की परिभाषा और स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए उसके विविध पक्षों की सम्यक् व्याख्या की है। पाश्चात्य साहित्य विचारकों में जेम्स डब्लू० लिन, एडगर एलन पो, एच० जी० वेल्स, विलियम हैनरी हडसन, एस ब्राइट, ह्यू वाकर, एंटन चेखव, ओ० ब्रायन, सामरसेट माम, जोसेफ टी० शिप्ले, अपहम, एल० ए० जी० स्ट्रांग, शोन ओ० फाउलेन, बुलेट, एलरी, पोकाक, ब्रेंडर मैथ्यू, जान फास्टर, एच० ई० बीट्स तथा सर ह्यू वालपोल ने कहानी का सम्यक् स्वरूप विश्लेषण किया है।

आधुनिक हिन्दी कहानी की पृष्ठभूमि और प्रेरणास्रोत के रूप में प्राचीन भारतीय कथा साहित्य की परिचयात्मक व्याख्या भी प्रथम अध्याय मे ही प्रस्तुत की गयी है। प्राचीन भारतीय कथा साहित्य के अन्तर्गत मुख्य रूप से वैदिक साहित्य—संहिता ग्रंथ, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक ग्रंथ, उपनिषद साहित्य, पुराण साहित्य, महाभारत तथा रामायण आदि का उल्लेख किया गया है। इसके उपरान्त प्राचीन भारतीय कथा परम्परा में जातक कथाओं, पंचतंत्र, तंत्राख्यायिका, दक्षिण भारतीय पंचतंत्र, नेपाली पंचतंत्र, हितोपदेश, बृहत्कथा, बृहत्कथा श्लोकसंग्रह, कथासरित्सागर, बृहत्कथामंजरी, रामायणमंजरी, महाभारतमंजरी, पश्चिम भारतीय पंचतंत्र तथा पंचाख्यान आदि का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस प्रकार से प्राचीन भारतीय कथा साहित्य की परम्परा एक सुदीर्घ रचनाकाल तक प्रशस्त है, जिसका प्रसार वैदिक काल से लेकर भारतेन्दु युग तक है।

भारतीय कथा साहित्य की भाँति ही विदेशी भाषाओं में भी कहानी की मान्यता प्राचीनतम साहित्यिक विधा के रूप में है। प्राय: प्रत्येक देश के प्राचीन वाङमय में कहानी के अस्तित्व के संकेत मिलते हैं। इब्रानी अथवा हिब्रू कहानी साहित्य में कहानी के रूप ईसा से सहस्रों वर्ष पूर्व भी उपलब्ध होते हैं। जापानी कहानी साहित्य के क्षेत्र में लगभग ७०० ई० पू० से विविध उल्लेख मिलते हैं। अरबी कहानी साहित्य का आरम्भ प्राय: आठवी शताब्दी से हुआ था। रूसी भाषा में प्राचीन कहानी साहित्य लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व आविर्भूत हुआ। फारसी साहित्य में बारहवी शताब्दी से कहानी के रूप मिलने लगते हैं। फ्रांसीसी कहानी का प्रसार बारहवी शताब्दी से हुआ। अंग्रेजी भाषा में चौदहवीं शताब्दी से कहानी की परम्परा प्रशस्त होती है। जर्मन कहानी साहित्य का आविर्भाव सत्रहवीं शताब्दी में हुआ था। डेनी कहानी साहित्य में उन्नीसवीं शताब्दी से रचनात्मकता का परिचय मिलता है। इन भाषाओं के अति-

रिक्स ग्रीक, चीनी, तुर्की, इटैलियन, पोल, स्वीड, चेक, डच, मिस्री तथा स्येमी भाषाओं में विविध युगीन कहानी साहित्य उपलब्ध होता है। यह तथ्य विश्व के प्राचीनतम वाङमय में कहानी के अस्तित्व का सूचक है, जिसकी पृष्ठभूमि में आधुनिक कहानी का स्वरूपात्मक विकास हुआ है।

इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में हिन्दी कहानी का स्वरूपात्मक विकास प्रस्तुत करते हुए उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों का विवेचन किया गया है। आधुनिक युग के पूर्ववर्ती कथा साहित्य का उल्लेख हिन्दी कहानी की पृष्ठभूमि और प्रेरणा स्रोत के रूप में किया जा सकता है। प्राचीन भारतीय कथा परम्परा की आगामी कड़ी के रूप में प्रायः दूसरी शताब्दी ई० से अपभ्रंश कालीन वीर गाथाएं उपलब्ध होती हैं। इसके उपरान्त मध्य युगीन प्रेमाख्यानों की एक सुविकसित परम्परा का परिचय मिलता है। रीति काल में सत्रहवी शताब्दी से विभिन्न जननायकों के चरित गान के रूप में वीर गाथाएं उपलब्ध होती हैं। आविर्भाव युगीन हिन्दी गद्य के कथा साहित्य में वार्ता साहित्य के साथ ही अष्टयाम, जैन पद्मपुराण, विष्णुपुराण तथा सुखसागर आदि ग्रन्थ मिलते हैं। हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी 'उदयभान चरित' अथवा 'रानी केतकी की कहानी' की रचना भी इसी युग में हुई। सदासुखलाल, लल्लूलाल, सदल मिश्र, राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' तथा गौरीदत्त आदि ने भी अपनी कथात्मक रचनाएं इसी युग मे प्रस्तुत की।

विविध विकास युगीन हिन्दी कहानी के इतिहास का परिचय भी इस कृति के द्वितीय अध्याय में ही प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य के क्षेत्र में कहानी का आविर्भाव भी भारतेन्दु युग मे ही हुआ। इसे हिन्दी कहानी का प्रथम विकास काल कहा जा सकता है। इस युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाचरण गोस्वामी, किशोरीलाल गोस्वामी, रामचंद्र शुक्ल, केशवप्रसाद सिंह, कार्तिकप्रसाद खत्री, गिरिजादत्त वाजपेयी, यशोदानन्दन अखौरी, सूर्यनारायण दीक्षित, पार्वतीनन्दन, बंगमहिला तथा गंगाप्रसाद अग्निहोत्री आदि कहानीकारों ने विविध विषयक रचनाएं प्रस्तुत की। द्वितीय विकास काल अर्थात् प्रेमचन्द युग में हिन्दी कहानी का प्रौढ रूप सामने आया। इस युग में पूर्ववर्ती काल की सभी प्रवृत्तियां विकासशील रही तथा अनेक नयी प्रवृत्तियों का भी आविर्भाव हुआ। इस युग में कहानी साहित्य को समृद्ध करने वाले लेखकों में प्रेमचन्द, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', जयशंकर 'प्रसाद', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा जैनेन्द्रकुमार

प्रमुख हैं। यह युग राजनीतिक सक्रियता का युग था। इसलिए इस युग में लिखा गया कहानी साहित्य समकालीन जीवन की सामाजिक चेतना के साथ ही राष्ट्रीय चेतना से भी अनुप्राणित है।

तृतीय विकास काल अर्थात् प्रेमचंदोत्तर युग में हिन्दी कहानी साहित्य के क्षेत्र में सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक तथा मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्तियों के साथ ही बौद्धिक प्रवृत्ति का भी विकास हुआ। भगवतीप्रसाद वाजपेयी, सुदर्शन, राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह, भगवतीचरण वर्मा, इलाचंद्र जोशी, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', उपेन्द्रनाथ 'अश्क', यशपाल, वृन्दावनलाल वर्मा, राय कृष्णदास, शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, सियारामशरण गुप्त, मोहनलाल महतो 'वियोगी', होमवती देवी, विनोदशंकर व्यास, कमलाकांत वर्मा, जी० पी० श्रीवास्तव, गोविंद बल्लभ पंत, वाचस्पति पाठक, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, विश्वंभरनाथ जिज्जा, कमला देवी चौधरी, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' तथा मन्मथनाथ गुप्त आदि कहानीकारों ने इस युग में कहानी क्षेत्रीय विभिन्न प्रवृत्तियों के विकास में योग दिया। चतुर्थ विकास काल अर्थात् स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानी के क्षेत्र मे परम्परागत रूपों के विकास के साथ साथ अनेक नवीन आन्दोलनों का भी सूत्रपात हुआ। भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी कहानी को विषय क्षेत्रीय नवीन आधार भूमि मिली। इस युग के कहानीकारो ने अपनी रचनाओं में सामाजिक चेतना के यथार्थपरक स्वरूप को उद्-घाटित किया। अमृतलाल नागर, रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी', सत्यजीवन वर्मा 'भारतीय', अमृतराय, बलवन्त सिंह, विष्णु प्रभाकर, धर्मवीर भारती, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, प्रतापनारायण टंडन, कमलेश्वर, फणीश्वर नाथ 'रेणु', मन्नू भंडारी, निर्मल वर्मा, नरेश मेहता, कमल जोशी, अमरकान्त, आजम करेवी, नन्दकिशोर, राधा-कृष्ण, सोमा वीरा, रमेश बक्षी तथा उषा प्रियवदा आदि के साथ एक बहुत बड़ी संख्या में अनेक कहानी लेखकों के साहित्य में हिन्दी कहानी की नवीनतम प्रवृत्तियां पनप रही हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी वस्तु और शिल्प दोनों ही क्षेत्रों में अपने विकास की समुन्नत अवस्था का द्योतन करती है।

प्रस्तुत पुस्तक के तीसरे अध्याय में कहानी तथा वाङमय की अन्य विधाओं का पारस्परिक साम्य और स्वरूपात्मक नैकट्य स्पष्ट किया गया है। प्राचीन संस्कृत साहित्य शास्त्रीय विचार से कहानी का उल्लेख गद्य काव्य के एक भेद के रूप में किया जाता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में विविध कथारूपों के अर्थ में कहानी के पर्याय

रूप में कथा, कथानक, आख्यान, आख्यानक, उपाख्यान, आख्यायिका, खंड कथा, परि कथा, सकल कथा, कथानिका, निदर्शन, प्रवह्लिका, मतल्लिका, मणिकुल्या, उपकथा, गल्प, बृहत्कथा तथा वृत्तान्त आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। इसलिए इन सभी कथा रूपों से कहानी के सम्बन्ध, साम्य और पृथक्त्व की संक्षिप्त व्याख्या इस अध्याय में की गयी है। साथ ही उपन्यास, लघु उपन्यास, रोमांस, संस्मरण, आत्मकथा, डायरी, जीवनी, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, निबन्ध, नाटक, एकांकी, कविता, गद्य काव्य, महाकाव्य, मनोविज्ञान, नीतिशास्त्र तथा इतिहास से भी कहानी के सम्बन्ध, साम्य और अन्तर का विवेचन किया गया है। यह अध्ययन कहानी की रूपगत विविधता तथा क्षेत्रगत विस्तार का सूचक है।

विभिन्न विकास युगों में उपलब्ध होने वाली विविध प्रवृत्तियों के द्योतक प्रमुख रूपों के आधार पर हिन्दी कहानी का सम्यक् वर्गीकरण इस पुस्तक के चौथे अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। ऐतिहासिक कहानी का स्वरूप हिन्दी कहानी में आरम्भिक काल से लेकर वर्तमान युग तक उपलब्ध होता है। प्रेमचन्द, 'प्रसाद', वृन्दावनलाल वर्मा तथा जैनेन्द्र कुमार ने इसके विकास में प्रमुख रूप से योग दिया है। सांस्कृतिक कहानी के क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन, 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री तथा रांगेय राघव ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। सामाजिक कहानी का बहुरूपी विकास ग्रामीण तथा नागरिक जीवन की पृष्ठभूमि में हुआ है। प्रेमचंद, कौशिक तथा सुदर्शन आदि ने इसके आदर्शपरक रूप की व्यंजना की है। समस्याप्रधान कहानी के रूप प्रेमचंद की रचनाओं में बहुलता से उपलब्ध होते हैं। भावप्रधान कहानियाँ 'प्रसाद', राय कृष्ण दास तथा जैनेन्द्र कुमार ने अधिक लिखी हैं। आदर्शवादी कहानी के प्रतिनिधि रूप प्रेमचंद, 'गुलेरी' तथा कौशिक आदि की रचनाओं में मिलते हैं। यथार्थवादी कहानी के क्षेत्र मे प्रेमचंद, निराला, उग्र तथा यशपाल का योगदान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। निराला तथा उग्र आदि ने अति यथार्थवादी कहानियां भी लिखी हैं। प्रगति-वादी कहानी का स्वरूप चतुरसेन शास्त्री, यशपाल तथा भैरवप्रसाद गुप्त आदि की रच-नाओं में स्पष्ट हुआ है।

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में राजनीतिक तत्वों का समावेश प्रेमचंद युग से मिलता है। पूर्वप्रेमचन्द कालीन कहानी में स्फुट रूप से भले ही राजनीति विषयक विचार यत्र-तत्र समाविष्ट मिल जायं, परन्तु उनका सम्यक् चिन्तनात्मक रूप नहीं उपलब्ध होता। प्रेमचंद कालीन हिन्दी कहानी में समाविष्ट राजनीतिक तत्वों का आधार या तो भार-

तीय स्वतंत्रता के लिए होनेवाले दीर्घकालिक संग्राम के विविध पक्ष थे या समकालीन समाज में प्रचलित मतवाद। गांधीवादी और साम्यवादी सिद्धान्तों का समावेश भी राजनीतिक कहानी में मिलता है। प्रेमचंद, राहुल सांकृत्यायन तथा यशपाल आदि की कहानियों में इन तत्वों का समावेश विशेष रूप से हुआ है। हिन्दी में दार्शनिक कहानी का स्वरूप भी इसी काल में स्पष्ट हुआ। सियारामशरण गुप्त, उषादेवी मित्रा तथा जैनेन्द्र कुमार ने अपनी कहानियों में अध्यात्म, दर्शन से सम्बन्धित तत्वों का निरूपण किया है। प्रतीकवादी कहानी के क्षेत्र में कमलाकांत वर्मा, राय कृष्णदास तथा 'अज्ञेय' का योगदान विशिष्ट है।

आधुनिक युग मे मनोवैज्ञानिक कहानी का विशेष रूप से विकास हुआ है। यूरोप में फ़ायड, एडलर, युंग, वाटसन तथा गेस्टाल्ट आदि मनोविज्ञान वेत्ताओं ने अपने नवीन सिद्धान्तों के आधार पर मानव मन का जो क्रान्तिकारी तथा सर्वथा नूतन विश्लेषण किया, उसका हिन्दी कहानी पर भी व्यापक क्षेत्रीय प्रभाव पड़ा। प्रेमचंद, 'प्रसाद', भगवतीचरण वर्मा, इलाचंद्र जोशी, जैनेंद्र कुमार तथा 'अज्ञेय' आदि ने इस कहानी प्रवृत्ति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। प्राचीन भारतीय धार्मिक साहित्य को आधार बनाकर रामनिरंजन पांडेय तथा शंभूदयाल सक्सेना आदि ने पौराणिक कहानियों की रचना भी की है। पंचतंत्र तथा हितोपदेश पर आधारित नीतिप्रधान कहानी भी आधुनिक युग में लिखी गयी। साहसिक, वैज्ञानिक तथा शिकार सम्बन्धी कहानी के क्षेत्र में वृन्दावनलाल वर्मा, अरविन्द गुर्टू तथा मास्टर निजाम शाह आदि की रचनाएं उल्लेखनीय हैं। जासूसी कहानी का आरम्भ गोपालराम गहमरी ने भारतेन्दु युग से ही कर दिया था। बालोपयोगी कहानी लेखकों में अनूपलाल मंडल तथा काशीराम त्रिवेदी आदि ने कार्य किया है। रमेशचन्द्र मिश्र तथा दयाभानु आदि ने जादू की कहानियां लिखी हैं। हास्य व्यंग्य प्रधान कहानी की प्रवृत्ति के विकास में योग देनेवालों में जी० पी० श्रीवास्तव, भगवतीचरण वर्मा तथा अमृतलाल नागर प्रमुख हैं। हिन्दी कहानी के उपर्युक्त भेद उसके विषय वैविध्य का द्योतन करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के पांचवे अध्याय में कहानी के सर्वप्रथम मूल उपकरण के रूप में शीर्षक तत्व की व्याख्या की गयी है। कहानी के समग्र स्वरूप को ध्यान म रखते हुए शीर्षक का प्राथमिक महत्व होता है। कहानी की तात्विक परिपूर्णता की दृष्टि से भी शीर्षक उसका एक आवश्यक उपकरण है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी के शीर्षक का स्वरूप विविधात्मक होता है। वह उसकी विषय वस्तु, रचना काल, घटना

स्थल, पात्र अथवा भावना आदि का परिचायक भी होता है। विभिन्न आलोचकों में गुलाबराय, चार्ल्स बैरेट, फ्रांसिस विवियन तथा डी० मेकांजी आदि ने भी कहानी में शीर्षक का स्वरूप विस्तार से विश्लेषित किया है। हिन्दी कहानी के विभिन्न विकास युगों में शीर्षक तत्व के क्षेत्र में पर्याप्त कलात्मक परिपक्वता आयी है। सिद्धान्ततः स्पष्टता, विषयानुकूलता, लघुता, आकर्षण, अर्थपूर्णता तथा नवीनता आदि गुणों से युक्त शीर्षक सफल कहे जाते हैं। हिन्दी कहानी में एक शब्द से लेकर एक वाक्य तक के शीर्षकों का व्यवहार मिलता है। हिन्दी कहानी में जो शीर्षक उपलब्ध होते हैं, उन्हें स्थान सूचक, घटना व्यापार सूचक, कौतूहल जनक, व्यंग्यपूर्ण, हास्योद्भावक, नायक-नायिका के नाम पर आधारित, मनोवृत्ति पर आधारित, भावना पर आधारित, सम्बन्ध सूचक, कालावधि सूचक तथा मुहावरे-कहावतों पर आधारित शीर्षकों के रूप में प्रमुख वर्गों में रखा जा सकता है। भारतेन्दु युग से लेकर स्वातंत्र्योत्तर युग तक शीर्षक तत्व का स्वरूपात्मक विकास हिन्दी कहानीकारों के अभिनव दृष्टिकोण का परिचायक कहा जा सकता है।

सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी के सर्वप्रमुख तत्व कथावस्तु का स्वरूप विश्लेषण इस रचना के छठे अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। कहानी के अन्य सभी उपकरणों में कथावस्तु उसका प्रधान और अनिवार्य तत्व है। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने इसी तत्व को प्रमुखता देते हुए कहानी में उसके सर्वाधिक महत्व का निदर्शन किया है। कथावस्तु के आधार पर कहानी का वर्गीकरण करते हुए उसे घटनाप्रधान कहानी के अन्तर्गत रखा जाता है। कथावस्तु की व्याख्या करते हुए उसे कहानी में सुनिबद्ध घटनासूत्रों का संकलन कहा जा सकता है, जिसका समग्र रूप कहानी का मूल आधार होता है। हिन्दी कहानी के विविध विकास युगों में कथावस्तु के स्वरूपात्मक विकास का अध्ययन करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि विशुद्ध कल्पनात्मक स्तर से लेकर यथार्थपरक आधारभूमि तक वह प्रशस्त हुआ है। सिद्धान्ततः इस तत्व की सफलता के लिए उसमें संक्षिप्तता, मौलिकता, रोचकता, क्रमबद्धता, विश्वसनीयता, उत्सुकता, शिल्पगत नवीनता तथा प्रभावात्मक एकता आदि गुणों का समावेश अपेक्षित होता है। कहानी की कथावस्तु का आरम्भ चरित्रांकन, वर्णन, घटना, वार्तालाप तथा पत्र आदि के द्वारा किया जाता है। कथावस्तु के मध्य भाग में मूल कथासूत्र का प्रसार होता है। उसका अन्त मर्मस्पर्शी, अप्रत्याशित, अनिश्चयात्मक अथवा पूर्णात्मक रूप में होता है। आज की कहानी में अलौकिक, चमत्कारिक, काल्पनिक तथा नाटकीय तत्वों के

स्थान पर ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, पौराणिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक विषय सूत्रों के आधार पर कथावस्तु का संगठन होता है। यह तथ्य कहानी के स्वरूपगत परिष्कार के मूल में कथावस्तु क्षेत्रीय संतुलन की स्थिति का निदर्शन करता है, जो उसके महत्व और विकास का आधार है।

प्रस्तुत कृति के सातवें अध्याय में कहानी के चरित्र चित्रण तत्व की व्याख्या की गयी है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी के मूल उपकरणों में कथावस्तु के उपरांत पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण को ही स्थान दिया जाता है। कहानी में नियोजित पात्रों का मूल आधार मानव जीवन के विविध पक्ष होते हैं। कहानीकार विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में मनुष्य के चरित्र की प्रतिक्रियात्मक संभावनाओं का निदर्शन करता है। डा० श्यामसुंदरदास, डा० गुलाबराय, डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, एब्बट, लाजोये एग्री, विलियम आर्थर, डा० रोबेक, मैक्स शान, स्काट, मेरेडिथ तथा एम० एल० एविसन आदि भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने पात्र योजना और चरित्र चित्रण के स्वरूप का सम्यक् विश्लेषण करते हुए इसका महत्व स्पष्ट किया है। कहानी में इस तत्व की प्रधानता के आधार पर उसका एक स्वतंत्र भेद मान्य किया गया है, जिसे चरित्र प्रधान कहानी कहा जाता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में चरित्र चित्रण तत्व के स्वरूपात्मक विकास का अध्ययन करने पर इस तथ्य का बोध होता है कि आधुनिक कहानी में चरित्रांकन पर विशेष बल दिया जाता है, जबकि पूर्ववर्ती कहानी में इसे कथावस्तु की तुलना में उपेक्षित समझा जाता था। सामाजिक कहानियों में अधिकांश लेखकों का दृष्टिकोण आदर्शपरक रहा है। प्रेमचन्द युग से पात्रों के चरित्रांकन में यथार्थात्मक दृष्टि की बहुलता मिलती है। सिद्धान्ततः कहानी के चरित्र चित्रण में कथात्मक अनुकूलता, मौलिकता, स्वाभाविकता, सजीवता, यथार्थता, सहृदयता, अन्तर्द्वन्द्वात्मकता, बौद्धिकता तथा कलापूर्णता आदि गुणों का समावेश आवश्यक होता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में उपलब्ध पात्रों का यदि वर्गीकरण किया जाय, तो उसमें प्रमुख, सहायक, पुरुष, स्त्री, खल, आदर्शवादी, यथार्थवादी, व्यक्तिवादी, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्रतीकात्मक, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा बौद्धिक पात्रों का नियोजन हुआ है। हिन्दी कहानी में पात्रों के चरित्र चित्रण के लिए अभिनयात्मक, स्वगत कथनात्मक, आत्मकथात्मक, विश्लेषणात्मक, विवरणात्मक, परिचयात्मक, मनोवैज्ञानिक, संवादात्मक तथा संकेतात्मक आदि विधियों का प्रयोग किया गया है। मानव चरित्र की व्यापक क्षेत्रीय विषमताओं और संभावनाओं को देखते हुए

कहानीकार के लिए पात्रों का चरित्रांकन एक जटिल कार्य व्यापार और गम्भीर दायित्व है। इसलिए कहानी में पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण का महत्व जीवन के सम्यक् परिचय की दृष्टि से भी विशिष्ट होता है।

कहानी के चौथे मूल उपकरण कथोपकथन अथवा संवाद योजना की व्याख्या प्रस्तुत कृति के आठवें अध्याय में की गयी है। सैद्धान्तिक दृष्टि से तो कहानी के प्रायः सभी तत्व परस्पर सम्बद्ध होते हैं, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से कथोपकथन का सम्बन्ध कहानी के अन्य तत्वों की तुलना में पात्रों से अधिक घनिष्ठ होता है। किसी कहानी में कथोपकथन तत्व की प्रधानता होने पर उसे एक पृथक् भेद के अन्तर्गत रखा जाता है, जिसे कथोपकथन प्रधान कहानी कहते हैं। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रथम विकास काल के अन्तर्गत कथोपकथन का जो रूप मिलता है, उसमें कलात्मक परिपक्वता का अभाव है। वर्तमान कहानी में कथोपकथन के कलात्मक परिष्कार के साथ ही उसमें दुरूहता और विश्लेषणात्मकता की वृद्धि हो रही है। कहानी में कथोपकथन की योजना मुख्यतः कथावस्तु का विकास करने, पात्रों की चारित्रिक व्याख्या करने, देशकाल का बोध कराने तथा लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करने के उद्देश्य से की जाती है। कहानी के विविधतायुक्त स्वरूप के कारण कथोपकथन के भी अनेक भेद मिलते हैं। इनमें भावात्मक, सांकेतिक, नाटकीय, व्यंग्यात्मक, मनोवैज्ञानिक तथा उद्देश्य-पूर्ण कथोपकथन प्रमुख हैं। सिद्धान्ततः कहानी में नियोजित कथोपकथन की सफलता के लिए उसमें संक्षिप्तता, स्वाभाविकता, उपयुक्तता, अनुकूलता, सम्बद्धता तथा मार्मिकता आदि गुणों का समावेश अपेक्षित है। वर्तमान कहानी में कथोपकथन क्षेत्रीय पर्याप्त नवीनता लक्षित होती है, जिसके फलस्वरूप उसके आपेक्षिक महत्व में भी वृद्धि हुई है।

प्रस्तुत पुस्तक के नवें अध्याय में कहानी के पांचवें मूल उपकरण भाषातत्व की व्याख्या की गयी है। एक कहानी लेखक के अभीष्ट भाव के व्यक्तीकरण के लिए भाषा का उपयुक्त होना आवश्यक है। कहानी की भाषा का दुरूह होना उसकी भावात्मक प्रवाहशीलता में बाधा उत्पन्न करता है। सरल, सहज, मुहावरों और कहावतों से युक्त भाषा कहानी को व्यावहारिक विश्वसनीयता प्रदान करती है। क्लिष्ट भाषा, निरर्थक शब्द योजना, अकालात्मक शब्दाडंबर तथा दुरूह वाक्यजाल कहानी को नीरस बना देते हैं। कहानी में इसी तत्व के माध्यम से लेखक पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करता है। पूर्ववर्ती कहनीकारों ने भाषा के यथार्थ महत्व को भली प्रकार नहीं समझा

था। भाषा क्षेत्रीय अप्रौढ और अविकसित स्थिति भी इस असन्तुलन का एक कारण थी। खड़ी बोली के सम्यक् रूप निर्धारण तथा स्थिरीकरण के उपरान्त भाषा तत्व के विकास की सम्भावनाएं सामने आयीं। स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानी में भाषा के जो परम्परागत तथा नवीन रूप उपलब्ध होते हैं, वे इसकी क्षेत्रीय विकासशीलता के द्योतक हैं। सैद्धान्तिक रूप से कहानी में भाषा तत्व की सफलता के लिए उसमें प्रवाहात्मकता, आलंकारिकता, चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता, व्यंग्यात्मकता, नाटकीयता, तथा भावात्मकता आदि गुणों का समावेश आवश्यक होता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में जो प्रमुख भाषा रूप उपलब्ध होते हैं, उनमें व्यावहारिक, संस्कृत-प्रधान, उर्दू-प्रधान, लोकभाषा, क्लिष्ट तथा समन्वित भाषा का प्रयोग अधिक हुआ है। यह वैविध्य और विकासात्मकता कहानी की भाषा को एक विशिष्ट उपकरण के रूप में मान्य करती है।

कहानी के छठे मूल उपकरण के रूप में शैली तत्व की व्याख्या प्रस्तुत पुस्तक के दसवें अध्याय में की गयी है। वर्तमान हिन्दी कहानी में इस तत्व को विशिष्ट महत्व प्रदान किया जाता है, यद्यपि पूर्ववर्ती कहानी में इसकी उपेक्षा हुई है। सैद्धान्तिक दृष्टि से यदि कहानी की विभिन्न शैलियों के स्वरूप पर विचार किया जाय, तो इस तथ्य की अवगति होगी कि शैलीगत अभिनवता कहानी के प्रभाव में वृद्धि कर देती है। जिस कहानी में अन्य तत्वों की तुलना में शैली को अधिक महत्व प्रदान किया गया हो, उसे शैली-प्रधान कहानी के अन्तर्गत रखा जाता है। वर्तमान कहानी में इसे न केवल प्रमुखता दी जाती है, वरन् इसे ही कहानी की सफलता का आधारभूत तत्व स्वीकार किया जाता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में अधिकांशतः वर्णनात्मक शैली का व्यवहार हुआ है। स्वातंत्र्योत्तर युग में शैली-क्षेत्रीय नवीन प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक मिलते हैं। सिद्धान्ततः कहानी मे शैली तत्व के समुचित नियोजन के लिए उसमे आलंकारिकता, प्रतीकात्मकता, प्रवाहात्मकता, रोचकता, भावात्मकता, व्यंग्यात्मकता तथा आंचलिकता आदि गुणों का समावेश अपेक्षित होता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में उपलब्ध विभिन्न शैलियां अपने स्वरूपगत वैविध्य के माध्यम से जहां एक ओर कहानी की कलात्मक परिपक्वता का द्योतन करती है, वहां दूसरी ओर इनसे समकालीन प्रवृत्तियों का भी परिचय मिलता है। विविध युगीन हिन्दी कहानी में मुख्य रूप से वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, आत्मकथात्मक, संवादात्मक, नाटकीय, डायरी, पत्र, काव्यात्मक, लोककथात्मक, स्मृतिपरक, स्वप्न तथा मनोविश्लेषणात्मक शैलियों का प्रयोग मिलता है। कहानी में शैली तत्व की क्षेत्रीय प्रयोगात्मकता, इसके अभिनव रूपों का जन्म तथा अन्य तत्वों

की अपेक्षा इसकी आनुपातिक महत्ता में वृद्धि आदि तथ्य आधुनिक कहानी में शैली के महत्व के परिचायक हैं।

प्रस्तुत कृति के ग्यारहवें अध्याय में कहानी के सातवें मूल तत्व देशकाल अथवा वातावरण की व्याख्या की गयी है। कहानी में इस तत्व का नियोजन उसे विश्वसनीय एवं यथार्थात्मक पृष्ठभूमि प्रदान करने के लिए किया जाता है। इस तत्व के अन्तर्गत कहानी में युगीन परिस्थितियों और उनके नियामक वैचारिक आन्दोलनों की भूमिका प्रस्तुत की जाती है। जिस रचना में कहानी के सभी मूल उपकरणों में आनुपातिक दृष्टि से देशकाल अथवा वातावरण के चित्रण को अपेक्षाकृत अधिक महत्व प्रदान किया गया हो, उसे वातावरण प्रधान कहानी की कोटि में रखा जाता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी कहानी में नियोजित देशकाल अथवा वातावरण तत्व के स्वरूपात्मक विकास का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि प्रथम विकास युग से ही इस तत्व की ओर कहानीकारों द्वारा समुचित ध्यान दिया गया है। भारतेन्दु काल से लेकर स्वातंत्र्योत्तर युग तक की कहानी में विविध क्षेत्रीय वातावरण का चित्रण स्थानीय रंग, लोक तत्व तथा आंचलिक विशेषताओं से युक्त होकर उपलब्ध हुआ है। सिद्धान्ततः कहानी में देशकाल के सफल चित्रण के लिए उसमें कतिपय गुणों का समावेश आवश्यक है, जिनमें प्रमुख रूप से संक्षिप्तता, वास्तविकता, आलंकारिकता, चित्रात्मकता, वर्णन की सूक्ष्मता तथा तत्वगत सन्तुलन आदि का उल्लेख किया जा सकता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ग्राम्य, धार्मिक, राजनीतिक, भौगोलिक, जादूई, तिलिस्मी, जासूसी तथा प्राकृतिक वातावरण के रूप उपलब्ध होते हैं। वर्तमान हिन्दी कहानी में वातावरण का सर्वथा स्वाभाविक रूप विविध विशेषताओं से युक्त होकर चित्रित हुआ है, जो उसके सम्यक् प्रभाव की सृष्टि करने में सक्षम है।

कहानी के आठवें और अन्तिम मूल उपकरण के रूप में उद्देश्य तत्व की व्याख्या इस पुस्तक के बारहवें अध्याय में प्रस्तुत की गयी है। प्राचीन युगीन कथा साहित्य से लेकर वर्तमान कालीन कहानी तक उद्देश्य तत्व का स्वरूप भी निरन्तर परिवर्तित और विकसित होता रहा है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से उद्देश्य को भी कहानी के एक विशिष्ट तत्व के रूप में मान्य किया जा सकता है, क्योंकि इसकी सम्यक् परिपूर्णता ही कहानी रचना की मूल प्रेरणा होती है। जिस कहानी में लेखक का अभीष्ट ही मुख्य रहता है तथा वह उसी की सिद्धि को केन्द्र में रखकर उसके अनुरूप अन्य तत्वों का नियोजन करता है, उसे उद्देश्यप्रधान कहानी के वर्ग में रखा जाता है। हिन्दी कहानी में मनो-

रंजन से लेकर गम्भीर समस्याओं के चित्रण तक उद्देश्य तत्व का क्रमिक विकास मिलता है। कहानी के उद्देश्य के विषय में जिन प्रमुख धारणाओं का विविध युगों में प्रचलन रहा है, उनमें मनोरंजन, उपदेशात्मकता, कौतूहल सृष्टि, हास्य सृष्टि, स्वास्थ्य लाभ, आदर्शवादी उद्देश्य, समस्या चित्रण, सुधार भावना, राजनीतिक उद्देश्य, यथार्थ चित्रण, जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति, प्रभावात्मकता, मनोवैज्ञानिकता तथा प्रचारवाद आदि प्रमुख हैं। आधुनिक युगीन साहित्यिक विधाओं में एक गम्भीर माध्यम के रूप में मान्यता प्राप्त होने के कारण कहानी में उद्देश्य तत्व का महत्व अपेक्षाकृत बढ़ गया है।

प्रस्तुत पुस्तक के तेहरवें और अन्तिम अध्याय में हिन्दी कहानी कला का सिंहावलोकन करते हुए उसके विभिन्न उपकरणात्मक विकास की पृष्ठभूमि में स्वातंत्र्योत्तर कहानी की परिचयात्मक व्याख्या की गयी है। कहानी के शीर्षक तत्व के क्षेत्र में दृष्टिकोणगत परिष्कार स्पष्ट है। उसकी कथावस्तु का विषयक्षेत्र और रूप-वैविध्य उसके तात्विक विकास का द्योतक है, यद्यपि वर्तमान कहानी में इसका आनुपातिक ह्रास हुआ है। चरित्र चित्रण के क्षेत्र में विभिन्न युगीन कहानी उन्नतिशीलता का बोध कराती है। कथोपकथन के क्षेत्र में विद्यमान स्वरूपात्मक परिपक्वता इस तत्व के विकास की परिचायक है। हिन्दी कहानी की भाषा में न केवल क्षेत्रीय प्रौढता आभासित होती है, वरन् यह समृद्ध भी हुई है। कहानी की शैली के क्षेत्र में सर्वाधिक विकास हुआ है। इसी तत्व की महत्ता प्रयोगात्मकता की दृष्टि से भी अन्य सभी तत्वों की तुलना में अधिक है। देश काल और वातावरण के विभिन्न प्रवृत्तिगत भेद इस तत्व के परिष्कृत रूप का बोध कराते हैं। कहानी के उद्देश्य तत्व का क्षेत्रीय विस्तार आधुनिक साहित्य में इसके विशिष्ट महत्व का परिचायक है। हिन्दी कहानी का वर्तमान स्वरूप विविधता युक्त है। उसके क्षेत्र में विभिन्न आन्दोलन कहानीकारों की जागरूकता और प्रबुद्धता के द्योतक हैं। नयी कहानी, व्यावसायिक कहानी तथा अकहानी आदि के रूप में स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का जो रूप विकास हो रहा है, उसमें मानव की प्रतिष्ठा, संघर्ष और चेतना, विचार स्वातंत्र्य, यथार्थ का आग्रह, यंत्र युग की सभ्यता, अस्तित्व का संघर्ष, आंचलिक तत्व, सांकेतिक चित्रण, प्रतीकात्मकता, वाद-मुक्तता तथा नयी जीवन दृष्टि आदि विशेषताएं निहित हैं। इनकी संक्षिप्त व्याख्या के साथ इसी अध्याय के अन्त में निष्कर्ष रूप में हिन्दी कहानी की उपलब्धियों और भविष्य की ओर संकेत किया गया है।

इस प्रकार से इस पुस्तक में हिन्दी कहानी कला की सैद्धान्तिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। यह अध्ययन विविध विकास कालीन हिन्दी कहानी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में किया गया है। विभिन्न उपकरणों की व्यावहारिक आलोचना के सन्दर्भ में हिन्दी कहानी से ही उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये हैं। कहानी के स्वरूपगत विश्लेषण के उद्देश्य से भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के मतों का संक्षेप में परिचय दिया गया है, जो आधुनिक कहानी की धारणा स्पष्ट करता है। आधुनिक कहानी की पृष्ठभूमि के रूप में भारतीय तथा विदेशी परम्पराओं का रूपरेखात्मक इतिहास भी प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक के विभिन्न अध्यायों में आवश्यकतानुसार संकेत और टिप्पणियां भी दी गयी हैं, जो सन्दर्भ सूत्रों तथा विशिष्ट तथ्यों के रूप में हैं। अनेक अनावश्यक उल्लेख इस रचना के विस्तार भय से नहीं किये गये हैं। कुछ संकेतों का समावेश केवल इस अध्ययन को परिपूर्णता प्रदान करने के उद्देश्य से कर दिया गया है। अपने इस रूप में यह पुस्तक हिन्दी कहानी कला के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूपों के विकास की अवगति कराने वाली सर्वप्रथम रचना कही जा सकती है। आशा है, उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं तथा अन्य प्रबुद्ध पाठकों के लिए यह पुस्तक समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रतापनारायण टंडन

विषय-सूची

हिन्दी कहानी कला

अध्याय १

विषय प्रवेश

कहानी का स्वरूप

साहित्य के क्षेत्र में प्राचीन काल से लेकर वर्तमान युग तक जिन विधाओं का उद्भव और विकास हुआ है, उनमें कहानी का अन्यतम स्थान है। अनेक गम्भीर और बहुत से हलके-फुलके रोचक साहित्य रूपों के विद्यमान होते हुए भी कहानी का अपना अलग महत्व है। समस्त साहित्यांगों में सम्भवतः कहानी ही एक मात्र ऐसा माध्यम है, जो अपने लघु परिवेश मे भी बृहत् जीवन को अभिव्यंजित कर देने में समर्थ है। गम्भीर साहित्य की आकांक्षा रखने वाले पाठक को कहानी में चिंतन-दर्शन की सामग्री मिलती है और सामयिक मनोरंजन की इच्छा वाले व्यक्ति को भी इससे मनस्तुष्टि होती है। इसीलिए संसार की प्रत्येक भाषा में जहाँ एक ओर अनेक गम्भीर और बृहत् साहित्यिक माध्यों की प्रशस्त परम्परा मिलती है, वहाँ दूसरी ओर कहानी का भी समुचित विकास हुआ दिखाई देता है। यही नही, प्राचीन संस्कृत साहित्य शास्त्र के अन्तर्गत अनेक आचार्यों ने विविध कथा रूपों की व्याख्या उनके विभिन्न तत्वों के सन्दर्भ मे की है। आधुनिक कहानी का स्वरूप यद्यपि इन प्राचीन कथा रूपों से पर्याप्त भिन्नता रखता है, परन्तु इसके मूल उपकरणों में बहुत समानता है। आधुनिक हिन्दी कहानी ने जहाँ एक ओर अपने देश की प्राचीन संस्कृत कथा परम्परा से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किया है, वहाँ दूसरी ओर पाश्चात्य कथा साहित्य का स्पष्ट प्रभाव भी उस पर परिलक्षित होता है। इसलिए हिन्दी कहानी कला के सम्यक् अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि उसका विवेचन इसी पृष्ठभूमि में किया जाय।

कहानी का शास्त्रीय महत्व

ऊपर इस तथ्य का उल्लेख किया जा चुका है कि यद्यपि आधुनिक रूप में कहानी साहित्य की एक नवीन विधा है, परन्तु प्राचीन रूप में इसका प्रसार विश्व की अधिकांश

भाषाओं में सुदूर अतीत तक मिलता है। हमारे देश में भी प्राचीन संस्कृत साहित्य में कथा साहित्य का विकास हुआ है। संस्कृत की परवर्ती भाषाओं के साहित्य में भी सुविकसित कथा परम्पराएँ उपलब्ध होती हैं। संस्कृत के तथा परवर्ती साहित्याचार्यों ने विविध कथा रूपों की शास्त्रीय व्याख्या करते हुए उनके सम्यक् स्वरूप विवेचन के प्रयत्न किये हैं। इस दृष्टि से संस्कृत साहित्य शास्त्र की परम्परा में भामह, दंडी तथा विश्वनाथ आदि साहित्याचार्यों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन साहित्य पंडितों ने गद्य काव्य के विविध भेदों के अन्तर्गत कहानी के विविध पर्यायवाची कथा रूपों की शास्त्रीय महत्ता का निरूपण किया है।

गद्य काव्य के भेद और कहानी

संस्कृत साहित्य शास्त्र में कहानी तथा अन्य कथा रूपों की गणना गद्य काव्य के अन्तर्गत की गयी है। शास्त्रीय विचार से प्राचीन संस्कृत साहित्य में छठी शताब्दी में आचार्य भामह ने अपने 'काव्यालंकार' नामक ग्रन्थ में सर्वप्रथम काव्य विभाजन किया। आगे चलकर आचार्य दंडी ने 'काव्यादर्श' में तथा आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में भी इन काव्य भेदों का पृथक्-पृथक् निरूपण किया। संस्कृत साहित्य शास्त्र में गद्य काव्य के प्रधानतः दो भेद किये गये हैं, जिन्हें दृश्य काव्य तथा श्रव्य काव्य कहा जाता है। उनमें से प्रथम वर्ग अर्थात् दृश्य काव्य के अन्तर्गत मुख्यतः रूपक एवं उपरूपक रखे गये हैं तथा द्वितीय वर्ग अथवा श्रव्य काव्य के अन्तर्गत विविध कथात्मक रूपों का उल्लेख किया गया है। इसके साथ ही संस्कृत में छन्द-युक्तता तथा छन्द-विहीनता की दृष्टि से भी कथा रूपों का वर्गीकरण है, जो गद्यात्मक अथवा पद्यात्मक स्वरूप-प्रधान हैं। पहले आकारिक तथा स्वरूपात्मक दृष्टिकोण से श्रव्य काव्य का वर्गीकरण करते हुए उसके अन्तर्गत महाकाव्य, खंड काव्य तथा मुक्तक काव्य का उल्लेख किया गया है। फिर रचना की दृष्टि से गद्य, पद्य तथा चम्पू के रूप में इनकी व्याख्या हुई है। इनमें से प्रथम कोटि में मुख्यतः उन विधाओं की गणना की जाती है, जो छन्द विहीन होती हैं। इनका उल्लेख भी दो श्रेणियों में हुआ है। इनमें प्रथम के अन्तर्गत कथा और द्वितीय के अन्तर्गत आख्यायिका को रखा गया है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यदि इन साहित्य रूपों की भावी परम्परा का विकासात्मक अध्ययन किया जाय, तो इस तथ्य की अवगति होगी कि आधुनिक गद्य साहित्य की अधिकांश कथात्मक विधाओं का मूल आधार ये ही कथा रूप हैं। संस्कृत तथा उसके परवर्ती साहित्य में

काव्य के पद्यात्मक अथवा छन्द युक्त रूपों में महाकाव्य तथा खंड काव्य आदि का विशेष रूप से विकास हुआ। काव्य के गद्यात्मक अथवा छन्द रहित रूपों में दृश्य और श्रव्य काव्य विकसित हुए। इसके अन्तर्गत आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रथम वर्ग में नाटक तथा एकांकी एवं द्वितीय वर्ग में उपन्यास तथा कहानी का विशेष रूप से विकास हुआ है।

भामह का वर्गीकरण

छठी शताब्दी के मध्य काल में आचार्य भामह ने अपने 'काव्यालंकार' नामक ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में काव्य भेदों का निरूपण किया है। भामह ने सर्वप्रथम प्रतिपाद्य वस्तु के आधार पर काव्य के चार भेद किये और उनके अन्तर्गत देवादि-वृत्त का निरूपण करने वाला कलाश्रित तथा शास्त्राश्रित काव्य एवं कल्पित वस्तु का निरूपण करने वाला कलाश्रित तथा शास्त्राश्रित काव्य रखा। इसके उपरान्त भामह ने बन्ध की दृष्टि से काव्य के पाँच भेद किये और इनके अन्तर्गत सर्गबद्ध काव्य, अभिनेय वस्तु काव्य अथवा नाटक, आख्यायिका, कथा तथा अनिबद्ध अथवा मुक्तक काव्य को रखा।[1] उपर्युक्त काव्य भेदों में भामह ने आख्यायिका की व्याख्या करते हुए यह निर्देश किया है कि आख्यायिका में प्रकरण की आकुलता नही होती है, उसमें श्रव्य शब्द, अर्थ तथा पद होते हैं, गद्य का प्रयोग होता है, उसका अर्थ उदात्त होता है तथा उसमें उच्छ्वास होते हैं। साथ ही, आख्यायिका में नायक अपने वृत्त एवं चेष्टा का वर्णन करता है। उसमें वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होता है तथा उसमें अवसर के अनुसार भविष्यत् अर्थ का भी निरूपण होता है।[2] कथा की व्याख्या करते हुए आचार्य भामह ने लिखा है कि यह रचना रचयिता के अभिप्रायपूर्ण कथनों से मुक्त होती है। कथा के विषय कन्याहरण, युद्ध तथा वियोग आदि हो सकते हैं। उसमें आख्यायिका के विपरीत न तो वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होता है और न उच्छ्वास होते हैं। उसमें संस्कृत के साथ अपभ्रंश भाषा का प्रयोग भी होता है। आख्यायिका की भाँति कथा में नायक अपने चरित्र का वर्णन नही करता है।[3] आख्यायिका तथा कथा

१. आचार्य भामह, 'काव्यालंकार', १, १७-१८।
२. वही, १, २५-२६।
३. वही, १, २९।

के साथ ही गाथा की व्याख्या भी आचार्य भामह ने की है। उनका मन्तव्य है कि गाथा श्लोक मात्र की प्रबन्ध रहित रचना को कहते हैं। उसमें वक्रोक्ति तथा स्वभावोक्ति आदि सभी का समावेश होता है।[४] काव्य भेदों से सम्बन्धित आचार्य भामह के उपर्युक्त विचार छठी शताब्दी के मध्यकाल के लगभग व्यक्त किये गये थे। इसके पूर्व संस्कृत साहित्य शास्त्र में इस विषय से सम्बन्धित कोई शास्त्रीय निदर्शन उपलब्ध नहीं होता। इस दृष्टि से भामह इस क्षेत्र में सिद्धान्त नियमन करने वाले सर्वप्रथम साहित्याचार्य हैं। यद्यपि भामह के आख्यायिका, कथा तथा गाथा विषयक सिद्धान्त सूक्ष्म विवेचन से युक्त नहीं हैं, परन्तु अपने क्षेत्र में सर्वप्रथम दिशा संकेत करने के कारण इनका ऐतिहासिक महत्व है।

दंडी का वर्गीकरण

सातवी शताब्दी के उत्तरार्ध में आचार्य दंडी ने अपने 'काव्यादर्श' नामक ग्रन्थ में सर्वप्रथम के तीन परम्परागत भेदों को मान्यता दी। प्रथम भेद के अन्तर्गत उन्होंने पद्य अथवा छन्दबद्ध काव्य, द्वितीय भेद के अन्तर्गत गद्य अथवा छन्द विहीन काव्य तथा तृतीय भेद के अन्तर्गत गद्य-पद्य मिश्रित अथवा चम्पू काव्य का उल्लेख किया है। इनमे प्रथम अथवा पद्य काव्य के विषय में उन्होंने यह निर्देश किया है कि उसमें चार चरण होते हैं। छन्द की दृष्टि से उसके दो भेद होते हैं, जिनमें से प्रथम में जाति छन्द व द्वितीय में वृत्त छन्द होते हैं।[५] गद्य काव्य का निरूपण करते हुए आचार्य दंडी ने कहा है कि चरण रहित पद्य समूह को ही गद्य कहते हैं। इसके उन्होंने दो भेद किये है, जिनमें से प्रथम के अन्तर्गत आख्यायिका तथा द्वितीय के अन्तर्गत कथा का उल्लेख किया है।[६] आख्यायिका और कथा का लक्षण स्पष्ट करते हुए दंडी ने बताया है कि केवल नायक के द्वारा वर्णित गद्य को आख्यायिका कहते हैं। आख्यायिका के विपरीत कथा में प्रस्तुत गद्य का वर्णन नायक अथवा किसी अन्य पात्र के द्वारा भी हो सकता है। आख्यायिका अथवा कथा में यदि यथार्थ वक्ता नायक स्वयं अपना गुण वर्णन करता है, तो उसे दोष नही कहा जाता। दंडी का यह मन्तव्य है कि आख्यायिका तथा कथा

४. वही, १, ३०।
५. आचार्य दंडी, 'काव्यादर्श', १, ११।
६. वही, १, २३।

दोनों में ही वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्द एवं उच्छ्वास समान रूप से प्रसंगवश होने चाहिए। विविध तत्वगत इस समानता के कारण ही दंडी ने स्पष्ट रूप से इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि मूलतः कथा और आख्यायिका दोनों एक ही जाति की हैं, यद्यपि इन्हें दो विभिन्न नाम दिये गये हैं। अन्य कथात्मक माध्यमों का भी उल्लेख दंडी ने इन्हीं दो के अन्तर्गत किया है, जिनमें खंड कथा तथा परिकथा आदि हैं। आख्यायिका मे कन्या का अपहरण, युद्ध, वियोगजनित प्रेम तथा नायक का अभ्युदय आदि कुछ ऐसे तत्व समाविष्ट रहते है, जो प्रायः महाकाव्य से समानता रखते हैं। इसी समानता के कारण दंडी ने इन तत्वों को आख्यायिका का विशेष गुण नही माना है। दंडी ने यह निर्देश भी प्रस्तुत किया है कि अपने अभीष्ट अर्थ की सिद्धि के लिए विद्वान् साहित्य-कार किसी भी घटना के द्वारा अपनी कथा को प्रारम्भ कर सकते हैं। दंडी ने बताया है कि कथा की रचना सस्कृत तथा उसके अतिरिक्त अन्य भाषाओं में भी हो सकती है। कथा के उदाहरण स्वरूप दंडी ने भूत भाषा अथवा पैशाची भाषा में लिखित अनेक आश्चर्यों से युक्त 'बृहत्कथा' का उल्लेख किया है।[७] यहाँ पर इस तथ्य की ओर संकेत करना भी अनुचित न होगा कि संस्कृत साहित्य में कथा एवं आख्यायिका के उदाहरण-स्वरूप क्रमशः 'कादम्बरी' तथा 'हर्षचरित' का उल्लेख भी किया जाता है। इससे यह भी सकेत मिलता है कि संस्कृत में कल्पनायुक्त लोककथात्मक अथवा पौराणिक गद्य रचना को कथा तथा इतिहाससिद्ध रचना को आख्यायिका के रूप में मान्य किया गया है। उपर्युक्त विवरण से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि दंडी ने कथा रूपों में गद्यात्म-कता पर विशेष बल दिया है। उन्होंने भी भामह की भाँति कथा अथवा आख्यायिका आदि की रचना के लिए संस्कृत के साथ ही अन्य भाषाओं को भी सम्मत ठहराया। शास्त्रीय भाषा अथवा साहित्यिक भाषा के साथ ही लोक भाषा अथवा व्यावहारिक भाषा के प्रयोग का अनुमोदन इन कथात्मक रूपों की लोकप्रियता की ओर भी संकेत करता है।

आनन्दवर्धन का वर्गीकरण

नवीं शताब्दी में संस्कृत साहित्य के आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने 'ध्वन्यालोक' नामक ग्रन्थ में विविध कथात्मक माध्यमों का स्वरूप निरूपित किया है। उनकी धारणा है कि परिकथा में केवल कथांश का वर्णन मुख्य होता है। इसीलिए उसमें

७. वही, १, २९-३०, ३८।

रसबन्ध का विशेष आग्रह नहीं होता। खंड कथा तथा सकल कथा के विषय में उन्होंने यह निर्देश किया है कि ये प्राकृत भाषा में अधिक लिखी जाती हैं। इसीलिए इनमें दीर्घ समासों का प्रयोग हो सकता है। इसमें भी रस के अनुसार वृत्तियों का औचित्य उन्होंने आवश्यक बताया है। आख्यायिका और कथा के विषय में आचार्य आनन्द-वर्धन ने लिखा है कि इनमें गद्य की प्रधानता होने के कारण मध्यम और दीर्घ समास होते हैं। कथा में गद्य रचना का जटिल स्वरूप होता है, परन्तु उसमें भी रस-बन्ध सम्बन्धी औचित्य को ध्यान मे रखना आवश्यक है।[८]

अभिनवगुप्त का वर्गीकरण

संस्कृत साहित्य शास्त्र की परम्परा के महत्वपूर्ण आचार्य अभिनवगुप्त ने काव्य के भेदों का निरूपण करते हुए मुक्तक, सन्दानितक, विशेषक, कालापक, कुलक, पर्याय-बन्ध, परिकथा, एकलकथा, खंडकथा, सर्गबन्ध, अभिनेय, आख्यायिका तथा कथा का उल्लेख किया है। इनमें से परिकथा के विषय में उन्होंने बताया है कि उसमें अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक वृत्तान्त होते हैं तथा उनके माध्यम से धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष आदि पुरुषार्थों में से किसी एक की सिद्धि होती है।[९] इसके अतिरिक्त खंडकथा,[१०] सकल कथा,[११] आख्यायिका एवं कथा[१२] के लक्षण भी अभिनवगुप्त ने बताये जो पूर्ववर्ती मान्यताओं से साम्य रखते हैं।

मम्मट का वर्गीकरण

ग्यारहवीं शताब्दी में संस्कृत के साहित्यशास्त्री आचार्य मम्मट ने अपने ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' में कुछ कथात्मक माध्यमों का उल्लेख किया है। इस सन्दर्भ में इस

८. आचार्य आनन्दवर्धन, 'ध्वन्यालोक', ३—७,९।

९. एकम धर्मादिपुरुषार्थमुद्दिश्य प्रकारवैचित्र्येणानन्तवृत्तान्तवर्णनप्रकारा परिकथा।

१०. एकदेशवर्णना खण्डकथा।

११. समस्तफलान्तेतिवृत्तवर्णना सकलकथा।

१२. आख्यायिकोच्छ्वासादिना वक्त्रापरवक्त्रादिना च युक्ता। कथा तद्विर-हिता। उभयोरपि गद्यबन्धस्वरूपतया द्वन्द्वेन निर्देशः।

तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है कि उन्होंने इन कथात्मक विधाओं की विस्तृत व्याख्या नहीं की है। मम्मट ने प्रबन्ध काव्य के विविध भेदों की चर्चा करते हुए आख्यायिका और कथा का नाम भी लिया है। इनमें से आख्यायिका के विषय में मम्मट की यह धारणा है कि उसमें शृंगार रस-प्रधान स्थलों पर भी कोमल वर्णों का प्रयोग नहीं होना चाहिए।[13] कथा के विषय में मम्मट ने यह मत व्यक्त किया है कि उसमें रौद्र के प्रसंग मे भी कठोर शब्दों का प्रयोग अविधेय है।[14] मम्मट के ये विचार इन काव्य रूपों के सम्बन्ध में अभिव्यक्त किये गये पूर्ववर्ती आचार्यों के मन्तव्यों से प्रभावित हैं।

हेमचन्द्र का वर्गीकरण

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' नामक ग्रन्थ में अनेक अभिनव कथात्मक रूपों का उल्लेख किया है। उन्होंने आख्यायिका, कथा, उपाख्यान, निदर्शन, प्रवल्हिका, मतल्लिका, मणिकुल्या, उपकथा तथा बृहत्कथा आदि का पृथक्-पृथक् स्वरूप निदर्शन किया है। इनमें से आख्यायिका के विषय मे हेमचन्द्र ने बताया है कि वह संस्कृत मे लिखी गयी गद्यात्मक रचना होती है, उसमे नायक स्वयं अपना वृत्तान्त कहता है, उसमें भविष्य की घटनाओं का भी संकेत होता है, उसमें यत्र-तत्र वक्त्रादि छन्द होने है तथा वह उच्छ्वासो मे विभक्त होती है।[15] कथा के विषय मे हेमचन्द्र ने बताया है कि कथा का नायक धीर-शान्त होता है, उसमे वर्णन नायक द्वारा नही वरन् या तो किसी अन्य पात्र अथवा स्वयं कवि द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। वह गद्य अथवा पद्य मे किसी भी भाषा मे लिखी जा सकती है।[16] हेमचन्द्र के अनुसार उपाख्यान प्रबन्ध का एक भाग होता है, जिसकी रचना दूसरो के प्रबोधन के लिए होती है। इसका उदाहरण 'नलोपाख्यान' है। आख्यान उसे कहते हैं जो अभिनय, पठन अथवा गायन के रूप में एक ग्रंथिक के द्वारा वर्णित होता है। इसका उदाहरण 'गोविन्दाख्यान' है। निदर्शन उसे कहते हैं जिसमें अनेक प्रकार की चेष्टाओं के द्वारा कार्य और अकार्य किया जाय।

१३. आख्यायिकायां शृंगारेऽपि न मसृणवर्णादयः।

१४. कथायां रौद्रेऽपि नात्यन्तमुद्धता।

१५. नायकाख्यातस्ववृत्ताभाव्यर्थशंसिवक्त्रादिः सोच्छ्वासा संस्कृता गद्ययुक्ताख्यायिका।

१६. धीरशान्तनायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा।

इसका उदाहरण 'पंचतंत्र' है। प्रवल्हिका उसे कहते हैं जिसमें दो विवादों में से एक की प्रधानता दिखायी जाय और जो अर्धप्राकृत में लिखी गयी हो। इसका उदाहरण 'चेटक' है। मतल्लिका उसे कहते हैं जो प्रेतमहाराष्ट्र भाषा में लिखी गयी क्षुद्र कथा हो। इसका उदाहरण 'अनंगवती' है। मणिकुल्या उस रचना को कहते हैं जिसका पूर्ववृत्त रचना के प्रारम्भ में प्रकाशित न होकर बाद में हो। इसका उदाहरण 'मत्स्य-हसित' है। परिकथा उस रचना को कहते हैं जिसका उद्देश्य पुरुषार्थ सिद्धि हो और जो अनेक वृत्तान्तों वाली वर्णनात्मक कृति हो। इसका उदाहरण 'शूद्रक' है। खंडकथा उसे कहते हैं जिसका मुख्य इतिवृत्त रचना के मध्य या अन्त मे हो। इसका उदाहरण 'इन्दुमती' है। सकल कथा उसे कहते है जिसके अन्त में समस्त फल सिद्ध हो जायें। इसका उदाहरण 'समरादित्य' है। उपकथा किसी प्रसिद्ध कथा के अंतर्गत किसी एक पात्र के माध्यम से कही गयी कथा को कहते है। बृहत्कथा उस रचना को कहते हैं जो लम्य नामक परिच्छेदों मे लिखी गयी हो तथा जिसमे अद्भुत अर्थ की व्यंजना हो। इसका उदाहरण 'नरवाहनदत्तचरित' है।

विश्वनाथ का वर्गीकरण

संस्कृत के साहित्याचार्यों मे चौदहवी शताब्दी में विश्वनाथ ने अपने 'साहित्य दर्पण' नामक ग्रन्थ में विविध कथा रूपों का निरूपण प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम उन्होने श्रव्य काव्य के दो रूपों का उल्लेख किया है, जो केवल सुने जा सकते है। इनके दो प्रकार गद्य और पद्य रूप मे उपलब्ध होते हैं।[१७] इनमें से गद्य काव्य का निरूपण करते हुए विश्वनाथ ने बताया है कि गद्य चार प्रकार का होता है—मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय तथा चूर्णक। इनमें से प्रथम कोटि का गद्य समास रहित होता है, द्वितीय कोटि के गद्य में पद्य के अंश भी होते हैं, तृतीय कोटि के गद्य में दीर्घ समास होते है तथा चतुर्थ कोटि के गद्य में छोटे-छोटे समास होते हैं।[१८] इसी प्रसंग में विश्वनाथ ने कथा का स्वरूप निरूपण करते हुए कहा है कि उसमें सरस वस्तु गद्य के द्वारा ही निर्मित होती है। कथा में विविध स्थलों पर आर्या छन्द एवं वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होता है। कथा के प्रारम्भ में पद्यमय नमस्कार होता है। इसमें खलादिकों

१७. आचार्य विश्वनाथ, 'साहित्यदर्पण', ६, ३१३।
१८. वही, ६, ३३०।

का चरित्र निबद्ध होता है। आचार्य विश्वनाथ ने कथा का उदाहरण 'कादम्बरी' को बताया है।[19] आख्यायिका के सम्बन्ध में आचार्य विश्वनाथ का यह मन्तव्य है कि यह कथा के ही समान होती है। आख्यायिका में कवि के वंश का वर्णन होता है। उसमें अन्य कवियों का वृत्तान्त भी रहता है। अवसर के अनुसार उसमें पद्य योजना भी रहती है। आख्यायिका मे विविध कथा म र्गों का उल्लेख 'आश्वास' नाम से किया जाता है। आख्यायिका के प्रत्येक आश्वास के आरम्भ मे ही भावी कथा की सूचना आर्या, वक्त्र अथवा अपरवक्त्र छन्द के द्वारा अन्योक्ति से दी जाती है। आचार्य विश्वनाथ ने आख्यायिका का उदाहरण 'हर्षचरित' को बताया है। आख्यान आदि अन्य कथा रूपों को आचार्य विश्वनाथ ने कथा और आख्यायिका के ही अन्तर्गत रखा है। 'पंचतंत्र' आदि रचनाओं को उन्होंने आख्यान आदि के उदाहरण रूप में उल्लिखित किया है।[20]

कहानी की परिभाषा

भारतीय व विदेशी विद्वानो ने कहानी की परिभाषा करते हुए अनेक प्रकार के मत प्रस्तुत किये है। प्राचीन कहानी के विकास की पृष्ठभूमि में नवीन कहानी के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए इन कथा शास्त्रियो ने कहानी के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है। अनेक साहित्यिकों ने कहानी के मूल उपकरणों को भी अपनी परिभाषा का आधार बनाया है। वास्तव मे कहानी साहित्य की समस्त विधाओं में प्राचीनतम है। अपने बहुरूपी स्वरूप मे इसके विकास की परम्परा का प्रसार सहस्त्रों वर्षों तक है। इसलिए इतिहास के विभिन्न विकास युगो में इसके पृथक्-पृथक् स्वरूप महत्व प्राप्त करते रहे है। कहानी के सैद्धान्तिक स्वरूप और परिभाषा के सम्बन्ध में साहित्य-विचारकों की धारणाओं मे अन्तर मिलने का एक कारण यह भी है कि विभिन्न युगों में कहानी के उद्देश्य तत्व के सम्बन्ध मे भी एकाधिक मन्तव्यों का प्रचलन रहा है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक कहानी के उद्देश्य तत्व में परिवर्तन के साथ विकासशीलता लक्षित होती है। कहानी के अन्य मूल तत्वो के विषय मे भी यही तथ्य उल्लिखित किया जा सकता है। प्राचीन काल मे कहानी का कोई विशिष्ट तत्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझा जाता था, परन्तु आज उसका आनुपातिक महत्व घट गया

१९. वही, ६, ३३५।
२०. वही, ६, ३३६।

प्रतीत होता है। इसलिए आधुनिक युगीन साहित्याचार्यों में से यदि किसी ने कहानी के एक तत्व को प्रमुखता देते हुए कहानी की परिभाषा की है, तो किसी ने दूसरे तत्व को प्रधान मानकर उसका स्वरूप निरूपित किया है। एक विद्वान् ने यदि कहानी की स्वरूपगत नवीनता पर बल दिया है, तो दूसरे ने उसके आकार को मुख्यता दी है। इसी प्रकार से अन्य विद्वानों ने कहानी में कथात्मकता, गद्यात्मकता, कल्पनात्मकता, चित्रणात्मकता, यथार्थात्मकता, कलात्मकता तथा मनोविश्लेषणात्मकता आदि पर गौरव देते हुए इस विधा की परिभाषा की है। यहाँ पर इस सन्दर्भ में यह तथ्य उल्लिखित करना अप्रासंगिक न होगा कि कहानी की ये परिभाषाएँ परस्पर भिन्न होते हुए भी इस दृष्टि से विशेष महत्व रखती हैं, क्योंकि इनमें से प्रत्येक में कहानी के किसी न किसी विशिष्ट पक्ष की महत्ता इंगित की गयी है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से कहानी की परिभाषा और स्वरूप का स्पष्टीकरण करने वाली प्राचीनतम मान्यता 'अग्निपुराण' में उपलब्ध होती है। इस ऐतिहासिक ग्रन्थ में कहानी के लिए 'कथानिका' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'अग्निपुराण' में अभिव्यक्त धारणा के अनुसार "कथानिका मे प्रस्तुत की गयी मुख्य घटना या तो भयानक होती है और या सुखदायक। उसका मूल रस करुण ही होता है। कथानिका का अन्त अद्भुत होता है। उसका अर्थ सुनियोजित होता है। कथानिका की पदावली अनुदात्त अर्थात् सौम्य होती है।"[21] आगे चलकर संस्कृत साहित्य शास्त्र में भामह, दंडी तथा विश्वनाथ ने विविध कथा रूपो की परिभाषा और व्याख्या की। आधुनिक युग में भी यह साहित्यांग लोकप्रियता की दृष्टि से सर्वाधिक महत्ता से युक्त रहा। आधुनिक आलोचकों ने विचारधारा, जीवनदर्शन, मूल तत्व, नियोजन तथा उद्देश्य आदि को प्रमुखता देने के साथ-साथ नवीनता की दृष्टि से भी कहानी की परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। यहाँ पर इन्ही वैविध्यपूर्ण परिभाषाओं को संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है, जो कहानी के विविध पक्षों का महत्व निरूपित करती है।

डा० श्यामसुन्दर दास

डॉ० श्यामसुन्दर दास ने आधुनिक कहानी अथवा आख्यायिका का नवीन रूपात्मक

२१. भयानकं सुखपरं गर्भे च करुणो रसः।
अद्भुतान्ते सुक्लृप्तार्थो नोदात्ता सा कथानिका॥

विकास पाश्चात्य देशों में ही आरम्भ हुआ माना है। अपनी लोकप्रियता के कारण ही यह साहित्यिक विधा अपने एक शताब्दी के ही विकास काल में कलात्मक परिपुष्टता प्राप्त कर चुकी है। डॉ० श्यामसुन्दर दास की धारणा है कि कहानी अथवा आख्यायिका की विशिष्टता आकारगत सीमा के कारण भी है। उनका यह भी विचार है कि श्रेष्ठ कहानी में केवल एक ही प्रधान कथा अथवा घटना नियोजित होती है, अनेक घटनाओं अथवा अन्तर कथाओं की सृष्टि उसे कलात्मक दृष्टि से हीन बना देती है। इसके अतिरिक्त इसमें शैली की दृष्टि से यह विशिष्टता होती है कि "आख्यायिका-लेखक सदैव पाठक के संमुख उपस्थित होकर आमने सामने बातें करता सा प्रतीत होता है। उसकी शैली प्रत्यक्ष शैली कही जा सकती है।....आख्यायिका-लेखक की शैली पाठक के अन्तरंग मित्र की सी होती है। वह घरेलू और आपसी आदमियों की भाँति गपशप करता है। उसकी कला ऐसी ही शैली की आवश्यकता रखती है। वह व्यक्ति-प्रधान शैली की कला है।"[22] डॉ० श्यामसुन्दर दास के विचार से आख्यायिका की अनिवार्य और प्राथमिक विशेषता यह है कि उसके माध्यम से एक ही मुख्य लक्ष्य अथवा भाव की अभिव्यक्ति की जाती है। नाट्य तत्त्वों से आख्यायिका के साम्य का निर्देश करते हुए डॉ० श्यामसुन्दर दास ने उसे एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को रखकर लिखा गया नाटकीय आख्यान कहा है। आख्यायिका में कथोपकथन के प्रयोग की विशिष्टता को ध्यान में रखकर उन्होंने उसकी कला को संकेतमूलक कला कहा है। कथावस्तुगत विश्वसनीयता पर डॉ० श्यामसुन्दर दास ने विशेष बल दिया है। उनका विचार है कि "बौद्धिक वृत्ति जागरूक रहने के कारण आख्यायिका का पाठक उसके लेखक से बहुत अधिक विवेक की अपेक्षा रखता है। लेखक को भी तदनुसार ही अधिक कौशलपूर्वक अपना कार्य करना पड़ता है। वह अपनी आख्यायिका में कहीं भी अविश्वसनीय अंश न आने देगा—ऐसा अंश जो पाठक की कल्पना को कुछ भी खटके। वह आख्यान को अधिक स्थायी प्रभावकारक बनाने के आशय से वस्तुओं के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि का सूक्ष्म वर्णन करेगा। ये तन्मात्राएँ पाठक के मन में बैठ जाती हैं और उसकी स्मृति को दृढ़ करती हैं।"[23] इस प्रकार से डॉ० श्यामसुन्दरदास ने कहानी की परिभाषा और स्वरूप को जिस दृष्टि से निरूपित किया है, उससे यह

२२. डा० श्यामसुन्दर दास , 'साहित्यालोचन', पृ० १८४।
२३. वही, पृ० १९०-१९१।

स्पष्ट संकेत मिलता है कि उनके विचार से वह एक निश्चित लक्ष्य अथवा प्रभाव को आधार बनाकर लिखी गयी नाटकीय कथा है, जो कल्पनामूलक एवं गद्यात्मक विधा है। वह केवल एक प्रसंग अथवा घटना पर आधारित होती है और उसकी मार्मिक अभिव्यंजना करती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक कहानी का प्राचीन कथा साहित्य से स्वरूपगत अन्तर स्पष्ट किया है। उनकी धारणा है कि प्राचीन शैली की कथाओं में घटना विन्यास अपेक्षाकृत सरल होता था। इसके विपरीत आधुनिक कहानी वक्रता युक्त घटना विन्यास में रची जाती है। शुक्लजी ने कहानी की परिभाषा करते समय इसी तत्व को मुख्य रूप से ध्यान में रखा है। उनके विचार से "आख्यायिका साहित्य का वह रूप है, जिसके कथा प्रवाह और कथोपकथन में अर्थ अपने प्रकृत रूप में अधिक विद्यमान रहता है और उसे दबाने वाले भाव विधान या उक्ति वैचित्र्य के लिए और थोड़ा स्थान बचता है।" इस रूप में आधुनिक कहानी प्राचीन कथा से भिन्न होती है। "पुराने ढंग की कथा कहानियों में कथा का प्रभाव अखंड गति से एक ओर चला चलता था, जिसमें घटनाएँ पूर्वापर क्रम से जुड़ती सीधी चली जाती थी। पर यूरोप में जो नये ढंग के कथानक 'नावेल' के नाम से चले और बंग भाषा में आकर 'उपन्यास' कहलाये, मराठी में वे 'कादम्बरी' कहलाने लगे। वे कथा के भीतर की कोई भी परिस्थिति आरम्भ में रखकर चल सकते हैं और उनमें घटनाओं की शृंखला लगातार सीधी न जाकर इधर-उधर और शृंखलाओं से गुम्फित होती चलती है, घटनाओं के विन्यास की यही वक्रता या वैचित्र्य उपन्यासों और आधुनिक कहानियों की वह प्रत्यक्ष विशेषता है, जो उन्हें पुराने ढंग की कथा कहानियों से अलग करती है।"[२४]

डा० गुलाबराय

डॉ० गुलाबराय ने हिन्दी कहानी के वर्तमान स्वरूप पर विचार करते हुए लिखा है कि "वह भारत की पुरानी कहानियों की ही संतति है, किन्तु विदेशी संस्कार लेकर आयी है।" उनकी धारणा है कि "आधुनिक कहानियां प्रायः मानव केन्द्रित होती हैं और

२४. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० ६०२।

इनमें राजा, मन्त्री और साहूकार के बेटे-बेटियों की अपेक्षा साधारण श्रेणी के लोग, जिनका हमें निकटतम परिचय होता है, अधिक रहते हैं।...आधुनिक कहानी में पहले की अपेक्षा कौतूहल की मात्रा कम हो गयी है और नित्य नया रूप धारण करने वाली नवीनता तथा बुद्धिवाद को अधिक स्थान मिलता जा रहा है। यह बात नहीं है कि आजकल की कहानी में मानवेतर सृष्टि का समावेश पात्र रूप से न होता हो, किन्तु वे पात्र बुद्धिवाद से शासित रहते है।"[२५] डा० गुलाबराय की यह धारणा है कि कहानी जैसे साहित्यांग की सर्वसम्मत परिभाषा प्रस्तुत करना कठिन है। अनेक देशी विदेशी आलोचको की कहानी सम्बन्धी परिभाषाओं को उद्धृत करने के पश्चात् डॉ० गुलाबराय कहते हैं कि छोटी कहानी एक स्वतः पूर्ण रचना है, जिसमे एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली व्यक्तिकेन्द्रित घटना या घटनाओं के आवश्यक परन्तु कुछ कुछ अप्रत्याशित ढंग के उत्थान-पतन और मोड के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला कौतूहल पूर्ण वर्णन हो।[२६] डॉ० गुलाबराय ने कहानी की अन्य साहित्यिक विधाओ से तुलना करने के उपरान्त उसके मूल तत्वो का विवेचन भी किया है। हिन्दी कहानी के स्वरूपात्मक विकास का परिचय देते हुए उन्होंने यह बताया है कि मूलतः दो प्रकार की प्रवृत्तियो का प्रचलन कहानी साहित्य के क्षेत्र मे दृष्टिगत होता है। प्रथम तो प्रकृति से उपदेश ग्रहण करने की प्राचीन प्रवृत्ति, और द्वितीय मानवीकरण की नवीन छायावादी प्रवृत्ति। उनका यह भी मत है कि आधुनिक हिन्दी कहानी, कला एवं भावाभिव्यंजना, दोनो ही दृष्टियो से समृद्ध है।

मुंशी प्रेमचन्द

हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कथाकार मुशी प्रेमचन्द ने कहानी की परिभाषा और स्वरूप के सम्बन्ध मे विस्तार से विचार किया है। उनकी धारणा है कि कहानी आकार मे लघु होते हुए भी प्रभावात्मकता की दृष्टि से विशिष्ट होती है। इसीलिए कहानी को परिभाषित करते हुए उन्होने लिखा है कि "कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमे गायक महफ़िल शुरू होते ही अपनी सपूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित्र को इतने माधुर्य से परिपूरित कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नही हो

२५. डा० गुलाबराय, 'काव्य के रूप', पृ० २१३।
२६. वही, पृ० २१६।

सकता।"[२७] प्रेमचन्द ने कहानी को सबसे अधिक प्राचीन साहित्यिक माध्यम बताया है। उनका विचार है कि कहानियों का जन्म तो उसी समय से हुआ, जब आदमी ने बोलना सीखा। कहानी में अनुभूत्यात्मकता पर भी प्रेमचन्द ने बल दिया है, क्योंकि उनके विचार से अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती हैं। लघु आकारिक कथा होने के कारण प्रेमचन्द के विचार से उसमें एक शब्द या एक वाक्य भी ऐसा न होना चाहिए, जो गल्प के उद्देश्य को स्पष्ट न करता हो। प्रेमचन्द ने बताया है कि कहानी केवल एक प्रसंग की, आत्मा की, एक झलक का सजीव हृदयस्पर्शी चित्रण है। घटनात्मक एकता की दृष्टि से प्रेमचन्द ने कहानी और नाटक में साम्य इंगित किया है, क्योंकि आख्यायिका केवल एक घटना है। अन्य बातें सब उसी घटना के अन्तर्गत होती हैं।' सामाजिक कथावस्तु पर आधारित समस्या अथवा अन्तर्द्वन्द्व प्रधान कहानी को प्रेमचन्द ने विशेष प्रभावयुक्त माना है, क्योंकि इनकी अभिव्यंजना के लिए उन्होंने कहानी को सर्वाधिक उपयुक्त साहित्यिक विधा बताया है। प्रेमचन्द का विचार है कि "एक ही घटना या दुर्घटना भिन्न-भिन्न प्रकृति के मनुष्यों को भिन्न-भिन्न रूप से प्रभावित करती है, हम कहानी में इसको सफलता के साथ दिखा सकें, तो कहानी अवश्य आकर्षक होगी। किसी समस्या का समावेश कहानी को आकर्षक बनाने का उत्तम साधन है। जीवन में ऐसी समस्याएँ नित्य ही उपस्थित होती रहती हैं और उनसे पैदा होने वाला द्वन्द्व आख्यायिका को चमका देता है।" कहानी के कल्पनात्मक स्वरूप की उत्कृष्टता का भी अनुमोदन प्रेमचन्द ने किया है। इस दृष्टि से उसका यथार्थ पक्ष अप्रधान हो जाता है। इसीलिए प्रेमचन्द ने कहा है कि "यह समझना भूल होगी कि कहानी जीवन का यथार्थ चित्र है। यथार्थ जीवन का चित्र तो मनुष्य स्वयं हो सकता है, मगर कहानी के सुख-दुख से हम जितना प्रभावित होते हैं, उतना यथार्थ जीवन में नहीं होते...जब तक वह निजत्व की परिधि में न आ जाय।" मर्मस्पर्शी कलात्मक अभिव्यंजना कहानी के पाठक की समवेदना और सहानुभूति को जाग्रत करती है। वस्तुतः 'कहानियों में पात्रों से हमें एक ही दो मिनट के परिचय में निजत्व हो जाता है और हम उनके साथ हँसने और रोने लगते हैं। उनका हर्ष और विषाद हमारा अपना हर्ष और विषाद हो जाता है। इतना ही नही, बल्कि कहानी पढ़कर वे लोग भी रोते या हँसते देखे जाते हैं, जिन पर साधारणतः

२७. मुंशी प्रेमचन्द, 'कुछ विचार', पृ० २७।

सुख दुख का कोई असर नहीं पड़ता।" कहानी में इस प्रकार की प्रभावाभिव्यंजना तभी हो सकती है, जब इसमें अनुभूति, घटना अथवा उद्देश्यगत एकात्मकता हो। इसी ऐक्य की ओर संकेत करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है कि गल्प एक रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा विन्यास सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। कहानी की यह एकांगिता उसे उपन्यास जैसे विस्तृत आकार वाले साहित्यिक माध्यमों से पृथक् कर देती है। इसीलिए प्रेमचंद ने कहानी को एक गमला तथा उपन्यास को एक उद्यान बताया है। उनका विचार है कि उपन्यास की भाँति उसमें मानव जीवन का संपूर्ण तथा बृहत् रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता, न उसमें उपन्यास की भांति सभी रसों का सम्मिश्रण होता है। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भांति भांति के फूल, बेल-बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है जिसमे एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने यह भी लिखा है कि मनुष्य ने जगत मे जो कुछ सत्य और सुन्दर पाया है और पा रहा है, उसी को साहित्य कहते हैं और कहानी भी साहित्य का एक भाग है। विविध विषयक कहानियों में, प्रेमचन्द की धारणा के अनुसार "सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार कोई मनोवैज्ञानिक सत्य हो। साधु पिता का अपने कुव्यसनी पुत्र की दशा से दुखी होना मनोवैज्ञानिक सत्य है, इस आवेश में पिता के मनोवेगों को चित्रित करना और तदनुकूल उसके व्यवहारों को प्रदर्शित करना, कहानी को आकर्षक बना सकता है। बुरा आदमी भी बिल्कुल बुरा नहीं होता, उसमें कहीं न कहीं देवता अवश्य छिपा रहता है, यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। उस देवता को खोल-कर दिखा देना सफल आख्यायिका का काम है।"[२८]

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर 'प्रसाद' ने कहानी के स्वरूप के विषय में विचार करते हुए लिखा है कि आख्यायिका में सौन्दर्य की एक झलक का चित्रण करना और उसके द्वारा इसकी सृष्टि करना ही कहानी का लक्ष्य होता है। प्रसादजी की कहानी सम्बन्धी यह धारणा कहानी की आकारगत सीमा को ध्यान में रखकर व्यक्त की गयी है।

२८. वही, पृ० ३७।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने आधुनिक कहानी का स्वरूप विवेचन करते हुए उसके प्राचीन स्वरूप से अन्तर को भी स्पष्ट किया है। उनकी धारणा है कि इनमें मुख्य भेद तत्वगत है, यद्यपि आधुनिक कहानी वस्तुतः प्राचीन कहानियों की ही परम्परा में आती है। वाजपेयीजी का विचार है कि "इन नयी कहानियों का प्राचीन कहानियों से असम्बद्ध होना भी सिद्ध नही होता, यद्यपि विषय, शैली और उद्देश्य आदि में पर्याप्त परिवर्तन हो गया है। यह परिवर्तन तो परिस्थिति का परिणाम है, स्वाभाविक विकास का सूचक है।. . .फिर भी यदि कोई कहे कि आधुनिक कहानी, वह भारत की हो या किसी अन्य देश की प्राचीन कहानी से मूलतः भिन्न सृष्टि है, तो इसके लिए अधिक विश्वसनीय प्रमाण की आवश्यकता होगी।" कहानी के सम्बन्ध में प्रचलित मान्यताओं का विरोध करते हुए वाजपेयीजी ने अपने इस मन्तव्य का प्रतिपादन किया है कि "नये युग की हिन्दी कहानियों के सम्बन्ध में दो बातें बड़े विश्वास के साथ और बहुत ही निर्विवाद भाव से कही जाती है। एक यह कि ये कहानियाँ आधुनिक पश्चिमी कहानियों से प्रभावित हैं और उन्ही के आधार पर लिखी जा रही हैं। दूसरी यह कि इन कहानियों का प्राचीन भारतीय कथा साहित्य से कोई क्रमगत सम्बन्ध नही है। किन्तु मुझे ये दोनों ही बातें सुविचारित नही जान पड़ती और सहसा यह मान लेने का कोई कारण नही दीखता कि नयी हिन्दी कहानियों की कोई स्वतंत्र सत्ता नही है अथवा प्राचीन कथा साहित्य से उनका कोई तात्विक साम्य नही है।"[२९]

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहानी का स्वरूप विश्लेषित करते हुए उसकी कल्पनात्मकता पर विशेष बल दिया है। उनका मत है कि कहानी की कथावस्तु पूर्णतः कल्पित ही हुआ करती है। इसी सन्दर्भ में उन्होंने आख्यायिका का भी उल्लेख किया है। कहानी और आख्यायिका में उन्होंने यह अन्तर बताया है कि कहानी के विपरीत आख्यायिका की कथावस्तु ऐतिहासिक होती है। द्विवेदीजी ने आधुनिक कहानी को आधुनिक युग की ही उपज बताया है। उनका मत है कि 'नये युग ने जिन गुण-दोषों को उत्पन्न किया है, उन सबको लेकर उपन्यास और कहानियाँ अवतीर्ण

२९. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, 'आधुनिक साहित्य', पृ० २५९।

हुई हैं। छापे की कल ने ही इनकी मांग बढ़ायी है और छापे की कल ने ही इनकी पूर्ति का साधन बनाया है। यह गलत धारणा है कि उपन्यास और कहानियाँ संस्कृत की कथा और आख्यायिकाओं की सीधी सन्तान हैं।

सुदर्शन

श्री सुदर्शन ने कहानी के स्वरूप पर विचार करते हुए उसमें प्रस्तुत अंतर्विश्लेषण को प्राथमिकता दी है, जिसका सम्बन्ध कहानी के आभ्यन्तरिक पक्ष से है। उनका विचार है कि "...वर्तमान युग का कहानी लेखक बाहर का कहानी लेखक नहीं, अन्दर का कहानी लेखक है। दुनिया को देखने वाले बहुत हो चुके हैं, अब दिल और घर को देखने वालों की आवश्यकता है। बाहर क्या हो रहा है, किस तरह हो रहा है, यह हर कोई देखता है। परन्तु घर और दिल के अन्दर क्या हो रहा है, वहाँ प्रवेश करना, उन्हे देखना और फिर जो कुछ वहाँ दिखाई दे, उसे दुनिया के सम्मुख रखना आसान नही। और यही समस्या है, जिसे हल करने के लिए बीसवी सदी का कहानी लेखक साहित्य में उतरा है।"[३०]

राय कृष्णदास

श्री राय कृष्णदास ने कहानी के विषय में विचार करते हुए इस मन्तव्य का प्रतिपादन किया है कि आधुनिक हिन्दी कहानी के रूप विधान में जो नवीनता परिलक्षित होती है, वह पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप ही है। यह अभिनव रूप विधान उत्कृष्टता युक्त भी है। उनका विचार है कि पाश्चात्य जगत में इसका आविर्भाव लगभग एक शताब्दी पूर्व हुआ था। उसके उपरान्त यह हिन्दी कहानी ने वर्तमान युग में ग्रहण किया। श्री राय कृष्णदास ने कहानी की सोद्देश्यता के साथ साथ उसकी यथार्थपरकता पर भी बल दिया है। उनकी धारणा है कि आख्यायिका चाहे किसी लक्ष्य को सामने रखकर लिखी गयी हो या लक्ष्य विहीन हो, मनोरंजन के साथ साथ अवश्य किसी न किसी सत्य का उद्घाटन करती है।

३०. श्री सुदर्शन, 'तीर्थयात्रा', भूमिका, पृ० ९-१०।

यशपाल

श्री यशपाल ने कहानी के स्वरूप पर विचार करते हुए उसके द्वारा पाठक की अद्‌भुत रस तृप्ति, अनुभूत्यात्मकता तथा काल्पनिकता की ओर संकेत किया है। उनकी धारणा है कि कहानी से रस मिलने का कारण श्रोता या पाठक का कहानी के पात्र के जीवन और व्यवहार के प्रति कौतूहल और उत्सुकता है। पाठक या तो कहानी के पात्र के प्रति सहानुभूति से या पात्र के अनुचित कार्य के विरोध का अनुभव करके कहानी में रस पाता है। पाठक के कौतूहल, सहानुभूति और विरोध का आधार कहानी द्वारा कहानी की समस्या से आत्मीयता अनुभव करना ही है। यशपालजी का यह भी विचार है कि कहानीकार की कहानी सुनाने की इच्छा का स्रोत पाठकों या श्रोताओं से सामाजिक सम्बन्ध के आवश्यकतानुकूल काल्पनिक चित्रों द्वारा अनुभूति के और विचारों के आदान प्रदान का अवसर पाना ही है। इस सामाजिक चित्र से कथाकार और श्रोता दोनों में ही अनुभूतिगम्य आत्मीयता होना आवश्यक है। यदि कहानी से रस मिलने और कहानी कहने की इच्छा के सम्बन्ध में मन्तव्य को अंशत: भी स्वीकार किया जा सकता है, तो कहानी मूलत: एक सामाजिक वस्तु हो जाती है।[३१]

डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा

डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने कहानी की परिभाषा करते हुए उसकी प्राचीनता, सर्वप्रियता, मूल भेदकता, विषयगत एकदेशीयता तथा एकोन्मुखता आदि विशेषताओं पर भी विचार किया है। उनकी धारणा है कि कहानी की परिभाषा में उसके उपर्युक्त सभी गुणों का संयोजन होना चाहिए। उन्होंने कहानी को गद्य रचना का एक भेद-विशेष मानते हुए सामान्यत: उसे लघु प्रसारगामी बताया है। कहानी सम्बन्धी अपनी विभिन्न धारणाओं को एक संयोजित परिभाषा का रूप देते हुए डॉ० शर्मा ने लिखा है कि कहानी गद्य रचना का कथा संपृक्त वह स्वरूप है, जिसमें सामान्यत: लघु विस्तार के साथ किसी एक ही विषय अथवा तथ्य का उत्कट संवेदन इस प्रकार किया गया हो कि वह अपने में संपूर्ण हो और उसके विभिन्न तत्व एकोन्मुख होकर प्रभावान्विति में पूर्ण योग देते हों।[३२]

३१. श्री यशपाल, 'चित्र का शीर्षक', भूमिका, पृ० ६-७।
३२. डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, 'कहानी का रचना विधान', पृ० १४।

विनोदशंकर व्यास

श्री विनोदशंकर व्यास ने कहानी के स्वरूप का निरूपण करते हुए उसके उद्देश्य तत्व पर विशेष बल दिया है। उनका विचार है कि आधुनिक कहानियों का ध्येय है मनोरहस्यों का उद्घाटन करना। इनमें अनियंत्रित और अप्रासंगिक भावुकता के प्रदर्शन का अवकाश नहीं। कहानी में वातावरण सृष्टि की विश्वसनीयता के विषय में व्यासजी की धारणा है कि वही कहानियाँ सफल समझी जाती हैं, जिनमें कहानी लेखक निर्लिप्त भाव से एक ऐसी दुनिया की सृष्टि कर दे, जो वास्तविक जगत् से परे न हो। कहानी में प्रभावशाली चरित्रांकन का समर्थन करते हुए व्यासजी ने बताया है कि कहानी में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि थोड़ी देर के लिए पाठक सब कुछ भूलकर उसके पात्रों की भावनाओं के साथ बहने लगे। कहानी के स्वरूपगत वैविध्य और विषय विस्तार के सम्बन्ध में व्यासजी ने लिखा है कि संसार में मानव समाज की उत्पत्ति के साथ ही कहानियों का आरम्भ हुआ है। जीवन के प्रत्येक अंग में कहानी छिपी हुई है। मनुष्य के मस्तिष्क की गुप्त से गुप्त बातें और उसकी उमंग, अभिलाषा तथा रहस्य ये सभी कहानियों के विषय हैं। इसके अतिरिक्त भूत, प्रेत, पशु, पक्षी, समुद्र, पहाड़, वायु और वृक्ष सभी जड़ चेतन कहानियों के उत्पत्ति स्थान हैं। निद्रित अवस्था के अज्ञात स्वप्नों के डोरे में कहानियाँ बाँधी जाती है। यही नही, कल्पना की विशाल भूमि पर कहानियों की अगणित रेखाएँ अंकित की जा सकती हैं।[३३]

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने कहानी के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि मनुष्य में कहानी कहने सुनने की वृत्ति बहुत पुरानी है। उन्होंने कहानी में कल्पनात्मक तत्वों का समावेश ही उसका मुख्य उपकरण माना है। इस तत्व की दृष्टि से प्राचीन और नवीन कहानी में पर्याप्त साम्य है। कहानी में जिज्ञासा अथवा कौतूहल पर भी मिश्रजी ने विशेष बल दिया है। उनकी धारणा है कि कहानी का लक्ष्य घटनाचक्र होता है, उसमें आकर्षण का विधान आवश्यक होता है। फलतः कहानी में पाठक की कुतूहल वृत्ति जागरित की जाती है। इसी से अंग्रेजी समीक्षक कहानी का प्रधान तत्व 'कुतूहल' (एलीमेंट आफ सस्पेंस) को ही

३३. श्री विनोदशंकर व्यास, 'पचास कहानियाँ,' भूमिका, पृ० १।

मानते हैं। यह ठीक भी है। किसी कहानी के पढ़ने में 'आगे क्या हुआ या होने वाला है' की जिज्ञासा के रूप में कुतूहल बराबर जमा रहता है। कविता की भाँति किसी विशेष भाव में रमाए रखना उसका प्रयोजन नहीं, किसी निबन्ध की भाँति, नूतन ज्ञानोपलब्धि उसका फल नहीं। उसका मुख्य उद्देश्य होता है 'रंजन'। इस 'रंजन' के लिए वह कुतूहल का सहारा लेती है। वह अनुसन्धानात्मक चित्तवृत्ति की परितुष्टि करती है।'[३४]

जैनेन्द्र कुमार

हिन्दी के प्रमुख मनोविश्लेषणात्मक कथाकार श्री जैनेन्द्रकुमार ने कहानी को मानव जीवन के विविध पक्षीय प्रश्नों के समाधानों की खोज के रूप में एक नैसर्गिक क्षुधा के रूप में परिभाषित किया है। उनका कथन है कि 'यह तो एक भूख है, जो निरन्तर समाधान पाने की कोशिश करती रहती है। हमारे अपने सवाल होते हैं, शंकाएँ होती हैं, चिन्ताएँ होती हैं और हमी उनका उत्तर, उनका समाधान खोजने का, पाने का सतत प्रयत्न करते रहते हैं। कहानी उस खोज के प्रयत्न का एक उदाहरण है। जैनेन्द्रजी ने इस तथ्य की ओर भी संकेत किया है कि कहानी अपने इस दायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह भी करती है, क्योंकि वह एक निश्चित उत्तर ही नही दे देती, पर यह अलबत्ता करती है कि शायद उत्तर इस रास्ते से मिले। वह सूचक होती है, कुछ सुझा देती है, और पाठक अपनी चिन्तन क्रिया के सहारे उस सूझ को ले लेते हैं।'[३५]

इलाचन्द्र जोशी

हिन्दी के विशिष्ट मनोवैज्ञानिक कथाकार श्री इलाचन्द्र जोशी ने कहानी की परिभाषा और स्वरूप पर विचार करते हुए लिखा है कि कहानी की विशेषता यही है कि वह व्यक्ति के प्रति दिन के साधारण जीवन की वास्तविक वेदना की सत्ता को

३४. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, श्री श्रीपति शर्मा द्वारा लिखित 'कहानी कला और प्रेमचन्द' की भूमिका में।

३५. श्री जैनेन्द्र कुमार, 'साहित्य का श्रेय और प्रेय' में 'कहानी क्या ?' शीर्षक निबन्ध।

यथार्थ रूप में अंकित करके, अनन्त की सत्ता के साथ मिला देने में समर्थ होती है। जोशीजी ने कहानी के अनुभूत्यात्मक अथवा भावात्मक पक्ष पर अधिक गौरव दिया है, और उसके बौद्धिक पक्ष को अप्रधान निर्दिष्ट किया है। उनके विचार से "कहानी के मूल भावों का सम्बन्ध हृदय से होना चाहिए, शिक्षा वृत्ति को जागरित करने का नहीं। उसमें कामिनी की कमनीयता और समुद्र की गम्भीरता होनी चाहिए, पुरुष की रूक्षता और पहाड़ की कठोरता नहीं। वह सत्तात्मक होनी चाहिए, छापात्मक नहीं।" जोशी जी का यह भी विचार है कि जीवन का चक्र नाना परिस्थितियों के संघर्ष से उलटा सीधा चलता रहता है। इस सुवृहत् चक्र की किसी विशेष परिस्थिति की स्वाभाविक गति का प्रदर्शन ही कहानी होती है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी ने कहानी की परिभाषा करते हुए लिखा है कि कहानी जीवन रहस्य की अभिव्यंजना है। रहस्य व्यक्ति के मानस में निवास करता है और उनका उद्घाटन घटनाओं द्वारा होता है। व्यक्ति समाज का अंग होता है। इस प्रकार प्रत्येक कहानी प्रकारान्तर से समाज की कहानी हुआ करती है। वाजपेयी जी ने कहानी में चरित्रांकन की कलात्मकता और यथार्थता पर विशेष बल दिया है। उनकी धारणा है कि जब तक कहानी में किसी चरित्र विशेष की सृष्टि नहीं होती, किसी व्यक्ति की अन्तरात्मा का यथार्थ विशिष्ट प्रतिबिम्ब नहीं झलकता, उसके जीवन के रागात्मक उच्छ्वास शब्दों की काया नहीं ग्रहण करते, तब तक कोई भी कहानी सही अर्थों में कहानी नहीं होती।

डॉ० श्रीकृष्ण लाल

डा० श्रीकृष्ण लाल ने कहानी की परिभाषा और स्वरूप पर विचार करते हुए उसकी कलात्मकता, कल्पनात्मकता तथा उद्देश्यपूर्णता पर विशेष रूप से बल दिया है। उनका विचार है कि आधुनिक कहानी साहित्य का एक विकसित कलात्मक रूप है, जिसमें लेखक कल्पना शक्ति के सहारे कम से कम पात्रों और चरित्रों के द्वारा कम से कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से मनोवांछित कथानक, चरित्र, वातावरण, दृश्य अथवा प्रभाव की सृष्टि करता है।

प्रकाशचन्द्र गुप्त

श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त ने कहानी की व्याख्या करते हुए उसकी स्वरूपगत परिवर्तनशीलता और विकासात्मकता पर विशेष बल दिया है। गुप्तजी के विचार से कहानी कलात्मक अभिव्यक्ति का एक लचीला और बहुमुखी माध्यम है।...निरन्तर यह अपने तट की सीमाओं को काटा करती है और पार्श्ववर्ती भूमि पर फैलती रहती है। क्या इसे होना चाहिए और क्या इसे न होना चाहिए, इन निर्देशों और व्यवधानों से वह सदा बचकर निकल आती है।

स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय'

आधुनिक युग के बौद्धिक प्रवृत्ति प्रधान कहानीकार श्री सच्चिदानन्द हीरा न्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने कहानी की परिभाषा करते हुए लिखा है कि छोटी कहानी एक सूक्ष्मदर्शक यन्त्र है, जिसके नीचे मानवीय अस्तित्व के रूपक के दृश्य खुलते है। 'अज्ञेय' ने प्राचीन और आधुनिक कहानी के स्वरूपगत वैभिन्न्य पर भी विचार किया है। उनकी धारणा है कि प्राचीन कथा साहित्य में केवल घटना व्यापार पर ही विशेष बल दिया गया है। आधुनिक कहानी में भी घटनात्मकता होती है, परन्तु वह अप्रधान रूप से ही उसमें समाविष्ट रहती है। आज का लेखक किसी भी घटना में कर्ताओं के उद्देश्यों को देखता है। 'अमुक हुआ' उसके लिए पर्याप्त नही है, 'अमुक किया गया' वह कहता है, और 'क्यों किया गया' पर उसकी समूची जिज्ञासा केन्द्रित हो जाती है। कभी वह 'अमुक किया गया' की अवस्था तक भी नही जाता, केवल सूचित कर देता है कि 'अमुक अमुक कारण क्रियाशील है' और यह पाठक पर छोड देता है कि वह समझ ले कि परिणामत: 'क्या किया जायगा।'[३६] इस रूप परिवर्तन के विषय में अज्ञेयजी की यह धारणा है कि कहानीक्षेत्रीय यह सैद्धान्तिक परिवर्तन उसके व्यावहारिक स्वरूप के उस पक्ष का द्योतक है, जो कहानीकार के व्यक्तित्व और उसकी बौद्धिक प्रवृत्ति में क्रान्तिकारी विकास का सूचन करता है। कहानी की प्रभावात्मक एकता के विषय में अज्ञेय जी ने लिखा है कि इस विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि कहानी नायक साहित्य प्रकार मे एकान्त प्रभाव ही साहित्यकार

३६. श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', 'कल्पना', फरवरी, सन् १९६१।

का उद्देश्य होता है और उसके द्वारा चुनी गयी वस्तु उस उद्देश्य की प्राप्ति का साधन। वह प्रभाव और उस प्रभाव की एकान्तिकता ही मुख्य है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने कहानी के स्वरूप के विषय में विचार करते हुए उसमें जीवन के चित्रांकन पर विशेष गौरव दिया है। उनकी धारणा है कि कहानियाँ वही जानी मानी जायंगी और याद रखी जायँगी, जो चाहे आत्मपरक हों अथवा समाजपरक, पर जो व्यक्ति के चित्रण से समाज को अथवा समाज के चित्रण से व्यक्ति को समझने में पाठकों को सहायता देंगी। 'अश्क' ने कहानी में यथार्थपरकता तथा अनुभूत्यात्मकता के विषय में लिखा है कि कई बार कहानी एक अमूर्त सत्य को सफलता-पूर्वक साकार किये जाने के कारण याद रह जाती है।...वह सत्य काल्पनिक हो, जिन्दगी से कटा हुआ हो, आरोपित हो, इससे गरज नहीं। एक अमूर्त विचार जब मूर्त रूप में सफलतापूर्वक रख दिया जाता है, तो मन को प्रभावित करता है। सोच विचार कर हम भले ही उसे नकार दें, पर वह असर जरूर डालता है। इसी प्रकार से कहानी में अनुभूति की यथार्थता तथा प्रभावात्मकता के विषय में 'अश्क' का विचार है कि जब लेखक अपने जीवन से अनुभूतियाँ लेकर कोई ऐसी कहानी लिखता है कि हम इसके दर्शक ही नहीं, भोक्ता भी बन जाते हैं, तो कहानी याद रह जाती है।

नरेश मेहता

श्री नरेश मेहता ने कहानी का स्वरूप विश्लेषण करते हुए कथात्मकता के साथ ही उसकी अभिव्यंजनात्मकता पर भी विशेष बल दिया है। उनकी धारणा है कि "कहानी अभिव्यक्ति होती है, घटना मात्र नहीं। आज की कहानी फार्मूला या सोद्देश्य कहानी कला से आगे बढ़ चुकी है। प्रायः आक्षेप सुनने में आता है कि व्यक्तिवादिता ने कुंठा को जन्म दिया, फलस्वरूप कहानी सिर्फ शैली रह गयी। लेकिन यह भी तो उतना ही सच है कि सोद्देश्यता ने कहानी को कुरूप भाषण या नारेबाजी बना दिया। भूल यही है कि इस सशक्त माध्यम को व्यक्तियों, दलों, वर्गों के स्वार्थ साधन के लिए सौंपना नहीं चाहिए।"[३७]

३७. श्री नरेश मेहता, 'तथापि', निवेदन, पृ० १।

भैरवप्रसाद गुप्त

श्री भैरवप्रसाद गुप्त ने आधुनिक कहानी का स्वरूप निदर्शन करते हुए उसकी शिल्पगत जटिलता के स्थान पर सरलता और सहजता का अनुमोदन किया है। उनके विचार से "कहानियाँ केवल शिल्प, रंगीन वर्णन, कला की कलाबाज़ी के बल पर खड़ी नहीं होतीं, उनका निर्माण जीवंत वस्तुशिला पर होता है और इसीलिए वे पत्थर की तरह ठोस और कंक्रीट की तरह शक्ति सम्पन्न होती हैं। उनमें आपको बड़े बोल नहीं मिलेंगे, घुमाव-फिराव या बाल की खाल निकालने वाली बारीकी नहीं मिलेगी, मिलेगी एक सरलता, एक सहजता, एक सादगी और एक सीधापन...,लक्ष्य भी सीधा और अचूक होता है।" कहानी की प्रभावगत एकात्मकता के विषय में विचार करते हुए श्री गुप्त ने बताया है कि "कहानी की कोई एक बात या कोई एक विशेषता हमारे मन में नहीं बसती, बल्कि पूरी कहानी हमारे स्मृति पट पर चित्रित रहती है। इसका कारण यह है कि कहानी लेखक एक बात विशेष या एक चरित्र विशेष के इर्द गिर्द कथानक के जाल नही बुनते, बल्कि जीवन का एक जिन्दा टुकड़ा ही उठाते हैं और इसे ही अपनी सहज कला से गढ़कर सामने रख देते हैं।"

जेम्स डब्लू० लिन

पाश्चात्य साहित्य समीक्षक जेम्स डब्लू० लिन ने कहानी की परिभाषा और स्वरूप पर विचार करते हुए अपने इस मन्तव्य का प्रतिपादन किया है कि कहानी वस्तुतः एक ऐसा नाटकीय साहित्य रूप है, जो मानव जीवन और चरित्र का प्रतिनिधित्व करता है। लिन का विचार है कि किसी विशिष्ट पात्र के चरित्र के किसी विशेष मोड़ के बिन्दु की सृष्टि के माध्यम से ही कहानी अपने इस कार्य का निर्वाह करती है।

एडगर ऐलन पो

प्रसिद्ध अमरीकी कहानी लेखक एडगर ऐलन पो ने कहानी की परिभाषा और स्वरूप पर विचार करते हुए उसके आकार को प्रमुखता दी है। पो का मत है कि एक कहानी अधिक से अधिक दो घंटे में पढ़कर समाप्त हो सकने योग्य आकार वाली होनी चाहिए। पो की यह भी धारणा है कि कहानी का एक समग्र प्रभाव पाठक पर पड़ना चाहिए और उसमें केवल वे ही तत्व समाविष्ट होने चाहिए जो इसी समग्र

प्रभाव की सृष्टि में किसी भी रूप में सहायक हो सकते हों, अन्य सूत्रों की कहानी में उपेक्षा ही होनी चाहिए। कहानी की विषय वस्तु अथवा वर्ण्य विषय के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए पो ने बताया है कि उसमें यथासंभव केवल किसी एक ही नाटकीय घटना, परिस्थिति, दृश्य, चरित्र, अनुभूति अथवा नैतिक समस्या का वर्णन होना चाहिए, क्योंकि कहानी के लघु परिवेश अथवा आकारगत सीमा के कारण उसमें उपर्युक्त तत्वों अथवा सूत्रों से सम्बन्धित विशदता की सम्भावनाएँ नहीं रहती हैं।[३८]

एच० जी० वेल्स

वैज्ञानिक विषयों पर कथा रचना करने वाले, अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त अंग्रेजी साहित्यकार एच० जी० वेल्स के विचार से एक कहानी का पारायण करने के उपरान्त पाठक के हृदय में अविच्छिन्न भावोद्रेक होना चाहिए। पो के समान उसकी यह भी धारणा है कि कहानी लगभग बीस मिनटों में कही जा सकने योग्य होनी चाहिए और पाठक के लिए उसे एक घंटे के अन्दर ही पढ़ सकना संभव होना चाहिए।[३९] साहसिकता और कल्पनात्मकता को वेल्स ने कहानी के विशिष्ट उपकरणों के रूप में मान्य किया है।

विलियम हैनरी हडसन

अंग्रेजी साहित्य चिन्तक विलियम हैनरी हडसन ने भी कहानी का स्वरूप विश्लेषण करते हुए अमरीकी कथाकार एडगर ऐलन पो तथा वैज्ञानिक कथा लेखक एच० जी० वेल्स की भाँति उसके आकार को ही मुख्यता प्रदान की है। पो की भाँति ही हडसन का भी यही विचार है कि कहानी की आकारगत सीमा निर्धारित होनी आवश्यक है। आकार की दृष्टि से कहानी की परिभाषा करते हुए हडसन ने अपने इस मन्तव्य की स्थापना की है कि कहानी लघु आकार वाली उस कथात्मक रचना को कहते हैं, जो एक ही बैठक में पढ़कर समाप्त की जा सकती हो। हडसन ने कहानी में प्रभावात्मक एकता पर भी बल दिया है।[४०]

३८. जोसेफ़ टी. शिप्ले, 'दि क्वेस्ट फ़ार लिटरेचर', पृ० ३९९ से उद्धृत।

३९. ए० सी० वार्ड , 'फाउन्डेशंस आफ़ इंग्लिश प्रोज़', पृ० १२२ से।

४०. विलियम हेनरी हडसन, 'एन इंट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ़ लिटरेचर', पृ० ३३६।

एल० ब्राइट

पाश्चात्य विचारक एल० ब्राइट ने कहानी का स्वरूप निदर्शन करते हुए उसमें प्रस्तुत मानव जीवन के स्पष्ट और प्रभावशाली चित्रांकन पर बल दिया है। एल० ब्राइट की यह धारणा है कि वर्तमान कहानी में केवल ऐतिहासिक अथवा तर्कसंगत अनुक्रम में रुचिकर घटनाओं का पुनरायोजन ही पर्याप्त नहीं है। इसके विपरीत एक श्रेष्ठ कहानी में जीवन के किसी खंड का समवेदनापूर्ण चित्रांकन होना चाहिए, जो पाठक को अपनी संपूर्ण भावनात्मकता के साथ प्रभावित करे। एल० ब्राइट के विचार से कहानी में पात्रों की अवतारणा करते समय उनके द्वारा वर्णित घटनाओं तथा चित्रित वातावरण को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।"[१]

ह्यू वाकर

ह्यू वाकर ने कहानी के स्वरूप का निदर्शन करते हुए उसकी आधुनिकता पर विशेष बल दिया है। उसका विचार है कि यद्यपि एक साहित्यिक विधा के रूप में कहानी का परम्परागत प्रसार सुदूर अतीत तक है, परन्तु आधुनिक युग में कहानी का जो स्वरूप प्रचलित है उसका आविर्भाव और विकास अधिक प्राचीन नहीं है। आधुनिक कहानी में गद्यात्मकता को भी वाकर ने एक उल्लेखनीय तत्व माना है, जिससे उसके स्वरूप की आधुनिकता का बोध होता है। ह्यू वाकर ने कहानी की आकार एवं परि-वेशगत लघुता के बावजूद भी उसकी विषयगत विशदता इंगित की है। वाकर की कहानी के विषय में यह धारणा है कि मनुष्य अपने जीवन में जो कुछ भी कार्य कलाप प्रस्तुत करता है, वह सब कुछ एक कहानी ही है।

ऐंटन चेखव

प्रसिद्ध रूसी कहानीकार ऐंटन चेखव ने कहानी को एक जीवन खंड के रूप में परिभाषित किया है। उसकी धारणा है कि कहानी का लघु आकार उसके चित्रांकनगत विस्तार को सीमित कर देता है। इसलिए उसमें विस्तृत जीवन के प्रस्तुतीकरण की संभावना नहीं रहती।

४१. ई० एम० एलब्राइट, 'दि शार्ट स्टोरी, इट्स प्रिंसिपिल्स ऐंड स्ट्रक्चर'।

ओ० ब्रायन

पाश्चात्य साहित्य चिन्तक ओ० ब्रायन ने एक श्रेष्ठ कहानी के लक्षणों का निर्देश करते हुए उसके उपकरणात्मक सन्तुलन पर बल दिया है। ब्रायन का विचार है कि एक कहानी की उत्कृष्टता की अनेक कसौटियाँ होती हैं। सर्वप्रथम उसमें यह देखना चाहिए कि लेखक ने जिन घटनाओं का चयन किया है, वे किस सीमा तक प्रभावशाली अभिव्यंजना से युक्त बन सकी हैं। इसका सम्बन्ध कहानी की यथार्थपरकता से भी है। इसके साथ ही कहानी के अन्य तत्वों, विशेष रूप से चरित्रांकन तथा भाषा शैली की कलात्मकता भी उसे सफल बनाती है।

सामरसेट माम

प्रसिद्ध अंग्रेजी कथाकार सामरसेट माम ने कहानी की परिभाषा और स्वरूप का विश्लेषण करते हुए कहा है कि कहानी रचना के लिए उसका एक विशिष्ट ढाँचा आवश्यक होता है। उसके अन्तर्गत उन्होंने एक निश्चित आरम्भ, एक निश्चित चरम सीमा बिन्दु तथा एक निश्चित समाप्ति को अनिवार्य रूप से समाविष्ट किया है। माम ने इन्ही सब के संयोजित रूप की व्याख्या "कथा वस्तु" के रूप में की है।

जोसेफ टी० शिप्ले

जोसेफ़ टी० शिप्ले ने कहानी की परिवेशगत सीमा को ध्यान में रखते हुए उसका स्वरूप निरूपित किया है। इस दृष्टि से शिप्ले ने कहानी और उपन्यास का तुलनात्मक विवेचन भी किया है, क्योंकि इन दोनों ही साहित्यिक विधाओं में मूल उपकरणों के विचार से पर्याप्त समानता है। इनमें मुख्य अन्तर यही है कि उपन्यास अपनी विषय-क्षेत्र गत व्यापकता के कारण विस्तृत कथानक, अनेकरूपी चरित्रांकन, सम्यक् वातावरण सृष्टि, भावात्मक चित्रण एवं चारित्रिक विपर्यय आदि सभी कुछ प्रस्तुत करता है, जब कि कहानी में इन तत्वों में से किसी एक को ही चुनकर केवल उसी का निरूपण सम्भव है।

अपहम

अपहम की धारणा है कि एक उत्कृष्ट कहानी वस्तुतः एक सानेट के समान ही निर्दोष संगठन वाली एक जीवंत कथा रचना होती है। उसने 'सानेट' रूपी पद्यात्मक

माध्यम के तत्व नियोजन से कहानी के तत्वों की तुलना करते हुए उसका स्वरूप निदर्शन किया है।

एल० ए० जी० स्ट्रांग

पाश्चात्य साहित्यालोचक एल० ए० जी० स्ट्रांग ने कहानी की परिभाषा करते हुए उसे गद्य में लिखी गयी एक लघु कथा बताया है। स्ट्रांग की धारणा है कि एक कहानी के लिए यह परिभाषा पर्याप्त है। जहाँ तक कहानी के मूल एवं आवश्यक तत्वों का सम्बन्ध है, स्ट्रांग ने यह निर्देश किया है कि एक कलाकार के सामने प्रधान वस्तु उसका वह लक्ष्य होता है, जिस तक वह अपनी कला के माध्यम से पहुँचता है। इस दृष्टिकोण से कहानी में जटिल कथावस्तु, पात्र योजना तथा शैली आदि तत्व स्वभावतः आवश्यक रूप से समाविष्ट होने चाहिए। परन्तु एक कहानी कलात्मक दृष्टि से तभी पूर्ण सफल हो सकती है, जब उस पर उपकरणात्मक बन्धन अनिवार्य रूप से न थोपे जायँ और उसे स्वरूपात्मक स्वतंत्रता प्रदान की जाय।

शोन ओ० फ़ाउलेन

शोन ओ० फ़ाउलेन ने कहानी की परिभाषा और स्वरूप के विषय में विचार करते हुए उसका विशिष्ट महत्व इंगित किया है। फ़ाउलेन की यह धारणा है कि एक श्रेष्ठ कहानी के समस्त गुणों को परिवेशबद्ध करने वाली परिभाषा प्रस्तुत करना कठिन है, क्योंकि एक कलात्मक कहानी की सभी विशेषताएँ उसकी परिभाषा से स्पष्ट नहीं हो सकतीं। कहानी के मूल उपकरणों के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए फ़ाउलेन ने कहा है कि कहानी के ये मूल तत्व अथवा बाह्य रूपात्मक उपकरण उसके शिल्प और उसकी संरचना का आधार अवश्य होते हैं, परन्तु एक श्रेष्ठ कहानी में वे उसकी नैसर्गिक विशेषताओं अथवा स्वभाव के रूप में निहित ही रहते हैं और उनका पृथक् रूप से कोई महत्व अथवा सत्ता शेष नहीं रह जाती।

बुलेट

पाश्चात्य साहित्याचार्य बुलेट ने भी वैज्ञानिक कथा लेखक एच० जी० वेल्स की भाँति कहानी में उत्कृष्ट कोटि की कल्पनात्मकता तथा साहसिकता का होना अनुमोदित किया है। इसके साथ ही उसने कहानी के प्रयोजन के विषय में अपना मत व्यक्त करते

हुए यह भी कहा है कि सौन्दर्य, आनन्द, आश्चर्य अथवा चमत्कारिकता की सृष्टि करने में भी एक कहानी को सफल होना चाहिए।

एलरी

एलरी ने कहानी के स्वरूप का निरूपण करते हुए मुख्यतः उसके कथा तत्व पर बल दिया है। उसका विचार है कि कहानी में प्रधान वस्तु उसकी कथा ही है। कथा का कलात्मक आरम्भ और सम्यक् अन्त ही कहानी में महत्व रखता है। इस दृष्टि से एलरी ने कहानी की तुलना एक घुड़दौड़ से की है, जिसमें केवल आरम्भ और अन्त ही विशेष महत्व रखता है।

पोकाक

पाश्चात्य साहित्य विचारक पोकाक ने कहानी का स्वरूप निदर्शन करते हुए उसकी शास्त्रीयता पर विशेष रूप से बल दिया है। पोकाक के विचार से एक कहानी का प्रत्येक अग प्रसंग के अनुकूल और औचित्यपूर्ण होना चाहिए। जब तक कहानी तत्वगत संगठनात्मकता से युक्त नही होगी, तब तक उसकी कलात्मक सफलता सन्दिग्ध रहेगी। इसलिए कहानी में कथावस्तु, चरित्रांकन तथा वातावरण-चित्रण प्रधान तत्व हैं, जिनसे उसके प्रत्येक अंश का प्रत्यक्ष सम्बन्ध होना चाहिए।

ब्रैन्डर मैथ्यू

ब्रैन्डर मैथ्यू ने कहानी विषयक अपनी धारणा का स्पष्टीकरण करते हुए बताया है कि एक कहानी मे मुख्यत: एक ही चरित्र का अंकन होता है। उसमें एक विशिष्ट स्थिति के विविध सवेदनात्मक पक्षों का निरूपण होता है।

जान फास्टर

जान फास्टर ने कहानी के स्वरूप का निरूपण करते हुए उसके कथा तत्व को प्रमुखता दी है। फास्टर की धारणा है कि कहानी में विविध द्वन्द्वात्मक परिस्थितियों का चित्रांकन होता है। ये ही परिस्थितियाँ विभिन्न घटनाओं के रूप में उसके चरमोत्कर्ष की स्थिति को उत्पन्न करती हैं।

एच० ई० बीट्स

एच० ई० बीट्स ने कहानी की व्याख्या करते हुए उसकी स्वरूपगत व्यापकता पर विशेष गौरव दिया है। बीट्स का विचार है कि कहानी एक ऐसी साहित्यिक विधा है जो अपने आकारगत सीमित परिवेश में ही विविध क्षेत्रीय व्यापक सम्भावनाओं से युक्त होती है।[४२]

सर ह्यू वालपोल

सर ह्यू वालपोल ने कहानी की परिभाषा और स्वरूप के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि एक कहानी को वस्तुतः एक कहानी ही होना चाहिए। उसमें मानव जीवन में घटित होने वाली वास्तविक घटनाओं का ही यथार्थपरक विवरण होना चाहिए। वालपोल ने घटनात्मकता तथा नाटकीयता को कहानी का अनिवार्य तत्व बताया है। उनका मत है कि कहानी की कथावस्तु का आरम्भ से ही तीव्र गति से विकास होना चाहिए एवं कौतूहल को बनाये रखते हुए उसकी परिसमाप्ति चरम सीमा पर होनी चाहिए।

अन्त में, निष्कर्ष रूप मे कहानी की परिभाषा और स्वरूप के विषय में यह कहा जा सकता है कि कहानी विश्व साहित्य की प्राचीनतम विधा है। इसकी पृष्ठभूमि में मनुष्य की नैसर्गिक कथा प्रवृत्ति है। सहस्रों वर्षों का विश्व कहानी का विकास इसके बहुपक्षीय और विविध पक्षीय इतिहास को सामने रखता है। आधुनिक युग के सर्वाधिक प्रतिनिधि साहित्यिक माध्यम के रूप में भी कहानी की मान्यता है। इसका वर्तमान स्वरूप इसकी अभिनवता तथा कलात्मक परिष्कृति का द्योतक है। शीर्षक, कथावस्तु, पात्र अथवा चरित्र चित्रण, कथोपकथन अथवा संवाद, भाषा, शैली, देशकाल अथवा वातावरण तथा उद्देश्य इसके मूल उपकरण हैं, जिनका आनुपातिक संयोजन कहानी में अपेक्षित है। अपनी आकारगत सीमा के कारण कहानी में एक ही प्रमुख घटना अथवा पात्र की प्रभावपूर्ण विवृति सम्भव है। विश्वसनीयता, प्रवाहपूर्णता तथा मनोवैज्ञानिकता कहानी के प्रधान गुण हैं, जो उसकी सफलता का आधार हैं। आधुनिक कहानी जीवन के विविध क्षेत्रों में विभिन्न परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में मानवीय चरित्र की प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उद्घाटित करती हुई

४२. एच० ई० बीट्स, 'दि माडर्न शार्ट स्टोरीज', पृ० १६।

सकी विडम्बनात्मक परिणति प्रस्तुत करती है। अपने इस रूप में कहानी मानव वन और मानव चरित्र का प्रतिनिधित्व करने वाली अन्यतम साहित्यिक विधा है।

प्राचीन भारतीय कथा साहित्य

भारत में कथा साहित्य के प्राचीन संकेत संस्कृत भाषा में मिलते हैं। संस्कृत वह ाषा है, जिसमे प्राचीन भारतीय जीवन अपने समस्त पक्षों के संपूर्ण वैविध्य के साथ मग्र रूप में अभिव्यंजित हुआ है। इस आधारभूत व्यापकता के कारण संस्कृत ाङमय भी असाधारण रूप से विषयगत विस्तार रखता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण ो वैदिक साहित्य की प्राचीनता २५०० से लेकर ३०० ई० पू० तक स्वीकार की जाती है।[४३] संस्कृत साहित्य के विकास की प्रथम अवस्था, जो वैदिक युग के नाम से प्रसिद्ध है, ४५०० से लेकर ८०० ई० पू० तक मानी जाती है। इसकी दूसरी और तीसरी अवस्थाएँ क्रमशः स्मृतियों और काव्यों के युग, अर्थात् ८०० ई० पू० से ८०० ई० तक तथा भाष्यों और प्रकीर्ण रचनाओ के युग, अर्थात् ८०० से १५०० ई० तक स्वीकार किये जाते हैं।[४४] इन तीनो युगो मे जो भाषा प्रचलित रही उसके रूप वैदिक संस्कृत भाषा, पातंजल संस्कृत भाषा तथा आधुनिक संस्कृत भाषा हैं। इनमें से प्रथम वैदिक साहित्य काल की भाषा, दूसरी पतंजलि के समय की भाषा तथा तीसरी शंकराचार्य के बाद की भाषा है। संस्कृत के व्यवहार के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के परस्पर विरोधी मत मिलते हैं। एक ओर यदि विद्वानों का यह कथन है कि जटिल नियमों और दुर्बोध्य ध्वनि सिद्धान्तों से बद्ध संस्कृत भाषा जनता की भाषा नही हो सकती, तो दूसरी ओर वे यह भी तर्क देते हैं कि यदि संस्कृत तत्कालीन समाज में दैनंदिन व्यवहार की भाषा न होती, तो पाणिनि जैसे विद्वान् ने उसके इतने बृहत् व्याकरण शास्त्र की रचना भी न की होती। कुछ भी हो, संस्कृत भाषा की प्राचीनता के विषय में प्रायः सभी विद्वान् एकमत हैं, यद्यपि उनके द्वारा मान्य तिथियों में अन्तर हो सकता है।

वैदिक साहित्य

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, भारतीय वाङमय में वैदिक साहित्य

४३. कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, खंड १, पृ० ७०, सन् १९२२।

४४. श्री वाचस्पति गैरोला, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', पृ० ३९।

प्राचीनतम है। इसमें सर्वप्रथम ऋग्वेद संहिता का स्थान है। अनुमान लगाया जाता है कि इस संपूर्ण ग्रन्थ की रचना में कई शताब्दियों का समय लगा होगा। यह भी अनुमान है कि इस ग्रन्थ का संकलन होने के लगभग चार पाँच सौ वर्ष पूर्व ही इसके सूक्तों की रचना हो चुकी होगी। ऋग्वेद के प्रथम मंत्रों के रचयिता मधुछंदा महर्षि तथा गायत्री मंत्र के रचयिता महर्षि विश्वामित्र माने जाते हैं। ऋग्वेद में ही भारतीय कथा साहित्य के प्राचीनतम सूत्र सकेत मिलते हैं। इस ग्रन्थ के वसिष्ठ सूक्त में तृत्सु वंश के राजा सुदास के अनेक जातियों से हुए युद्धों का भी उल्लेख है, जिनमें तुर्वश, मत्स्य, भृगु, द्रुह्य, पक्थ, मलान, अलिन, शिव, विषणिन्, वैकरण, अनु, अज, शिग्र तथा पशु आदि है।

वेद हिन्दुओं का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इसकी सर्वांगीणता के कारण मनु ने इसे सर्वज्ञानमय कहा है। वेद से ईश्वरीय ज्ञान का भी आशय समझा जाता है। शास्त्रीय विचार से वेद का अर्थ ज्ञान है। प्राचीन काल में वेद शब्द का प्रयोग वाङमय के पर्याय के रूप में होता था।[४५] यह भी मान्यता है कि इन्हीं से सर्ववेद, पिशाच वेद, असुरवेद, इतिहासवेद और पुराणवेद निर्मित हुए।[४६] आगे चलकर वेदों से समग्रता का आशय समझे जाने के कारण ही भरत मुनि ने अपने प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ मे 'नाट्य' नामक पांचवें वेद का उल्लेख किया।[४७] कालांतर में अर्थ संकोच के कारण वेदों से केवल ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद का ही आशय समझा जाने लगा। तब ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों तथा उपनिषदों को इनसे पृथक् रखा गया। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि आरम्भ में सभी वेद एक थे और उनकी परम्परा का प्रवर्तन ब्रह्मा से हुआ था, और ब्रह्मा ही वैदिक ज्ञान के सर्वप्रथम ज्ञाता थे। महात्मा वेदव्यास ने उनका चार भागों में विभाजन करके क्रमशः पैल, वैशंपायन, जैमिनि तथा सुमंतु को उपदेश रूप में दिया। यह भी एक मान्यता है कि ब्रह्मा से लेकर कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास तक कुल ३२ वेदव्यास हो चुके है। चारो वेदों मे से प्रत्यक के चार-चार भाग क्रमशः सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् के रूप मे मिलते है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से लगभग ४०० ई० तक प्राकृत भाषा के मागधी, अर्धमागधी और शौरसेनी रूपों का प्रचार रहा। इसी काल मे प्राकृत की एक विभाषा के रूप में अपभ्रंश का जन्म हुआ।

४५. मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।

४६. गोपथ ब्राह्मण, १, १०।

४७. भरत, 'नाट्य शास्त्र', १, ८-१८।

उज्जैन के राजा विक्रमादित्य की राजसभा के प्रसिद्ध विद्वान् वररुचि का स्थान प्राकृत भाषा के प्रथम वैयाकरणों में उल्लिखित किया जाता है। ई० पू० ५०० से लेकर लगभग ५०० ई० तक पालि साहित्य का प्रसार मिलता है। यह भाषा बुद्धकालीन मगध की भाषा थी।

संहिता ग्रंथ

संहिता वेद के चार भागों में प्रथम है। वेदों के विषय विभाजन के उपरांत संहिताओं का निर्माण हुआ था। प्रत्येक वेद की पृथक् संहिता मिलती है। कालांतर में इन संहिताओं की अनेक शाखाओं का विकास हुआ। ऋग्वेद की शाखाओं में शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शांखायन तथा माण्डूकेय आदि हैं। शुक्ल एवं कृष्ण यजुर्वेद की क्रमशः माध्यन्दिन, काण्व तथा तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक और कठ शाखाएं हैं। इसी प्रकार से सामवेद की शाखाओं में कौथुम तथा राणायनीय एवं अथर्ववेद की शाखाओं में पैप्पलाद तथा शौनक के नाम उल्लेखनीय हैं।

ब्राह्मण ग्रंथ

वेद के चार भागों में संहिताओं के बाद ब्राह्मण ग्रन्थो का ही स्थान है। ऋग्वेद के ब्राह्मणों में ऐतरेय तथा कौषीतकी का उल्लेख मिलता है। शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण शतपथ है। सामवेद एवं अथर्ववेद के ब्राह्मण क्रमशः पंचविंश तथा गोपथ नाम से प्रसिद्ध हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से वेद ग्रन्थों के उपरान्त प्राचीन संस्कृत वाङमय में ब्राह्मण ग्रन्थों का उल्लेख किया जाता है। ये ब्राह्मण ग्रन्थ तत्कालीन शिक्षित वर्ग की भाषा में लिखे गये है। विभिन्न विद्या केन्द्रों में जो ग्रन्थ विषय के अनुरूप जिन शिष्यों द्वारा कंठस्थ हुए, परवर्ती काल में वे उनके नाम पर ही प्रसिद्ध हुए। शत-अध्यायी 'शतपथ ब्राह्मण' मुनि याज्ञवल्क्य की रचना स्वीकार की जाती है। यह ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यह अनेक कांडों में पृथक् चरणों के नाम से प्रचलित होने के उपरांत समग्र रूप में याज्ञवल्क्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शतपथ ब्राह्मण का महत्व परवर्ती कथा साहित्य पर प्रभाव की दृष्टि से भी विशिष्ट है। इसमें राम, कद्रू सुपर्णा, पुरूरवा, उर्वशी तथा अश्विनीकुमारों की जो कथाएँ हैं, उनका अनेक रूपों में प्रस्तुतीकरण परवर्ती संस्कृत साहित्य, यहाँ तक कि 'महाभारत' तक में हुआ है। ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रचार उनकी भाषा के स्वरूप के कारण मुख्यतः विद्वत्समाज

के बीच ही रहा। सैद्धान्तिक रूप में वेद का ही एक भाग ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, परन्तु इनमें वेदों का वही भाग रहता है, जो मंत्र से रहित है।

आरण्यक ग्रन्थ

वेदों के चार भागों में ब्राह्मण ग्रन्थों के उपरांत आरण्यक ग्रन्थों का ही उल्लेख किया जाता है। ये ब्राह्मण ग्रन्थों का ही अंश माने जाते हैं। इनमें दर्शन सम्बन्धी उन तत्वों का प्रतिपादन है, जिनका पल्लवन आगे चलकर औपनिषदिक ग्रन्थों में हुआ। आरण्यक ग्रन्थों में ऐतरेय आरण्यक, शाखायन आरण्यक, तैत्तिरीय आरण्यक, माध्यन्दिन बृहदारण्यक, काण्व बृहदारण्यक, जैमिनीयोपनिषदारण्यक तथा छांदोग्यारण्यक के नाम उल्लिखित किये जाते है।

उपनिषद् साहित्य

उपनिषद् ग्रन्थ वैदिक साहित्य का चौथा और अंतिम भाग है। इन्हें वेदात भी कहा जाता है। उपनिषदों में ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन किया गया है। इन ग्रन्थो की सख्या १०८ मानी जाती है। इनमें 'ईशावास्योपनिषद्', 'केनोपनिषद्', 'कठोपनिषद्', 'प्रश्नोपनिषद्', 'मुंडकोपनिषद्', 'माण्डूक्योपनिषद्', 'तैत्तिरीयोपनिषद्', 'ऐतरेयोपनिषद्', 'छांदोग्य उपनिषद्', 'बृहदारण्यकोपनिषद्', 'कौषीतकी उपनिषनद्' तथा 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' आदि प्रमुख हैं। विभिन्न उपनिषदों में जो प्रसिद्ध कथाएँ मिलती हैं, उनमें 'केनोपनिषद्' की 'देवताओं की शक्ति परीक्षा', 'कठोपनिषद्' की 'नचिकेता का साहस', 'छान्दोग्य उपनिषद्' की 'सत्यकाम और गो-सेवा' तथा 'याज्ञवल्क्य और गार्गी', 'तैत्तिरीय उपनिषद्' की 'अश्विनीकुमार और गुरु दध्यङ्', 'प्रश्नोपनिषद्' की 'सुकेशा' तथा 'मुण्डकोपनिषद्' की 'महाशाल शौनक और अंगिरा' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

पुराण साहित्य

भारतीय साहित्य मे पुराणों की प्राचीनता भी वेदों के समान ही मानी जाती है। 'ब्रह्मांड पुराण' मे तो यहां तक कहा गया है कि ब्रह्मा ने पहले पुराणों का स्मरण किया तथा बाद मे वेद आदि अन्य शास्त्रों का। इसीलिए विद्वान् पुराणविद्या को अनादि मानते है। वेदों के समान ही पुराणों की रचना के विषय में भी अनेक प्रकार के

मंतव्यों का प्रचार है। अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि वेदव्यास ने ही पुराण संहिता का संपादन किया था तथा उनके शिष्यों ने अठारह पुराणों तथा अठारह उपपुराणों की रचना की थी। इनका रचना काल चौथी शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक अनुमानित है। विष्णु पुराण के अनुसार अठारह पुराणों में ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण, विष्णु पुराण, शिव पुराण, भागवत पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, लिंग पुराण, वराह पुराण, स्कन्द पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, वायु पुराण तथा ब्रह्मांड पुराण हैं। गरुड़ पुराण में अठारह उपपुराणों में सनत् उपपुराण, कुमार उपपुराण, स्कांद उपपुराण, शिवधर्म उपपुराण, आश्चर्य उपपुराण, नारदीय उपपुराण, कपिल उपपुराण, वामन उपपुराण, औशनस उपपुराण, ब्रह्मांड उपपुराण, वारुण उपपुराण, कालिका उपपुराण, महेश्वर उपपुराण, सांब उपपुराण, सौर उपपुराण, पाराशर उपपुराण, मारीच उपपुराण तथा भार्गव उप-पुराण है। पुराणों के अन्तर्गत उपर्युक्त महापुराणों तथा उपपुराणों के साथ जैन और बौद्ध पुराणों की गणना भी की जाती है। कथात्मक महत्व की दृष्टि से प्राचीन साहित्य मे पुराणो की विशिष्टता ही सर्वाधिक है। इनमें अनेक कल्पों और सृष्टियों के आरम्भ और विनाश की कथाएं वर्णित हैं। अनेक राजाओं, प्रजाओं, ऋषियों, मुनियों, जातियों, देवताओं, राक्षसों, धर्मों, सभ्यताओं, संस्कृतियों आदि के असंख्य प्रसंगों से युक्त होने के कारण ही इन्हें विश्वकोश की संज्ञा दी जाती है।

महाभारत

प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य में महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित 'महाभारत' का महत्व इतना अधिक प्रतिपादित किया गया है कि इसे पांचवां वेद तक कहा गया है। वेदव्यास कोई एक व्यक्ति था, अथवा यह कोई वंश परम्परा अथवा उपाधि अथवा संप्रदाय आदि था, इसके विषय में विद्वानों में मतभेद है। इस नाम के लगभग ३२ व्यक्तियों का उल्लेख प्राचीन साहित्य में मिलता है। स्वयं 'महाभारत' भी एक प्रकार का विश्व-ज्ञान कोश-सा ग्रन्थ है। इसमें अनेक अंश प्रक्षिप्त भी सम्भव हैं। वाङमय का समग्र वैचारिक कलात्मक स्वरूप इस महान् कृति में उपलब्ध होता है। अनुमान है कि इसकी रचना ३१०० वर्ष ई० पू० तथा संवर्द्धन २००० ई० पू० में हुआ। इस महाकाव्य में आधार रूप में कौरवों और पांडवों के महायुद्ध से सम्बन्धित मूल तथा प्रासंगिक कथाओं को प्रस्तुत किया गया है। साथ ही मानव को, सांसारिक

विभूतियों की अर्थहीनता निर्दिष्ट करते हुए कर्म और मुक्ति की ओर प्रेरित करना इस शांत रस प्रधान महाकाव्य का उद्देश्य है। आगे चलकर संस्कृत, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में 'महाभारत' से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण करके व्यापक साहित्य रचना हुई। भास, क्षेमेंद्र, कालिदास, भारवि, माघ, राजशेखर, वत्सराज, श्रीहर्ष तथा देवप्रभ सूरि आदि संस्कृत लेखकों ने क्रमशः 'पंचरात्र', 'भारतमंजरी', 'अभिज्ञान शाकुंतल', 'किरातार्जुनीय', 'शिशुपाल वध', 'बाल भारत', 'किरातार्जुनीय व्यायोग', 'नैषध चरित्र' तथा 'पांडवचरित' आदि कृतियां 'महाभारत' के ही विविध आख्यानों के आधार पर लिखीं।

रामायण

महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित आदि काव्य 'रामायण' असख्य परवर्ती कथा ग्रन्थो का प्रेरणा स्रोत है। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर इसका रचना काल पांचवी शताब्दी ई० पू० के भी पहले अनुमानित किया जाता है। इस महान् ग्रन्थ मे अनेक कथाएं-उपकथाएं संग्रथित है, जिनका प्रसार सुदूर अतीत तक है और वर्तमान युग तक जिनका प्रभाव और महत्व अक्षुण्ण रूप से मिलता है। रामायण में वर्णित इक्ष्वाकु पात्रों का उल्लेख तो वेदो मे भी मिलता है। दशरथ का नाम भी वैदिक साहित्य में आया है। कैकेय का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण तथा छांदोग्य उपनिषद् में भी मिलता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण मे जनक वैदेह के नाम की चर्चा हुई है। रामायण संस्कृत का सर्वप्रथम लौकिक उपाख्यानमय काव्य है। अन्यथा इसके पूर्व केवल ऋचाओं के रूप में ही काव्य की रचना की जाती थी। संस्कृत तथा अन्य भाषाओं में वाल्मीकि कृत रामायण से पूर्व और उपरांत लिखे गये अनेक रामायण ग्रन्थ उपलब्ध होते है। यह भी अनुमान है कि पाँचवी शताब्दी मे सिंहली भाषा में लिखित एक पुस्तक 'दशरथ जातक' थी, जिसके पालि अनुवाद 'जातकट्ठवण्णना' में वर्णित कथा ही रामायण का मूल है। रामायण में कुछ प्रक्षिप्त अंशों का जुड़ते जाना भी अनुमानित किया गया है। ऋष्यश्रृंग, विश्वामित्र, अहल्या, रावण, हनुमान तथा गंगावतरण से सम्बन्धित कथाएँ विशेष रूप से प्रक्षिप्त मानी जाती हैं। यह भी अनुमान है कि राम, रावण तथा दशरथ से सम्बन्धित पृथक्-पृथक् प्रचलित कथाओं का संयोजन करके रामायण रची गयी। कुछ भी हो, समग्र रूप में रामायण का बहुत अधिक प्रभाव परवर्ती साहित्य पर पड़ा है। कालिदास, भवभूति, भास, राजशेखर, विश्वनाथ, धनंजय

तथा सोमेश्वर आदि दर्जनों महाकवियों और नाटककारों ने राम कथा का आधार ग्रहण करके अपनी प्रसिद्ध कृतियों की रचना की। कथा साहित्य में सोमदेव रचित 'कथासरित्सागर', क्षेमेंद्र रचित 'बृहत्कथामंजरी', वासुदेव कृत 'रामकथा' तथा अनन्त भट्ट रचित 'रामकल्पद्रुम' आदि ग्रन्थ भी 'रामायण' की कथा से प्रभावित हैं।

जातक कथाएँ

बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध के विविध जन्मों से सम्बन्ध रखने वाली कथाओं का प्रसार जातको के रूप मे है। बुद्ध-वचन का जिन नौ भागों में वर्गीकरण किया गया है, उनमे से जातक भी एक है। जातक का ही महत्व इनमें प्रसिद्धि और प्राचीनता की दृष्टि से सबसे अधिक है। 'जातक' का शाब्दिक अर्थ 'जन्म से सम्बन्धित' है। जातक साहित्य मे गौतम बुद्ध के उन पांच सौ सैतालीस जन्मों का उल्लेख है, जो उन्हें बुद्धत्व प्राप्त होने के पूर्व बोधिसत्व अथवा बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील जीव के रूप मे धारण करने पड़े। ऐतिहासिक दृष्टि से जातक कथाओं का रचना काल पाँचवीं शताब्दी ई० पू० से लेकर पहली शताब्दी ई० पू० तक माना जाता है। जातक कथाओं से पूर्व का जो कथा साहित्य उपलब्ध है, वह प्रायः संकेत, संवाद या किसी संदर्भ विशेष मे प्रासगिक रूप मे आया है। साथ ही, पौराणिक कथा साहित्य के अतिरिक्त उसमे कोई विशेष क्रमबद्धता या कलात्मक पूर्णता भी नही मिलती है। परन्तु इस दृष्टि से जातक साहित्य में पूर्ववर्ती कथा साहित्य से पर्याप्त अन्तर मिलता है। इसमें समस्त कथाओं मे एक प्रकार की पारस्परिक क्रमबद्धता सी मिलती है, जिससे कथाओं का सूत्र बंधा रहता है। 'वर्तमान कथा' और 'अतीत कथा' के रूप में इसमें कथा संगठन हुआ है। गौतम बुद्ध के पूर्व जीवन विवरण के आधार पर लिखी गयी इन जातक कथाओ का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। ये कथाएँ इतनी रोचक और मर्मस्पर्शी हैं कि परवर्ती कथा साहित्य पर इनका अत्यन्त व्यापक प्रभाव पड़ा है। श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने इन कथाओं के विश्व साहित्य मे अनुवाद तथा प्रसार का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है।[४८] उन्होंने बुद्ध वंश के सत्ताईस बुद्धों का भी उल्लेख किया है, जिनके नाम तण्हंकरो, मेधंकरो, सरणंकरो, दीपंकरो, कोन्डञ्ञ, मंगलो, सुमनो, रेवतो, सोभितो, अनोमदस्सी, पदुमो, नारदो, पदुमुत्तरो, सुमेधो, सुजातो,

४८. श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन, 'जातक', प्रथम खंड, पृ० ३०।

पियदस्सी, अत्थस्सी, धम्मदस्सी, सिद्धत्थ, तिस्स, फुस्स, विपस्सी, सिखी, वेस्सभू, ककुसन्ध, कोणगमनो तथा कस्सप है। श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन का यह विचार है कि 'पंचतंत्र' आदि के माध्यम से भी जातक कथाओं का विश्व साहित्य में प्रसार हुआ। जातक साहित्य के विषय विस्तार तथा महत्व का निरूपण करते हुए उन्होंने लिखा है कि "भारतीय जीवन का कोई पहलू ऐसा नही, जिसका लेखा इन कथाओं मे न मिलता हो। यदि भविष्य मे हमारा इतिहास राजाओं की जन्म-मरण तिथियों का लेखा मात्र न रहकर जनता के जन्म-मरण के इतिहास के रूप मे यथार्थ ढंग से लिखे जाने को है, तो प्राचीन काल के वैसे इतिहास के लिए इन कथाओ का मूल्य बहुत ही अधिक है।"[४९]

पंचतंत्र

प्राचीन भारतीय कथा साहित्य के अन्तर्गत जातक कथाओं के उपरात 'पंचतंत्र' की कथाओं का ही उल्लेख किया जा सकता है। इन कथाओं पर जातक साहित्य का स्पष्ट प्रभाव मिलता है। जातक की अनेक कथाएँ भी 'पंचतंत्र' मे उपलब्ध होती है। 'पंचतंत्र' की रचना नीतिशास्त्र मर्मज्ञ पं० विष्णु शर्मा ने राजपुत्रों को नीति-शिक्षा देने के उद्देश्य से की थी। इसकी रचना के समय उनकी अवस्था अस्सी वर्ष की थी। विष्णु शर्मा ने उसके प्रणयन के विषय में लिखा है कि मैंने इस शास्त्र की रचना का प्रयत्न अत्यन्त बुद्धिपूर्वक किया है, जिससे औरों का हित हो। 'पंचतंत्र' में 'मित्र भेद', 'मित्र सम्प्राप्ति', 'काकोलूकीय', 'लब्धप्रणाश' तथा 'अपरीक्षितकारक' शीर्षक पांच तन्त्र हैं। पांच तन्त्रों में विभक्त होने के कारण ही इस ग्रन्थ का नाम 'पचतंत्र' हुआ। ये कथाएँ चूंकि एक विशिष्ट उद्देश्य से लिखी गयी थी अतः प्राचीन भारतीय नीतिशास्त्र के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक निरूपण की दृष्टि से इनका अत्यधिक महत्व है। संसार की अनेक भाषाओ में ये कथाएँ विविध रूपों में लोकप्रिय हुई। पहलवी, सीरियन, अरबी, यूनानी, रूसी, स्लाव, लैटिन, इटैलियन, जर्मन, डेनिश, डच, आइसलेंडियन, स्पेनी, चेक, अंग्रेजी, फ्रेंच, हंगेरियन, पोलिश, स्वीडिश आदि भाषाओं में इसके अनुवाद हुए। 'पंचतंत्र' के महत्व के विषय में अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि ईरान के बादशाह खुसरो

४९. वही, पृ० ३२।

के मंत्री और राजवैद्य बुर्जुए ने किसी ग्रन्थ में पढ़ा कि भारतवर्ष में किसी पर्वत पर संजीवनी ओषधि मिलती है, जिससे मुरदे भी जी उठते हैं। कौतूहलवश वह लगभग ५५० ई० में भारत आया और कहीं भी इस ओषधि को न प्राप्त कर सका। अन्त में हताश होकर उसने किसी भारतीय विद्वान् के सामने अपनी समस्या रखी। उसे उत्तर मिला—"तुमने जैसा पढ़ा था, वह ठीक है। विद्वान् व्यक्ति वह पर्वत है, जहाँ ज्ञान की यह बूटी होती है और जिसके सेवन से मूर्ख रूपी मृत व्यक्ति फिर से जी उठता है। इस प्रकार का अमृत हमारे यहाँ के 'पंचतंत्र' नामक ग्रन्थ में है।" यह सुनकर बुर्जुए 'पंचतंत्र' की एक प्रति यहाँ से ले गया और उसे पहलवी में अनूदित कर बादशाह के सामने प्रस्तुत किया। इसी प्रसंग में यह भी उल्लेख मिलता है कि एक बार किसी भारतीय विद्वान् ने जब संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ डा० विन्टरनित्स से प्रश्न किया कि आपकी सम्मति में भारतवर्ष की संसार को मौलिक देन क्या है। तो उन्होंने तत्काल उत्तर दिया—"एक वस्तु, जिसका नाम मै तुरन्त और बेखटके ले सकता हूँ, वह पशु पक्षियो पर ढालकर रचा हुआ कहानी साहित्य है, जिसकी देन भारत ने ससार को दी है।" 'पचतंत्र' मे दक्षिण देश के एक प्रान्त के अन्तर्गत महिलारोप्य नामक नगर के प्रतापी राजा अमरशक्ति का उल्लेख है, जो सर्वसुख होते हुए भी अपने बहुशक्ति, उपशक्ति तथा अनन्तशक्ति नामक तीनों पुत्रों के अविनयी, उच्छृ-खल तथा मूर्ख होने के कारण दुखी रहता था। उसके राज्य में यद्यपि पाँच सौ वृत्ति-भोगी शिक्षक थे, परन्तु राजा ने अपने मन्त्री सुमति के परामर्श से सकल शास्त्र पारंगत आचार्य विष्णु शर्मा को राजपुत्रों का नीति शिक्षक नियुक्त किया। उन्होंने इनके शिक्षण के लिए अनेक कथाएँ बनायी और उन्हें सुनाकर राजपुत्रों को छै महीने में ही पूरा राजनीतिज्ञ बना दिया। इस कथा संकलन का नाम ही 'पंचतत्र' विख्यात हुआ। यह ग्रन्थ मूलतः नीति विषयक ग्रन्थ है। नीति के व्यावहारिक स्वरूप का निरूपण इसकी प्रमुख विशेषता है। एक विद्वान् के अनुसार इसमें नीतिसम्मत जीवन की व्यावहारिक व्याख्या है। उनके विचार से "नीति-प्रधान जीवन वह है, जिसमें मनुष्य की समस्त शक्तियों और सम्भावनाओं का पूरा विकास हो, अर्थात् एक ऐसे जीवन की प्राप्ति जिसमें आत्म-रक्षा, धन-समृद्धि, संकल्पमय कर्म, मित्रता और उत्तम विद्या इन पाँचों का इस प्रकार समन्वय किया जाय कि उससे आनन्द की उत्पत्ति हो। यह जीवन का सम्भ्रान्त आदर्श है जिसे 'पंचतंत्र' की चतुराई और बुद्धि से भरी हुई पशु पक्षियों की कहानियों के द्वारा अत्यन्त कलात्मक रूप में रखा गया

है।"[५०] आज 'पंचतंत्र' का मूल सर्वथा विलुप्त हो चुका है। उस मूल के आधार पर ही रचित उसके अनेक संस्करण उपल ध हैं। गुप्त काल से पूर्व लिखी गयी ये कथाएँ सहस्रों वर्षों मे देश-विदेश की अनेक भाषाओ मे अनेक रूपों में प्रचलित हुईं। इसके अनेक संस्करण एवं अनेक पाठ परम्पराएँ मिलती हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

तंत्राख्यायिका

'पंचतंत्र' का एक संस्करण कश्मीरी पाठ परम्परा में 'तंत्राख्यायिका' के रूप में उपलब्ध होता है। इसका रचना काल निश्चित नही हो सका है। यह कश्मीर की शारदा लिपि में लिखा हुआ है। यह पाठ डा० हर्टल द्वारा सम्पादित किया गया है। संपादक के विचार से 'पंचतंत्र' का यह पाठ सर्वथा शुद्ध और मूल पर ही आधारित है। सम्पादक के इस मत से एक दूसरे विद्वान् डा० एजर्टन ने सहमति नही प्रकट की है। वे इसका महत्व संदिग्ध मानते हैं।

दक्षिण भारतीय पंचतंत्र

'पंचतत्र' का एक संस्करण 'दक्षिण भारतीय पंचतंत्र' की पाठ परम्परा के रूप में भी उपलब्ध है। इसके महत्व के निदर्शन के सम्बन्ध में डा० एजर्टन के विचार विशिष्ट है। कहा जाता है कि मूल पंचतंत्र के गद्य पद्य भाग का अधिकाश इस पाठ परम्परा में सुरक्षित है। कुछ विचारकों की यह भी धारणा है कि चूकि मूल पंचतत्र मे दक्षिण भारत के महिलारोप्य नामक नगर का एकाधिक बार उल्लेख किया गया है, अतः यह बहुत सम्भव है कि पंचतंत्र की रचना वही हुई हो।

नेपाली पंचतंत्र

'पंचतंत्र' का तीसरा संस्करण नेपाली पंचतंत्र की पाठ परम्परा के रूप में भी मिलता है। इसके विषय में विद्वानों की यह धारणा है कि पूर्व काल में यह संस्करण गद्य एवं पद्य दोनों से युक्त था। कालांतर में इसका पद्य भाग पृथक् कर दिया गया और गद्य भाग विलुप्त हो गया। अब यह केवल पद्य भाग के रूप में ही प्राप्य । है

५०. 'पंचतंत्र', डा० मोतीचन्द्र, आमुख, पृ० १३।

अपवाद रूप में इसमें केवल एक गद्य वाक्य अब भी उपलब्ध होता है, जो केवल संयोग वश ही इसमें शेष रह गया है। यह पाठ पंचतंत्र के दक्षिण भारतीय पाठ से श्लोक-रचना की दृष्टि से पर्याप्त साम्य रखता है, परन्तु इन दोनों की परम्पराओं को निश्चित रूप से परस्पर भिन्न स्वीकार किया जाता है।

हितोपदेश

'पंचतंत्र' की ही पाठ परम्परा में हितोपदेश का भी उल्लेख किया जाता है। संस्कृत साहित्य के क्षेत्र मे 'हितोपदेश' के रचयिता नारायण भट्ट का उल्लेख भी पंचतंत्र की ही परम्परा में किया जाता है। इन्होंने पंचतत्र से ही प्रभाव और प्रेरणा ग्रहण करके इसी के अनुकरण पर गद्य और पद्य से युक्त शैली मे दसवी शताब्दी के लगभग 'हितोपदेश' की रचना की। इस ग्रन्थ मे चार विभाग है। पंचतंत्र के पाँच तन्त्रों तथा 'हितोपदेश' के चार विभागों में बाह्य दृष्टि से पर्याप्त वैभिन्न्य के साथ ही कथाओ और उनकी योजना की दृष्टि से बहुत साम्य भी है। विद्वानों का यह अनुमान है कि 'हितोपदेश' की रचना करते समय नारायण भट्ट ने मूल पंचतंत्र के दक्षिण भारतीय पाठ से सहायता ली थी। मूल पंचतंत्र की अधिकांश कथाएं गद्य पद्य रूपो मे हितोपदेश मे उपलब्ध होती हैं। 'हितोपदेश' की कथाओं पर जातक साहित्य का भी प्रभाव मिलता है। 'पचतंत्र' की भाँति ही 'हितोपदेश' की रचना का उद्देश्य भी राजकुमारो को राजनीति और व्यवहार नीति की शिक्षा देना था।[५१]

बृहत्कथा

यह ग्रन्थ अपने मूल रूप मे पैशाची भाषा में महाकवि गुणाढ्य के द्वारा पहली शताब्दी ई० के लगभग प्रस्तुत किया गया था।[५२] इस कृति तथा कृतिकार के विषय में कोई प्रामाणिक विवरण आज उपलब्ध नही है। आगे चलकर इस मूल ग्रन्थ के आधार पर अनेक कृतियाँ प्रस्तुत की गयी। इसके अनेक संस्करण भी प्रकाश में आये। 'बृहत्कथा' के कश्मीरी संस्करणों में उपलब्ध संकेतों के आधार पर गुणाढ्य का निवास स्थान गोदावरी तट माना गया है। कहा जाता है कि यह सातवाहन नामक राजा के

५१. 'हितोपदेशः', भाषान्तरकार श्री आनन्द, भूमिका।
५२. श्री बलदेव उपाध्याय, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', पृ० ५०५।

आश्रय में रहते थे। 'बृहत्कथा' के नेपाली संस्करण में बताया गया है कि गुणाढ्य का जन्म स्थान मथुरा था और वे उज्जैन के राजा मदन के आश्रय में रहते थे। इस ग्रन्थ के अनेक अनुवाद उपलब्ध होते हैं। इनमें बुधस्वामी कृत 'बृहत्कथा श्लोकसंग्रह', क्षेमेन्द्र कृत 'बृहत्कथा मजरी' तथा सोमदेव भट्ट कृत 'कथासरित्सागर' प्रमुख हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त सातवी शताब्दी में गंगाराज दुर्विनीत ने 'बृहत्कथा' का एक संस्कृत संस्करण भी प्रस्तुत किया था।'[53] संस्कृत साहित्य में गुणाढ्य तथा उनके द्वारा रचित 'बृहत्कथा' के अनेक उल्लेख मिलते है। सर्वप्रथम आचार्य दंडी ने छठी शताब्दी मे अपने 'काव्यादर्श' मे बृहत्कथा का उल्लेख किया है। आचार्य धनंजय ने तो इसका उल्लेख 'रामायण' के साथ किया है। दसवी शताब्दी में त्रिविक्रम भट्ट ने अपने 'नलचम्पू' में तथा बारहवी शताब्दी में गोवर्धन ने 'आर्या सप्तशती' में गुणाढ्य का उल्लेख किया है। नवीं शताब्दी के कंबोडिया के एक शिलालेख में भी गुणाढ्य का नाम आया है।'[54] भारतीय कथा साहित्य पर 'रामायण', 'महाभारत' तथा 'जातक' के उपरान्त सबसे अधिक प्रभाव 'बृहत्कथा' का ही पड़ा है। परवर्ती साहित्य मे भास कृत 'स्वप्नवासवदत्ता', 'चारुदत्त' तथा 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण', विष्णु शर्मा कृत 'पंचतत्र', बाणभट्ट कृत 'कादम्बरी', शूद्रक कृत 'मृच्छकटिक', श्रीहर्ष कृत 'रत्नावली', 'नागानन्द' तथा 'प्रियदर्शिका', भवभूति कृत 'माल्ती माधव', विशाखदत्त कृत 'मुद्राराक्षस', भट्ट नारायण कृत 'वेणीसहार' तथा धनपाल कृत 'तिलकमंजरी' आदि के साथ 'पंचतंत्र', 'वेताल पच्चीसी' तथा 'हितोपदेश' आदि पर किसी न किसी रूप में 'बृहत्कथा' का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रभाव बताया जाता है।

बृहत्कथा श्लोकसंग्रह

महाकवि गुणाढ्य द्वारा प्रणीत 'बृहत्कथा' के ही अधार पर संस्कृत मे 'बृहत्कथा-श्लोकसग्रह' शीर्षक ग्रन्थ बुध स्वामी द्वारा प्रस्तुत किया गया था। बुध स्वामी नेपाल के निवासी थे। इनका रचना काल आठवी शताब्दी अथवा नवी शताब्दी अनुमानित किया जाता है। यह ग्रन्थ अपने संपूर्ण रूप मे उपलब्ध नही है। इसकी जो अपूर्ण और खंडित प्रति प्राप्त होती है, उसके आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि इस

५३. डा० भगवतशरण उपाध्याय, 'विश्व साहित्य की रूपरेखा', पृ० ४९४।
५४. श्री हंसराज अग्रवाल, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', पृ० १९६।

ग्रन्थ में अट्ठाईस सर्गों के अन्तर्गत लगभग साढ़े चार सहस्र श्लोक रहे होंगे। कुछ विद्वानों का यह अनुमान है कि यह रूपान्तर कथात्मक दृष्टि से मूल कथा से अधिकतम निकटता रखता है। भाषा, शैली एवं विविध वर्णनों की दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त कलात्मक है।

कथासरित्सागर

सोमदेव भट्ट कृत 'कथासरित्सागर' का भी उल्लेख 'पंचतत्र' की पाठ परम्परा मे ही किया जाता है। कथा योजना और शिल्प रूप के विचार से इसका रूप मूल 'पंचतंत्र' से सर्वथा भिन्न है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत शक्तियशालम्बक में 'पंचतत्र' की कथा आती है। 'कथासरित्सागर' की कहानियों का लोकप्रियता और प्रचार की दृष्टि से बहुत अधिक महत्व है। यह ग्रन्थ मूल रूप से संस्कृत मे है, परन्तु इसका अनुवाद अनेक भाषाओ मे हो चुका है। अनुमान लगाया जाता है कि इसकी रचना ग्यारहवी शताब्दी में हुई थी। इसकी रोचक कहानियाँ समकालीन समाज और संस्कृति का विश्वसनीय स्वरूप उपस्थित करती है। मनोरजन के उद्देश्य के साथ ही साथ कथासरित्सागर की अनेक कथाएँ नीति उपदेश की दृष्टि से भी महत्व रखती हैं। कुछ विद्वानो का यह भी अनुमान है कि यह ग्रन्थ मौलिक नही है और प्राचीन युग मे विन्ध्य प्रदेश मे बोली जाने वाली भाषा पैशाची में महाकवि गुणाढ्य द्वारा रचा गया था।[५५] इसी के आधार पर लिखित 'कथासरित्सागर' मे सोमदेव भट्ट के बाईस सहस्र श्लोक है।

बृहत्कथामंजरी

क्षेमेन्द्र द्वारा रचित 'बृहत्कथा मंजरी' का भी उल्लेख 'पंचतंत्र' की पाठ परम्परा की अगली कडी के रूप मे किया जाता है। यह ग्रन्थ भी कथा योजना तथा शिल्प रूप की दृष्टि से मूल 'पंचतंत्र' से पर्याप्त वैभिन्न्य लिये हुए मिलता है। इसके अन्तर्गत शक्तियशालम्बक मे 'पचतंत्र' की कथा आती है। बृहत्कथा विषयक अधिकारी विद्वान श्री लाकोते का यह अनुमान है कि इसका जो मूल रूप था, उस पर 'पचतत्र'

५५. सोमदेव भट्ट : 'कथासरित्सागर', रूपान्तरकार—गोपालशरण कौल, भूमिका, पृ० ४।

का कोई प्रभाव नहीं था। 'पंचतंत्र' के प्रथम पाठ रूप 'तन्त्राख्यायिका' का प्रभाव इस पर अवश्य मिलता है। उसकी पाँच कथाएँ 'बृहत्कथामंजरी' में समाविष्ट हैं। 'बृहत्कथामंजरी' की रचना आचार्य क्षेमेन्द्र ने ग्यारहवीं शताब्दी में की थी, जो कश्मीर के राजा अनन्त के समकालीन थे। इस ग्रन्थ में अठारह लम्बकों के अन्तर्गत साढ़े सात सहस्र पद्य हैं। यह काव्य अत्यन्त उत्कृष्ट है। परन्तु कवि ने मूल कथा को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में ही प्रस्तुत किया है। इसमें अनेक ऐसी रोचक कथाएँ भी समाविष्ट मिलती हैं, जो मूल बृहत्कथा में नही थीं, परन्तु समकालीन समाज में अति प्रचलित और लोकप्रिय होने के कारण जिनका समावेश इस ग्रन्थ में रचयिता ने कर दिया है।

रामायणमंजरी

'रामायणमंजरी' का रचना काल ग्यारहवी शताब्दी है। 'बृहत्कथामंजरी' के प्रणेता महाकवि क्षेमेन्द्र ने संस्कृत 'रामायण' का सार ग्रहण करके उसे 'रामायण मजरी' के रूप में प्रस्तुत किया है।

महाभारतमंजरी

'बृहत्कथामंजरी' के रचयिता महाकवि क्षेमेन्द्र ने 'रामायणमंजरी' के साथ ही 'महाभारतमंजरी' की भी रचना की थी। इस ग्रन्थ का रचना काल भी ग्यारहवी शताब्दी ही है। इसमें रचयिता ने संस्कृत 'महाभारत' का सारांश प्रस्तुत किया है।

पश्चिम भारतीय पंचतंत्र

'पंचतंत्र' की पाठ परम्परा का ही एक रूप पश्चिम भारतीय पंचतंत्र के संस्करण में उपलब्ध होता है। इसके निर्माण काल के विषय में विद्वानों का अनुमान है कि यह दसवी शताब्दी के लगभग हुआ होगा। इसके विषय में विशेषज्ञो की यह भी धारणा है कि यह संस्करण 'पंचतंत्र' का सादा अथवा अनुपबृंहित पाठ प्रस्तुत करता है।

पंचाख्यान

'पंचतंत्र' की पाठ परम्परा का एक अन्य रूप पूर्णभद्र द्वारा रचित 'पंचाख्यान'

के संस्करण में उपलब्ध होता है। इसका रचना काल बारहवीं शताब्दी का अंतिम भाग माना जाता है। कहा जाता है कि यह ग्रन्थ ही मूल 'पंचतंत्र' की विस्तृत वाचना है। यह कृति 'पंचतंत्र' का पुनर्नियोजित रूप है। स्वयं इसके रचयिता ने इस सन्दर्भ में इस तथ्य का उल्लेख किया है कि उसने मूल 'पंचतंत्र' से सम्बन्धित समस्त उपलब्ध सामग्री का संयोजन करके उसे इस नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। उपर्युक्त संस्करणों के अतिरिक्त डा० एजर्टन ने 'पंचतंत्र' के समस्त उपलब्ध संस्करणों एवं प्राप्य सामग्री की सम्यक् संयोजना करके उसका एक पुनः घटित पाठ प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार से, प्राचीन भारतीय कथा साहित्य की परम्परा एक सुदीर्घ रचना काल तक प्रशस्त है। वैदिक ग्रन्थों से लेकर पूर्व-भारतेन्दु युगीन नीतिपरक साहित्य तक यह परम्परा एक अटूट क्रम के अनुसार मिलती है। वैदिक ग्रन्थों में अनेक कथाएँ सूत्र रूप में विद्यमान मिलती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध अनेक कथाओं ने परवर्ती पौराणिक साहित्य को प्रभावित किया है। आरण्यक ग्रन्थ ब्राह्मण ग्रन्थों का ही अंश माने जाते हैं। वैदिक साहित्य के चौथे और अन्तिम भाग के रूप में उपनिषद् ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है, जिन्हे वेदान्त भी कहा जाता है। उपनिषदो की अनेक कथाएँ विशेष रूप से प्रसिद्ध है, जिनका उल्लेख किया जा चुका है। वैदिक साहित्य के समान ही पुराणों को भी अत्यन्त प्राचीन माना जाता है। इनका विषय विस्तार बहुत अधिक होने के कारण ही इन्हें विश्वकोश की सज्ञा दी गयी है। ये कथा साहित्य का महा-सागर है। 'महाभारत' को तो पाँचवाँ वेद तक माना गया है। 'रामायण' का महत्व संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में आदि काव्य के रूप में है। 'जातक', 'पंचतंत्र', 'हितोपतेश', 'बृहकत्था' तथा 'कथासरित्सागर' आदि ग्रन्थों का उल्लेख प्राचीन भारतीय नीति और लोक कथा साहित्य के अन्तर्गत किया जाता है, जिसकी परम्परा आज तक अक्षुण्ण है। वर्तमान हिन्दी कहानी के प्रेरणा स्रोत और पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में उपर्युक्त प्राचीन भारतीय कथा साहित्य की परम्परा को ध्यान मे रखना आवश्यक है।

विदेशी भाषाओं में कहानी साहित्य

कहानी विश्व में प्राचीनतम साहित्यिक विधा है। इसका प्रसार आज से सहस्रों वर्ष पूर्व तक मिलता है। प्रत्येक देश के प्राचीन वाङमय में कहानी के अस्तित्व के संकेत मिलते हैं। वस्तुतः कहानी का आरम्भ मानव स्वभाव की एक नैसर्गिक आवश्यकता

के रूप में हुआ था। भाषा और लिपि का आरम्भ होने के पूर्व भी मौलिक रूप में कहानियों का प्रचलन था। प्राचीन काल से ही मनुष्य आपबीती और जगबीती के रूप में एक दूसरे से कहानियाँ सुनता आ रहा था। प्रायः सभी देशों के अतीत युगों में धार्मिक-पौराणिक गाथाओं के रूप में भी इस विधा का प्रचार था। विश्व की अधि-कांश आधुनिक भाषाओं में अभिनव रूप में कहानी का आविर्भाव प्रायः उन्नीसवीं शताब्दी से मिलता है। तब से लेकर आज तक कहानी की विकास यात्रा कल्पना से यथार्थ की मंजिल की परिचायक है। इसीलिए जहाँ एक ओर प्राचीन कहानियाँ लोक गाथाओं, पौराणिक, धार्मिक आख्यानों तथा नैतिक उपदेशात्मक कहानियों के साथ साथ मनोरंजन के लिए देवी देवताओं, परियों, राक्षसो तथा पशु-पक्षियों को आधार बनाकर लिखी जाती थी, वहाँ आजकल विशुद्ध मानवीयता को आधार बनाकर कहानी रचना हो रही है। अब वैदिक कहानियाँ, पौराणिक गाथाएँ, बाइबिल की कहानियाँ, अलिफ़लैला की कहानियाँ एवम् जातक की कथाएँ, पंचतंत्र, हितोपदेश तथा कथासरित्सागर की कहानियाँ और ईसप की कहानियाँ आदि केवल इतिहास और परम्परा मात्र बनकर रह गयी हैं। आज की कहानी की प्रमुख विशेषताएँ यथार्थात्मकता तथा मनोवैज्ञानिकता है।

इब्रानी अथवा हिब्रू कहानी साहित्य

ऐतिहासिक दृष्टि से इब्रानी अथवा हिब्रू के साहित्य में विविध विषयक कहानियों के अस्तित्व के संकेत अत्यन्त प्राचीन काल से उपलब्ध होते हैं। यही नहीं, इब्रानी अथवा हिब्रू साहित्य के क्षेत्र मे प्राचीन लोक कथाओं का विशाल भण्डार मिलता है। 'बाइबिल' के 'ओल्ड टेस्टामेंट' की अनेक कथाएँ इनमे प्रभावित हैं। 'सर्प और ज्ञानफल', 'केन', 'एबल', 'नूह की नौका', 'बाबुल की मीनार', 'आइजक का बलिदान' तथा 'लाल सागर का संतरण' आदि बाइबिल की प्रसिद्ध कथाओं का मूल स्रोत प्राचीन हिब्रू लोक साहित्य ही है। हिब्रू साहित्य मे दूसरी शताब्दी ई० पू० में प्रचलित 'एस्थर' नामक लोक प्रचलित कहानी का भी उल्लेख मिलता है। यहूदियों की धार्मिक पुस्तक 'ताल्मुद' में भी अनेक पौराणिक कथाओं को संगृहीत किया गया है। दूसरी शताब्दी ई० पू० मे ही इस ग्रन्थ का ग्रीक अनुवाद 'ओपोक्रिफल' शीर्षक से किया गया था। इसके उपरांत हिब्रू साहित्य के इतिहास मे इमानुएल बैन सोलोमान हारोमी का उल्लेख मिलता है। इसके एक विशाल संग्रह ग्रन्थ का शीर्षक 'माहबरोथ इमानुएल' है। इस ग्रन्थ में उसकी

कविताओं तथा व्यंग्यों के साथ ही उसकी लिखी हुई समस्त कहानियाँ संगृहीत हैं। इसका रचना काल तेरहवीं-चौदहवी शताब्दी है। डेविड फिशमैन तथा आइजक लोएब पेरेज का नाम आधुनिक युगीन कथाकारों में उल्लेखनीय है। इन लेखकों की कृतियों में यहूदियों के जीवन का व्यापक स्तरीय संघर्षपूर्ण और मार्मिक चित्रण उपलब्ध होता है। रुबेन ब्रेनिन ने भी आधुनिक युगीन हिब्रू कहानी साहित्य के विकास में योग दिया है। आइज़क शमी ने अपनी मर्मस्पर्शी कहानियों में फिलिस्तीन में जाकर शरणार्थियों के रूप में बस जाने वाले येमन के यहूदियों की समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण उपस्थित किया है। स्मिलिआन्स्की अथवा होजा मूसा ने प्राचीन अरबी से लोकप्रिय कथाओं के आधार को ग्रहण करके हिब्रू कहानी साहित्य को समृद्ध किया है।

जापानी कहानी साहित्य

जापानी साहित्य के क्षेत्र में लगभग ७०० ई० पू० से कहानी के अस्तित्व के संकेत मिलते है। जापान मे लिपि का प्रचार पाचवी शताब्दी ई० पू० में हुआ था। इसके पूर्व का साहित्य कहानी के माध्यम से अवश्य उपलब्ध होता है, परन्तु ये कहानियाँ मौखिक और सूत्र रूप मे ही प्रचलित थी। उस समय का जापानी साहित्य कहानी के अतिरिक्त गीतों और मंत्रों के रूप मे भी विद्यमान था। यह प्राचीन साहित्य आठवीं शताब्दी मे प्रस्तुत जापान के इतिहास 'निहोन्शोकी' मे संक्षेप में उल्लिखित है, जिसकी रचना में अनेक लेखकों के साथ तोनेरी और यासुमारो नामक राजकुमारों का भी योग था। आगे चलकर मुरासाकी शिकिबू द्वारा लिखित 'गेंजी की कथा' अथवा 'गेंजी मोनोगातारी' शीर्षक रचना का पर्याप्त प्रचार हुआ। इसका रचना काल ग्यारहवीं शताब्दी है। यह कहानी औपन्यासिक शैली में लिखी गयी है। इसी के साथ ही 'ताके-तोरी मोनोगातारी' अथवा 'बसफोड़ की कहानी' का भी उलेख किया जा सकता है। यह रचना भी औपन्यासिक शैली में ही प्रस्तुत की गयी है। 'ईसे मोनोगातारी' अथवा 'ईसे की कहानी' ही इस युग की एक ऐसी रचना है, जिसमें परियों, अप्सराओं की कहानियाँ संगृहीत है। आगे चलकर सत्रहवी शताब्दी में ईबारा सैकाकू ने समकालीन जीवन का यथार्थपरक चित्रण करने वाली अनेक रचनाएं प्रस्तुत की, जिनमें 'कोशोकू गोनिन ओन्ना' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें ईबारा सैकाकू की पांच कहानियाँ संगृहीत हैं। आधुनिक युगीन जापानी कहानी लेखकों में आकुतागावा का

नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'राशोमान' तथा 'हाना' शीर्षक उसकी कृतियाँ आधुनिक जापानी कथा साहित्य में विशिष्ट महत्व रखती है।

अरबी कहानी साहित्य

अरबी साहित्य के क्षेत्र में प्रायः आठवी शताब्दी से कहानी के अस्तित्व के संकेत मिलते हैं। खुसरो के समय मे पहलवी में प्रसिद्ध भारतीय लोककथा संग्रह 'पंचतंत्र' का अनुवाद संस्कृत से प्रस्तुत किया गया था। इन कथाओं का अरबी अनुवाद इब्ने अल मुकफ्फ़ा ने किया था, जिसका नाम रूज़बी भी था। अरबी में इन कथाओं के संग्रह का शीर्षक 'कलीलका दिम्न' अर्थात् 'बिदवाई' की कहानियाँ' रखा गया था। आगे चलकर दसवी शताब्दी में फ़ारसी के 'हज़ार अफसाने' के आधार पर 'अरेबियन नाइट्स' की रचना हुई। लगभग चार सौ वर्षों के उपरान्त इस ग्रन्थ को उसका वर्तमान रूप प्रदान किया गया। इस काल मे अरबों और ईरानियों के साथ पूर्वी देशों का संपर्क बढ़ने के साथ 'अल्फ लैला व लैला' अथवा 'सहस्त्र और एक रजनी' जैसे ग्रन्थ रचे गये। इस कृति के मूलतः दो रूप मिलते है। इसका प्रथम रूप वह है, जो बगदाद में प्रस्तुत किया गया था। इसमें प्रसिद्ध खलीफा हारूँ अल रशीद के दरबार से सम्बन्धित प्रसग हैं। इसका दूसरा रूप मिश्र मे प्रस्तुत किया गया था। यह जिन्नों आदि के प्रसंगों से युक्त है। रचना विधान की दृष्टि से इनमे 'पचतत्र' से पर्याप्त साम्य मिलता है। इनमें शहरयार नामक नायक को शहजाद नामक नायिका एक सहस्त्र रात्रियों तक नित्य एक कहानी सुनाती है, जिसमे से क्रमशः एक के उपरांत दूसरी कहानी का सूत्र उपजता रहता है। ये कहानियाँ अत्यन्त लोकप्रिय हुई है। इन कहानियो का यूरोपीय साहित्य पर भी व्यापक प्रभाव पडा है। 'अरेबियन नाइट्स' शीर्षक कृति इसी ग्रन्थ के आधार पर लिखी गयी है। चौसर के 'स्क्वायर्स टेल' का आधार भी यही ग्रन्थ है। यह भी कहा जाता है कि कासानोवा के प्रसिद्ध 'संस्मरणो' पर भी इन कहानियों का प्रभाव है। इसके साथ ही 'अलादीन और अद्भुत चिराग', 'अली बाबा और चालीस चोर' तथा 'सिदबाद जहाजी की कहानियो' आदि का भी उल्लेख किया जा सकता है, जिनका विश्व की अनेक भाषाओं मे अनुवाद हुआ।

रूसी कहानी साहित्य

रूसी भाषाओं में कहानी साहित्य के अस्तित्व के संकेत प्राचीन युग में ही उपलब्ध

होते हैं। प्राचीन रूसी लोक कथाओं का प्रसार भी लगभग एक सहस्र वर्षों पूर्व मिलता है। अनुमान लगाया जाता है कि उस समय वहां की स्लाव जातियां प्राय: नदियों के किनारे रहा करती थी। वे कृषि पर मुख्यत: निर्भर रहते थे। देवताओं में वे सूर्य और प्रकृति की शक्तियों की पूजा करते थे। प्राचीन रूसी लोक कथाओं में इस तथ्य के संकेत उपलब्ध होते हैं कि नवी शताब्दी ई० पू० वहां एक महान् राष्ट्र की स्थापना की गयी, जिसे कीव के नाम से प्रसिद्धि मिली। परियों की कहानियो के रूप में जो प्राचीन लोक साहित्य उपलब्ध होता है, उसमें इन विषयों से सम्बन्धित अनेक प्रसंगों का उल्लेख मिलता है। संसार की अन्य भाषाओं के लोक साहित्य की भाँति यह साहित्य भी प्राय: नीतिपरक है, जिसमें उदात्त आदर्शों की प्रतिष्ठा मिलती है। प्राचीन 'बिलीना' जैसी पद्यबद्ध कथाओं के उपरांत गद्यात्मक कथाओं का युग आता है। ये गद्यकथाएँ जहाँ एक ओर समकालीन जन जीवन का यथार्थपरक चित्रण करती है, वहाँ दूसरी ओर इनमें पौराणिक एवं कल्पनात्मक तत्वों की ऊँची उडान भी मिलती है। परियों की कहानियों के साथ-साथ जादू की कहानियाँ तथा पशु-पक्षियों से सम्बन्धित कहानियाँ भी इन्ही के अन्तर्गत आती हैं। आगे चलकर सोलहवी शताब्दी में जब मुद्रण के यंत्रों का आविष्कार हो गया, तब विविध विषयक प्राचीन साहित्य की खोज और प्रकाशन का कार्य व्यापक स्तर पर आरम्भ हुआ। इस समय भी जो कथाएं प्रचलित रही, उनमे मनोरजन के साथ-साथ नैतिक उपदेशों की प्रधानता रही। 'पीटर और फेवरोन्या की कहानी' जैसी रचनाएं इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सत्रहवी शताब्दी तक रूसी कहानी में यथार्थ तत्व का समावेश बढ़ने लगा। 'सवाग्रुत्सिन की कहानी' तथा 'फ़ोल स्कोबयेव की कहानी' जैसी रचनाएं इसी कोटि की हैं, यद्यपि इनमें भी प्राचीन साहसिक वृत्ति का समावेश मिलता है। सत्रहवी शताब्दी में 'शेम्याकिन की कचहरी की कहानी' जैसी रचनाए मिलती हैं, जिनमें प्रतीकात्मकता और व्यंग्यात्मकता है। अठारहवी शताब्दी से रूस के आधुनिक साहित्य का आविर्भाव माना जाता है। इस काल में प्रसिद्ध लेखक करमजीन हुआ, जिसकी लिखी हुई भावात्मक कहानियाँ इस युग में बहुत प्रचलित हुईं। उन्नीसवी शताब्दी मे क्रिलोफ ने अनेक कहानियाँ लिखी, जिनमें नीति शिक्षा की प्रधानता है। इन कहानियो की लोकप्रियता यहाँ तक बढ़ी कि विश्व की दर्जनों प्रमुख भाषाओं में इनका अनुवाद हुआ। अठारहवी शताब्दी के लेखक करमजीन ने भावुकतापूर्ण कहानियों की ही रचना मुख्यत: की। गरीब लिजा उसकी रचनाओं की प्रतिनिधि पात्र है। अपनी साधनहीनता में ही संतुष्ट रहने

वाली यह बालिका उच्चवर्गीय संपन्न युवक द्वारा छली जाती है, जो अभिजात वर्गीय कृत्रिम जीवन का प्रतीक है। पर रचना आदर्शपरक है। इवान क्रिलोफ ने भी छोटी कहानियाँ लिखकर उनमें पशुओं आदि को पात्रों के रूप में नियोजित करते हुए समकालीन राजनीतिक, सामाजिक और पारिवारिक जीवन के मर्मस्पर्शी चित्र सामने रखे। इनमें यथार्थपरक दृष्टिकोण के साथ समाज सुधार का दृष्टिकोण भी निहित है। इनमें मानव जीवन की मूल भावनाओं और राग-द्वेषमय वृत्तियों की सहज अभिव्यंजना हुई है। क्रिलोफ की इन कथाओं का अनुवाद अनेक यूरोपीय, एशियाई भाषाओं में हुआ। रूसी कथाकार अलेक्जेंडर सर्गेविच पुश्किन ने अपनी बाल्यावस्था में अपनी वृद्धा छाप से जो लोककथाएं सुनी थीं, वे भी साहित्य रचना के आरम्भिक युग में उसकी प्रेरणा रहीं। वह जनता के बीच मे रहा। उसने बाजारों और मेलो का भ्रमण किया। साधु संतो से गीत और भजन सुने। लोक नृत्यों में भाग लिया। किसानों के बीच रहकर उसने उनकी भाषा, मुहावरों और कहावतों का ज्ञान प्राप्त किया। पुश्किन की कहानियों की पृष्ठभूमि भी लोक जीवन है। उसने रूसी साहित्य को वास्तव में रूसी समाज और जीवन का दर्पण बना दिया।

उन्नीसवी शताब्दी में मेखायल यूरेविच लेरमेन्तोव ने यथार्थपरक कहानियाँ लिखी। उसका प्रसिद्ध उपन्यास 'हमारे समय का नायक' वस्तुतः पाच कहानियों का संग्रह है। निकोलाई वसीलेविच गोगल ने 'पागल की डायरी', 'नेवस्की प्रासपेक्ट', 'पुराने रईस', 'तसवीर' तथा 'तारस बल्वा' आदि प्रसिद्ध कहानियाँ लिखी। ये कहानियाँ समकालीन जीवन के यथार्थ चित्रों के साथ-साथ तीखी व्यंग्योक्तियों से भी भरी हुई हैं। इनके पात्रो मे समाज के विविध वर्गों का प्रतिनिधित्व हुआ है। इवान अल्येव-सेविच याकोव्ल्योव ने भी व्यंग्यात्मक कहानियो की रचना की। फ्योदोर पिरवाइलो-विच रेश्येतनिकोफ़ ने अपने कठिन संघर्षों से भरे हुए बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था के जीवन से सम्बन्धित अनुभवों और संस्मरणो के आधार पर अनेक कहानियों की रचना की। इसकी कहानियों के अधिकांश पात्र समकालीन निम्नवर्गीय समाज का प्रतिनि-धित्व करते है। अलेक्जेंडर निकोलायविच आस्त्रोव्स्की ने मुख्यतः व्यापारी वर्ग का मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन अपनी कहानियों में किया है। इवान सर्ग्येविच तुर्गेन्येव की कहानियो मे 'प्रथम प्रेम', 'स्तेप का किंग लियर', 'यूमू' तथा 'प्रत्यावर्त्तन' आदि विशेष प्रसिद्ध है। 'खिलाड़ी के रेखाचित्र' शीर्षक कृति उसकी लिखी हुई प्राचीन पचीस कहा-नियों का संग्रह है। इन कहानियों में ग्रामीण जीवन के विभिन्न पक्षो का विस्तृत वर्णन

मिलता है। मिहाइल येव ग्राफोविच सालिवकोफ श्चेद्रिन ने अपनी कहानियों में सम-कालीन जीवन और समाज के खोखलेपन की विवृति की है। उसने अभिजात वर्ग, मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग सभी का मनोवैज्ञानिक और यथार्थपरक चरित्रांकन किया है। इसमें क्रांतिकारी विचारधारा प्रभावशाली रूप में अभिव्यंजित हुई है। उन्नीसवीं बीसवीं शताब्दी के प्रमुख लेखकों में सर्वप्रमुख ल्येव निकोलायेविच ताल्सताय है। उसकी कहानियों में समकालीन जीवन के विडम्बनात्मक रूपों के साथ-साथ आदर्शपरक दृष्टिकोण की स्थापना मिलती है। अंतन पावलोविच च्येखव ने गहन जीवन दर्शन का प्रस्तुतीकरण सामान्य जीवन के सहज चित्रों के माध्यम से अपनी कहानियों में किया है। अलेक्सी मैक्सीमोविच पेश्कोफ अथवा मौक्सिम गोर्की ने अपने समय के जीवन और समाज का विश्वसनीय वातावरण की पृष्ठभूमि में प्रभावशाली अंकन किया है जिसमें जन चेतना का आवाहन हुआ है।

फ़ारसी कहानी साहित्य

फ़ारसी साहित्य के क्षेत्र में बारहवी शताब्दी के लगभग नसरुल्ला इब्नुल हमीद ने बिदयाई कहानियों का अनुवाद प्रस्तुत किया। ये कहानियाँ 'पंचतंत्र' पर आधारित है। कहा जाता है कि छठी शताब्दी में खुसरो नौशेरवां के संरक्षण में बरजुए नामक एक वैद्य ने इनका सर्वप्रथम अनुवाद पहलवी में किया था। यह अनुवाद 'करटक दमनक' शीर्षक से प्रस्तुत किया गया था। बाद में यह अनुवाद तो अवश्य विलुप्त हो गया, परन्तु उसका उल्लेख आगे होने वाले दो अनुवादों में किया गया। ये दोनों अनुवाद सीरियक तथा अरबी में हुए थे। प्रथम अनुवाद सन् ५७० ई० में बूद के द्वारा किया गया था। द्वितीय अनुवाद आठवी शताब्दी के अन्तिम भाग में अब्दुल्ला इब्न मुक़फ्फ़ा ने किया था। इसका शीर्षक 'कलीलका दम्ना' था। आगे चलकर सोलहवी शताब्दी में हुसैन वैज काशिफ़ी ने इसका अनुवाद किया। यह अनुवाद 'अनवारे सुहेली' शीर्षक से किया गया था और अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय हुआ। फ़ारसी में बारहवीं शताब्दी के लगभग तत्कालीन प्रसिद्ध लेखक निजामी ने मस्नवी शैली में सात कहानियाँ लिखकर उनका एक संग्रह प्रस्तुत किया। इसका शीर्षक 'हफ्त पैकर' है। यह कृति 'अलिफ लैला' की शैली पर लिखी गयी है। इसमें रूमानी सुल्तान बहराम की सात रानियों में से प्रत्येक एक एक कहानी सुल्तान को सुनाती है। ये कहानियाँ ईरान में बहुत अधिक लोकप्रिय हुईं। निजामी की ही कथा शैली पर आगे चलकर चौदहवीं शताब्दी में

किरमान के ख्वाजू ने कतिपय प्रेम कहानियां प्रस्तुत कीं। ये रचनाएं छंदबद्ध रूप में मिलती हैं। इनमें 'हुमै और हुमायू', 'गुल और नौरोज' तथा 'रोजतुल अनवार' शीर्षक रचनाएं विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी में इसी शैली का अनुकरण जामी ने किया। उसकी पद्यबद्ध रचना 'यूसुफ व जुलेखा' ने बहुत लोकप्रियता प्राप्त की। सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में जुलाली ने 'महमूद व अयाज' की प्रसिद्ध कथा प्रस्तुत की। 'सब तैयार' अथवा 'सात ग्रह' शीर्षक अपने संग्रह में इसके अतिरिक्त उसने 'शेबा की मलिका' तथा 'हुसन' की कहानियां भी लिखी हैं। उसी काल के लगभग फैजी की 'नल दमन' शीर्षक रचना में भारतीय पौराणिक कथा 'नल दमयन्ती' प्रस्तुत की गयी। अठारहवीं शताब्दी में लुत्फ़ इली आजुर ने मसनवी शैली में 'यूसुफ और जुलेखा' की प्रसिद्ध कथा प्रभावपूर्ण रूप में प्रस्तुत की।

फ्रांसीसी कहानी साहित्य

फ्रांसीसी साहित्य के क्षेत्र में बारहवी शताब्दी तक वीर काव्यों के रूप में ही कुछ प्रसिद्ध कथाएँ मिलती हैं। राजा आर्थर और उसके वीरों से सम्बन्धित कहानियां भी इसी युग में प्रचलित हुईं। ये कथाएं सर्वप्रथम मारी द फ्रांस नामक लेखक ने छोटी-छोटी छंद बद्ध रचनाओं के रूप में प्रस्तुत कीं। इन्हीं के आधार पर आगे चलकर कुशल कथाकार श्रतियां ने अपनी प्रसिद्ध कहानियाँ प्रस्तुत की, जिनमें 'इरेक और एनिद', 'यर्वें', 'लांसलो' तथा 'पर्सिवाल' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। समकालीन जीवन के सांस्कृतिक आदर्शों के चित्रण की दृष्टि से इनका विशिष्ट महत्व स्वीकार किया जाता है। परवर्ती कथा साहित्य पर इन रचनाओं का व्यापक प्रभाव पड़ा। इसी परम्परा मे अन्य विषयों पर लिखी गयी कहानियों में 'सिकंदर का रोमांस', 'ट्राय का रोमांस', 'इनियां किलगे' तथा 'थीवी का रोमांस' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। तेरहवीं शताब्दी से इन सब कथाओं का गद्यात्मक स्वरूप प्रदान किया जाना आरम्भ हुआ। फ्रांसीसी लोक कथाओं में उपर्युक्त विषयों से भिन्न कथाएँ अधिकांशत: जादू से सम्बन्धित है। कल्पना, भय, रोमांच, चमत्कार तथा साहसिकता आदि के तत्व इनमें बहुलता से समाविष्ट हुए हैं। 'अंडे में पिशाच का हृदय', 'जादू की उड़ान', 'बच्चे और पिशाच', 'दानव की निधि चुराने वाला किशोर', 'जल थल पर चलने वाली नाव', 'बलवान् जान और मूर्ख पिशाच' तथा 'गाने वाली हड्डियाँ' इसी कोटि की कहानियाँ हैं। 'ओकासें और निकोलेत' तथा 'गुलाब का रोमांस' परवर्ती कृतियों

में विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। व्यंग्यात्मक रचनाओं में 'रनार का उपन्यास' का नाम उल्लेखनीय है। इसमें विभिन्न पात्रों के रूप में पशुओं को चित्रित किया गया है। इसी शताब्दी में छंदबद्ध कहानियों का एक संग्रह 'फ़ाब्लियो' शीर्षक से भी प्रस्तुत किया गया। व्यंग्यात्मकता इस कृति की प्रधान विशेषता है। प्राचीन फ्रांसीसी साहित्य के क्षेत्र में 'शांसो द जेस्त' नामक ऐतिहासिक गाथाएँ भी उपलब्ध होती हैं। ये तीन खंडों में है। आगे चलकर प्राचीन यूनानी कथाओं का प्रचार हुआ। कालांतर में अंग्रेजी कथाएँ भी प्रचलित हुईं। राजा आर्थर से सम्बन्धित कहानियाँ इसी समय लिखी गयीं। साहसिक कहानियों, प्रेम कथाओं, जादूकी कहानियों तथा ईसप की नीतिपरक कहानियों का युग इसके बाद आता है। कल्पनापरक एवं साहसमूलक कहानियाँ भी लोकप्रिय हुई। चौदहवी-पन्द्रहवी शताब्दी में ओलिविए द ला मार्श ने 'ल शवालिएर वेलीबेरे' नामक मौलिक कहानी प्रस्तुत की। इसी काल में 'ल पति जहाँ द सेंत्रे' शीर्षक कहानी की लेखिका आन्तोआं द ला साल का नाम भी उल्लेखनीय है। यह कहानी दरबारी आदर्शों के बनावटीपन के विरुद्ध विद्रोह की भावना से युक्त है। 'ले केज जोए आ मारियाज' तथा 'से नूवेल नूवेल' आदि कहानियों की पुस्तकों की रचना सोलहवीं शताब्दी में हुई। इसी शताब्दी में फ्रांसोआ राबेले ने 'गारगान्तुआ और पान्ताग्रुएल' शीर्षक एक प्रसिद्ध कथा चार खडों में प्रस्तुत की। यह कृति हास्य व्यंग्य के साथ-साथ साहसिकता की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। सोलहवीं शताब्दी में लिखित राबले की कथा कृति 'गार्गन्तुआ और पांताग्रुएल' औपन्यासिक शैली में प्रस्तुत की गयी है। तत्कालीन जीवन की विविध पक्षीय विवृति की दृष्टि से इस पुस्तक का अन्यतम महत्व है। नवीन कथा शैली के प्रवर्त्तन के विचार से इस काल के अन्य लेखकों में मार्गरीत द नवार का नाम उल्लिखित किया जा सकता है। सत्रहवी शताब्दी में जां द ल फौंतेन ने बारह खंडों में कल्पना-प्रधान कहानियाँ लिखीं, जो इतनी लोकप्रिय हुईं कि अनेक यूरोपीय भाषाओं में उनके अनुवाद भी प्रस्तुत किये गये। इन कथाओं में पशु पक्षियों के रूप में भी पात्रों का चित्रण हुआ है। कल्पनात्मकता के साथ-साथ नीति तत्वों का समावेश एवं उपदेशात्मक वृत्ति भी इन कहानियों की विशेषता है। इसी शताब्दी में ला फ़ान्तेन ने बारह खंडों में 'फाब्ल' प्रकाशित किये। इनमें पशु जगत विषयक नीति-परक कहानियाँ संगृहीत हैं। अब तक यहाँ 'ईसप की कहानियों' तथा 'हितोपदेश' का अनुवाद हो चुका था। 'फाब्ल' की कथाएँ इनसे पर्याप्त साम्य रखती हैं। गी द मोपासाँ का नाम उन्नीसवीं शताब्दी के विश्वप्रसिद्ध कहानीकारों में है। 'ला बूल द

सुइफ', 'ला मेजा तरिएर', 'इस्तोआर दीन फिए द फेर्य' तथा 'मिस हारिए' मोपासाँ की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में उल्लिखित की जाती हैं। इसी शताब्दी के कहानीकारों में आल्फ़ान्ज़ दोदे का नाम भी उल्लेखनीय है, जिसकी कहानियों का संग्रह 'लेत्र द मो मूले' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। अठारहवी शताब्दी में फ्रांसीसी कहानी साहित्य के विकास में सबसे महत्वपूर्ण योगदान वाल्टेयर का है। उसकी कहानियों में क्रान्तिकारी विचारों के साथ-साथ मानवतावादी विचारधारा का समावेश भी मिलता है। उन्नीसवी शताब्दी में लामार्तीन ने 'स्पेन और इटली की कहानियाँ' लिखी। हास्य व्यंग्य के तत्व इनमें विशेष रूप से समाविष्ट मिलते है। इसी शताब्दी मे गुस्ताव फ्लाबेयर ने अपने समकालीन जीवन के यथार्थात्मक चित्रों से युक्त कहानियाँ लिखी। आल्फ़ांज दोदे तथा गी द मोपासाँ इस शताब्दी के अन्य महान् कहानीकार है, जिनकी रचनाएँ उत्कृष्टता का उदाहरण है। सन् १८६९ में प्रकाशित दोदे का कहानी संग्रह 'मेरी मिल से पत्र' लेखक के परिपक्व दृष्टिकोण का सूचक है। सन् १८८९ में प्रकाशित मोपासाँ का कहानी संग्रह 'फ़ौर कौम ला मौर' लेखक की कहानी क्षेत्रीय असाधारण उपलब्धियों का द्योतन करता है। बीसवी शताब्दी में व्यक्ति दर्शन की अभिव्यजना करने वाले विशिष्ट कहानीकारों में आंद्रे जीद का नाम उल्लेखनीय है। इसी शताब्दी के फ्रांसीसी कथाकारों में अल्बर्ट कामू का नाम विशेष प्रसिद्ध है। कामू की कहानियो का एक संग्रह 'लेक्ज़ील ए ल रोयूम' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है।

अंग्रेजी कहानी साहित्य

प्राचीन अंग्रेजी साहित्य के क्षेत्र में चौदहवी शताब्दी से कहानियों का प्रचार हुआ, यद्यपि इसके पूर्व भी वहाँ विविध कथा संकेत उपलब्ध होते है। सन् १३०३ मे राबर्ट मानिंग ने फ्रांसीसी लोक कथाओं का एक संग्रह प्रस्तुत किया था। लगभग इसी युग में अंग्रेजी में 'फेबुल्स' का भी प्रचार हुआ। इन पर भारतीय 'पंचतंत्र' की कथाओ का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। 'दि वीपिग विच', 'दि फाक्स ऐंड दि वुल्फ़', 'स्प्रिग टाइम' तथा 'दि सांग आफ दि हजबैंडमन' आदि इसी कोटि की रचनाएँ है। इन कहानियों के अतिरिक्त इस काल मे ईसाई धर्म से सम्बन्धित पौराणिक कथाओं का भी प्रचलन था। इनका एक संग्रह सन् १३२० मे 'कर्सर मुंडी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। एडगर एलन पो की कहानियों में रोमांटिक वृत्ति के साथ बौद्धिकता का सामंजस्य मिलता है। नैथेनियल हाथार्न ने नैतिकता की आध्यात्मिक व्याख्या अपनी

कहानियों में की है। मानवीय संवेदनाओं की व्यावहारिक अभिव्यंजना के विविध रूपों को पाप और पुण्य के सन्दर्भ में उसने प्रभावशाली रूप में विश्लेषित किया है। डीन हावेल्स ने अपनी कहानियों में यथार्थपरक दृष्टिकोण अवश्य प्रस्तुत किया है, परन्तु उसका आधार आदर्शवाद ही है। इस दृष्टि से उसकी विचारधारा टाल्सटाय तथा प्रेमचंद आदि से पर्याप्त साम्य रखती है। अरनेस्ट हेमिग्वे ने 'दि फ़िफ्थ काल्म ऐंड दि फ़र्स्ट फ़ोर्टी फ़ाइव स्टोरीज़' मे युद्ध और शांति की समस्याओं पर विचार किया है। इस कृति का प्रकाशन सन् १६३८ मे हुआ था। यथार्थवाद के साथ ही रोमांस-वाद का पुट भी हेमिग्वे की कहानियो की विशेषता है। अग्रेजी कहानीकारो मे सामरसेट माम, एच० जी० वेल्स, वाशिगटन, इरविग, मार्क ट्वेन, पर्ल एस० बक, विलियम फाकनर तथा जान स्टाइन बेक आदि के नाम भी उल्लेखनीय है, जिन्होने विविध विषयों पर आधारित कहानियों की रचना एक बड़ी सख्या में की।

जर्मन कहानी साहित्य

जर्मन साहित्य के अन्तर्गत सत्रहवी शताब्दी में ग्रिमेल्स हाडसेन की कहानियों का व्यापक रूप से प्रचार हुआ। अपने जीवन की अनेक विडम्बनाओं और संघर्षपूर्ण परिस्थितियो का प्रस्तुतीकरण उसने संस्मरणात्मक कहानियों के रूप मे किया। ये कहानियाँ समकालीन जीवन का बहुपक्षी चित्रण करती है। आगे चलकर सन् १८१२ मे जर्मन भाषा मे एक प्रसिद्ध कहानी सग्रह प्रकाशित हुआ, जिसका शीर्षक 'किन्डर डन्ड हाउस मारचेन' है। इस सग्रह मे मुख्यत: घरेलू जीवन की कहानियाँ ही संगृहीत हैं। इसके लेखक जेकब ग्रिम तथा विलहेम ग्रिम थे। ये कहानियाँ बाल रुचि का विशेष रूप से तुष्टीकरण होने के कारण समकालीन बाल समाज मे विशेष रूप से लोकप्रिय हुई। लगभग इसी काल मे आखिन फ़ान आर्निम तथा क्लेमेन्स ब्रेन्टानो ने 'बालकों का जादू बिगुल' शीर्षक एक संग्रह प्रकाशित किया था, जिसमें जादू की रोचक कथाएँ पद्यबद्ध रूप में प्रस्तुत की गयी थी। सन् १८५३ में पाल हीसे की कहानियों का संग्रह 'लारबियाता' शीर्षक से प्रकाशित हुआ, जो लोकप्रियता की दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ह्यूगो फ़ान हाफ़मान्स्थल ने आधुनिक प्रभाववादी विचारधारा से युक्त कहानियो की रचना की। स्टीफ़ेन ज्विग की कहानियों में भाव, कल्पना, कला और मनोवैज्ञानिकता का सम्मिलित रूप

उपलब्ध होता है। बीसवीं शताब्दी में ही टामस मान ने भी अनेक कहानियाँ लिखीं, जो उसके समकालीन जीवन के विविध पक्षों का मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत करती हैं।

डेनी कहानी साहित्य

डेनी साहित्य के क्षेत्र में उन्नीसवी शताब्दी में थामार्सन क्रिस्टाइन गिलेन बोर्ग लिखित 'रोजमर्रा की कहानियाँ' शीर्षक कृति का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसकी रचना औपन्यासिक शैली में की गयी है। इसी शताब्दी में डेनी भाषा का सर्वाधिक प्रसिद्ध कहानीकार हान्स क्रिस्टिमन ऐन्डर्सन भी हुआ, जिसकी लिखी हुई 'परियों की कहानियाँ' विश्वविख्यात है। परम्पराविरोधी तथा यथार्थपरक विषयों पर कथा रचना करनेवालो मे इसी शताब्दी के लेखक माइर आरों गोल्डश्मिट का नाम भी उल्लिखित किया जा सकता है। 'चाचा के घर की कहानियाँ' जैसी उसकी कथा कृतियाँ यथार्थ चित्रण की दृष्टि से विशेष महत्व रखती हैं। जोहान क्रिस्टियन ब्रास्बोल इस काल का एक लोकप्रिय लेखक है, जिसकी कृतियों में 'गढो की कहानियाँ' प्रमुख हैं। यह रचना ऐतिहासिक विषय वस्तु पर आधारित है। क्रिस्टियन लुडविग एडवर्ड लेम्बके ने हास्य-व्यंग्य पूर्ण कहानियों की ही रचना विशेष रूप से की। 'बेर्तेल और गधा' इस दृष्टि से उसकी एक प्रतिनिधि कृति कही जा सकती है। विल्हेल्म टोप्सो ने यथार्थपरक परन्तु व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण-प्रधान कहानियों की रचना की। जाकब्सन ने कलात्मक परिपक्वता से युक्त कहानियाँ लिखी। सोफस शैन्डोर्फ़ ने यथार्थवादी दृष्टिकोण-प्रधान कहानियों की रचना की। सोफ़स बादित्स ने उत्कृष्ट कहानियों की रचना इसी काल में की। हरमान जोखिम बांग ने दैनिक जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित सरल विषय वस्तु पर क्रांतिकारी दृष्टिकोण-प्रधान कहानियाँ लिखीं। उन्नीसवीं-बीसवी शताब्दी मे कार्ल ईवाल्ड ने 'परियों की कहानियाँ' लिखी। कार्ल लार्सेन ने वैवाहिक जीवन सम्बन्धी कहानियो की रचना की। गुस्ताव जोहान्स वीड ने हास्य-व्यंग्य-प्रधान कहानियाँ लिखी। इस काल के प्रतीकवादी दृष्टिकोण-प्रधान कहानी लेखकों में जोहान्स जोर्गन्सन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'ग्रीष्म' तथा 'जीवन तरु' आदि उसकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। ये फ्रेंच प्रतीक शैली में लिखी गयी हैं। जेहान्स वी० जेन्सेन इस काल का एक महान् कथाकार है, जिसे नोबेल पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया गया था। उसकी लिखी गयी हिमरलैंड की

'नई कहानियाँ' विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इस युग के प्रगतिशील विचारधारा-प्रधान कहानी लेखकों में हिल्मर वुल्फ़ का नाम उल्लिखित किया जा सकता है। उसकी लिखी हुई कहानी 'तुम भूले नही जा सकते' इस दृष्टि से एक प्रतिनिधि रचना है। इसमें यथार्थ के चित्रण के साथ व्यंग्यात्मकता की भावना भी निहित है।

अन्य विदेशी भाषाओं का कहानी साहित्य

अन्य विदेशी भाषाओं में प्राचीन ग्रीक साहित्य में 'इलियड' तथा 'आडेसी' में अनेक लोक कथाएँ वर्णित हैं। होमर के द्वारा लिखित ये दोनों महान् ग्रन्थ अद्भुत वर्णनों से युक्त हैं। ईसा से एक सहस्र वर्ष पूर्व होमर ने लोक प्रचलित असंख्य गाथाओं को सूत्रबद्ध करके इन रचनाओं में प्रस्तुत किया है। प्राचीन चीनी साहित्य में कहानी के अस्तित्व के संकेत तीसरी शताब्दी ई० पू० तक मिलते हैं। इस काल में चुआंग चाऊ ने अनेक कहानियाँ प्रस्तुत की जिनका आधार लोकपरक शैली है। ये कहानियाँ नीति प्रधान लोक कथाओं से साम्य रखती हैं। चुआंग चाऊ का एक ग्रन्थ 'चुआंग टूज' शीर्षक से प्रसिद्ध है। कल्पना, हास्य, व्यंग्य आदि का कलात्मक सम्मिश्रण इस ग्रन्थ की विशेषता है। तुर्की साहित्य के क्षेत्र मे प्राचीन कहानी का अस्तित्व ग्यारहवीं शताब्दी में मिलता है। इस काल के लगभग तत्कालीन साहित्यिक भाषा, उइगुर में लिखा हुआ एक ग्रन्थ 'बहतियारनामा' अथवा 'बख्तियार चरित' शीर्षक से उपलब्ध होता है। इस कृति में दस वजीरों की कहानियाँ संकलित की गयी हैं। फ़िनलैंड के साहित्य में बारहवी शताब्दी से लेकर सोलहवी शताब्दी तक प्राय: लोक-कथाएँ ही मिलती हैं। इनकी संख्या तीस सहस्र तक अनुमानित की जाती है। ये लोक-कथाएँ उन्नीसवी शताब्दी में संकलित होकर प्रकाश में आयीं। आधुनिक रूप में फिनलैंड के साहित्य में कहानी का जन्म उन्नीसवी शताब्दी में ही हुआ। जाक्रिस तोपेलियस नामक महान् लेखक इस युग में हुआ। उसने अनेक कहानियों की रचना की, जिनमें 'फ़िनलैंड की डचेज' तथा 'सैनिक सर्जन की कहानियाँ' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में जुहानी आहो ने सामाजिक जीवन के विविध पक्षों को आधार बनाकर सुधारवादी दृष्टिकोण-प्रधान कहानियाँ लिखीं। इसी काल में आदर्शवादी दृष्टिकोण प्रधान कहानी लेखक के रूप में अविद नर्नेफिल्ट का उल्लेख किया जा सकता है। 'हेड़विला के लिए संघर्ष' तथा 'झकोड़े' आदि कहानी संग्रहों का

लेखक जोहानिज लिनान्कोस्की भी इस युग का प्रतिनिधि कथाकार है। बीसवीं शताब्दी में आइनो कालास नामक लेखिका ने भी सामाजिक विषयों पर कलात्मक कहानियाँ प्रस्तुत कीं। इटैलियन साहित्य के क्षेत्र में चौदहवी शताब्दी में बोकोशियो की लिखी हुई 'डीकामेरान' की कहानियों का अत्यधिक प्रचार हुआ। इनका संसार की अन्य अनेक भाषाओं में भी अनुवाद हुआ। पोल साहित्य के क्षेत्र मे सत्रहवी अठारहवी शताब्दी में कहानी का आधुनिक रूप में आविर्भाव हुआ। इस युग में स्तानिस्ला त्रेम्बकी, तोमास काज़ेतन वेगिएर्स्की, फ्रांसिजेक कार्पिन्स्की तथा फ्रांसिजेक दियोनिज क्नियाज्निन आदि कथाकारों का उल्लेख मिलता है। स्वीड साहित्य के क्षेत्र में अठारहवी शताब्दी से आधुनिक कहानी का स्वरूप-विकास होता है। इस काल में एने चारलोती एडग्रेन तथा विक्टोरिया बेनेडिक्टसन ने यथार्थवादी दृष्टिकोण को आधार बनाकर कहानी रचना की। उन्नीसवी शताब्दी में स्वेन लिदमान ने व्यक्तिवाद की विरोध भावना से युक्त कहानियाँ लिखीं। नार्वे के प्राचीन साहित्य में पौराणिक गाथाओं तथा लोक कथाओं का व्यापक भंडार मिलता है। पहाड़, समुद्र, परियों तथा राक्षसों आदि से सम्बन्धित असंख्य कहानियाँ उस समय लोकप्रिय थी। ये कहानियाँ तत्कालीन जन विश्वास की परिचायक है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के रूप में इनका प्रचार उन्नीसवी अर्ध शताब्दी तक स्फुट और मौखिक रूपों में मिलता है। सन् १८४० के लगभग इन्हें संग्रहबद्ध किया गया। आगे चलकर ये कथाएँ एरिक बेरेन्सकिओल्ड तथा थ्योडोर किटलसन के द्वारा चित्रांकित भी की गयी। फिर इनके अनुवाद अंग्रेजी तथा फ्रेंच भाषाओ मे भी प्रस्तुत किये गये। उन्नीसवी बीसवी शताब्दी में ब्योन्स्त्येर्ने ब्योर्न्सन नाम का प्रसिद्ध साहित्यकार नार्वे में हुआ। उसने मुख्यतः समस्यापरक कहानियाँ लिखी। यथार्थपरक दृष्टिकोण प्रधान उसकी कहानियाँ राष्ट्रीयता की भावना से भी युक्त है। लगभग इसी काल में योनास ली ने परियो की कहानियाँ लिखी। चेक साहित्य के क्षेत्र में आधुनिक कहानियों का आविर्भाव उन्नीसवीं शताब्दी मे हुआ। बोज़ेना निम्कोवा का चेक ग्राम्य जीवन पर आधारित उपन्यास 'बाबिच्का' समकालीन लोकप्रिय जन कथाओ पर ही आधारित है। इसी शताब्दी में जान नेरुदा ने सर्वप्रथम चेक जीवन का नागरिक पृष्ठभूमि पर चित्रण किया है। चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग मे प्राचीन मुहल्लों का तथ्यपरक, विश्वसनीय, गहन और प्रभावपूर्ण चित्रांकन उसकी कहानियों की विशेषता है। उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम तथा बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में स्वातोप्लुक चेक ने चेकों और

स्लावों के जीवन के विविध पक्षों पर अनेक व्यंग्यात्मक कहानियों की रचना की। उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में ही इस्नाल हर्मान ने अपनी कहानियों में चेक नागरिक जीवन का विस्तृत क्षेत्रीय अंकन किया। इनमें से अधिकांश का विषय चेक राजधानी प्राग का जीवन है। कारेल चापक ने स्केच नुमा व्यग्यात्मक कहानियाँ लिखी हैं। डच साहित्य के क्षेत्र में आधुनिक युगीन कहानीकार लुइस काउपेरस का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसकी कहानियों में मुख्यत: काल्पनिक वृत्तांत ही अधिक मिलते है। आर्थरवान शेन्डेल भी डच साहित्य के अन्तर्गत बीसवी शताब्दी का एक महान् कथाकार है। इसकी कहानियाँ कलात्मक उत्कृष्टता का अन्यतम उदाहरण है। आद्रियन वान डेर वीन का नाम आधुनिक लेखकों में जागरूकता की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। इसकी कहानियों के प्रधान गुण आलंकारिकता, भावनात्मकता तथा कलात्मकता है। इसकी कहानियों में यथार्थ परक दृष्टिकोण के स्थान पर कल्पनामय स्वप्निलता मिलती है। प्राचीन मिस्री साहित्य के 'अलिफ़ लैला' की भाँति ही 'नौविप्लूप माझी' शीर्षक एक कहानी का उल्लेख मिलता है। इसमें भी एक से अनेक कहानियाँ उपजती है। इनमें 'सिनुहे की कहानी' विशेष प्रसिद्ध है। इसी के साथ 'वाचाल किसान' शीर्षक एक कहानी का भी उल्लेख किया जा सकता है। ये कहानियाँ अनेक शताब्दियों तक मिस्र मे प्रचलित रही। 'अभागे राजकुमार की कहानी', 'दो भाइयो की कहानी' तथा 'वेनामुन की यात्रा' आदि कहानियाँ भी लोकप्रिय रही। आएनहोतेय द्वितीय से सम्बन्धित कुछ कहानियाँ भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्राचीन युगास्लाव साहित्य मे मुख्यत: संतो के जीवन से सम्बन्धित कहानियों का ही उल्लेख सर्वप्रथम मिलता है। बर्लाम, जोज़ाफत तथा सिकन्दर से सम्बन्धित कुछ कहानियाँ भी लिखी गयी। आगे चलकर उन्नीसवी शताब्दी मे फ्रांक लेव्स्तिक नामक लेखक हुआ जिसने समकालीन जन जीवन से सम्बन्धित कहानियाँ लिखी। उसकी कुछ रचनाएँ बालोपयोगी भी है। उन्नीसवी-बीसवी शताब्दी में मिलोवान ग्लीसिच ने यथार्थपरक कहानियाँ लिखी। स्पेनी साहित्य के क्षेत्र में प्राचीन लोक साहित्य में अनेक पद्यबद्ध कथाएँ मिलती है। मध्य युग में नीतिपरक कथाओं का आविर्भाव हुआ। इनमें नीति तत्वों के साथ साथ उपदेशात्मकता की भी प्रधानता मिलती है। भारतीय 'पंचतंत्र' की कथाओं के अनुवाद से प्रभावित अनेक रचनाएँ भी प्रस्तुत की गयी। इनका एक संग्रह 'एल कोन्दे लुकानोर' शीर्षक से चौदहवी शताब्दी में प्रकाशित हुआ था। चौदहवी-पन्द्रहवी शताब्दी में क्लिमेन्त सान्चेज ने इसी प्रकार की नीति-

प्रधान कहानियों का एक और संग्रह 'एल लिब्रो द इयेम्पलोज' शीर्षक से प्रकाशित किया। 'अलिफ़ लैला' के अनुकरण पर 'एल लिब्रो देल का बालेरो जिफ़ार' शीर्षक कृति भी प्रस्तुत की गयी। 'ला एस्तोरिया द योसाफात ए द बरलाम' शीर्षक कृति बौद्ध कथाओं से प्रभावित है। युवान रुइज़ तथा आरसीप्रेस्त द हिता द्वारा लिखित 'एल लिब्रो द बुएन आयोर' शीर्षक कृति में भी अनेक कहानियाँ संगृहीत हैं। वर्णन शैली तथा चरित्र चित्रण इन कहानियों की प्रमुख विशेषता है। सत्रहवीं शताब्दी में आंतेनियो द एस्लाबा, साल्लास बारबादिलो, कास्तिलो सोलोर्ज़ानो तथा गोन्ज़ालो आदि ने बोकेशियो की 'डेकामेरान' से प्रभावित कहानियों की रचना की। उन्नीसवीं शताब्दी में दोना एमीलिया ने कलात्मक प्रौढ़ता से युक्त कहानियाँ लिखी। इसी परम्परा में अर्मान्दो पालसिया बाल्देज़ का नाम भी उल्लेखनीय है, जिसकी कहानियाँ प्रभावात्मकता की दृष्टि से अन्यतम हैं। बीसवी शताब्दी मे मानुएल गाल्वेज़ ने समकालीन सामाजिक जीवन का सर्वतोमुखी चित्रण किया है। स्पेनी साहित्य में श्रेष्ठतम कहानीकार के रूप में उसका उल्लेख किया जाता है। 'सोलियेतर', 'सिर कटी मुर्गी' तथा 'किराए के हाथ' आदि उसकी अत्यन्त प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

इस प्रकार से प्राचीन भारतीय कथा साहित्य की भाँति ही विश्व की अन्य भाषाओं में भी कथा साहित्य की परम्पराओं का प्रसार सुदूर अतीत युगों तक रहा है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, विश्व के प्राचीनतम वाङ्मय में भी कहानी के अस्तित्व के संकेत मिलते हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विदेशी भाषाओं मे कहानी का आविर्भाव पृथक्-पृथक् युगों में हुआ। इब्रानी अथवा हिब्रू भाषा में कहानी का आरम्भ प्राय: ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व से हुआ। जापानी साहित्य में लगभग ७०० ई० पू० से कहानी के अस्तित्व के संकेत मिलते हैं। अरबी में आठवीं शताब्दी से कहानी का आरम्भ हुआ। रूसी लोक कथाओं का प्रसार भी लगभग एक सहस्र वर्षों तक मिलता है। फ़ारसी में बारहवी शताब्दी से कथा साहित्य का प्रचार हुआ। प्राचीन फ्रांसीसी साहित्य में बारहवीं शताब्दी से वीर गाथाओं का उल्लेख मिलता है। अंग्रेजी साहित्य मे चौदहवीं शताब्दी से कहानियों का प्रचार हुआ। जर्मन साहित्य में सत्रहवीं शताब्दी से कहानी ने लोकप्रियता प्राप्त की। डेनी साहित्य में उन्नीसवीं शताब्दी से कहानी का विकास मिलता है। अन्य विदेशी भाषाओं में ग्रीक, चीनी, तुर्की, फ़िनलैंडियन, इटैलियन, पोल, स्वीड, नार्वेजियन, चेक, डच, मिस्री, युगास्लाव तथा स्पेनी आदि में

विविध युगों से कहानी का आरम्भ और विकास हुआ। इस विकास काल में अनेक भाषाओं में एक दूसरी से विविध कथा ग्रन्थ अनूदित रूप में भी प्रस्तुत किये गये। उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि रहस्य, रोमांच और घटना प्रधान कहानी से लेकर चरित्र, मनोविज्ञान और यथार्थपरक कहानी के इतिहास का अन्तराल उसके वर्तमान स्वरूप की पृष्ठभूमि में कार्यशील है।

अध्याय २

हिन्दी कहानी का स्वरूपात्मक विकास

आधुनिक युग मे हिन्दी कहानी का जो स्वरूप उपलब्ध होता है, उसकी पृष्ठ-भूमि में एक प्रशस्त कथा परम्परा है। स्थूल रूप से कहानी का सूत्र रूप वैदिक साहित्य में मिलता है। उस काल से लेकर वर्तमान युग तक अनेक परम्पराओ, प्रभावो और प्रवृत्तियों से युक्त होकर कहानी के क्षेत्र में व्यापक गतिशीलता लक्षित होती है। वैदिक, औपनिषदिक तथा पौराणिक कथा साहित्य से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण करके परवर्ती काल के अनेक लेखकों ने कथात्मक रचनाएं प्रस्तुत की। हिन्दी साहित्य के इतिहास के आदि काल मे अनेक लेखकों द्वारा विभिन्न वीर गाथाएं प्रस्तुत की गयी। अनेक ऐतिहासिक विषयो पर लिखी गयी इन वीर गाथाओं में से कुछ का प्रचार वर्तमान काल तक है। मध्य युग में भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा के अन्तर्गत जो कथाएं उपलब्ध होती हैं, वे भी परवर्ती साहित्य मे विविध कथात्मक रूपों मे प्रस्तुत की गयी। इनमें पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक तथा काल्पनिक कथाए प्रभाव-शाली रूप मे मिलती है। इसके उपरान्त आदि युगीन वीर गाथाओ के समान ही रीति काल मे भी विविध साहित्यकारों ने अनेक प्रसिद्ध कथाएं प्रस्तुत की। रीति काल के अनेक हिन्दी कवियों ने पौराणिक और ऐतिहासिक चरित्रों को आधार बना-कर अनेक वीर रस पूर्ण कथाएं प्रस्तुत की। आविर्भाव युगीन हिन्दीगद्य के कथा-साहित्य के अन्तर्गत जो कृतिया आगे चलकर उल्लिखित की गयी हैं, उनसे पूर्व व्रज भाषा गद्य में भी कुछ कथाकृतिया उपलब्ध होती है। व्रज भाषा गद्य मे विभिन्न साम्प्रदायिक कवियों के जीवन वृत्तान्त के साथ ही साथ कतिपय पौराणिक कथा प्रसंग भी प्रस्तुत किये गये हैं। खड़ी बोली गद्य के आरम्भिक रचनाकारों में 'उदयमान चरित' अथवा 'रानी केतकी की कहानी' के लेखक मुशी इंशा अल्ला खां का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मुंशी सदासुख लाल, श्री लल्लू लाल, पं० सदल मिश्र, राजा शिव-प्रसाद 'सितारेहिन्द' तथा पं० गौरीदत्त आदि ने भी हिन्दी कथा साहित्य के इस

आरम्भिक युग में विशेष महत्त्व का कार्य किया। आधुनिक रूप में हिन्दी कहानी का आरम्भ वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश से हुआ। हिन्दी कहानी के इस प्रथम विकास काल के अन्तर्गत मुख्यतः भारतेन्दु युगीन कहानीकारों का उल्लेख किया गया है। इस काल में अधिकांश लेखकों ने सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक और जासूसी विषय वस्तु से सम्बन्धित काल्पनिक कहानियाँ प्रस्तुत कीं। द्वितीय विकास काल में प्रेमचन्द युग के अन्तर्गत आधुनिक हिन्दी कहानी ने अपने विकास की प्रथम परिपक्व अवस्था का द्योतन किया। इस युग में पूर्ववर्ती कथा प्रवृत्तियों के साथ साथ कहानी का नवीन विषयवस्तु के आधार पर सम्यक् विकास हुआ। इस युग के सर्वप्रमुख हिन्दी कहानीकार प्रेमचन्द हैं, जिनका परवर्ती हिन्दी कहानी पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। उत्तर प्रेमचन्द काल में राजनीतिक चेतना के नवीन जागरण के फलस्वरूप भी कहानी ने अपने महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वाह किया। स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानी अथवा चतुर्थ विकास कालीन हिन्दी कहानी का स्वरूप उसके विषय विस्तार के साथ साथ तत्वगत अभिनवता का भी द्योतक है। यहां हिन्दी कहानी के स्वरूपात्मक विकास की यह संक्षिप्त रूपरेखा क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत की जा रही है।

हिन्दी कहानी की पृष्ठभूमि और प्रेरणा स्रोत

आधुनिक युग के पूर्ववर्ती कथा साहित्य का उल्लेख हिन्दी कहानी की पृष्ठभूमि और प्रेरणा स्रोत के रूप में किया जा सकता है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, प्राचीन भारतीय कथा साहित्य का प्रसार वैदिक युग तक है, जिसका काल लगभग ढाई सहस्र वर्ष ई० पू० अनुमानित किया जाता है। ऋग्वेद आदि ग्रन्थों में अनेक कथाएँ सूत्र रूप में उपलब्ध होती हैं। ये कथाएँ मूलतः कथोपकथनात्मक हैं। इसीलिए इन्हें संवाद सूक्त भी कहा जाता है। भारतीय कथा साहित्य का मूल उद्गमस्रोत ये ही कथा सूत्र हैं। यहाँ पर इस तथ्य का उल्लेख करना भी असंगत न होगा कि सूत्रात्मक रूप में ही मूलतः उपलब्ध वैदिक कथाएँ परवर्ती युगों मे विस्तृत आख्यानों के रूप में प्रशस्त मिलती हैं। परवर्ती काल में प्रचलित अनेक आख्यान वैदिक ग्रन्थों में बीज रूप में उपलब्ध होते हैं। अपाला, हरिश्चन्द्र तथा उर्वशी-पुरूरवा आदि अनेक कथाएँ इसी कोटि की हैं।

उपनिषदों में भी अनेक धार्मिक कथाओं के संकेत मिलते हैं। इन कथाओं की

प्रमुख उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इनमें उपदेशात्मकता अधिक मिलती है। ये कथाएँ बहुत मनोरंजक हैं तथा विभिन्न प्रश्नों और शंकाओं के उत्तरों और समाधानों के रूप में उपनिषद् ग्रन्थों में यत्र-तत्र समाविष्ट हुई हैं। इनमें से 'केनोपनिषद्' में उपलब्ध 'देवताओं की शक्ति परीक्षा', 'कठोपनिषद्' में उपलब्ध 'नचिकेता का साहस', 'छान्दोग्य उपनिषद्' में उपलब्ध 'सत्यकाम और गो सेवा' तथा 'याज्ञवल्क्य और गार्गी', 'बृहदारण्यक' मे उपलब्ध 'श्वेतकेतु और उद्दालक', 'तैत्तिरीय संहिता' में उपलब्ध 'अश्विनी कुमार और गुरु दध्यङ', 'प्रश्नोपनिषद्' में उपलब्ध 'सुकेशा' तथा 'मुण्डकोपनिषद्' में उपलब्ध 'महाशाल शौनक और अंगिरा' आदि कथाओं के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[१] इनके अतिरिक्त वैदिक कथाओं में अपाला की कथा 'ऋग्वेद' तथा 'बृहद्देवता' आदि में उपलब्ध होती है। 'सर्वानुक्रमणी', 'सायणभाष्य' तथा 'नीतिमंजरी' में भी यह कथा मिलती है। नचिकेता से सम्बन्धित कथा के मूल स्रोत 'तैत्तिरीय संहिता' तथा 'कठोपनिषद्' आदि ग्रन्थ हैं। च्यवन ऋषि तथा सुकन्या की कथा 'ऋग्वेद', 'निरुक्त', 'शतपथ ब्राह्मण', 'नीतिमंजरी' तथा 'श्रीमद्भागवत' में उपलब्ध होती है। उर्वशी और पुरूरवा की कथा 'ऋग्वेद', 'शतपथ ब्राह्मण', 'बृहद्देवता', 'वेदार्थदीपिका', 'नीतिमंजरी', 'विष्णु पुराण', 'मत्स्य पुराण' तथा 'श्रीमद्भागवत' में मिलती है। दधीचि मुनि की प्रसिद्ध कथा भी 'ऋग्वेद', 'शतपथ ब्राह्मण', 'बृहदारण्यक', 'बृहद्देवता', 'नीतिमंजरी' तथा 'श्रीमद्भागवत्' मे उपलब्ध होती है। पौराणिक साहित्य में अनेक वैदिक कथाओं का विकास हुआ। 'रामायण' तथा 'महाभारत' आदि के रूप में इन्ही के बृहत् संकलन भी तैयार हुए। इन ग्रन्थों मे जो कथाएँ आयी हैं, उनमें से बहुत सी अपने प्रारम्भिक रूप मे बहुत पहले से उपलब्ध थीं, परन्तु इस काल में उन्हें विशेष विस्तार प्रदान किया गया। ये कथाएँ सामान्यतः दो श्रेणियो की है, जिन्हे क्रमशः मूल कथाओ तथा प्रासंगिक कथाओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है। पुराणों का रचना काल पांच सौ वर्ष ई० पू० स्वीकार किया जाता है। पुराण ग्रन्थों में मुख्यतः प्राचीन धार्मिक आख्यानो का संकलन होने के कारण ही इन्हे 'पुराणाख्यानम्' अर्थात् प्राचीन आख्यान संज्ञा दी गयी है। पशु पक्षियों आदि की कथाओं के आधार पर परवर्ती काल में जो नीति परक साहित्य लिखा

१. डा० प्रतापनारायण टंडन, 'हिन्दी उपन्यास में कथाशिल्प का विकास', पृ० ११४।

गया, उसमें 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'जातक' आदि का उल्लेख भी आवश्यक है। यह साहित्य मूलतः लोककथात्मक है। इसके अनेक अंशों का अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हुआ। देशी-विदेशी विद्वानों ने इस साहित्य की महत्ता स्वीकार की। यही कारण है कि अपने रचना काल से लेकर आज तक लगभग ढाई हजार वर्षों से यह साहित्य आधुनिक संसार की प्रायः सभी भाषाओं में किसी न किसी रूप में अवश्य लोकप्रिय है।

अपभ्रंशकालीन वीर गाथाएँ

प्राचीन भारतीय कथा साहित्य के अन्तर्गत अपभ्रंशकालीन वीर गाथाओं का उल्लेख भी आवश्यक है। अपभ्रंश साहित्य के अस्तित्व के संकेत प्रायः दूसरी शताब्दी से उपलब्ध होते हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि दूसरी शताब्दी से एक विकृत भाषा के रूप में अपभ्रंश का आरम्भ हुआ था तथा छठी शताब्दी तक उसकी प्रतिष्ठा साहित्यिक भाषा के रूप में हो चुकी थी। यह भाषा पहले लोक भाषा, फिर शिष्ट जन की भाषा तथा अन्ततः साहित्यिक भाषा बनी। इस विकास काल में इसके अनेक रूप उपलब्ध होते हैं। इसके अंतर्गत चतुर्मुख, द्रोण, स्वयंभू, पुष्पदन्त तथा योगीन्द्र आदि के ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। उत्तरी भारत के विविध धार्मिक सम्प्रदायों के अनुगामियों ने अपभ्रंश में अनेक प्रकार के काव्य एवं कथा ग्रन्थों की रचना की। इसी के अन्तर्गत चौरासी सिद्धों का साहित्य भी परिगणित किया जाता है। अपभ्रंश कवियो द्वारा लिखित कथात्मक काव्यों में स्वयम्भू द्वारा लिखित 'पद्मचरित', पुष्पदन्त द्वारा लिखित 'नागकुमार चरित्र', धवल द्वारा लिखित 'हरिवंश पुराण', कण्याभर द्वारा लिखित 'करकंडु चरित्र', धनपाल द्वारा लिखित 'भविष्यदत्त कथा', धाहिल द्वारा लिखित 'पद्मश्रीचरित', वरदत्त द्वारा रचित 'वैरिसामि-चरित्र', सोमप्रभ द्वारा लिखित 'कुमारपाल प्रतिबोध', हरिभद्र सूरि द्वारा लिखित 'णेमिणाह चरिउ', अब्दुर्रहमान द्वारा रचित 'संदेश रासक', श्रीचन्द्र मुनि द्वारा लिखित 'कथाकोश' तथा पद्मकीर्ति द्वारा लिखित 'पार्श्वपुराण' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[२] आगे चलकर विद्यापति आदि भक्त कवि भी इसी परम्परा

२. डा० प्रतापनारायण टंडन, 'हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास', प्रथम खंड, पद्य भाग, पृ० ४७।

में हुए। वीरगाथाओं में दलपत विजय द्वारा लिखित 'खुमान रासो', नरपति नाल्ह द्वारा लिखित 'खुमान रासो' तथा चन्द बरदाई द्वारा लिखित 'पृथ्वीराज रासो', भट्ट केदार द्वारा लिखित 'जयचंद प्रकाश', मधुकर द्वारा लिखित 'जयमयंक जस चंद्रिका', जगनिक द्वारा लिखित 'आल्हा खंड' तथा श्रीधर द्वारा लिखित 'रणमल्लछन्द' आदि मुख्य हैं। इनमें से अनेक आख्यानों को आधार बनाकर परवर्ती युगों में अनेक कथा ग्रन्थ प्रस्तुत किये गये।

मध्ययुगीन प्रेमाख्यान

पन्द्रहवीं शताब्दी से हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सूफी प्रेमाख्यानों की परम्परा का आरम्भ हुआ। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम मुल्ला दाऊद ने अपनी 'चंदावत' कृति में लोक अथवा लोरिक तथा चंदा के प्रणय पर आधारित एक कथा प्रस्तुत की। फिर कुतबन ने 'मृगावती' में चंद्रगिरि के राजा गणपतदेव के कुमार तथा मृगावती की प्रणय कथा प्रस्तुत की। मंझन लिखित 'मधुमालती' में एक कल्पित प्रेम-कथा राजा सूरज-मन के पुत्र मनोहर तथा राजकुमारी मधुमालती के चरित्रों को आधार बनाकर दी गयी है। इस परम्परा में सर्वप्रमुख नाम मलिक मुहम्मद जायसी का है जिन्होंने अपने 'पद्मावत' मे सिहल द्वीप के राजा गंधर्वसेन की पुत्री पद्मावती तथा चित्तौड़ के राजा रतनसेन की प्रेम-कथा प्रस्तुत की है। सोलहवी शताब्दी में आलम ने 'माधवा-नल कामकन्दला' मे माधवानल नामक एक ब्राह्मण तथा कामकन्दला नामक एक वेश्या की लोक प्रचलित प्रेम-कथा लिखी। सत्रहवीं शताब्दी में उसमान ने 'चित्रावली' शीर्षक प्रेमाख्यान लिखा जिसमें रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली तथा नेपाल के राजकुमार सुजान की प्रेम गाथा वर्णित है। इसी काल में जान कवि ने अनेक प्रेमाख्यान प्रस्तुत किये जिनमें 'कथा रतनावती', 'कथा पहुपवरिषा', 'कथा रतनमंजरी', 'कथा छीता', 'कथा कामलता', 'कथा कनकावती', 'कथा मधुकरमालती', 'कथा कंवलावती', 'कथा मोहिनी', 'कथा नल-दमयन्ती', 'ग्रन्थ लैला मजनूं', 'कथा कलावती', 'कथा रूपमंजरी' तथा 'कथा पिजरखां साहिजादे' आदि नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। शेख नबी लिखित 'ज्ञानदीप' में नेमिसार मिश्रित के राजकुमार ज्ञानदीप तथा विद्यानगर की राजकुमारी देवजानी की प्रेमकथा है। अठारहवी शताब्दी मे कासिम-शाह ने 'हंसजवाहिर' शीर्षक प्रेमाख्यान प्रस्तुत किया जिसमें शाहजादे हंस तथा राजकुमारी जवाहिर की प्रणय गाथा है। इसी काल में नूर मुहम्मद ने 'इन्द्रावती',

'अनुराग बांसुरी' तथा 'नलदमन' शीर्षक प्रेमाख्यान प्रस्तुत किये। हुसेन अली ने 'पुहुपावती' शीर्षक प्रेमाख्यान लिखा। शेख निसार के लिखे ग्रन्थों में 'यूसुफ जुलेखा' शीर्षक प्रेम-कथा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अन्य प्रेम-काव्यों में शाह नजफ़अली सलोनी लिखित 'प्रेम चिनगारी', ख्वाजा अहमद लिखित 'नूरजहाँ', शेख रहीम लिखित 'भाषा प्रेमरस' तथा अली मुराद लिखित 'कथा कुँवरावत' आदि प्रमुख हैं।[३] इन प्रेमाख्यानों में कथात्मकता के निर्वाह के साथ आध्यात्मिक निरूपण भी सफलता-पूर्वक हुआ है। परवर्ती हिन्दी साहित्य पर इन प्रेमाख्यानों का वैचारिकता की दृष्टि से तो प्रभाव मिलता ही है, इनमें से अनेक आख्यानों का विभिन्न कथाओं के रूप में प्रस्तुतीकरण भी उपलब्ध होता है।

रीतियुगीन वीर गाथाएँ

सत्रहवीं शताब्दी में हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में यदि एक ओर रीति काव्य का प्रणयन हो रहा था, तो दूसरी ओर वीर चरित गान भी किया जा रहा था। इस युग में शिवाजी, छत्रसाल तथा हम्मीर आदि काव्य नायकों की शौर्य कथाएँ जन साहित्य के रूप में लोकप्रिय हुईं। भूषण ने अपने 'शिवराज भूषण', 'शिवा बावनी' तथा 'छत्रसाल दशक' आदि काव्य ग्रन्थों में अपने आश्रयदाताओं की कीर्ति गाथाएँ प्रस्तुत की। भूषण द्वारा प्रस्तुत शिवाजी तथा छत्रसाल का वीरगान केवल अपने आश्रयदाताओं की गुण चर्चा के रूप मे एक प्रथा का अनुसरण मात्र नही है, वरन् इन चरित्र नायकों के जनता में सम्मान का प्रतीक है। वीर रस से पूर्ण भूषण के इन ओजस्वी काव्यों में अपने नायकों के आदर्श वीर स्वरूप का निरूपण करते हुए उनमें धर्मवीर, युद्धवीर, दानवीर तथा दयावीर आदि गुणों का समावेश किया गया है। इस काल के अन्य वीर गाथाकारों में श्रीधर ओझा ने 'जंगनामा' में फ़र्रुखसियर तथा जहांदरशाह के युद्ध का वर्णन किया है। मान कवि ने अपने ग्रन्थ 'नरेन्द्र भूषण' में वीर रस के ओजपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। गोकुल-नाथ ने 'महाभारत' तथा 'हरिवंश पुराण' का अनुवाद करने के साथ साथ मौलिक काव्य सृजन भी किया है। जोधराज ने नींवगढ़ के राज्याश्रय में रहकर 'हम्मीर रासो' का प्रणयन किया। सबलसिंह ने 'महाभारत' का अनुवाद करके उसकी वीर कथाएं प्रस्तुत कीं। छत्रसिंह कायस्थ ने भी 'महाभारत' की कथा अपने 'विजय मुक्तावली'

३. वही, पृ० १२८।

नामक ग्रन्थ में प्रस्तुत की। लाल कवि ने अपनी 'छत्र प्रकाश' नामक कृति में महाराज छत्रसाल का वीर चरित्र गान किया। सूदन ने अपने 'सुजान चरित' शीर्षक ग्रन्थ में महाराज सुजानसिंह के सात प्रमुख युद्धों का वर्णन किया। खुमान ने 'लक्ष्मण शतक' शीर्षक से लक्ष्मण और मेघनाद का युद्ध वर्णन प्रस्तुत किया। चन्द्रशेखर वाजपेयी ने 'हम्मीर हठ' के रूप में एक वीर गाथा लिखी। पद्माकर भट्ट ने 'हिम्मतबहादुर विरुदावली' में अपने आश्रयदाता का शौर्य गान किया। राजा भगवन्तराय खीची ने 'हनुमन्त पचासा' में पौराणिक कथाएँ प्रस्तुत की। गिरिधर दास ने 'जरासन्ध वध' आदि वीर काव्यों में अनेक पौराणिक गाथाएं प्रस्तुत कीं।[४] इन कवियों द्वारा वर्णित धार्मिक तथा ऐतिहासिक गाथाओं पर भी परवर्ती साहित्यकारों ने अनेक कथात्मक कृतियाँ लिखीं।

जटमल

जटमल के जीवन से सम्बन्धित जो विवरण उपलब्ध होता है, उसके अनुसार यह सन् १६२३-२८ मे विद्यमान थे। इनका पूरा नाम नाहर जाट जटमल अथवा नाहरखां जटमल था। कुछ विद्वानों का यह भी अनुमान है कि इनका वास्तविक नाम जटमल ही था और नाहर खां इनकी उपाधि मात्र थी, ऐसा भी अनुमान है कि ये अली खा के राज्याश्रय में रहते थे। इनकी एकमात्र रचना 'गोराबादल री बात' शीर्षक से उपलब्ध होती है, जिसका संक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

गोरा बादल री बात—जटमल लिखित 'गोरा बादल री बात' का रचना काल सन् १६२३ अथवा १६२८ अनुमानित किया जाता है। इस कृति के अनेक शीर्षक प्रचलित है जिनमें 'गोरा बादल री बात' के अतिरिक्त 'गोरा बादल की कथा', 'गोरे बादल की कथा', 'गोरा बादल री कथा' तथा 'गोरा बादल की बात' आदि है। इस कृति की कथा का आधार चित्तौड़ के इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना है, जिसका सम्बन्ध महारानी पद्मिनी, राजा रत्नसेन, राघव चेतन, अलाउद्दीन आदि के साथ गोरा तथा बादल नामक वीर चरित्रों से है। यह पद्यात्मक कथा ब्रजभाषा में उपलब्ध होती है, जिस पर राजस्थानी का विशेष प्रभाव मिलता है।

४. वही, पृ० २७४।

आविर्भाव युगीन हिन्दी गद्य का कथा साहित्य

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी गद्य के आविर्भाव के साथ ही कथा साहित्य का आरम्भ हुआ। भारतेन्दु युग में खड़ी बोली गद्य के साहित्यिक रूप के आरम्भ के पूर्व ब्रजभाषा गद्य में साहित्य रचना की जा चुकी थी। यही नहीं, सिद्ध साहित्य में अनेक गद्य लेखकों का उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त चौदहवीं शताब्दी के लगभग जैन धर्म से सम्बन्धित जो रचनाएँ उपलब्ध होती हैं, उनका स्वरूप भी गद्यात्मक है। 'नवकार्याख्यान' तथा 'धनपाल कथा' आदि कृतियां इसी काल की हैं। इस युग के उपरान्त ब्रजभाषा गद्य का समुचित विकास मिलता है। सत्रहवीं शताब्दी में वल्लभ साम्प्रदायिक ग्रन्थ 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए। सत्रहवीं शताब्दी मे ही नाभादास का लिखा हुआ 'अष्टयाम' नामक ग्रन्थ भी उपलब्ध होता है। ब्रजभाषा गद्य के पश्चात् खड़ी बोली के गद्य की परम्परा का आविर्भाव हुआ।[५] खड़ी बोली गद्य में श्री दौलतराम ने सन् १७६६ में 'जैन पद्मपुराण' की रचना की। उन्नीसवी शताब्दी में मुंशी सदासुख लाल 'निमाज' ने 'विष्णु पुराण' के कुछ प्रसंगों के आधार पर 'सुखसागर' की रचना की। इन रचनाओं के साथ ही हिन्दी गद्य में कथा साहित्य की परम्परा का विकास आरम्भ हो जाता है।

इंशाअल्ला खाँ

खड़ी बोली गद्य के आरम्भिक कालीन कथाकारों में 'उदयभान चरित' अथवा 'रानी केतकी की कहानी' के लेखक मुंशी इंशाअल्ला खाँ का नाम विशेष रूप से महत्व-पूर्ण है। इनके पिता का नाम मीर माशाअल्ला खाँ था। वह कश्मीर के रहनेवाले थे और बाद में दिल्ली आकर रहने लगे थे। कुछ काल के उपरान्त उन्होंने दिल्ली के बादशाह के दरबार को छोड़ दिया और मुर्शिदाबाद के नवाब के यहां रहने लगे। वही पर इंशाअल्ला खाँ का जन्म हुआ था। बड़े होने पर यह पहले कुछ समय तक दिल्ली के बादशाह शाह आलम द्वितीय के आश्रय में रहे। फिर यह लखनऊ आ गये और शाहजादा मिर्जा सुलेमान के आश्रय में रहने लगे। वजीर नवज्जुल हुसेन खाँ

५. डा० प्रतापनारायण टंडन, 'हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास', द्वितीय खंड, गद्य भाग, पृ० ५०२।

की सहायता से इनका प्रवेश नवाब सहादतअली खाँ के दरबार में हुआ। अपने जीवन के अन्तिम वर्ष इन्हे बड़ी कठिनाइयों मे व्यतीत करने पड़े। खड़ी बोली गद्य के क्षेत्र में अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय देने के साथ साथ इंशाअल्ला खाँ ने उर्दू-फारसी में भी अनेक ग्रन्थ लिखे थे।

रानी केतकी की कहानी—खड़ी बोली गद्य के कथा साहित्य के क्षेत्र मे मुंशी इंशाअल्ला खाँ की मुख्य देन 'उदयभान चरित' अथवा 'रानी केतकी की कहानी' है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में यह अपने प्रकार की सर्वप्रथम रचना है। इस कहानी में इसका रचना काल नही दिया गया है। इसके विषय में विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग प्रकार के अनुमान लगाये है।[६] इस कहानी की रचना इंशाअल्ला खाँ ने अपने लखनऊ प्रवास में की थी। चूँकि खाँ साहब अरबी फारसी के पंडित थे, इसलिए उन्होंने इन्हीं की विविध शैलियों को मिश्रित करके उनका इस रचना में समन्वय किया। इस कहानी को लिखने के पीछे उनका यह उद्देश्य था कि 'एक ऐसी कहानी लिखी जाय जिसमे हिन्दी छुट और किसी बोली का पुट न मिले तथा हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो।'[७] इससे स्पष्ट है कि कथात्मक रूप के परिचय के साथ साथ भाषा के रूप का परिचय देना भी इस रचना के पीछे लेखक का उद्देश्य

६. निम्नलिखित ग्रन्थों में इसका रचना काल इस प्रकार माना गया है—

(क) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में संवत् १८५५-६०।

(ख) डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' में सन् १८००-१८०३

(ग) डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, 'आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका' में सन् १८००-१८०८।

(घ) डा० लक्ष्मीनारायण लाल, 'हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास' में सन् १८००-१८१०।

(ङ) श्री शिवनारायण श्रीवास्तव, 'हिन्दी उपन्यास' में संवत् १८५६-६५।

(च) डा० प्रतापनारायण टंडन, 'हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत विकास' खंड २, गद्य भाग में सन् १८००-१८०५।

७. दे० डा० श्यामसुन्दरदास द्वारा संपादित तथा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित इंशाअल्ला खां कृत 'रानी केतकी की कहानी'।

रहा था। इसमें लेखक ने एक काल्पनिक प्रेम कथा प्रस्तुत की है, जिसमें चमत्कारिक तत्वों की बहुलता है।

सदासुख लाल

मुंशी सदासुख लाल 'निमाज' का जन्म सन् १७४६ में तथा मृत्यु सन् १८२४ में हुई थी। इन्हें उर्दू तथा फारसी आदि का भी अच्छा ज्ञान था। मूलतः यह दिल्ली के रहने वाले थे, परन्तु ईस्ट इंडिया कम्पनी की नौकरी करते हुए बहुत समय तक यह चुनार में भी रहे। सन् १७९३ से सन् १८११ तक सेवा कार्य करने के उपरान्त शेष जीवन इन्होंने भजन भाव में ही अर्पित कर दिया। खड़ी बोली गद्य के आविर्भाव कालीन लेखकों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। कथा साहित्य के क्षेत्र में इनकी लिखी हुई 'सुखसागर' शीर्षक एकमात्र कृति उपलब्ध होती है, जिसका संक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

सुखसागर—मुंशी सदासुख लाल 'निमाज' द्वारा प्रणीत 'सुखसागर' शीर्षक कृति की रचना का आधार 'विष्णु पुराण' है। मुंशीजी ने उसमें 'विष्णु पुराण' के ही कतिपय उपदेशात्मक तथा नैतिक प्रसगों को चुनकर इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। यह ग्रन्थ अपूर्ण रूप में ही उपलब्ध होता है। इस कृति में मुंशीजी ने खड़ी बोली के उस रूप का प्रयोग किया है, जिसका व्यवहार प्रायः धार्मिक कथाओं आदि में किया जाता था।

लल्लूलाल

श्री लल्लूलाल का जन्म सन् १७६३ में तथा मृत्यु सन् १८३५ में हुई थी। यह आगरे के निवासी थे। सन् १७८६ में यह मुर्शिदाबाद आये, जहां पर इनका परिचय स्वामी कृपासखी के शिष्य गोस्वामी गोपालदासजी से भी हुआ। इन्होंने ही इनकी भेंट नवाब मुबारक उद्दौला से करायी। नवाब के आश्रय में यह सात वर्ष तक रहे तथा फिर कलकत्ते चले गये। कलकत्ते में यह राजा रामकृष्ण के आश्रय में रहते थे। कुछ समय यह उनके साथ नाटौर में भी रहे। एक अंग्रेज को डूबते से बचाने के उपरान्त इनका परिचय पादरी बुरन, रसेल तथा डा० गिल क्राइस्ट से हुआ। फलतः सन् १८०० में यह कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज में नियुक्त हो गये। इनकी सहायता के लिए दो सहायकों के रूप में काजमअली 'जवां' तथा मजहरअली 'विला' भी नियुक्त

हुए। वहीं पर इन्होंने अपने अनेक ग्रन्थों की रचना की। इनकी कथात्मक रचनाओं का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

माधोनल—सन् १७६८ ई० में लल्लूलालजी ने 'माघव विलास' शीर्षक से मोतीराम कवि की ब्रज भाषा में लिखित पुस्तक का अनुवाद किया। इस पुस्तक के विषय में विशेष विवरण उपलब्ध नहीं होता। सम्भवतः इसका आधार मध्ययुगीन प्रेमाख्यानों की परम्परा में मिलने वाली 'माधवानल कामकन्दला' शीर्षक कथा है। राजस्थानी साहित्य में यह कथा गणपति ने 'माधवानल प्रबन्ध दोधक' शीर्षक से तथा कुशलाभ ने 'माधवानल कामकन्दला चरित्र' शीर्षक से प्रस्तुत की थी। अवधी में आलम ने इसकी रचना 'माधवानल भाषा' शीर्षक से की। बोधा ने भी 'माधवानल कामकन्दला' शीर्षक से इस कथा की रचना की। सन् १८१२ में हरनारायण ने भी 'माधवानल कामकन्दला' शीर्षक से ही यह आख्यान प्रस्तुत किया।

सिंहासन बत्तीसी—श्री लल्लूलाल ने सन् १७९९ ई० मे सुन्दरदास कवि कृत ब्रज भाषा ग्रन्थ का खड़ी बोली में अनुवाद 'सिंहासन बत्तीसी' शीर्षक से किया।[८] इस पुस्तक का मूल रूप संस्कृत साहित्य में लोक प्रचलित आख्यान के रूप में 'सिंहासन द्वात्रिंशिका', 'द्वात्रिंशत्पुत्तलिका' तथा 'विक्रमचरित' आदि शीर्षकों से गद्य एवं पद्य में उपलब्ध होता है। सन् १६३३ में इसका पद्यात्मक अनुवाद राय सुन्दर ने ब्रज भाषा में किया। सन् १७५० में सोमनाथ 'ससिनाथ' ने 'सुजान विलास' शीर्षक से इसका पद्यबन्ध अनुवाद ब्रज भाषा में ही किया। लल्लूलालजी ने इसका खड़ी बोली मे अनुवाद प्रथम ब्रजभाषा के अनुवाद के ही आधार पर किया था। इस पुस्तक मे बत्तीस कथाएं संगृहीत है। ये कथाएँ राजा विक्रमादित्य के सिंहासन में जड़ित बत्तीस पुतलियाँ अलग-अलग सुनाती है। वह सिंहासन देवराज इन्द्र द्वारा राजा विक्रमादित्य को प्रदान किया गया था। जब विक्रमादित्य की मृत्यु हो गयी, तब वह सिंहासन स्वतः पृथ्वी में समा गया। बाद में जब वह राजा भोज को प्राप्त हुआ, तो उन्होंने उस पर आसन जमाना चाहा। इस पर उन बत्तीसों पुतलियों ने उन्हें रोकते हुए राजा विक्रमादित्य से सम्बन्धित अनेक कथाएँ पृथक्-पृथक् रूप से सुनायी, जो इसमें संगृहीत हैं।

बैताल पच्चीसी—श्री लल्लूलाल ने सूरति मिश्र द्वारा किये गये ब्रजभाषा अनुवाद के आधार पर सन् १७९९ में संस्कृत 'वेताल पंचविंशतिका' का खड़ी बोली

८. श्री लल्लूलाल, 'सिंहासन बत्तीसी', रामनारायण लाल, प्रयाग, सन् १८०१।

में रूपान्तर प्रस्तुत किया। यह कथाकृति भी संस्कृत लोक साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध है। शिवदास ने इसका प्रणयन गद्य और पद्य में किया था। जम्भलदत्त ने इसे केवल गद्य में ही लिखा था। अनुमान लगाया जाता है कि संस्कृत में यह ग्रन्थ बारहवीं शताब्दी में लिखा गया था। सत्रहवी शताब्दी में इसका अनुवाद ब्रज भाषा में हर-नारायण तथा सूरति मिश्र ने किया था। इस कृति में एक बेताल द्वारा सुनायी गयी पच्चीस कथाएँ संगृहीत हैं। कथा का सिलसिला इस प्रकार से प्रारम्भ होता है कि एक बार राजा विक्रमादित्य को धोखा देने के उद्देश्य से एक पाखंडी एक चाल खेलता है। वह उनसे कहता है कि आप अमुक पेड़ पर लटके हुए शव को उतार कर मेरे पास ले आइए, आपका कल्याण होगा। राजा जाकर शव को उतार लेता है और साथ लेकर चलने लगता है। रास्ते में उस शव के अन्दर बैठा हुआ वेताल उससे कहता है कि आप मार्ग भर मौन ग्रहण किये रहें अन्यथा मैं वापस पेड़ पर चला जाऊँगा। राजा उसकी बात स्वीकार कर लेता है। इस पर वेताल मार्ग मे उसे एक कथा सुनाता है और अन्त में उसके सामने कोई प्रश्न समस्या के रूप में रख देता है। स्वभावतः राजा उत्तर देते हुए तत्काल बोल पड़ता और वह शव वापस पेड़ पर जाकर लटक जाता। चौबीस बार ऐसा ही होता है और चौबीस कथाएँ समस्यापरक रूप में प्रस्तुत की जाती है। अन्त मे, पच्चीसवी कथा में वेताल उस पाखंडी का भेद खोल देता है और पुस्तक की समाप्ति हो जाती है। लेखक ने इसकी रचना के उद्देश्य तथा अनुवाद के विषय में लिखा भी है कि "मुहम्मद शाह बादशाह के जमाने में राजा जयसिंह सवाई ने जो मालिक जयनगर का था, सूरति नामक कवीश्वर से कहा कि 'बेताल पच्चीसी' को, जो जबान संस्कृत में है तुम ब्रजभाषा में कहो, तब उसने बमूजिब हुक्म राजा के ब्रज की बोली में कही, अब वह खड़ी बोली में होकर छापी जाती है, जिसमें सब लोगों की समझ में आवे।"[१]

प्रेमसागर—सन् १८०२ में लल्लूलालजी ने 'प्रेमसागर' का अनुवाद चतुर्भुजदास-कृत ब्रजभाषा में भागवत के दशम स्कन्ध के रूपान्तर से किया। इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण प्रकाशित हुए हैं, जिनका सम्पादन लल्लूलालजी के अतिरिक्त जगन्नाथ सुकुल, व्रजरत्नदास, कालिका प्रसाद दीक्षित तथा बैजनाथ केडिया आदि ने किया। अंग्रेजी मे भी इसके छै संस्करण प्रकाशित हुए हैं। लल्लूलालजी ने इसकी भूमिका

१. श्री लल्लूलाल, 'बेताल पच्चीसी', रामनारायणलाल, प्रयाग, पृ० १।

में रचना का उद्देश्य और विषय स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "...एक समैं व्यासदेव कृत श्रीमत भागवत के दशम स्कन्ध की कथा का चतुरभुज मिश्र ने दोहे चौपाई में ब्रजभाषा किया सो पाटशाला के लिये श्री महाराजाधिराज सकल गुन निधान पुन्यवान महाजान मारक्विस बलिस्ली गवरनर जनरल प्रतापी के राज में औ श्रीयुत गुन गाहक गुनियन सुखदायक जान गिल किरिस्त महाशय की आज्ञा से संवत् १८७० में श्री लल्लू लाल जी कवि ने जिसका सार ले यामिनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खडी बोली में कह नाम प्रेमसागर धरा।"[१०]

माधव विलास—सन् १८१७ में लल्लूलालजी ने 'माधव विलास' शीर्षक कृति का अनुवाद प्रकाशित किया। इसकी रचना करते समय उन्होंने आधार रूप में रघुराम कृत 'सभासार' तथा कृपाराम कृत 'योगसार' को रखा था। इस ग्रन्थ मे उन्होंने यत्र-तत्र मूल ग्रन्थों के गद्य-पद्य के प्रसंग ज्यों के त्यों ग्रहण कर लिये है। भूमिका में उन्होंने इसके रचना काल आदि के विषय में लिखा भी है—"श्री गुरदेव के चरण कमल कौ ध्यान धर क्रिया योग सार ग्रन्थ तें माधव सुलोचन की कथा निकरी श्री लल्लू जी लाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदीच आगरे वारे ने उक्ति युक्ति करि गद्य पद्य ब्रजभाषा में ग्रन्थ बनाय माधव सुलोचना की कथा यामें है यासों याकौ नाम माधव विलास राख्यौ अरु निज छापे घर में छपवायो संवत् १८१४ आश्विन मास मे इति।"[११]

राजनीति—श्री लल्लूलालजी ने संस्कृत ग्रन्थ 'हितोपदेश' के आधार पर 'राजनीति' शीर्षक कृति ब्रजभाषा मे लिखी थी। इसके रचना उद्देश्य आदि के विषय में उन्होंने लिखा है कि "काहू समय श्री नारायण पंडित ने नीति शास्त्रनि ते कथानिका संग्रह करि संस्कृत में एक ग्रन्थ बनाय वाको नाम हितोपदेश धर्यौ सो अब श्रीयुत महाराजाधिराज परम सुजान सब गुण खान भगवान कृपानिधान मारक्विस बलिस्ली गवर्नर जरनल महाबलीके राजमें औ श्री महाराज गुणवान अतिजान जान गिलकिरिस्त प्रतापी की आज्ञा सों सम्वत् १८५० में श्री लल्लूलाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदीच आगरे वाले ने वाको आशय ले ब्रज भाषा करि नाम राजनीति राख्यो।"[१२]

१०. श्री लल्लूलाल, 'प्रेमसागर', संस्करण १८०३, भूमिका, पृ० २।
११. श्री लल्लूलाल, 'माधव विलास', भूमिका।
१२. श्री लल्लूलाल, 'राजनीति', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १८८७, पृ० १

सदल मिश्र

पं० सदल मिश्र का जन्म सन् १७६७ में तथा मृत्यु सन् १८४७ में हुई थी। यह बिहार प्रदेश के शाहाबाद जिले के अन्तर्गत ध्रवडीहा नामक ग्राम के निवासी थे। इनकी नियुक्ति कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दुस्तानी विभाग में अध्यापक के रूप में हुई थी। इनकी कथा कृतियों में 'नासिकेतोपाख्यान' तथा 'रामचरित' हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

नासिकेतोपाख्यान—श्री सदल मिश्र कृत 'नासिकेतोपाख्यान' या 'चन्द्रावती' की रचना सन् १८०३ में हुई थी। यह आख्यान मूल रूप में 'यजुर्वेद', 'कठोपनिषद्' तथा विविध पुराणों मे उपलब्ध होता है। सदल मिश्र ने इसे एक स्वतंत्र कथा के रूप मे खडी बोली गद्य मे रोचक भाषा शैली में प्रस्तुत किया। मूल कथा महाराज रघु की पुत्री चन्द्रावती तथा उसके पुत्र नासिकेत के चरित्रों पर आधारित है। चन्द्रावती की नाक से जन्म होने के कारण ही उसके पुत्र का नाम नासिकेत पडा था। क्रुद्ध पिता द्वारा शाप-ग्रस्त नासिकेत के यमलोक प्रयाण तथा यमराज से वर प्राप्ति के उपरान्त मर्त्यलोक में वापसी की कथा इस ग्रन्थ मे वर्णित है। सपूर्ण कथा दो भागों में मिलती है, जिसे एक क्षीण सूत्र से परस्पर सम्बद्ध किया गया है। ये कथा भाग नासिकेत के जन्म तथा उसके यमलोक प्रयाण से सम्बन्धित हैं। इनके बीच मे एक संधि है, जिसका आधार नासिकेत का वन प्रवास है। यह कथा अलौकिक व चमत्कारिक तत्वों से युक्त होने के साथ साथ रोचक और उपदेशात्मक भी है। इस कृति में लेखक ने यह उल्लेख किया है कि अब संवत् १८६० में नासिकेतोपाख्यान को कि जिसमें चन्द्रावती की कथा कही है, देववाणी से कोई कोई समझ नही सकता, इसीलिए खडी बोली में किया।"[13]

रामचरित—पं० सदल मिश्र कृत 'रामचरित' की रचना सन् १८०६ मे हुई थी। यह ग्रन्थ डा० गिलक्राइस्ट के आग्रह पर लिखा गया था। इसकी रचना 'अध्यात्म-रामायण' के आधार पर मिश्रजी ने की थी। इसकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली है, जिसमें अरबी और फारसी शब्दों का अभाव है।

१३. श्री सदल मिश्र, 'चन्द्रावती' अथवा 'नासिकेतोपाख्यान', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ४१।

राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिन्द'

राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिन्द' का जन्म सन् १८२३ में तथा मृत्यु सन् १८६५ में हुई थी। यह काशी के रहने वाले थे। हिन्दी के साथ साथ उर्दू, फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी तथा बंगला आदि भाषाओं का भी इन्हें अच्छा ज्ञान था। कुछ समय तक भरतपुर दरबार में नौकरी करने के उपरान्त इन्होंने सन् १८४५ से अंग्रेजी सरकार की नौकरी की। शिक्षा विभाग में सरकारी स्कूलों के इंस्पेक्टर पद पर कार्य करते हुए इन्होंने अनेक कृतियाँ लिखीं। इनकी विविध विषयक रचनाओं में 'मानव धर्म-सार', 'योगवासिष्ठ' के कुछ चुने हुए श्लोक, 'उपनिषद् सार', 'भूगोल हस्तामलक', 'स्वयंबोध उर्दू', 'वाष्पयान इंजन', 'आलसियों का कोडा', 'विद्यांकुर', 'राजा भोज का सपना', 'वर्णमाला', 'हिदुस्तान के पुराने राजाओं का हाल', 'इतिहास तिमिर नाशक', 'सिखों का उदय और अस्त', 'गुटका', 'हिन्दी व्याकरण', 'कुछ बयान अपनी जुबान का', 'बाल बोध', 'सेन्डफोर्ड और मारटन की कहानी', 'अंग्रेजी अक्षरों के सीखने का उपाय', 'बच्चों का इनाम', 'लड़को की कहानी', 'वीरसिंह का वृत्तान्त', 'गीत गोविन्दादर्श' तथा 'कबीर टीका' आदि है। इन कृतियो की रचना लेखक ने विविध उद्देश्यो से की थी। कुछ पुस्तके तो केवल विद्यार्थियों के हित को ध्यान में रखकर ही लिखी गयी थी। समकालीन खड़ी बोली गद्य के स्वरूपगत परिचय की दृष्टि से इन कृतियों का विशेष महत्व है। वस्तुतः इनके माध्यम से लेखक का उद्देश्य हिन्दी गद्य का एक ऐसा रूप प्रस्तुत करना था, जिसका व्यावहारिक उपयोग अधिक से अधिक हो सके।

राजा भोज का सपना—राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिन्द' लिखित 'राजा भोज का सपना' नवल किशोर प्रेस, लखनऊ के द्वारा सन् १८८८ में प्रकाशित किया गया था। यह एक उपदेशात्मक कहानी है, जिसका आधार काल्पनिक तत्व है। इसके अन्त में लेखक ने पाठकों को सम्बोधित करते हुए लिखा है—'हे पाठक जनो! क्या तुम भी भोज की तरह ढूंढते हो और भगवान से उसके मिलने की प्रार्थना करते हो। भगवान तुम्हें शीघ्र ऐसी बुद्धि दे और अपनी राह पर चलावे, यही हमारे अन्तःकरण का आशीर्वाद है।''[१४] इस स्वप्न मे कथात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। इसके

१४. राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द', 'राजा भोज का सपना', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १८८८।

अतिरिक्त राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' की कुछ अन्य कथात्मक रचनाएँ भी हैं।[१५] अपनी कृतियों की भाषा के विषय में लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि हम लोगों को जहां तक बन पड़े चुनने में उन शब्दों को लेना चाहिए कि जो आम फ़हम और खास पसन्द हों, अर्थात् जिनको जियादा आदमी समझ सकते हैं।[१६]

गौरीदत्त

पं० गौरीदत्त का जन्म सन् १८३६ में तथा मृत्यु सन् १९०५ में हुई थी। इनका जन्म स्थान मेरठ था। ये सारस्वत ब्राह्मण थे और अध्यापन कार्य करते थे। इन्होंने स्त्री-शिक्षा विषयक कुछ कथात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की थी, जिनमें 'कहानी टका कमानी' तथा 'देवरानी जेठानी की कहानी' प्रमुख हैं। इन्होंने 'गौरी नागरी कोश' का सम्पादन भी किया था। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'देवनागरी का प्रकार' नामक एक और पुस्तक भी सम्पादित की थी। इन्हे भाषा पर अच्छा अधिकार प्राप्त था और इनकी गद्य शैली बहुत सरल, स्पष्ट और परिमार्जित थी। हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास मे इनके योगदान का असाधारण महत्व इसलिए भी है कि इन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के स्वर्गवास काल के कुछ वर्ष पूर्व नागरी प्रचार का आन्दोलन आरम्भ किया, जो राष्ट्रभाषा के प्रचार के उद्देश्य से किया गया सर्वप्रथम सुगठित आन्दोलन था।

कहानी टका कमानी—पं० गौरीदत्त लिखित 'कहानी टका कमानी' एक उपदेश-प्रधान कथात्मक रचना है। इसका उद्देश्य स्त्री शिक्षा है। इसमें लेखक ने यह दिखाने की चेष्टा की है कि एक स्त्री भी यदि पुरुषार्थी हो तो समृद्ध और समर्थ बन सकती है। इस में नारी चेतना के जागरण का आवाहन किया गया है। स्वयं लेखक के शब्दों में

१५. (क) राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द', 'वामा मन रंजन', मेडिकल हाल प्रेस, बनारस, १८५९।

(ख) राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द', 'सेंडफोर्ट और मारटन की कहानी', मेडिकल हाल प्रेस, बनारस।

(ग) राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द', 'लड़कों की कहानी', मेडिकल प्रेस, बनारस।

१६. डा० प्रतापनारायण टंडन, 'हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास', खंड २, गद्य भाग, पृ० ५०७।

"इस कहानी में पहले समय की स्त्री ने कैसे-कैसे बढ़कर काम किये हैं कि जो आजकल के पुरुषों से होने कठिन है---यह कहानी मुझसे एक दिल्ली वाले ने कही थी, मैं इसको आजकल की चाल ढाल और बोलचाल में यहाँ लिखता हूँ।"[१७]

देवरानी जेठानी की कहानी---पं० गौरीदत्त लिखित 'देवरानी जेठानी की कहानी' शीर्षक रचना भी महिलोपयोगी है। लेखक ने इसकी भूमिका में रचना उद्देश्य के विषय में बताया है कि इस पुस्तक में मैंने स्त्रियों की ही बोलचाल लिखी है और इस पुस्तक में ये भी दर्शा दिया है, दिखा दिया है कि पढ़ी हुई स्त्री जब एक काम को करती है उससे क्या लाभ होता है और कुपढ़ स्त्री जब उसी काम को करती है उससे क्या हानि होती है। इस उद्देश्यप्रधान रचना के अन्त में भी लेखक ने यह स्पष्ट रूप से निर्देश किया है कि जो स्त्रियाँ इसको पढ़ेंगी या ध्यान देकर सुनेंगी वह सुशील होकर अपनी सन्तान का पालन पोषण अच्छी रीति से करेंगी और कुरीतियों से बचकर गृहस्थ के प्रबन्ध में उनकी रुचि होगी, पति की सेवा और विद्या की तरफ उनका स्नेह बढ़ेगा और ये ही उनके सुख भोगो का कारण होगा।[१८]

अन्य कथात्मक रचनाएँ

ऊपर जिन कृतियों का उल्लेख किया गया है, उनके अतिरिक्त भी एक बड़ी संख्या में अन्य कथात्मक रचनाएँ इस काल मे उपलब्ध होती है। ये कृतियाँ मौलिक तथा अनूदित दोनों प्रकार की है। इसी काल मे बाइबिल की अनेक कथाओं का अनुवाद विलियम केरे के द्वारा किया गया। उन्नीसवी शताब्दी मे पं० वशीधर ने गुलिस्ताँ का आशिक अनुवाद 'पुष्प-वाटिका' शीर्षक से प्रस्तुत किया। मुशी शादीलाल ने 'किस्सा शाहरुम' शीर्षक से एक प्रेमकथा प्रस्तुत की। फैज हुसैनी की लिखी हुई 'किस्सा सौदागर बच्चा' भी इसी काल मे उपलब्ध होती है। 'किस्सा चार दरवेश' इस युग की एक प्रसिद्ध रचना है। 'यह किस्सा फ़ारसी मे मुरव्वज हुआ और एक हजार दो सौ पन्द्रह हिजरी और अठारह सौ एक ईसवी में जान गिलक्रिस्ट साहब बहादुर के हुक्म से मीर अमल दिल्ली वाले ने इस किताब को उर्दू जबान में तरजुमा किया था मगर अक्सर लोग जो फारसी हरफों से वाकफियत नहीं रखते हैं, इसलिए संवत् १९०३

१७. पं० गौरीदत्त, 'कहानी टका कमानी', विद्या दर्पण यंत्रालय, मेरठ, पृ० ३।
१८. पं० गौरीदत्त, 'देवरानी जेठानी की कहानी', ज्ञानसागर प्रेस, मेरठ, पृ०२८।

और सन् १८४७ ई० में श्री लक्ष्मी नारायण पंडित ने नागरी के जानने वाले शौकीन लोगों के पढ़ने के वास्ते उर्दू से नागरी अक्षरों में लिखा।' इस कथा मे चार दरवेशों द्वारा वर्णित रोचक और उपदेशात्मक कथाएँ हैं। 'किस्सा गुलाब केवड़ा' में गुलाब तथा केवड़ा नामक दो मित्रों की कथा उपलब्ध होती है। 'किस्सा चम्पा चमेली' में दो सहेलियों की कथा है।'[१९] 'किस्सा मर्द औरत का' एक लम्बी कहानी है जिसमें मूल कथा के साथ अनेक प्रासंगिक कथाएँ भी उपलब्ध होती हैं। इस कृति के रचना उद्देश्य के विषय में लेखिका ने लिखा है "हालांकि जितने ऐब मर्दों में भरे हुए हैं औरतों में उसका दसवां हिस्सा भी नही है, हजारों ऐसी दास्तान हैं जिनसे औरतों की भलाई और मर्दों की बेवफाई जाहिर होती है मगर मर्दों ने जब कोई किताब लिखी है उसमें औरतों ही को बुरा कहा है इस वास्ते मैं एक दास्तान मर्द औरत की लिखती हूँ उसके देखने से मर्द अपने दिल में इंसाफ करे कि कौन बुरा और कौन अच्छा है।"[२०] सन् १८०३ में रचित 'ठगलीला' में योगादास, सुन्दरदास तथा उनके गुरुजी की कथा है-- 'हे प्यारे लोगो एक नया किस्सा ताजी कहानी उम्दा से उम्दा नई नई बनानी जिसे सुन हो परेशानी, सुमानपुर नाम एक नगर चमन व आबाद बसता था, उस नगर में एक साधू और उनके दो चेले थे···।' 'किस्सा गुल बकावली' की रचना शेख इज्जतुल्लाह ने ११२४ हिजरी मे फ़ारसी भाषा में की थी जिसका हिन्दी अनुवाद लार्ड वेलेजली के शासन काल मे हुआ। इसका उल्लेख भी इस प्रकार है--"चुनांचः इस नहीफ ने बमूजिब इर्शाद मारक्विस वलजली नौव्वाब गवर्नर जनरल बहादुर राय इकबालहू के जहद में हिन्दी में तरजुमा किया और नाम इसका 'मजहब इश्क' रखा हरएक सखुन रस और नुक्तः हाँ सुबह नफ़स से यह उम्मेद है कि जहाँ कहीं मैदान इबारत में नशेब फराज़ देखे वहाँ इसलाह् की कलम से हमवार कर दे और इस हैच मदां को अपनी नवाजिश से ममूनन फरमावें।"[२१] सन् १८६० में गद्य पद्य मे 'निहालदे की पुस्तक' शीर्षक एक प्रेम-कथा प्रस्तुत की गयी थी। इसी वर्ष रचित 'जवानी की कहानी' शीर्षक एक अन्य प्रेम-कथा का भी उल्लेख मिलता है, जो पति-पत्नी के पत्रोत्तर

१९. यह पुस्तक मुल्तान प्रिंटिंग प्रेस, छावनी नीमच द्वारा प्रकाशित हुई है।

२०. श्रीमती जैनमती अग्रवाल, 'किस्सा मर्द और औरत का', प्रकाशक मुंशी उजागरमल साहिब, अलीगढ़, पृ० २।

२१. 'किस्सा गुल बकावली', प्रकाशक गदाधर प्रसाद बुकसेलर, काशी, पृ० ५।

रूप में लिखी गयी है।[२२] इसी समय के लगभग की एक अन्य कृति 'छबीली भटियारी' शीर्षक से उपलब्ध होती है। इसमे सिकंदरशाह बादशाह के शाहजादे रमनशाह की कथा है। इसकी नायिका विचित्रकुंवरि है। इसमें मूल कथा के साथ अनेक प्रासंगिक कथाएँ संगृहीत हैं। 'शुक बहत्तरी' में एक तोते द्वारा प्रभावती से कही हुई बहत्तर कहानियाँ संगृहीत हैं। 'शीरी फ़रहाद' शीर्षक से एक प्रसिद्ध प्रेमकथा अनेक रूपों में उपलब्ध होती है। इसके विविध लेखकों में शेख इबादउल्लाह उर्फ बादल मतबै मजीजी, शिवकुमार कायस्थ तथा हरिकृष्ण जौहर आदि हैं। 'सारंगा सदाब्रज का वृत्तान्त' शीर्षक से एक आध्यात्मिक प्रेमकथा गणेशीलाल तथा भेदीराम द्वारा पृथक् पृथक् रूप से प्रस्तुत की गयी। 'किस्सा हातिमताई'[२३] शीर्षक से सात कहानियों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ था। इसके साथ ही 'मोहिनी चरित्र'[२४], 'त्रिया चरित' तथा 'इंसाफ संग्रह' आदि कथा-ग्रन्थ भी इस काल में उपलब्ध होते हैं। इनके उपरान्त आधुनिक हिन्दी कहानी का आरम्भ भारतेन्दु युग से अपने नवीन स्वरूप में हुआ।

आधुनिक हिन्दी कहानी

प्रथम विकास काल

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य के क्षेत्र में कहानी का आविर्भाव भी भारतेन्दु युग में ही हुआ। भारतेन्दु युग से पूर्व गद्य साहित्य के जो नमूने उपलब्ध होते है, उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त उक्त कथा साहित्य के क्षेत्र मे जो अन्य रचनाएँ भारतेन्दु युग के पूर्व उपलब्ध होती हैं उनका केवल ऐतिहासिक महत्त्व ही है। भारतेन्दु युग मे इस गद्य साहित्यांग की ओर लेखकों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। मुख्यतः सामाजिक प्रवृत्ति से सम्बन्धित कहानियाँ ही इस युग के अधिकांश लेखकों ने प्रस्तुत की। नीचे भारतेन्दु युग के प्रतिनिधि कहानीकारों के साहित्य का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

२२. यह पुस्तक नारायणदास ऐंड कं०, बनारस द्वारा प्रकाशित हुई थी।
२३. यह कृति श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई द्वारा प्रकाशित हुई थी।
२४. प्रकाशक, बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, बनारस।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म सन् १८६० में तथा मृत्यु सन् १८८५ में हुई थी। आधुनिक युग के प्रवर्तक के रूप में उन्होंने कहानी साहित्य का भी प्रवर्तन किया। कहानी साहित्य के क्षेत्र में उनकी लिखी हुई एक रचना 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती' उपलब्ध होती है। कथावस्तु तथा भाषाशैली की दृष्टि से इस कहानी का महत्व है। व्यावहारिक भाषा में यह कहानी आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत की गयी है। इसमें लेखक ने समकालीन सामाजिक जीवन की पृष्ठभूमि में मानव मनोवृत्ति का विश्लेषण किया है। इस रचना के अतिरिक्त भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कोई अन्य कहानी प्रस्तुत नहीं की। यह कहानी भी 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' में संगृहीत है। भारतेन्दु युग मे लिखे गये कहानी साहित्य में इस रचना का ऐतिहासिक महत्व है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की ही लिखी हुई एक अन्य गद्य रचना 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' का भी उल्लेख यहाँ किया जा सकता है। यह निबन्धात्मक रचना है जो कथा तत्वों से युक्त है। इस कोटि की कुछ अन्य रचनाएँ भी इस युग में लिखी गयी जिनका उल्लेख यथास्थान किया जायेगा। भारतेन्दु की कथात्मक रचनाएँ मुख्य रूप से व्यंग्यात्मक रूप मे लिखी गयी है। इनमे लेखक ने समकालीन जीवन की पृष्टभूमि में आधुनिक शिक्षा पद्धति तथा अन्य सामाजिक समस्याओ का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। भारतेन्दु से पूर्व राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द भी एक कल्पना-तत्वप्रधान गद्यात्मक रचना प्रस्तुत कर चुके थे जिसका शीर्षक 'राजा भोज का सपना' है। भारतेन्दु की कहानी उसी की नयी कडी के रूप में अपेक्षाकृत दृष्टिकोण की सूचक है।

राधाचरण गोस्वामी

श्री राधाचरण गोस्वामी का जन्म सन् १८५६ तथा मृत्यु सन् १६२५ में हुई थी। उन्होंने 'यमपुर की यात्रा' शीर्षक एक कल्पना-तत्वप्रधान कहानी प्रस्तुत की। इस कहानी में लेखक ने यह संकेत किया है कि समाज के विभिन्न वर्ग मूलतः मिथ्या भावनाओं एवं रूढिवादी मान्यताओं मे आस्था रखते है परन्तु इसकी पृष्ठभूमि में उनका निजी स्वार्थ निहित होता है। इस कहानी की शैली नाटकीय है और लेखक ने इसमें सांकेतिक रूप से सामाजिकता, राजनीतिकता तथा धार्मिकता से सम्बन्धित अनेक संकेत प्रस्तुत किये हैं। आधुनिक युग में जहाँ एक ओर जीवन वैज्ञानिक रूप ग्रहण करते हुए कुछ यांत्रिक सा होता जा रहा है, वहाँ दूसरी ओर समाज और धर्म की रूढ़ियाँ मानव

जीवन के विकास और उन्नयन में बाधक हो रही हैं। अनेक कुरीतियाँ समाज में घुन की तरह से लगी हुई हैं। राजनीतिक स्वतंत्रता तथा समानता की आड़ में व्यक्ति की स्वाधीनता पर जो अंकुश लगाये जा रहे हैं वे भी समाज में निहित ढोंग का चित्रण करते हैं। देश के नेता महान् संकल्प और बड़े आन्दोलन आयोजित करते हैं परन्तु सकुचित मनोवृत्ति उन्हें कुछ भी नहीं करने देती। समाज सुधार से सम्बन्धित जितने भी आन्दोलन अब तक किये जाते रहे हैं वे केवल सैद्धान्तिक स्तर पर ही तर्क-सम्मत रूप में स्वीकार किये जाते हैं, अन्यथा व्यावहारिकता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। यही कारण है कि समाज सुधार केवल सिद्धान्त रूप में ही मान्य किया जाता है, उसका कोई व्यावहारिक प्रभाव नही लक्षित होता। राधाचरण गोस्वामी की इस रचना में इस प्रकार के यथार्थपरक संकेत प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

किशोरीलाल गोस्वामी

श्री किशोरीलाल गोस्वामी का जन्म सन् १८६५ में तथा मृत्यु सन् १६३२ में हुई थी। कथा साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की। उनकी मुख्य देन उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में है। कहानी के क्षेत्र में उन्होंने विशेष सृजनशीलता का परिचय नही दिया है। उनकी एकमात्र कहानी 'इंदुमती' शीर्षक से उपलब्ध होती है। यह एक कल्पित कहानी है। इसमें यथार्थपरक दृष्टिकोण अथवा समाज सुधार की भावना का अभाव है। यह कहानी मूलतः एक कल्पनापूर्ण प्रेम कथा है, इसकी नायिका इंदुमती विध्याचल के जंगलों में अपने पिता के साथ रहती है। उस निर्जन वन में पिता के अतिरिक्त किसी भी मानव के संपर्क में आने का उसे अवसर नहीं मिलता। संयोगवश उसकी भेंट अजयगढ़ के राजकुमार चंद्रशेखर से होती है। वह पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम लोदी की हत्या करके भाग आता है। उसका पीछा लोदी का एक सेनापति करता है। भूख-प्यास से व्याकुल, घोड़े से रहित वह एक पेड़ के नीचे विश्राम करते होता है। तभी इंदुमती उसे देखती है। इंदुमती और चंद्रशेखर का संपर्क बढ़ने पर इंदुमती का पिता, जो स्वयं देवगढ़ का भूतपूर्व राजा था, छिपकर उन लोगों के प्रेम की परीक्षा लेता है। अन्त में वह अपनी कन्या का विवाह चन्द्रशेखर से इसलिए भी करने को प्रस्तुत हो जाता है क्योंकि उसकी यह पूर्व प्रतिज्ञा थी कि जो शूरवीर इब्राहीम लोदी का वध करेगा उसी से वह अपनी कन्या का विवाह करेगा। चन्द्रशेखर चूंकि यह शर्त पहले ही पूर्ण कर चुका था और इंदुमती के प्रति उसका प्रेम

भी सच्चा था इसलिए उन दोनों का विवाह इंदुमती का पिता कर देता है। इस प्रकार से यह कहानी इतिहास और कल्पना का अद्भुत सम्मिश्रण है, जिसमें मुख्यत: कल्पना तत्वों की ही प्रधानता है जो कि भारतेन्दु युगीन कहानी साहित्य की प्रमुख विशेषता रही है।

रामचन्द्र शुक्ल

पं० रामचन्द्र शुक्ल का जन्म सन् १८८४ में तथा मृत्यु सन् १९४० में हुई थी। उन्होंने मुख्यत: आलोचना साहित्य के क्षेत्र में ही अपनी मुख्य देन प्रस्तुत की। आलोचनात्मक साहित्य सम्बन्धी निबन्ध, भावात्मक निबन्ध तथा गवेषणात्मक निबन्धों के साथ-साथ उन्होंने हिन्दी के सूर, तुलसी तथा जायसी आदि महान् कवियों के काव्य की उपलब्धियों का मूल्यांकन करते हुए लम्बे प्रबन्ध लिखे तथा 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में हिन्दी साहित्य की विविध युगीन उपलब्धियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया। कहानी साहित्य के क्षेत्र मे उनकी एकमात्र रचना 'ग्यारह वर्ष का समय' शीर्षक से उपलब्ध होती है। यह कहानी सितम्बर १९०३ की 'सरस्वती' मे प्रकाशित हुई थी। भारतेन्दुकालीन अधिकाश गद्यात्मक रचनाओं की भांति यह कहानी भी मुख्यत: कल्पनात्मक तत्वो पर ही आधारित है। इस कहानी मे लेखक ने ग्यारह वर्ष के अतराल से दो प्रेमी हृदयो का मिलन दिखलाया है। कहानी की भाषा शैली मे भावात्मकता विद्यमान है। कहानी का आरम्भ प्रथम पुरुष के रूप मे किया गया है, इसमें लेखक आत्मकथात्मक रूप से कहानी का प्रस्तुतीकरण करता है। परन्तु जो व्यक्ति आत्मचरितात्मक शैली में कथा कहता है वह स्वयं कहानी का मुख्य पात्र नहीं है। इसके विपरीत वह मुख्य पात्र का सहायक है। इसमे लेखक ने आधुनिक युगीन सामाजिक व्यवस्था के आदर्श रूप का संकेत किया है। ग्यारह वर्ष के अंतराल के पश्चात् केवल संयोगवश ही नायक-नायिका का जो मिलन इसमे दिखाया गया है वह भी आदर्शात्मक दृष्टिकोण का ही सूचक है। नारी-जीवन से सम्बन्धित लेखक का आदर्शपरक दृष्टिकोण इस कहानी में संकेत रूप मे विद्यमान मिलता है।

केशवप्रसाद सिंह

श्री केशव प्रसाद सिंह ने कहानी साहित्य के क्षेत्र में एक रचना प्रस्तुत की है जिसका शीर्षक 'आपत्तियों का पहाड़' है। यह कथात्मक निबन्ध की कोटि की रचना है। जैसा

कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, इस युग में 'राजा भोज का सपना', 'यमपुर की यात्रा' तथा 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' के रूप में लेखकों ने विभिन्न कल्पनात्मक रचनाएं प्रस्तुत की थीं। उन्हीं की शृंखला में यह रचना भी प्रस्तुत की गयी है। यह भी स्वप्न के रूप में नाटकीय शैली में ही लिखी गयी है। लेखक सोने से पहले सुकरात की किसी उक्ति पर चिन्तन करता है। निद्रामग्न हो जाने के पश्चात् वह एक स्वप्न देखता है जो इस रचना में वर्णित है। स्वप्न में वह देखता है कि ऐसा स्थान है जहां पर तमाम लोगों ने अपनी अपनी विपत्तियां फेंक दी हैं और उन विपत्तियों का एक बड़ा पहाड़ सा बन चुका है। इसके पश्चात् तमाम लोग उस विपत्तियों के ढेर से स्वेच्छा से अपनी रुचि के अनुसार एक विपत्ति चुनने की इच्छा करते है। विभिन्न प्रकार की नयी नयी विपत्तियों के वर्णन में लेखक प्रवृत्त होता है, तभी उसका स्वप्न भंग हो जाता है। यह रचना भी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। इसके अतिरिक्त श्री केशवप्रसाद सिंह ने यात्रा वृत्तांतों के रूप में भी कुछ रचनाएँ प्रस्तुत की है जिनके शीर्षक 'चंद्रलोक की यात्रा' तथा 'कश्मीर यात्रा' हैं। इनमें अनेक कल्पित तथा यथार्थ स्थानों की यात्रा का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। भारतेन्दु युग की अधिकांश कहानियों की भांति इन रचनाओं मे भी कल्पनात्मक तत्वों का आधिक्य है।

कार्तिकप्रसाद खत्री

श्री कार्तिकप्रसाद खत्री का जन्म सन् १८५२ और मृत्यु सन् १९०५ में हुई थी। खत्रीजी की मुख्य देन अनूदित साहित्य के क्षेत्र में है। उन्होंने विदेशी भाषाओं की अनेक महत्वपूर्ण कृतियों का अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत किया था। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उनका योगदान उल्लेखनीय है। भाषा के प्रचार के लिए भी इनके कार्य महत्वपूर्ण बताये जाते हैं। कहानी साहित्य के क्षेत्र में इनका योगदान बहुत कम है। इनकी लिखी हुई एक कहानी 'दामोदर राव की आत्म कहामी' शीर्षक से उपलब्ध होती है। जैसा कि इसके शीर्षक से ही स्पष्ट है, यह रचना आत्मचरितात्मक शैली में प्रस्तुत की गयी है। युगीन प्रवृत्तियो के अनुरूप इसमें भी कल्पनात्मक तत्वों की ही अधिकता है।

गिरिजादत्त वाजपेयी

भारतेन्दु युगीन कहानी साहित्य के क्षेत्र में जिन लेखकों ने कार्य किया है, उनमें श्री गिरिजादत्त वाजपेयी का नाम उल्लिखित किया जा सकता है। उनकी प्रसिद्ध

कहानियों में 'पति का पवित्र प्रेम' तथा 'पंडित और पंडितानी' आदि हैं। इनमें से प्रथम में लेखक ने यूरोपीय पात्र-पात्रियों को कथा का नायक और नायिका बनाकर कथा वस्तु निर्मित की है। इस कहानी में विमली नामक सौदागर की कन्या लिली तथा जेम्स नामक पादरी के पुत्र की प्रेम कथा का वर्णन किया गया है। 'पंडित और पंडितानी' शीर्षक कहानी में लेखक ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से एक अधेड़ अवस्था वाले पंडित और उनकी नवयौवना पंडितानी के पारस्परिक आकर्षण और विकर्षण का चित्रण किया है। इन दोनों ही कहानियों में यथार्थ के स्थान पर कल्पनात्मकता का ही आधिक्य है।

यशोदानन्दन अखौरी

इस युग के अन्य कहानी लेखकों में श्री यशोदानन्दन अखौरी पटना के निवासी थे। उन्होंने 'पाटलिपुत्र' तथा 'भारत मित्र' आदि पत्र-पत्रिकाओं के संपादकीय विभागों मे कुछ कार्य किया था। इनकी लिखी हुई कथात्मक निबन्ध के रूप में एक रचना उपलब्ध होती है जो भाषा शैली की विशेषताओं के कारण महत्व रखती है। इसका प्रकाशन सन् १९०४ में 'सरस्वती' के जून अंक में हुआ था। भाषा शैली के साथ साथ इसमें लेखक की कल्पना शक्ति का भी चमत्कार मिलता है।

सूर्यनारायण दीक्षित

भारतेन्दु युगीन कहानी लेखकों में श्री सूर्यनारायण दीक्षित का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी लिखी हुई कहानियाँ भी 'सरस्वती' के कुछ अंकों में प्रकाशित हुई थीं। इनकी एक प्रतिनिधि रचना 'चंद्रहास का अद्भुत आख्यान' शीर्षक से उपलब्ध होती है। इस रचना में नाटकीय तथा चमत्कारिक तत्वों की प्रधानता है।

पार्वतीनन्दन

भारतेन्दु युगीन कहानीकारों में पार्वतीनन्दन की लिखी हुई कहानियाँ विशेष रूप से लोकप्रिय हुई। उनकी लिखी हुई अधिकांश कहानियाँ 'सरस्वती' में प्रकाशित हो चुकी थी। उनकी 'प्रेम का फुव्वारा' शीर्षक कहानी भारतेन्दु युगीन कल्पनात्मक कहानियों की प्रवृत्ति से भिन्न एक समस्यात्मक कथावस्तु को आधार बनाकर लिखी गयी है। यह रचना सामाजिक समस्याप्रधान है जिसमें आधुनिक समाज में नारी

धर्म से सम्बन्धित कुछ समस्याओं पर विचार किया गया है। इस कहानी की नायिका हुसेन बीबी नामक एक पात्री है। कुरूपा होने के कारण उसका कहीं विवाह नहीं होता है। अन्त में वह घर छोड़कर निकल पड़ती है और एक बुढ़िया से उसकी भेंट के पश्चात् कहानी का अन्त होता है। पार्वतीनन्दन की लिखी हुई 'एक के दो दो' तथा 'मेरा पुनर्जन्म' आदि कहानियाँ भी भारतीय समाज और जीवन के विभिन्न पक्षों को आधार बनाकर लिखी गयी हैं, यद्यपि इनमें कल्पनात्मक दृष्टिकोण की ही प्रधानता है परन्तु इनमें उठायी गयी समस्याओं का आधार सामाजिक यथार्थता ही रही है।

बंगमहिला

हिन्दी कहानी के विकास के इस प्रारम्भिक युग में बंगमहिला का नाम भी उल्लेखनीय है। उनके द्वारा लिखी हुई अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध हुई। इनमें 'कुम्भ में छोटी बहू', 'दान प्रतिदान', 'दुलाई वाली', 'वालिया' आदि कहानियों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमे से कुछ कहानियाँ 'सरस्वती' के विभिन्न अंकों में प्रकाशित हो चुकी थी। बंगमहिला की कहानियों की प्रमुख विशेषता सामाजिक, पारिवारिक, विश्वसनीय वर्णनात्मकता तथा मनोवैज्ञानिकता है। कल्पनात्मक तत्वों की प्रधानता होते हुए भी उनमें मानवीय संवेदना का जो चित्रण मिलता है वह उनकी रचनाओं को कलात्मकता प्रदान करता है।

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

श्री गंगाप्रसाद अग्निहोत्री का जन्म सन् १८७० में तथा मृत्यु सन् १९३१ में हुई थी। उन्होंने मुख्यतः आलोचना साहित्य के क्षेत्र में कार्य किया है। पाश्चात्य आलोचनात्मक सिद्धान्तों की परिचयात्मक व्याख्या लिखने के साथ साथ उन्होंने उसका तुलनात्मक अध्ययन भी हिन्दी साहित्य के पाठकों के लिए प्रस्तुत किया है। कहानी के क्षेत्र में उनकी एक रचना 'सच्चाई का शिखर' शीर्षक से उपलब्ध होती है। यह कहानी भी युगीन प्रवृत्तियों से साम्य रखती है और इसमें भी कल्पनात्मक तत्वों की ही प्रधानता है।

भारतेन्दु युग के अन्य कहानीकार

उपर्युक्त कहानीकारों के अतिरिक्त अन्य भी अनेक कहानीकार ऐसे हुए हैं

जिन्होंने इस युग में हिन्दी कहानी के विकास में योगदान किया है। पं० महेन्द्र लाल शर्मा की लिखी हुई 'पेट की आत्मकहानी' शीर्षक रचना 'सरस्वती' के सितम्बर सन् १६०४ अंक में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी आत्म-कथात्मक शैली में लिखी गयी है तथा हास्य और व्यंग्य का समावेश इसकी प्रमुख विशेषता है। इस दृष्टिकोण से चाँदनी-लिखित 'प्रोषित-पतिका' शीर्षक रचना का नाम उल्लेखनीय है। श्री वेंकटेश नारायण तिवारी लिखित 'एक अशर्फी की आत्म-कहानी' शीर्षक रचना भी नाटकीयता और कल्पनात्मकता के तत्वों से परिपूर्ण है। यह रचना आत्म कथात्मक शैली में प्रथम पुरुष के रूप में प्रस्तुत की गयी है। श्री उदय नारायण वाजपेयी लिखित 'जननी जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' शीर्षक कहानी भी इसी काल में प्रकाशित हुई थी। श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी लिखित 'तीक्ष्ण छुरी' शीर्षक रचना का नाम भी इसी युग में प्रकाशित कहानियों में उल्लेखनीय है। श्री प्रेमनाथ भट्टाचार्य लिखित 'पक्का गठबंधन' शीर्षक कहानी आदर्शवादी दृष्टिकोण-प्रधान है। श्री सत्यदेव कृत 'कीर्ति कालिमा' नामक कहानी कल्पनात्मक तत्वों से युक्त है। इसी युग में प्रकाशित, मधुमंगल लिखित 'भुतही कोठी' नामक कहानी मुख्यतः चमत्कारिक तत्वों की प्रधानता लिये हुए है। आत्मपरक शैली में लिखी गयी रचनाओं में श्री शालिगराम लिखित 'एक ज्योतिषी की आत्मकथा' नामक रचना का भी उल्लेख किया जा सकता है। श्री कुन्दन लाल शाह की लिखी हुई 'प्रत्युपकार का एक अद्भुत उदाहरण'-शीर्षक कहानी भी इसी युग में प्रकाशित हुई थी। विशुद्ध कल्पना को आधार बनाकर लिखी गयी कहानियों में श्री शिव नारायण शुक्ल लिखित 'सात कुमार' नामक रचना का नाम भी यहाँ उल्लिखित किया जा सकता है। श्री प्यारेलाल गुप्त लिखित 'समालोचक' कहानी हिन्दी गल्प-माला में प्रकाशित हुई थी। इसी पत्रिका में श्रीमती फूलदेवी लिखित 'बड़े घर की बेटी' तथा रुद्रदत्त भट्ट लिखित 'अजीबदास की जासूसी' नामक एक रहस्य रोमांच युक्त कहानी भी प्रकाशित हुई थी।

इस प्रकार से भारतेन्दु युग से हिन्दी कहानी के इतिहास का प्रथम विकास काल आरम्भ होता है। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, प्राचीन नीति साहित्य, लोक साहित्य तथा जातक साहित्य आदि की पृष्ठभूमि पर आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य की रचना आरम्भ हुई। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाचरण गोस्वामी, किशोरीलाल गोस्वामी, रामचन्द्र शुक्ल, केशव प्रसाद सिंह, गिरिजादत्त वाजपेयी, कार्तिक प्रसाद खत्री, पार्वतीनन्दन, यशोदानन्दन अखौरी, महेन्द्रलाल गर्ग, सूर्यनारायण दीक्षित,

बंग महिला, उदयनारायण वाजपेयी, लक्ष्मीधर वाजपेयी, कुन्दनलाल शाह, शिवनारायण शुक्ल तथा गंगाप्रसाद अग्निहोत्री आदि कहानीकारों ने इस नवीन साहित्यिक विधा के क्षेत्र में अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया। 'सरस्वती', 'इंदु' तथा 'हिन्दी गल्प माला' आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी अनेक कहानियाँ छपीं और उनसे हिन्दी कहानी को विकास की दिशाएँ मिली। इस युग में लिखी गयी अधिकांश कहानिय. कल्पनात्मक तत्व को आधार बनाकर सामाजिक कथा की प्रवृत्ति से सम्बन्धित हैं। हिन्दू समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था का विरोध, आर्थिक वर्ग विभाजन की अव्यावहारिकता, प्राचीन परम्पराओं की अनुपयोगिता, धर्म भावना का खोखलापन, सामंतवाद का ह्रास तथा आधुनिक शिक्षा के प्रचार, प्रसार और गुण दोषों से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ इस युग की कहानियों में मिलती है। नारी समाज में होने वाली जागृति और सुधार की ओर भी इस युग के कहानी साहित्य मे सकेत मिलते है। सामाजिक व्यवस्था के परम्परागत स्वरूप में कितनी तीव्र गति से परिवर्तन आविर्भूत हो रहे थे इस तथ्य का आभास इस युग के कहानी साहित्य में संकेत रूप मे विद्यमान था। सामाजिक प्रवृत्ति के अतिरिक्त जासूसी प्रवृत्ति से सम्बन्धित भी कुछ कहानियां इस युग मे लिखी गयी। हिन्दी कहानी के इस प्रथम विकास युग में जो विषय विस्तार मिलता है, उसके प्रभावस्वरूप आगामी युग मे कहानी साहित्य का सम्यक् विस्तार हुआ तथा उसमें कलात्मक परिपूर्णता के साथ साथ दृष्टिकोणगत प्रौढता भी आयी।

द्वितीय विकास काल

हिन्दी कहानी साहित्य के इतिहास में द्वितीय विकास काल प्रेमचंद युग को कहा जा सकता है। इस युग में हिन्दी कहानी का विशेष रूप से विकास हुआ। इस काल में पूर्ववर्ती युग की सभी प्रवृत्तियां विकासशील रही और अनेक नयी प्रवृत्तियों का आविर्भाव हुआ। इस युग में विविध कहानीकारों ने मानव समाज और मानव जीवन के प्राय: सभी पक्षो से सम्बन्धित समस्याओं पर कहानी साहित्य की रचना की। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार प्रेमचन्द का आविर्भाव भी इसी युग में हुआ, जिन्होंने अपनी कहानियों से हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में एक नवीन क्रान्ति उत्पन्न कर दी। नीचे प्रेमचन्द तथा उनके युग के प्रतिनिधि कहानीकारों से सम्बन्धित संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण उपस्थित किया जा रहा है।

प्रेमचन्द

मुंशी प्रेमचन्द का जन्म सन् १८८० में तथा मृत्यु सन् १९३६ में हुई थी। उनका वास्तविक नाम धनपतराय था परन्तु साहित्य जगत में वह प्रेमचन्द के नाम से ही विख्यात हैं। अनेक संघर्षों से युक्त जीवन के विविध रूपों का परिचय पाने के पश्चात अन्त में प्रेमचन्द ने अपना जीवन साहित्य को समर्पित कर दिया। उनकी मुख्य देन कथा साहित्य के क्षेत्र में ही है। अनेक श्रेष्ठ उपन्यासों की रचना करने के साथ साथ उन्होंने लगभग २०० कहानियां भी लिखी। ये कहानियां विभिन्न संग्रहों मे प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रेमचन्द के प्रमुख संग्रहों में सन् १९१८ में प्रकाशित 'सप्त सरोज', सन् १९१८ में प्रकाशित 'नवनिधि', सन् १९२० में प्रकाशित 'प्रेम पूर्णिमा', सन् १९२१ मे प्रकाशित 'बड़े घर की बेटी', 'लाल फीता' तथा 'नमक का दारोगा', सन् १९२३ में प्रकाशित 'प्रेम पचीसी', सन् १९२४ में प्रकाशित 'प्रेम प्रसून', सन् १९२६ में प्रकाशित 'प्रेम द्वादसी', 'प्रेम प्रतिमा' तथा 'प्रेम प्रमोद', सन् १९२९ में प्रकाशित 'प्रेम तीर्थ', 'पांच फूल', 'प्रेम चतुर्थी' तथा 'प्रेम प्रतिज्ञा', सन् १९३० में प्रकाशित 'सप्त सुमन', सन् १९३२ मे प्रकाशित 'प्रेरणा' तथा 'समर यात्रा', सन् १९३४ मे प्रकाशित 'पंच प्रसून' तथा १९३५ मे प्रकाशित 'नवजीवन' आदि है। इनके अतिरिक्त प्रेमचन्द के कुछ अन्य संग्रह भी प्रकाशित हुए है जिनमे उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ संगृहीत हैं। इनमें सन् १९२४ मे प्रकाशित 'बैंक का दीवाला', सन् १९२७ में प्रकाशित 'शान्ति', सन् १९२९ मे प्रकाशित 'अग्नि समाधि', १९३७ में प्रकाशित 'कफन और शेष रचनाएँ', सन् १९३८ में प्रकाशित 'नारी जीवन की कहानियाँ' तथा सन् १९४१ में प्रकाशित 'प्रेम पीयूष' आदि हैं। सन् १९२९ में प्रकाशित 'गल्परत्न', सन् १९३३ में प्रकाशित 'प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानिया' सन् १९३८ मे प्रकाशित 'गल्प समुच्चय', सन् १९३७ मे प्रकाशित 'गल्प संसारमाला' आदि में भी प्रेमचन्द की कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। 'ग्राम्य जीवन की कहानिया' शीर्षक से भी उनकी कहानियों का एक संग्रह उपलब्ध होता है। उपर्युक्त सभी सग्रहों मे प्रकाशित लगभग समस्त कहानियाँ 'मानसरोवर' शीर्षक से आठ पृथक् भागों में भी प्रकाशित हो चुकी है।

प्रेमचन्द के उपर्युक्त संग्रह इस तथ्य की ओर संकेत करते है कि रचना क्षेत्र के विस्तार और परिमाण की दृष्टि से प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार हैं। उन्होंने अपने समकालीन तथा परवर्ती कहानी लेखकों को व्यापक रूप से

प्रभावित किया है। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों को उठाते हुए वर्ग वैषम्य एवं विकृत रूढ़ियों का तीव्र विरोध किया है। सुधारवाद प्रेमचन्द की कहानियों का मूल स्वर है। प्रेमचन्द चाहते थे कि भारतीय ग्रामीण तथा नागरिक जनता शोषण और कुंठाओं की जिन विकृतियों से ग्रस्त है उनसे मुक्ति पाकर स्वच्छंद जीवन का अनुभव करे। अनेक करुणोत्पादक परिस्थितियों में प्रेमचन्द ने अपने विभिन्न पात्रों को चित्रित करते हुए सामाजिक यथार्थ के विभिन्न रूपों का उद्घाटन किया है। उनका आदर्शवादी दृष्टिकोण और सुधारवादी भावना लगभग सभी कहानियों की पृष्ठभूमि में विद्यमान है। प्रेमचन्द गांधीवाद के प्रमुख समर्थक थे। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने गांधीवादी आदर्शों की व्यावहारिक परिणति प्रस्तुत की। ग्रामीण और नागरिक समाज के सभी रूप प्रेमचन्द ने अपने कहानी साहित्य के व्यापक परिवेश में समाविष्ट कर लिये। कृषक तथा श्रमिक वर्गों का जो चित्रण प्रेमचन्द ने अपनी कहानियो मे किया है वह गम्भीर मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के सूक्ष्म अंकन से युक्त है। प्रेमचन्द ने संभवतः हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में पहली बार ग्रामीण समाज का सागोपाग चित्रण प्रस्तुत किया। 'पूस की रात' जैसी कहानियों में महाजनी ऋण से ग्रस्त कृषक का जो चित्र प्रेमचन्द ने खीचा है वह अन्यतम है। वर्गगत समस्याओ पर भी प्रेमचन्द की अनेक कहानियाँ लिखी गयी हैं। शोषक और शोषित वर्गो के अन्तर्गत प्रेमचन्द ने जमींदार, महाजन, अधिकारी तथा कृषक, श्रमिक एवं बुद्धिजीवी वर्गों का चित्रण किया है। 'डिग्री के रुपये', 'बलिदान' तथा 'विध्वंस' शीर्षक कहानियाँ प्रेमचन्द की वर्ग भावना का स्पष्टीकरण करती हैं। भारतीय समाज के प्रायः सभी वर्गों मे अन्धविश्वास और मिथ्याडम्बर का जो रोग लगा हुआ है, उसका भी प्रेमचन्द ने अपनी अनेक कहानियों में चित्रण किया है। 'सवा सेर गेहूं' तथा 'नेउर' जैसी कहानियाँ इसके प्रतिनिधि उदाहरण है। ग्रामीण समाज पर व्यापक दृष्टिकोण से विचार करते हुए प्रेमचन्द ने यह बताया है कि उनके अधिकांश अभिशापो का कारण उनका अन्धविश्वास और निर्धनता है। उन्होंने 'कफन', 'सद्गति', 'सवा सेर गेहूँ' 'मन्दिर', 'मुक्ति मार्ग', 'सुजान भगत', तथा 'बेटी का धन' आदि कहानियों में इसी तथ्य को प्रस्तुत किया है। 'मुक्ति मार्ग' शीर्षक कहानी में प्रेमचन्द ने सरल हृदय ग्रामीणो के मस्तिष्क में रोग के कीटाणुओं की तरह पनपने वाली कुटिल भावनाओं का चित्रण किया है। प्रेमचन्द ने इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर भी संकेत किया है कि ग्रामीण और नागरिक समाज में परम्परागत पारिवारिक

व्यवस्था पूर्णरूपेण नष्ट हो चुकी है। जो ज्वलंत समस्याएं समाज के सामने हैं उनमें प्रेमचन्द ने अस्पृश्यता की भावना को भी उठाया है। 'सफेद खून' तथा 'ठाकुर का कुआं' आदि कहानियाँ अस्पृश्यता तथा हरिजन कल्याण पर ही आधारित हैं। कृषक जीवन की एक बहुत बड़ी विडम्बना, प्रेमचन्द ने उनका नियति पर अखंड विश्वास बताया है। इस प्रकार के अन्धविश्वास ग्रामीण समाज को अकर्मण्य बनाते हैं।

प्रेमचन्द की कहानियों में एक बहुत बड़ी संख्या ऐसी रचनाओं की भी है जिनका सम्बन्ध नागरिक पात्रों से है। समाज के उच्च, मध्य और निम्न वर्गों का भी व्यापक चित्रण उन्होंने प्रस्तुत किया है। राजनीति, नागरिक समाज में जहाँ दूषित रूप व्याप्त हो गया है वह उसे अभिशप्त बनाये दे रही है। ग्रामीण समाज में यदि एक ओर महाजन वर्ग आर्थिक शोषण करता है तो नागरिक समाज में पूँजीपति वर्ग। प्रेमचन्द ने पूँजीपतियों तथा महाजनों के द्वारा नागरिक समाज के विभिन्न वर्गों का शोषण होने के अनेक सूत्र अपनी कहानियों में उठाये हैं। प्रेमचंद का यह मत है कि नागरिक जीवन का सबसे अधिक अभिशप्त वर्ग मध्यवर्ग है। यह वर्ग अनेक प्रकार की मिथ्या भावनाओं, कुंठाओं, रूढ़ियों और विकृतियों से ग्रस्त है। इसी के साथ प्रेमचन्द ने निम्न वर्ग का भी चित्रण किया है, जिसमें नागरिक अंचलों में रहने वाले श्रमिक वर्ग के पात्र आ जाते हैं।

नारी जीवन से भी सम्बन्धित अनेक कहानियाँ प्रेमचन्द ने लिखी। उन्होंने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से यह संकेत स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है कि नारी समाज में नवीन चेतना का जागरण एक युगीन आवश्यकता है। भारतीय नारी समाज में शिक्षा के विकास के साथ साथ निश्चित रूप से प्रगतिशीलता का आविर्भाव होगा। जब तक ऐसा नहीं होता तब तक भारतीय नारी परम्परागत कुरीतियों से ग्रस्त होकर अपना बलिदान करती रहेगी। प्रेमचन्द ने नारी जीवन के विभिन्न पक्षों का विस्तार से चित्रण अपनी कहानी में करते हुए नारी के सभी रूपों का अंकन किया है। उनके विचार से भारतीय नारी का आदर्श रूप प्राचीन भारत की गरिमा के अनुरूप ही होना चाहिए। इस दृष्टिकोण से वह भारतीय नारी के पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित आधुनिक स्वरूप को वांछनीय नहीं समझते थे। उनका मत है कि सेवा और त्याग का आदर्श ही नारी जीवन का उन्नयन कर सकता है। 'आभूषण', 'घर जमाई', 'दो सखियाँ', 'सौभाग्य के कोड़े', 'प्रेम का उदय', 'मर्यादा की वेदी', 'नरक का मार्ग', 'स्त्री और

'पुरुष', 'लांछन' तथा 'दो बहनें' आदि कहानियाँ उनके नारी जीवन के आदर्श को अभिव्यक्त करती हैं।

अपनी अनेक कहानियों में प्रेमचन्द ने पारिवारिक और गार्हस्थ्य जीवन के विविध रूप चित्रित किये हैं। प्रेमचन्द ने यह स्पष्ट रूप से संकेत किया है कि समाज में संयुक्त परिवार की प्रथा का इतना ह्रास होगा कि वह लगभग समाप्त हो जायगी। यह तथ्य ग्रामीण और नागरिक दोनों ही के सन्दर्भ मे सत्य है। प्रेमचन्द का यह भी विचार है कि नवीन सांस्कृतिक और सामाजिक जागरण के नाम पर पाश्चात्य जीवन के आधुनिक समाज का जो अन्धानुकरण भारतीय समाज में हो रहा है वह सुधार भावना को तो अवश्य जन्म देता है, परन्तु उससे अनेक सामाजिक विकृतियाँ भी उत्पन्न होती हैं। इसीलिए प्रेमचन्द ने परिवार और गार्हस्थ जीवन के आदर्श रूप में भारतीय सिद्धान्तो के अनुगमन को ही श्रेयस्कर बताया है। अनेक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रधान कहानियो की रचना करके प्रेमचन्द ने अपने इस विचार की पुष्टि की है। 'वज्रपात', 'मनोवृत्ति', 'बडे घर की बेटी', 'नमक का दारोगा', 'माता का हृदय', 'अलग्योझा' तथा 'अमावस्या की रात' आदि कहानियाँ इसी शैली की है।

इस प्रकार से मुंशी प्रेमचन्द ने अपने कहानी साहित्य में भारत के जन जीवन को एक व्यापक आधार भूमि पर प्रस्तुत किया है। बीसवी शताब्दी के प्रथम तीन दशकों के भारत का जितना विराट् स्वरूप प्रेमचन्द की कहानियों मे मिलता है उतना अन्य किसी लेखक की रचनाओं में नही चित्रित हुआ है। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में यदि एक ओर भारतीय परम्परागत आदर्शों; विशेष रूप से त्याग, सेवा और बलिदान का समर्थन किया है तो दूसरी ओर परम्परागत कुरीतियों के त्याग का भी समर्थन किया है। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के अन्धानुकरण को प्रेमचन्द ने भारतीय समाज के भावी विकास के लिए श्रेयस्कर नही बताया है। वर्ग विभाजन के प्रति प्रेमचन्द का दृष्टिकोण आर्थिक और धार्मिक और सामाजिक तत्वों पर आधारित है। किसी भी रूप में प्रेमचन्द ने किसी भी प्रकार के शोषण का समर्थन नहीं किया है। पूंजीपतियों के शोषण के विरुद्ध उन्होंने विशेष रूप से आवाज उठायी और उनके द्वारा होने वाले शताब्दियों के शोषण कार्य को प्रेमचन्द ने हेय बताया। इसी प्रकार से महाजन वर्ग के शोषण का भी प्रेमचन्द ने विरोध किया है। प्रेमचन्द का यह अनुमान है कि समाज में सबसे अधिक पीड़ित वर्ग मध्यमवर्ग है, जो मिथ्याडम्बर,

विकृत शिक्षा तथा अदूरदर्शिता के कारण स्वयं को संकट में डाले हुए है। निम्न वर्ग की मुख्य समस्या अशिक्षा है। ग्रामीण समाज में यदि शिक्षा का प्रचार हो जाय तो अधिकांश सामाजिक दुर्गुण समाप्त हो जायंगे। नारी जीवन की समस्याओं, अछूतों की समस्याओं, पारिवारिक समस्याओं, नैतिक समस्याओं के साथ साथ मनोवैज्ञानिक समस्याओं के प्रति भी प्रेमचन्द का दृष्टिकोण व्यावहारिकता लिये हुए है। इस युग में प्रेमचन्द के अतिरिक्त अनेक अन्य लेखकों ने कहानी साहित्य के विकास में योगदान किया। उनके सम्बन्ध में संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'

श्री चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' का जन्म सन् १८८३ में तथा मृत्यु सन् १९२० में हुई थी। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने मुख्यतः कहानी, निबन्ध, आलोचना तथा भाषा शास्त्र के क्षेत्र में कार्य किया है। उनकी प्रसिद्धि का मुख्य कारण उनकी लिखी हुई 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी है जिसका प्रकाशन सन् १९१५ में 'सरस्वती' नामक पत्रिका में हुआ। इससे पूर्व उनकी एक कहानी सन् १९११ के 'भारत मित्र' मे 'सुखमय जीवन' शीर्षक से भी प्रकाशित हो चुकी है। उनकी तीसरी और अन्तिम कहानी 'बुद्धू का काँटा' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। केवल तीन ही कहानियों के आधार पर हिन्दी कहानी साहित्य में गुलेरीजी ने अपना अमर स्थान बना लिया है। उनकी लिखी हुई प्रथम रचना 'सुखमय जीवन' प्रेम और कर्त्तव्य के अन्तर्द्वन्द्व पर आधारित है। 'बुद्धू का काँटा' भी न्यूनाधिक रूप से इसी प्रकार की विषय वस्तु और समस्या पर आधारित है। 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी का कथानक अपेक्षाकृत उच्च संगठनात्मकता लिये हुए है। यद्यपि इस कहानी में भी नाटकीय तत्वों का अभाव नही है, परन्तु आदर्शवाद का जो परम्परागत रूप इस कहानी में मिलता है वह समकालीन चेतना का प्रतीक है।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' का जन्म सन् १८९१ में तथा मृत्यु सन् १९४५ में हुई थी। उनकी लिखी हुई सर्वप्रथम कहानी 'रक्षाबन्धन' शीर्षक से सन् १९१३ में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। उनके प्रतिनिधि कहानी संग्रहों में सन् १९१९ में

प्रकाशित 'मणिमाला', सन् १९२४ में प्रकाशित 'चित्रशाला' (दो भाग) तथा सन् १९३३ में प्रकाशित 'कल्लोल' है। कौशिकजी की कहानियों में आदर्शवादी दृष्टिकोण से नीति सिद्धान्तों का पुष्टीकरण मिलता है। जमींदार वर्ग, कृषक वर्ग तथा निम्न वर्ग के परम्परागत संस्कारों और मनोवृत्तियों का चित्रण उन्होंने अपनी रचनाओं में सफलतापूर्वक किया है। सामाजिक रूढियों और कुरीतियों, विशेष रूप से परदा प्रथा, बाल विवाह, स्त्री शिक्षा तथा पारिवारिक विघटन आदि के विषय में उन्होंने विस्तार से विचार किया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का समावेश भी उनकी कहानियों में मिलता है। 'तीर्थ', 'पाप का फल', 'माता का हृदय', 'मोह' तथा 'रक्षाबन्धन' आदि उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

जयशंकर 'प्रसाद'

श्री जयशंकर 'प्रसाद' का जन्म सन् १८८९ तथा मृत्यु सन् १९३७ में हुई थी। उनकी मुख्य देन यद्यपि हिन्दी कविता के क्षेत्र में है, परन्तु कहानी साहित्य के विकास में भी उनका योगदान असाधारण है। उनकी कहानियों के प्रतिनिधि संग्रहों में सन् १९२२ में प्रकाशित 'छाया', सन् १९२६ में प्रकाशित 'प्रतिध्वनि', सन् १९२९ में प्रकाशित 'आकाशदीप', सन् १९३१ मे प्रकाशित 'आँधी' तथा सन् १९३६ में प्रकाशित 'इन्द्रजाल' हैं। प्रसादजी ने ऐतिहासिक विषयों पर विश्वसनीय कथानक से युक्त कहानियाँ लिखी हैं। ऐतिहासिक यथार्थ के साथ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का समावेश और आदर्शवादी दृष्टिकोण की लिहिति उनकी कहानियों की सर्वप्रथम विशेषता है। 'तानसेन', 'जहाँआरा', 'अशोक', 'सिकन्दर की शपथ', 'ममता' तथा 'चित्तौर उद्धार' आदि कहानियाँ इसी कोटि की हैं। प्रेम की कोमल अभिव्यंजना के साथ साथ विभिन्न परिस्थितियों में मानवीय हृदय की प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं का चित्रण भी प्रसाद की कहानियों में प्रभावशाली रूप में मिलता है। ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों ही विषयों पर लिखी गयी उनकी कहानियाँ भारतीय जीवन के परम्परागत आदर्शों, त्याग, भावात्मक कोटि की भी हैं। इनमें 'हिमालय का पथिक', 'प्रणय चिह्न' तथा 'रूप की छाया' आदि मुख्य हैं। अपने युग के अधिकांश कथाकारों की भाँति जयशंकर 'प्रसाद' ने भी स्त्री शिक्षा विषयक अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इनके विचार से भारतीय नारी के गुण क्षमा, शील और बलिदान आदि हैं। नारी हृदय की कोमल अनुभूतियों के साथ साथ प्रसाद ने नारी जीवन के साहसिक पक्ष का

भी चित्रण मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व के आधार पर प्रस्तुत किया है। संक्षेप में प्रसाद की कहानियों की मुख्य विशेषता आदर्श और यथार्थ का समन्वय है। 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'ममता', 'रूप की छाया', 'सलीम', 'परिवर्तन', 'करुणा की विजय', 'आँधी' तथा 'मधुआ' आदि इस दृष्टिकोण से उनकी प्रतिनिधि कहानियाँ कही जा सकती हैं।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म सन् १८९६ में हुआ था। उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय साहित्य की विभिन्न विधाओं के क्षेत्र में दिया। कविता, उपन्यास, कहानी, आलोचना आदि क्षेत्रों में उन्होंने अपनी महत्वपूर्ण देन प्रस्तुत की। उनके प्रतिनिधि कहानी संग्रहों में 'लिली', 'चतुरी चमार', 'सखी', 'सुकुल की बीबी' तथा 'अपना घर' आदि हैं। निराला की कहानियों की प्रमुख विशेषता उनमें निहित देशप्रेम तथा राष्ट्रीयता की भावनाएँ हैं। निराला की कहानियों में भारतीय समाज में जो रूढियाँ व्याप्त हैं तथा जो सामाजिक ह्रास का मूल कारण हैं उनका तीव्र विरोध हुआ है। इसीलिए उनकी रचनाओं में कहीं कहीं पर यथार्थवादी दृष्टिकोण की ही प्रधानता रही है। 'श्रीमती गजानन्द शास्त्री', 'ज्योतिर्मयी', 'राजा साहब का ठेंगा', 'चतुरी चमार', 'दो दाने' तथा 'सफलता' शीर्षक कहानियों में निराला ने विभिन्न समस्याओं पर विचार करते हुए उनका व्यावहारिक निदान प्रस्तुत किया है। शोषण की समस्या, पारिवारिक जीवन की समस्याएँ, नारी जीवन की समस्याएँ, धार्मिक क्षेत्रीय समस्याएँ तथा राष्ट्रीय चेतना के जागरण का आवाहन आदि निराला की कहानियों के मुख्य विषय हैं। निराला का विचार है कि आस्तिकता और नास्तिकता का द्वन्द्व सामाजिक मान्यताओं में अस्थिरता लाता है। उन्होंने भारतीय साहित्य के परम्परागत आदर्शों—सत्यं, शिवं, सुन्दरम् को आदर्श रूप में मान्य किया है। सामाजिक क्षेत्र में विधवा समस्या, वेश्या समस्या, हरिजन समस्या, स्त्री स्वातंत्र्य की समस्या, स्वच्छंद प्रेम की समस्या, धार्मिक पाखंड की समस्या तथा शोषण आदि की समस्याओं के प्रति उन्होंने अपने विचार प्रकट किये हैं और उनका निराकरण करने के उपाय बताये हैं। समकालीन वैचारिक आन्दोलनों की पृष्ठभूमि में निराला का राष्ट्र के प्रति संदेश भी सामाजिक, राजनीतिक चेतना के आवाहन के रूप में उनकी कहानियों में निहित है।

चतुरसेन शास्त्री

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का जन्म सन् १८६१ में तथा मृत्यु सन्१६६० में हुई थी। उन्होंने कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास, गद्य काव्य, नाटक, इतिहास, धर्मशास्त्र, राजनीति, चिकित्साशास्त्र आदि विषयों पर भी ग्रन्थ रचना की थी। उनकी लिखी हुई १८६ कृतियां प्रकाशित हो चुकी है। लगभग ५२ कृतियाँ अभी अप्रकाशित हैं जो क्रमशः प्रकाश में आ रही हैं। शास्त्रीजी की लिखी हुई कहानियों की संख्या लगभग ४५० है। ये कहानियाँ सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विषयों पर लिखी गयी हैं। उनके प्रतिनिधि कहानी संग्रह 'बाहर भीतर', 'दुखवा मै कासे कहूँ', ,धरती और आसमान', 'सोया हुआ शहर' तथा 'कहानी खत्म हो गयी' आदि हैं। इनके अतिरिक्त शास्त्री जी के पूर्व प्रकाशित कहानी संग्रहों में सन् १६३१ में प्रकाशित 'अक्षत', सन् १६३३ में प्रकाशित 'रजकण', सन् १६४८ में प्रकाशित 'नवाब ननकू', सन् १६५१ में प्रकाशित 'लम्बग्रीव', 'पीर नाबालिग' तथा 'बर्मा रोड', सन् १६४५ में प्रकाशित 'सफेद महुआ' तथा 'राजा साहब की पतलून' तथा सन् १६५६ मे प्रकाशित 'मेरी प्रिय कहानियाँ' आदि हैं। चतुरसेन शास्त्री की लिखी हुई सामाजिक कहानियों में मुख्यतः नारी जीवन की समस्याओं, प्रशासकीय समस्याओ तथा सामाजिक कुरीतियों को उठाया गया है। 'विधवा आश्रम', 'पतिता', 'टार्चलाइट', 'ठकुरानी', 'सरिता', 'कन्यादान', 'प्रणय पथ' आदि उनकी प्रतिनिधि सामाजिक कहानियाँ है। विधवा समस्या, वेश्या समस्या, स्त्री शिक्षा की समस्या, दहेज की समस्या, स्वच्छंद प्रेम की समस्या, अनमेल विवाह की समस्या तथा पारिवारिक जीवन की समस्याएँ इन कहानियों मे मिलती है। 'अम्बपालिका', 'चन्द्रहास', 'अभिमन्यु', 'उपमन्यु', 'प्रबुद्ध', 'पाँच पाडव', 'प्रह्लाद', 'गरुडजी', 'ध्रुव उतंक' तथा 'पितृभक्त श्रवण' आदि धर्म भावना प्रधान कहानियाँ हैं। ऐसी कुछ कहानियाँ शास्त्रीजी के 'आदर्श बालक' नामक संग्रह में भी प्रकाशित हुई थी। ऐतिहासिक प्रवृत्तियों पर आधारित कहानियों मे 'हठी हम्मीर', 'सिंहगढ़ विजय', 'जैसलमेर की राजकुमारी', 'टीपू सुलतान', 'सोया हुआ शहर', 'हैदरअली' तथा 'विश्वासघात' आदि हैं। ये सभी कहानियाँ मुगल काल तथा ब्रिटिश कालीन इतिहास से सम्बन्धित हैं। इनके पात्र अधिकांशतः इतिहास सम्मत है जिनमें लेखक ने ऐतिहासिकता और काल्पनिकता का समन्वय प्रस्तुत किया है। राजनीतिक प्रवृत्तियों के अन्तर्गत भी शास्त्रीजी ने अनेक कहानियाँ लिखी हैं जिनमें 'मुखबिर', 'क्रान्तिकारिणी',

'धारंट' तथा 'लौहपुरुष' आदि प्रमुख हैं। राजनीति के क्षेत्र में शास्त्रीजी के विचारों पर महात्मा गांधी के सिद्धान्तों का विस्तृत प्रभाव मिलता है। मनोवैज्ञानिक तत्वों का समावेश शास्त्रीजी की लिखी हुई अधिकांश कहानियों में मिलता है। मूलतः उदात्त नैतिक आदर्शों के आधार पर शाश्वत जीवन मूल्यों में आस्था का संकेत शास्त्रीजी के कहानी साहित्य में विद्यमान है।

पांडेय बेचनशर्मा 'उग्र'

श्री पांडेय बेचनशर्मा 'उग्र' का जन्म सन् १९०० में हुआ था। उन्होंने कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास, नाटक, पत्रकारिता आदि क्षेत्रों में भी कार्य किया। उनकी प्रतिनिधि कहानियाँ 'इन्द्रधनुष', 'दोजख की आग', 'चिनगारियाँ', 'रेशमी', 'निर्लज्ज', 'बलात्कार', 'गल्पांजलि', 'चाकलेट', 'सनकी अमीर', 'पोली इमारत', 'यह कंचन की काया', 'कला का पुरस्कार', 'काल कोठरी', 'चित्र विचित्र' तथा 'उग्र की श्रेष्ठ कहानियाँ' आदि संग्रहों में प्रकाशित हो चुकी हैं। धर्म क्षेत्रीय पाखंड, सामाजिक कुरीतियों से सम्बन्धित समस्याएँ, नवीन सभ्यता के दोष आदि समस्याओं को लेकर उग्रजी ने समाज सुधार के दृष्टिकोण को प्रधान रखा है। उनका मुख्य स्वर विद्रोही है। इसलिए अपनी अनेक कहानियों में उन्होंने सामाजिक जीवन के अभिशप्त, विकृत और घृणित पक्षों को प्रस्तुत करते हुए उनका करुणोत्पादक चित्रण उपस्थित किया है। देश प्रेम और राष्ट्र प्रेम की उदात्त भावनाएँ भी उनके कहानी साहित्य में मिलती हैं। यथार्थपरक सामाजिक दृष्टिकोण का आधार लेकर उन्होंने व्यंग्यात्मक भाषा शैली में सामाजिक रूढियों की निरर्थकता सिद्ध की है।

जैनेन्द्रकुमार

श्री जैनेन्द्र कुमार का जन्म सन् १९०५ में हुआ था। कहानी साहित्य के अतिरिक्त उन्होंने मुख्यतः उपन्यास रचना के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनके प्रमुख कहानी संग्रह सन् १९२९ में प्रकाशित 'फांसी', सन् १९३० में प्रकाशित 'वातायन', सन् १९३३ में प्रकाशित 'नीलम देश की राजकन्या', सन् १९३४ में प्रकाशित 'एक रात', सन् १९३५ में प्रकाशित 'दो चिड़िया', सन् १९४१ में प्रकाशित 'पाजेब' तथा सन् १९४९ में प्रकाशित 'जयसन्धि' आदि हैं। बाद में जैनेन्द्र की लिखी हुई समस्त कहानियां 'जैनेन्द्र की कहानियां' शीर्षक से सात पृथक् पृथक् भागों में प्रकाशित हुई हैं। इनमें से पहले भाग में राष्ट्रीय और क्रान्तिकारी कहानियाँ, दूसरे भाग में

बाल मनोविज्ञान और वात्सल्य की कहानियाँ, तीसरे भाग में दार्शनिक और प्रतीकात्मक कहानियाँ, चौथे भाग में प्रेम और विवाह सम्बन्धी कहानियाँ, पाँचवें भाग में प्रेम के विविध रूपों की कहानियाँ, छठे भाग में सामाजिक कहानियाँ तथा सातवें भाग में अन्य कहानियाँ हैं। जैनेन्द्र के साहित्यिक व्यक्तित्व के बहुरूपी पक्षों का परिचय उनके कहानी साहित्य से भी मिलता है। बौद्धिकता, दार्शनिकता, निराशा, कुंठा आदि के साथ साथ सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि उनकी विविध विषयक कहानियों में निहित मिलती है। मध्यवर्गीय जीवन, मनोवैज्ञानिक समस्याओं, राजनीतिक क्षेत्रीय समस्याओं तथा सामाजिक विडम्बनाओं से सम्बन्धित विषयों को जैनेन्द्र ने अपनी कहानियों का विषय बनाया है।

इस प्रकार से प्रेमचन्द युग में कहानी साहित्य का जो विकास हुआ है उसमें प्रमुख योगदान उपर्युक्त लेखकों का ही है। इन्होंने प्रेमचन्द युग में विकासशील सभी कहानी प्रवृत्तियों के क्षेत्र में योगदान किया। इन लेखकों के कहानी साहित्य में सामाजिक परिस्थितियों का सम्यक् चित्रण हुआ है। सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था जिन आन्दोलनों और क्रान्तियों के फलस्वरूप प्रभावित हुई उसकी ओर भी संकेत मिलते हैं। प्रेमचन्द युग राजनीतिक दृष्टिकोण से सक्रियता का युग था। विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं के पारस्परिक विरोध और उनके प्रतिक्रियात्मक बल पाने वाले राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप भी प्रेमचन्द युगीन कहानी साहित्य में स्पष्ट हुआ है। इस युग में लिखा गया कहानी साहित्य समकालीन जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना के साथ साथ सांस्कृतिक चेतना का भी परिचय देता है। भारतीय सांस्कृतिक विकास में इस युग में व्याप्त परिस्थितियों ने कितना योगदान किया है यह भी उससे स्पष्ट होता है। आलोच्य युग में धर्म के क्षेत्र से सम्बन्धित जो अनेक आन्दोलन हुए उन्होंने समकालीन धार्मिक परिस्थितियों और समस्याओं का निर्मूलन करने के उद्देश्य से मूलतः मानववादी धर्म भावना पर बल दिया। साम्प्रदायिक समस्याएँ भी प्रेमचन्द युगीन कहानी साहित्य में बहुलता से मिलती हैं। अनेक जातियों से निर्मित भारतीय समाज से पारस्परिक साम्प्रदायिक वैमनस्य को समाप्त करने के लिए इस युग के चिन्तक कृतसंकल्प रहे। महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने हरिजन उद्धार तथा सामाजिक समानता पर बल दिया। कुछ कहानीकारों ने सामान्य जीवन मूल्यों में सन्तुलन लाने के विचार से उसमें उदात्त आदर्शों की निहिति पर बल दिया। इस प्रकार से प्रेमचन्द युगीन

कहानी साहित्य अपने विशद् परिवेश में भारतीय जीवन के विभिन्न पक्षों को समाविष्ट किये हुए है।

तृतीय विकास काल

हिन्दी कहानी के इतिहास का तृतीय विकास काल प्रेमचन्दोत्तर युग को कहा जा सकता है। इस युग में कहानी साहित्य के क्षेत्र में सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, मनोविश्लेषणात्मक आदि प्रवृत्तियों के साथ-साथ बौद्धिक प्रवृत्तियों का भी विकास हुआ। इस युग में राजनीतिक विचारधारा, विशेष रूप से गांधीवाद से प्रभावित विचारों का भी कहानी साहित्य में समावेश हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के फलस्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थितियों ने सामाजिक और राजनीतिक चेतना के जागरण में भी योग दिया। अकाल के फलस्वरूप जो अभिशप्त परिस्थितियाँ सामने आयीं उन्होंने मानवता-वादी दृष्टिकोण को प्रश्रय दिया। भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए किये गये प्रयत्नों में तीव्रता आने के कारण इस युग मे ऐसी कहानियां भी बड़ी संख्या में लिखी गयी जिनका विषय सशस्त्र क्रान्ति तथा राजनीतिक स्वतंत्रता था। सामाजिक जीवन में भी जो नये परिवर्तन लक्षित हो रहे थे उन सबका समावेश प्रेमचन्दोत्तर कहानी साहित्य में मिलता है। नीचे प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रतिनिधि हिन्दी कहानीकारों का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी का नाम प्रेमचंदोत्तर युगीन कहानीकारों में उल्लेख्य है। इनका जन्म सन् १८९९ में हुआ था। कहानी के अतिरिक्त इन्होंने उपन्यास तथा काव्य रचना के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनके प्रतिनिधि कहानी संग्रहों में 'मधुपर्क', 'हिलोर', 'पुष्करिणी', 'दीप मालिका', 'मेरे सपने', 'उप-हार', 'उतार चढ़ाव', 'खाली बोतल', 'आदान प्रदान', 'अंगारे', 'स्नेह' तथा 'बाती और लौ' आदि हैं। वाजपेयीजी यथार्थ रूप में प्रेमचन्द युगीन आदर्शवादी कहानी की परम्परा के प्रसारक हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक यथार्थ के साथ साथ मनोविश्लेषणात्मक तत्वों का भी समावेश किया है। विभिन्न पात्रों को एक विशिष्ट परिस्थिति के भीतर रखकर उन्होंने उनका सूक्ष्म चरित्रांकन प्रस्तुत किया है। उनके साहित्यिक दृष्टिकोण में मानवतावाद की प्रधानता है जो आदर्शवाद पर आधारित है।

भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों में उन्होंने मध्यवर्ग का चित्रण विशेष रूप से अपनी कहानियों में किया है। राजनीतिक जागरण की दृष्टि से भी मध्यवर्गीय समाज में विशेष परिवर्तनशीलता लक्षित की जा रही है। मध्यवर्गीय नैतिक भावना, रूढ़ियों तथा ह्रासोन्मुखी परम्पराओं का चित्रण भी वाजपेयीजी की कहानियों में विस्तार से मिलता है। नारी जीवन तथा उसकी समस्याओं से सम्बन्धित अनेक कहानियाँ भी श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी ने लिखी है। इस सम्बन्ध में उन्होंने भारत के प्राचीन और परम्परागत नारी जीवन के आदर्शों पर ही बल दिया है। 'कबाडी का ताजमहल' तथा 'होटल का कमरा' आदि कहानी संग्रहों में उन्होंने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण-प्रधान कहानियाँ संगृहीत की हैं। प्रेमचन्द युगीन अधिकांश कहानी लेखकों की भाँति श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी के कहानी साहित्य की प्रमुख विशेषता उनमें निहित आदर्शवादी भावना है।

सुदर्शन

इस युग के दूसरे प्रतिनिधि कहानीकार श्री सुदर्शन का वास्तविक नाम बदरीनाथ भट्ट है। परन्तु साहित्य के क्षेत्र में वे सुदर्शन के नाम से ही विख्यात है। उनका जन्म सन् १८६६ में हुआ था। कहानी रचना के अतिरिक्त उन्होंने उपन्यास तथा नाटक आदि के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनके प्रतिनिधि कहानी संग्रह सन् १६१६ में प्रकाशित 'पुष्पलता', सन् १६२३ में प्रकाशित 'सुप्रभात', सन् १६२६ मे प्रकाशित 'परिवर्तन' तथा 'सुदर्शन सुधा', सन् १६२७ में प्रकाशित 'तीर्थ यात्रा' तथा 'फूलवती', सन् १६३३ मे प्रकाशित 'सात कहानियाँ', सन् १६३४ में प्रकाशित 'सुदर्शन सुमन' तथा 'गल्प मंजरी', सन् १६३८ मे प्रकाशित 'चार कहानियाँ', सन् १६३६ में प्रकाशित 'पनघट' तथा सन् १६४० में प्रकाशित 'अंगूठी का मुकदमा' आदि हैं। उनकी कुछ कहानियों में कथा वस्तु, भाषा शैली तथा चरित्र चित्रण आदि तत्वों की दृष्टि से प्रेमचन्द की कहानियों से असाधारण साम्य मिलता है। सुदर्शन ने आधुनिक समाज के ह्रासोन्मुखी जीवन की पृष्ठभूमि में उसके उदात्त पक्षों का चित्रण प्रभावशाली रूप में किया है। आधुनिक युग में जब मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत होकर किसी भी प्रकार का नैतिक बंधन नही मानता, सुदर्शन ने अपनी कुछ कहानियों में ऐसे चरित्रों की आदर्शवादी प्रतीक रूप में योजना की है जो अब भी जीवन के उच्चतर मूल्यों के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए प्रस्तुत हैं। सुदर्शन की सर्व-

प्रमुख कहानी 'हार की जीत' इसका प्रतिनिधि उदाहरण है। 'अल्बम' शीर्षक कहानी भी इसी प्रकार के आदर्शवादी दृष्टिकोण की प्रधानता लिये हुए है। सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों के साथ साथ नैतिक, आध्यात्मिक आधारभूमि पर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणप्रधान कहानियां भी सुदर्शन ने लिखी हैं।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का नाम भी प्रेमचन्दोत्तर कहानीकारों में उल्लेखनीय है। कहानी साहित्य के अतिरिक्त उन्होंने उपन्यास आदि के क्षेत्रों में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। उनकी कहानियाँ 'सरस्वती', 'इन्दु' तथा 'लक्ष्मी' आदि पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित होती रही हैं। उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रहों में 'कुसुमांजलि', 'गाधी टोपी', 'सावनी सवा', 'नारी : क्या एक पहेली', 'हवेली और झोपड़ी' तथा 'देव और दानव' आदि हैं। उनकी कहानियों में मुख्यतः सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का ही चित्रण हुआ है। उनका सामाजिक दृष्टिकोण आदर्शपरक है। उन्होंने आधुनिक युग के महान् चिन्तकों के संदेश का प्रसार सूत्रात्मक रूप से अपनी कहानियों के माध्यम से करने की चेष्टा की है। यही कारण है कि उनमें किसी न किसी रूप में कोई महान् संदेश मिलता है। राजा राधिकारमण प्रसाद सिह का यह विचार है कि आधुनिक समाज में जो ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियां विद्यमान हैं उनका मुख्य कारण मनुष्य की रूढ़िवादी मनोवृत्ति और वैचारिक संकीर्णता है। इसीलिए उनका दृष्टिकोण समाज को इनसे मुक्त कराकर विशुद्ध मानवीय स्तर पर नैतिक आदर्श के उच्च स्वरूप की प्रतिष्ठा करना है।

उषादेवी मित्रा

श्रीमती उषादेवी मित्रा का जन्म सन् १८९७ मे हुआ था। कहानी साहित्य के अतिरिक्त इन्होंने उपन्यास के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनके प्रमुख कहानी संग्रहों में 'संध्या', 'पूर्वी', 'रात की रानी', 'आंधी के छंद', 'महावर', 'नीम चमेली' तथा 'मेघ मलहार' आदि मुख्य हैं। परम्परागत हिन्दी कहानी के अनुसार उनकी रचनाओं में भी आदर्शवादी दृष्टिकोण की प्रधानता मिलती है। उनकी कहानियों की एक विशेषता यह भी है कि समाज के उदात्त पक्षों का चित्रण करते हुए उन्होंने नैतिक उत्थान पर विशेष बल दिया है। नारी जीवन के प्रति श्रीमती उषादेवी

मिश्र का दृष्टिकोण आदर्शपरक है। उन्होंने अपनी कहानियों में यह संकेत करने की चेष्टा की है कि भारतीय नारी का आदर्श जीवन प्राचीन भारतीय गौरव के अनुकरण में ही है। प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता के आदर्श भारतीय नारी के लिए जितने कल्याणप्रद हो सकते हैं उतने आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति-अनुकरण-परक आदर्श नहीं। इसीलिए पाश्चात्य जीवन के बढ़ते हुए प्रभाव और उसके अन्धानुकरण का समर्थन उन्होंने नहीं किया है। उनका दृष्टिकोण यह है कि आधुनिक नारी अनेक प्रकार की कुंठाओं और दुर्बलताओं से तभी मुक्त हो सकती है जब वह अपने आत्मसम्मान, मातृत्व और गौरव की रक्षा उदात्त जीवन आदर्शों के आधार पर करे। भारतीय नारी के लिए यही उनका सन्देश है।

भगवतीचरण वर्मा

श्री भगवतीचरण वर्मा का जन्म सन् १९०३ में हुआ था। कहानी साहित्य के अतिरिक्त उन्होंने उपन्यास, नाटक तथा कविता आदि के क्षेत्र में भी अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। 'इन्स्टालमेंट', 'दो बांके', 'राख और चिनगारी' तथा 'खिलते फूल' आदि उनके प्रतिनिधि कहानी संग्रह हैं। अपनी कहानियों में वर्माजी ने समाज में व्याप्त रूढ़िवादी भावनाओं और मिथ्या अहं भावना का चित्रण करते हुए उसे समाज के स्वस्थ विकास के लिए घातक बताया है। समाज की इन विडम्बनापरक स्थितियों के प्रति उनका दृष्टिकोण व्यंग्यात्मक है। उन्होंने सामाजिक चेतना का जागरण स्वस्थ समाज की रचना के लिए अनुमोदित किया है। मनोवैज्ञानिक आधार पर उन्होंने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि अहं भावना मनुष्य की एक ऐसी अज्ञात शक्ति है जो उसकी चेतना के जागरण और संचालन में विशेष रूप से क्रियाशील रहती है। राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित विषयों पर भी वर्माजी ने अनेक कहानियाँ लिखी हैं। वर्माजी की कहानियों में सामाजिक और नैतिक मान्यताओं के प्रति एक प्रकार के विद्रोह की भावना मिलती है। आधुनिक सामाजिक जीवन के प्राचीन जीवन रूपों में वैभिन्न्य का चित्रण भी उन्होंने किया है। नारी जीवन से सम्बन्धित कहानियों में भी उन्होंने सामाजिक उद्‌बोधन के संकेत प्रस्तुत किये हैं। निर्धनता और आर्थिक वैषम्य को वर्माजी ने आधुनिक भारतीय समाज का सबसे बड़ा अभिशाप बताया है। इसके अतिरिक्त उनका यह भी निश्चित मत है कि सामाजिक रूढ़ियाँ, कुरीतियाँ, अन्धविश्वास तथा मिथ्या प्रदर्शन की भावनाएं जब तक समाप्त नहीं होंगी तब तक

सामाजिक विकास के लिए स्वस्थ आधार भूमि नहीं मिल सकेगी। 'प्रायश्चित', 'विवशता', 'राख और चिनगारी', 'दो बांके', 'दो पहलू', 'पराजय', 'कायरता' आदि इस दृष्टिकोण से उनकी प्रतिनिधि रचनाएं कही जा सकती हैं।

इलाचन्द्र जोशी

श्री इलाचन्द जोशी का जन्म सन् १९०२ में हुआ था। हिन्दी के मनोविश्लेषणात्मक कथाकारों में जोशीजी का प्रमुख स्थान है। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया है। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने कहानी साहित्य के साथ साथ उपन्यास, निबन्ध तथा आलोचना आदि के क्षेत्रों में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनके कहानी संग्रहों में सन् १९३८ में प्रकाशित 'धूपरेखा', सन् १९४२ में प्रकाशित 'दीवाली और होली', सन् १९४३ में प्रकाशित 'रोमांटिक छाया', सन् १९४५ में प्रकाशित 'आहुति', सन् १९४८ में प्रकाशित 'खंडहर की आत्माएं', सन् १९५१ में प्रकाशित 'डायरी के नीरस पृष्ठ' तथा सन् १९५७ में प्रकाशित 'कटीले फूल लजीले कांटे' आदि उल्लेखनीय है। जोशीजी ने अपनी कहानियों में मुख्य रूप से मध्यवर्गीय समाज की ह्रासोन्मुखी वृत्तियों का चित्रण किया है। मनुष्य के अहं, कुंठाओं और मानसिक विकृतियों से सम्बन्धित सैद्धान्तिक तत्वों की व्यावहारिक विवृति भी उनकी कहानियों में मिलती है। निम्न मध्य वर्ग की पारिवारिक व्यवस्था से सम्बन्धित यथार्थपरक चित्रण भी उनकी अनेक कहानियों में पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व सहित मिलता है। 'प्रेम और घृणा', 'रोमांटिक छाया', 'क्रय विक्रय', 'आत्महत्या या खून', 'खंडहर की आत्माएं', 'पागल की सफाई', 'अनाश्रित' तथा 'चिट्ठी पत्री' आदि कहानियों में मनुष्य के मनोवेगों और मानसिक कार्य व्यापार का सूक्ष्म अंकन प्रस्तुत हुआ है। 'एकाकी', 'मैं', 'क्रान्तिकारिणी महिला', 'होली' और दीवाली', 'परित्यक्ता', 'यज्ञ की आहुति', 'विद्रोही' तथा 'डायरी के नीरस पृष्ठ' आदि कहानियों में भी जोशीजी का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुआ है।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म सन् १९११ में हुआ था। कहानी साहित्य के अतिरिक्त उन्होंने उपन्यास, काव्य, निबन्ध तथा आलोचना के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। 'सैनिक', 'विशाल भारत', 'बिजली',

'प्रतीक' तथा 'वाक्' आदि पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन भी उन्होंने किया है। उनके प्रतिनिधि कहानी संग्रहों में सन् १९३७ में प्रकाशित 'विपथगा', सन् १९४४ में प्रकाशित 'परम्परा', सन् १९४५ में प्रकाशित 'कोठरी की बात', 'सन् १९४८ में प्रकाशित 'शरणार्थी' तथा सन् १९५१ में प्रकाशित 'जयदोल' आदि उल्लेखनीय हैं। राष्ट्रीय स्वतंत्रता, क्रान्तिकारिता, सशस्त्र आन्दोलन, सामाजिक ह्रासोन्मुखता, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व एवं कुंठाएं, स्वप्न, मनोविज्ञान आदि विषय उनकी कहानियों में मिलते है। 'विपथगा' जैसी कहानियाँ राष्ट्रीय आन्दोलन, कारावास जीवन तथा राष्ट्रीय चेतना की परिचायक हैं। अहिंसात्मक क्रान्ति की निरर्थकता इस प्रकार की कहानियों में उन्होंने इंगित की है। सामाजिक ह्रासोन्मुखता के फलस्वरूप जीवन में जो कुठाएं आ गयी हैं उनकी ओर 'रोज', 'नई कहानी का प्लाट' तथा 'सभ्यता का एक दिन' जैसी रचनाओं में संकेत किया गया है। भारतीय पारिवारिक व्यवस्था के छिन्न भिन्न होते जाने वाले रूप का परिचय भी इस कहानी में मिलता है। मनोवैज्ञानिक तत्वों की प्रधानता भी इनमें मिलती है। 'अकलंक' जैसी कहानियाँ मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के साथ साथ अखंड राष्ट्रीय भावनाओं की भी द्योतक हैं। 'पुरुष के भाग्य' जैसी कहानियों में अज्ञेय ने मानव मन की विक्षिप्त मनःस्थितियों का चित्रण किया है। 'चिड़ियाघर' जैसी कहानियाँ भी कुंठित व्यक्तियों के मानसिक व्यापारों का विवेचन करती हैं। 'पुलिस की सीटी' जैसी कहानियां अन्तश्चेतन में रहनेवाली भावनाओं का मनोवैज्ञानिक विकास स्पष्ट करती हैं। 'पठार का धीरज', 'पैगोडा बृक्ष', 'विपथगा', 'वे दूसरे' तथा 'एकाकी' आदि कहानियों में भी अज्ञेय का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण स्पष्ट हुआ है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का जन्म सन् १९१० में हुआ था। कहानी साहित्य के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय देने के अतिरिक्त नाटक, एकांकी, उपन्यास, कविता, संस्मरण, निबन्ध, डायरी तथा अनुवाद आदि के क्षेत्रों में भी अश्क ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। अश्क की प्रतिनिधि कहानियां 'अंकुर', 'चट्टान', 'डाची', 'पिंजरा', 'गोखरू', 'बैंगन का पौधा', 'मेमना', 'दातिये', 'काले साहब', 'बच्चे', 'उबाल' तथा 'कैप्टेन रसीद' आदि संग्रहों में उपलब्ध होती हैं। उर्दू भाषा में भी अश्क के 'नौरतन' तथा 'औरत की फितर' शीर्षक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'छीटे', 'जुदाई की शाम का गीत',

'दो धारा', 'कहानी लेखिका' और 'झेलम के सात पुल' तथा 'सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ' आदि अश्क के नवीन कहानी संग्रह हैं। अश्क की कहानियों की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि उनमें विभिन्न वर्गीय सामाजिक यथार्थ के प्रति व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण मिलता है। उनके अधिकांश पात्र मानवीयता की आधारभूमि पर चित्रित किये गये हैं। उनकी संवेदनाएं और व्यावहारिक प्रतिक्रियाएं उन वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हैं जिनका जीवन वे जीते हैं। 'कांगड़ा का तेली', 'घिसा हुआ पत्ता', 'तीन सौ चौबीस', 'चारा काटने की मशीन', 'वह मेरी मंगेतर थी' आदि जैसी कहानियों में अश्क ने समाज में व्याप्त नैतिक मूल्यों की अर्थहीनता की ओर सकेत किया है। मानव जीवन के रूढ़िवादी विचारों और परम्परागत सस्कारों की विवश स्वीकृति उनकी 'गोखरू', 'पिजरा', 'अंकुर' तथा 'चट्टान' आदि कहानियों मे चित्रित की गयी है।

यशपाल

श्री यशपाल का जन्म सन् १९०३ मे हुआ था। उन्होने 'विप्लव' नामक मासिक पत्रिका का सपादन भी किया है। साहित्य के क्षेत्र में कहानी साहित्य के अतिरिक्त उपन्यास तथा निबन्ध आदि के क्षेत्र मे भी उन्होने विशेष कार्य किया है। उनके प्रतिनिधि कहानी संग्रहो मे सन् १९४३ मे प्रकाशित 'ज्ञान दान' तथा 'अभिशप्त', सन् १९४५ मे प्रकाशित 'तर्क का तूफान', सन् १९४६ मे प्रकाशित 'भस्मावृत चिनगारी', सन् १९४८ मे प्रकाशित 'वह दुनिया', सन् १९५१ में प्रकाशित 'फूलो का कुर्ता', सन् १९५० में प्रकाशित 'धर्मयुद्ध', सन् १९५१ मे प्रकाशित 'उत्तराधिकारी', 'चित्र का शीर्षक', सन् १९५४ मे प्रकाशित 'तुमने क्यो कहा मैं सुन्दर हूं' तथा सन् १९५५ मे प्रकाशित 'उत्तमी की मा' उल्लेखनीय हैं। यशपाल ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किये आन्दोलनो मे सक्रिय रूप से भाग लिया था। इसीलिए सशस्त्र क्रान्ति की समस्याएं उनकी अनेक कहानियों मे मिलती हैं। सामाजिक नैतिकता का विवेचन उनकी 'निर्वासिता' जैसी कहानियो में मिलता है। समाज मे व्याप्त आर्थिक वैषम्य को यशपाल ने सामाजिक विकृति और वैरूप्य का प्रधान कारण बताया है। सामाजिक यथार्थ के विभिन्न रूप उनकी कहानियों मे उद्घाटित हुए है। मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन का यथार्थ स्वरूप, उसकी मान्यताएं, आस्थाएं आदि भी उन्होने विश्लेषित की हैं। 'पर्दा', 'दुख', 'वैष्णवी', 'आब्ले की कार्यवाही', 'सोमा का साहस', 'फलित ज्योतिष' तथा 'चन्दन महाशय' आदि कहानियों में यशपाल ने मानव जीवन के विविध पक्षों का चित्रण किया है।

वृन्दावनलाल वर्मा

डा० वृन्दावनलाल वर्मा का जन्म सन् १८८६ में हुआ था। कहानी साहित्य के अतिरिक्त उनकी देन उपन्यास, नाटक तथा निबन्ध के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय है। उनके लिखे हुए प्रतिनिधि कहानी संग्रह 'दबे पांव', 'मेंढकी का ब्याह', 'अम्बपुर के अमर वीर', 'ऐतिहासिक कहानियां', 'अंगूठी का दान', 'शरणागत', 'कलाकार का दंड' तथा 'तोषी' आदि हैं। इनकी कहानियों के विषय बुन्देल खंड की ऐतिहासिक गाथाएं तथा शिकार आदि हैं। बुन्देलखंड में निवास करने वाली विविध जातियों के सम्बन्ध में इनकी जानकारी विविध पक्षीय है। इन निवासियों की जाति भेद एवं वर्ग भेद सम्बन्धी समस्याओं के अतिरिक्त उनमें व्याप्त सामाजिक परिस्थितियों का भी लेखक ने विश्लेषण किया है। सामाजिक स्तर पर भी इनमें जो समस्याएं विद्यमान हैं उनका परिचय भी लेखक ने दिया है। राजनीतिक पक्ष प्रधान कहानियों में लेखक ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि अर्ध सांस्कृतिक जातियों में भी राजनीतिक चेतना का जागरण हो रहा है। 'शरणागत' जैसी कहानियां बुन्देलखंडी जातियों की राष्ट्रीय भावना को आधार बनाकर लिखी गयी एक ऐसी रचना है जिसमें नैतिक आदर्श की पुष्टि की गयी है। 'तोषी' जैसी कहानियों में साम्प्रदायिकता से मुक्त होकर राष्ट्रीय चेतना के जागरण का आवाह मिलता है।' 'मेंढकी का ब्याह' आदि कहानियां विभिन्न कुरीतियों के प्रति लेखक के हास्य व्यंग्य पूर्ण दृष्टिकोण की परिचायक हैं। समाज-सुधार, उपदेशात्मकता तथा आदर्शवाद वर्मा जी की कहानियों की अन्य विशेषताएं हैं। 'इधर से उधर', 'मुह न दिखाना', 'राजनीति या राजनीयत', 'चोरबाजारी की गंगोत्री', 'सरोज की दृढ़ता', 'वचन का निर्वाह', 'शेरशाह का न्याय' तथा 'रक्तदान' जैसी कहानियाँ इस दृष्टिकोण से उनकी प्रतिनिधि रचनाएं कही जा सकती है।

राय कृष्णदास

श्री राय कृष्णदास का जन्म सन् १८९२ में हुआ था। इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ 'अनाख्या', 'सुधांशु' तथा 'आंखों की थाह' आदि संग्रहों में उपलब्ध होती हैं। इन रचनाओं में गद्य काव्यात्मक तत्व अधिक मिलते हैं। इसीलिए उनमें भावनात्मकता की प्रधानता है। ऐतिहासिक, दार्शनिक एवं प्रतीकात्मक कहानियों में भावनात्मकता की यही प्रवृत्ति विद्यमान मिलती है। इनका दृष्टिकोण मुख्यत: आदर्शपरक है। 'बीज की बात', 'गहूला', 'नर राक्षस', 'भय का भूत', 'सम्राट् का स्वत्व', 'अन्त:पुर का

आरम्भ', 'रमणी का रहस्य', 'कला और कल्पना' तथा 'कला और कृत्रिमता' शीर्षक कहानियाँ इनकी प्रतिनिधि रचनाएं कही जा सकती हैं। पुरातत्व शास्त्र तथा इतिहास आदि के विशेष ज्ञाता होने के कारण लेखक के दृष्टिकोण में कलाकार की सच्ची तल्लीनता मिलती है। 'कला और कृत्रिमता' तथा 'कला और कल्पना' जैसी कहानियाँ एक कलाकार की कल्पनाशीलता, कला की आवश्यकता, कला की सामाजिक उपयोगिता तथा उसकी सम्भावनाओं की ओर भी संकेत करती हैं। 'रमणी का रहस्य' तथा 'अन्तःपुर का आरम्भ' जैसी कहानियाँ भारतीय नारी के परम्परागत आदर्शों का मंडन करती हैं।

शिवपूजन सहाय

आचार्य शिवपूजन सहाय का जन्म सन् १८९३ में हुआ था। कहानी साहित्य के अतिरिक्त उन्होंने निबन्ध, उपन्यास, जीवनी तथा पत्रकारिता आदि के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनकी प्रतिनिधि कहानियाँ 'विभूति' नामक संग्रह में संगृहीत हैं। उनका दृष्टिकोण मुख्यतः आदर्शवादी है। 'मुंडमाल' जैसी कहानियाँ उनके इस प्रकार के दृष्टिकोण की ही सूचक हैं। कर्तव्य, प्रेम, प्राचीन भारतीय आदर्श, नारी जीवन का उदात्त स्वरूप तथा अपनी गौरव रक्षा के लिए बलिदान आदि की भावनाएँ इस प्रकार की कहानियों में मिलती हैं। इनकी ऐतिहासिक कहानियाँ वातावरण के प्रभावशाली चित्रण से युक्त हैं। उनमें कथोपकथन संक्षिप्त और मनोवैज्ञानिक है। ऐतिहासिक कथानक को लेकर उसे अर्थपूर्ण कथात्मक आवरण प्रदान करना इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है।

रामवृक्ष बेनीपुरी

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी का जन्म सन् १९०७ में हुआ था। उन्होंने उपन्यास, कहानी, निबन्ध, नाटक, जीवनी आदि की रचना के साथ साथ 'तरुण भारत', 'किसान-मित्र', 'बालक', 'युवक', 'लोक संग्रह', 'कर्मवीर', 'योगी', 'जनता', 'हिमालय', 'चुन्नू मुन्नू' तथा 'नई धारा' आदि पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भी किया है। इनकी प्रसिद्ध कहानियों में 'रूपा की आजी', 'जीवन तरु', 'भिखारिन की थाती', 'कहीं धूप कहीं छाया' आदि हैं। समाज के निम्न वर्ग की शोषित स्थिति का यथार्थ चित्रण इनकी कहानियों में मिलता है। सामाजिक अन्धविश्वास और विडम्बनाएँ निम्न वर्ग

के जीवन को कितना त्रस्त रखती हैं इसका मार्मिक वर्णन इनकी कहानियो मे है। ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण समस्याओ को भी इन्होने अपनी कहानियो मे उठाया है। ग्रामीण समाज के उत्थान का संदेश भी उनमे निहित है। भारतीय नारी समाज मे जो अन्धविश्वासपूर्ण भावनाएँ बनी हुई है और उनके फलस्वरूप जो विडम्बनात्मक परिस्थितियाँ सामने आती है उनका भी करुणोत्पादक चित्रण बेनीपुरी ने अपनी कहानियो मे किया है। आधुनिक युग मे जहाँ एक ओर नारी जीवन के सुधार के लिए प्रयत्न हो रहे हैं वहाँ दूसरी ओर नारी जाति अनेक स्तरो पर कितनी शोषित है इसकी ओर भी उन्होने सकेत किया है। आधुनिक युग मे ग्रामीण समाज के विभिन्न वर्गों का, सामतवादी व्यवस्था की ओर, कि उसके द्वारा कितना अमानवीय व्यवहार होता है, सकेत भी श्री रामवृक्ष बेनीपुरी की अनेक कहानियो मे हुआ है।

सियारामशरण गुप्त

श्री सियारामशरण गुप्त का जन्म सन् १८६५ मे हुआ था। इन्होने कविता, कहानी, उपन्यास तथा निबन्ध के क्षेत्र मे अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ 'मानुषी' नामक सग्रह मे प्रकाशित हुई है। इस सग्रह की अधिकाश कहानियाँ आदर्शवादी दृष्टिकोण-प्रधान है। श्री सियारामशरण गुप्त की अनन्य आस्था महात्मा गाधी के जीवन दर्शन और जीवन सिद्धान्तो मे है, इसका स्पष्ट सकेत इनकी रचनाओ मे भी मिलता है। 'पथ मे से', 'काकी', 'मुन्शीजी', 'झूठ सच', 'मानुषी', 'त्याग' तथा 'को.र और कुटीर' आदि कहानियाँ इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ कही जा सकती है। गाधीवादी विचारधारा के समावेश के साथ साथ इनमे मानवतावादी स्तर पर प्राचीन भारतीय आदर्शों की प्रतिष्ठा मिलती है। ग्रामीण समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक पात्र इनकी कहानियो मे चित्रित हुए है जिनके माध्यम से यह सकेत मिलता है कि मनुष्य विभिन्न परिस्थितियो मे विविध प्रकार की भावनाओ से ग्रस्त होकर कभी तो आध्यात्मिक स्तर पर आत्मिक परिष्कार करता प्रतीत होता है और कभी ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियो से ग्रस्त हो जाता है।

मोहनलाल महतो 'वियोगी'

श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' का जन्म सन् १८६६ मे हुआ था। कहानी साहित्य के अतिरिक्त उन्होने काव्य तथा निबन्ध आदि के क्षेत्र मे भी अपनी प्रतिभा का परिचय

दिया है। उनकी लिखी हुई कहानियों की संख्या अधिक नहीं है परन्तु उनका कवि हृदय इन कहानियों में भी प्रधान हो गया है। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'कवि' व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण प्रधान है। उसमें उन्होंने इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि काव्य की उदात्त भावनाओं के विकास के लिए जिस अनुकूल वातावरण की आवश्यकता होती है वह आधुनिक युग में नहीं मिलता। इसीलिए कवि को उचित सम्मान भी समाज में नही प्राप्त होता। इसलिए उनका यह विचार है कि कवि आज के युग में चाहे मान सम्मान पाये और चाहे न पाये परन्तु किसी भी दृष्टि से उसे अपने को हेय समझकर अवमानना और तिरस्कार का पात्र नही बनना चाहिए।

श्रीमती होमवती देवी

श्रीमती होमवती देवी का जन्म सन् १९०२ में हुआ था। उन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय कहानी साहित्य के अतिरिक्त कविता के क्षेत्र में भी दिया है। उनकी कहानियों के जो संग्रह प्रकाशित हुए हैं उनमे सन् १९३९ मे प्रकाशित 'निसर्ग', सन् १९४६ में प्रकाशित 'धरोहर', सन् १९४८ मे प्रकाशित 'स्वप्न भंग' तथा सन् १९५० मे प्रकाशित 'अपना घर' आदि हैं। श्रीमती होमवती देवी की कहानियो मे पारिवारिक और सामाजिक जीवन का चित्रण विशेष रूप से प्रभावशाली रूप मे मिलता है। आदर्शवादी दृष्टिकोण की उनमे प्रधानता है। सामाजिक कुप्रथाओं, रूढियो और अन्धविश्वासो के विरुद्ध उनकी कहानियो में एक प्रकार के संघर्ष की भावना मिलती है परन्तु उनका दृष्टिकोण नैतिक और आदर्शवादी ही रहा है। लेखक का यह विचार है कि वर्तमान समाज मे जो दोष विद्यमान हैं उनके प्रति मनुष्य ने अपने को उदासीन बना लिया है तथा उन्हें सामान्य परिस्थितियो के अनुसार ही ग्रहण कर लिया है। जब तक इस दृष्टिकोण मे परिवर्तन नही होगा तब तक उनका निराकरण सम्भव नही है।

विनोदशंकर व्यास

श्री विनोदशंकर व्यास का जन्म सन् १९०३ में हुआ था। कहानी साहित्य के अतिरिक्त उन्होंने आलोचना के क्षेत्र में भी साहित्य रचना की है। विनोदशंकर व्यास की लिखी हुई कहानियाँ 'भूली बात', 'धूप दीप', 'विनोद शंकर व्यास की इकतालीस कहानियाँ', 'मेरी कहानी', 'मणि दीप', 'पचास कहानियाँ', 'नक्षत्र लोक' तथा 'अस्सी

कहानियाँ' आदि संग्रहों में प्रकाशित हुई हैं। श्री विनोदशंकर व्यास की कहानियों में कथा-वस्तु की तुलना में चरित्र चित्रण तत्व की प्रधानता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उन्होंने अपने चरित्रों की प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं को प्रस्तुत किया है। मनुष्य का दृष्टिकोण छोटी छोटी घटनाओं से किस रूप में प्रभावित होता है तथा उसके फलस्वरूप क्या सम्भावनाएं सामने आती हैं इसका प्रभावशाली चित्रण विनोदशंकर व्यास की कहानियों में उपलब्ध होता है।

कमलाकान्त वर्मा

इस युग के कहानीकारों में श्री कमलाकान्त वर्मा का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी कहानियों में मध्यमवर्गीय सामाजिक जीवन का विस्तृत चित्रण हुआ है। इनकी उल्लेखनीय कहानियाँ 'पगडंडी', 'तकली' तथा 'खडहर' आदि हैं। इन कहानियों की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि लेखक ने जड़ पात्रों को लेकर उनकी संवेदनाओं का सचेतन आधारभूमि पर प्रभावशाली चित्रण किया है। प्रतीकवादी शैली में लिखी गयी ये कहानियाँ मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं से युक्त व्याख्या करती है। दार्शनिक आध्यात्मिक तत्वों की निर्हिति इन कहानियों की विशेषता है।

महादेवी वर्मा

श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म सन् १९१७ में हुआ था। इनकी मुख्य देन काव्य साहित्य के क्षेत्र में है। 'स्मृति की रेखाएँ' और 'अतीत के चलचित्र' उनकी संस्मरणात्मक शैली में लिखी गयी कहानियों के संग्रह हैं। कुछ संस्मरणात्मक रचनाएँ उनकी लिखी हुई 'पथ के साथी' नामक पुस्तक में भी उपलब्ध होती हैं। इन रचनाओं में श्रीमती महादेवी वर्मा ने मध्य वर्ग और निम्न वर्ग के पात्र पात्रियों का मार्मिक चित्रण किया है। लेखक का यह मत है कि यह पात्र अपनी बुद्धि और कुंठाओं के कारण स्वयं ही आत्मपीड़न का माध्यम बनते हैं। इसलिए इन्हें अन्य सामाजिक वर्गों से अपेक्षाकृत अधिक हानि की अशंका होती है। लेखिका ने जिन नारी चरित्रों का चित्रण इन रचनाओं में किया है वे वर्तमान नारी समाज की परवशता की द्योतक है। अनेक रचनाओं में बाल चरित्रों की मनोवैज्ञानिक विवृति की गयी है।

जी० पी० श्रीवास्तव

श्री जी० पी० श्रीवास्तव का पूरा नाम गंगाप्रसाद श्रीवास्तव है। उनका जन्म सन् १८९० में हुआ था। हिन्दी के हास्य लेखकों में उनका ऊंचा स्थान है। कहानी के अतिरिक्त उन्होंने नाटक, उपन्यास तथा काव्य रचना के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनकी कहानियों का एक संग्रह 'लम्बी दाढ़ी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। हास्य व्यंग्य के माध्यम से समाज सुधार की भावना प्रस्तुत करना उनकी एक विशेषता है। परम्परावादी विचारों के विरुद्ध आधुनिकता का संघर्ष उन्होंने एक क्रूर और विडम्बनात्मक परिस्थिति के रूप में चित्रित किया है। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था के प्रति उन्होंने व्यंग्यात्मक आक्षेप किये हैं। आधुनिक नारी समाज के लिए उन्होंने मध्यम मार्ग का अनुमोदन किया है जिससे वह अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा की रक्षा कर सकती है।

गोविन्दवल्लभ पंत

श्री गोविन्दवल्लभ पन्त का जन्म सन् १८९८ में हुआ था। उन्होंने कहानी साहित्य के अतिरिक्त नाटक तथा उपन्यास आदि के क्षेत्रों में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। पन्तजी की कहानियों की प्रमुख विशेषता उनमें निहित आदर्शवादी दृष्टिकोण है। उनकी कहानियों के दो संग्रह 'एकादशी' तथा 'सध्या प्रदीप' शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं। काव्यात्मकता और भावनात्मकता के साथ साथ प्रतीकात्मकता और दार्शनिकता का समन्वय भी उनकी कहानियों में मिलता है।

वाचस्पति पाठक

श्री वाचस्पति पाठक का जन्म सन् १९०५ में हुआ था। इनकी प्रतिनिधि कहानियों के दो संग्रह 'द्वादशी' तथा 'प्रदीप' शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं। पाठकजी की कहानियों में आदर्शवादी दृष्टिकोण की ही प्रधानता मिलती है। 'कल्पना', 'कागज की टोपी', 'फेरीवाला' तथा 'सूरदास' जैसी कहानियाँ इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। इनमें कथा वस्तु की तुलना में चरित्र चित्रण तत्व की प्रधानता है। निम्न वर्ग के पात्रों की संवेदनाओं और अनुभूतियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण इनकी कहानियों की विशेषता है।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का जन्म सन् १९०६ में हुआ था। कहानी साहित्य के अतिरिक्त इन्होंने निबन्ध तथा नाटक आदि क्षेत्रों में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी प्रतिनिधि कहानियों के दो संग्रह 'वापसी' तथा 'चन्द्रकला' शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं। 'तांगे वाला', 'डाकू', 'एक सप्ताह', 'चौबीस घंटे', 'क ख ग' तथा 'कामकाज' आदि इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। इनकी रचनाओं में भावनात्मकता विशेष रूप से विद्यमान रहती है। कलात्मकता की दृष्टि से भी इनकी कुछ कहानियाँ विशिष्ट महत्व की हैं। 'कामकाज' जैसी कुछ कहानियों में लेखक ने जीवन की अत्यन्त सामान्य घटनाओं के कतिपय उदाहरण लेकर कथा वस्तु का निर्माण किया है।

विश्वम्भरनाथ जिज्जा

श्री विश्वम्भरनाथ जिज्जा का जन्म सन् १९०५ मे हुआ। कहानी साहित्य के अतिरिक्त उन्होंने उपन्यास रचना तथा पत्रकारिता के क्षेत्र मे भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी कहानियों का एक संग्रह 'घूंघटवाली' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ सामाजिक दृष्टिकोण प्रधान है और उनमें आदर्शवादी दृष्टिकोण का समावेश मिलता है। 'विदीर्ण हृदय' तथा 'परदेशी' कहानियाँ इसी कोटि की भावप्रधान रचनाएँ है जिनमें नाटकीयता के तत्व भी विद्यमान है।

कमलादेवी चौधरी

सुश्री कमलादेवी चौधरी का जन्म सन् १९०८ में हुआ था। कहानी साहित्य के अतिरिक्त कविता के क्षेत्र में भी इन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनके प्रतिनिधि कहानी संग्रहो में सन् १९३४ में प्रकाशित 'उन्माद', सन् १९३९ में प्रकाशित 'पिकनिक', सन् १९४६ में प्रकाशित 'यात्रा', सन् १९५७ में प्रकाशित 'प्रसादी कमंडल' तथा 'बेलपत्र' आदि है। सुश्री कमलादेवी चौधरी की कहानियों में समाज के निम्न मध्य वर्ग का प्रभावशाली चित्रण मिलता है। नारी हृदय की सूक्ष्म अभिव्यंजना भी इनकी कहानियों की विशेषता है। 'टेक की रक्षा', 'स्वप्न', 'पागल' तथा 'पराजय' आदि इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ है। इनमें प्रतीकात्मक रूप से लेखिका ने राष्ट्रीय प्रेम की भावना आदि का भी चित्रण किया है। कही कही पर लेखिका की शैली प्रतीकवादी भी हो गयी है।

देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' का जन्म सन् १६११ में हुआ था। कहानी तथा उपन्यासों की रचना करने के साथ-साथ इन्होंने बहुत समय तक 'सरस्वती' का भी संपादन किया है। इनके प्रतिनिधि कहानी संग्रहो मे सन् १६३६ में प्रकाशित 'रानी दुर्गावती' तथा 'अनार ज्वाला', सन् १६५४ में प्रकाशित 'हवा का रुख' तथा सन् १६५७ में प्रकाशित 'रंगीन डोरे' आदि प्रमुख हैं। इनकी कहानियों में मुख्यत: चरित्र-चित्रण तत्व कलात्मक रूप से नियोजित मिलता है। अपने पात्रों की मन:स्थितियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण करने में यह सिद्धहस्त हैं। 'अन्तर्ज्वाला', 'उलट फेर', 'उलझन', 'धूमिल स्मृति', 'घरोंदा' तथा 'उपेक्षिता' आदि कहानियाँ इस दृष्टिकोण से इनकी सफल रचनाएँ कही जा सकती हैं।

मन्मथनाथ गुप्त

श्री मन्मथनाथ गुप्त का जन्म सन् १६०८ में हुआ था। कहानी के अतिरिक्त इन्होने उपन्यास, निबन्ध, आलोचना तथा पत्रकारिता आदि के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किया है। इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ 'आंखें' तथा 'मेरी प्रिय कहानियाँ' आदि संग्रहों में प्रकाशित हुई हैं। सामाजिक विषयों के अतिरिक्त राजनीतिक विषयो पर भी मन्मथनाथ गुप्त ने कहानी रचना की है। समाज के विविध वर्गों में व्याप्त मिथ्या-डम्बर का उनकी रचनाओं में विरोध मिलता है। 'सोख्ते का टुकड़ा', 'प्रतिक्रिया', 'आशा निराशा', 'महात्मा के भक्त' आदि इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं जिनमें नव चेतना के जागरण का सन्देश विद्यमान है।

इस प्रकार से प्रेमचंदोत्तर युगीन हिन्दी कहानी विषय-वैविध्य की दृष्टि से विशेष विस्तार रखती है। इस युग में सामाजिक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक विषयों के साथ साथ ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विषयों पर भी कहानी रचना हुई है। इस युग में जहाँ एक ओर सुदर्शन, भगवतीप्रसाद वाजपेयी तथा उषादेवी मित्रा आदि जैसे कहानीकारों ने प्रेमचन्द युगीन आदर्शवाद का अनुमोदन किया, वहाँ दूसरी ओर उपेन्द्र-नाथ अश्क तथा यशपाल जैसे कहानी लेखकों ने सामाजिक यथार्थ के कटु स्वरूपों का भी उद्घाटन किया। इस युग की सबसे मुख्य कथा-वृत्ति मनोविश्लेषणात्मक कहानी-कारों की है, जिनमें इलाचन्द जोशी, भगवतीचरण वर्मा तथा अज्ञेय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जैसे कहानीकारों ने अभिजात वर्गीय

नैतिक मान्यताओं तथा सामाजिक संस्कारों का चित्रण भी मनोवैज्ञानिक आधारभूमि पर किया है। श्री भगवतीचरण वर्मा ने सामाजिक अन्धविश्वास और धर्माडम्बर की विवृति की है। इलाचन्द जोशी ने नैतिक ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियों का विशेष रूप से चित्रण किया है। बौद्धिक जागृति के चित्र अज्ञेय की कहानियों में मिलते हैं। श्रीमती उषा मित्रा ने नारी हृदय की भावनाओं का भावनात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। यशपाल ने राजनीतिक विचारधाराओं की पृष्ठभूमि में समाज में व्याप्त शोषण की प्रवृत्ति का अंकन किया है। इस प्रकार से इस युग में समाज के प्रायः सभी पक्षों से सम्बन्धित विभिन्न विषयों का समावेश हिन्दी कहानी में हुआ है।

चतुर्थ विकास काल

आधुनिक हिन्दी कहानी के चतुर्थ विकास काल के अन्तर्गत स्वातन्त्र्योत्तर युगीन कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। इस युग की हिन्दी कहानी मुख्यतः बौद्धिकता से आगृहीत मिलती है। पूर्व युग में कहानी साहित्य की जो मुख्य प्रवृत्तियाँ विकसित हुई थी उनका प्रसार भी इस युग में सम्यक् रूप से हुआ। भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् से हिन्दी कहानी को विषय वस्तु क्षेत्रीय नवीन आधारभूमि मिली। इस युग मे नवीन भारत की अनेक समस्याएँ कहानीकारो के सामने आयी जिन्हे साहित्य मे स्थान दिया गया। परम्परावादिता और आदर्शवादिता के प्रति वह आग्रह अब नहीं रहा जो रूढिवादी दृष्टिकोणप्रधान लेखको की रचनाओं में मिलता था। इस युग के कहानीकारो ने अपनी रचनाओं में नवीन यथार्थ का समावेश किया। सामाजिक चेतना का जागरण इस युग में विस्तृत आधार पर हुआ। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण ने भी इस काल के कहानी साहित्य में अधिक सूक्ष्मता से युक्त स्वरूप का परिचय दिया। इस युग के प्रतिनिधि कहानीकारों और उनकी कृतियों का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

अमृतलाल नागर

श्री अमृतलाल नागर ने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय कहानी के अतिरिक्त उपन्यास तथा पत्रकारिता आदि के क्षेत्रों में भी दिया है। उनकी प्रतिनिधि कहानियों के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनके शीर्षक सन् १९३५ में प्रकाशित 'वाटिका', सन् १९३८ में प्रकाशित 'अवशेष', सन् १९४१ में प्रकाशित 'तुलाराम शास्त्री',

सन् १९५५ में प्रकाशित 'एटम बम', सन् १९५६ में प्रकाशित 'एक दिल हजार दास्तान' तथा सन् १९६९ में प्रकाशित 'कालदंड की चोरी' आदि हैं। नागरजी की कहानियों में सामाजिक यथार्थ के प्रति कटुता युक्त व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण मिलता है। राष्ट्रीय भावना प्रधान भी कुछ कहानियाँ उन्होंने लिखी हैं। समाज के विभिन्न वर्गों में व्याप्त आर्थिक वैषम्य और शोषण का भी चित्रण उनकी कहानियों में मिलता है। इस दृष्टिकोण से 'निर्धन', 'विश्वास', 'गरीब की हाय', 'गोरखधन्धा', 'कयामत का दिन', 'डाक्टरी साइन बोर्ड', 'पाप मेरा वरदान', 'जुएं', 'पढ़े लिखे बराती', 'बंगाली वैष्णव', 'मुंशी बख्तावर लाल', 'राजा रानी और संतान', 'नवाबी चक्कर', 'धन के साथी', 'प्रतिफल' तथा 'प्रायश्चित' आदि उनकी प्रतिनिधि कहानियां कही जा सकती हैं।

रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी'

श्री रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' की प्रतिनिधि कहानियाँ 'सड़क पर', 'बरगद की जड़े', 'मौली' तथा 'यथार्थवादी रोमांस' आदि संग्रहों मे प्रकाशित हुई हैं। उनके दृष्टिकोण मे मनोवैज्ञानिकता की प्रधानता है। मनोविश्लेषणवादी चिन्तकों के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का व्यावहारिक आरोपण उनकी कहानियों में मिलता है। 'चार विराम', 'हिरन की आंखें', 'राजरानी', 'नया मोर्चा', 'तमाशा', 'छायावादी हीरोइने', 'लाक्षणिक पुरुष', 'केवल प्रेम ही विश्राम' तथा 'तमाशा' आदि उनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

सत्यजीवन वर्मा 'भारतीय'

श्री सत्यजीवन वर्मा भारतीय की कहानियों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें 'आख्यानमयी', 'मुनमुन', 'गृहिणी', 'मिस पैंतीस का पति निर्वाचन' तथा 'भूकम्प' आदि उल्लेखनीय हैं। इनकी कहानियों में आदर्शवादी दृष्टिकोण की प्रधानता मिलती है। प्रेमचन्द की कथा परम्परा के एक अनुगामी के रूप में इन्होंने बाल मनोविज्ञान से सम्बन्धित अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं जिनमें मानवतावादी दृष्टिकोण से मानव हृदय की सरल अनुभूतियों की अभिव्यक्ति मिलती है।

अमृतराय

स्वातंत्र्योत्तर युग के कहानीकारों में श्री अमृतराय का नाम भी उल्लिखित

किया जा सकता है। उनकी कहानियों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण मनोवैज्ञानिक आधार पर मिलता है। आधुनिक समाज में व्याप्त कुंठाएं इन्होंने बौद्धिक स्तर पर विश्लेषित की हैं। 'कटघरे', 'कसबे का एक दिन', 'गीली मिट्टी', 'जीवन के पहलू', 'भोर के पहले' तथा 'लाल धरती' आदि संग्रहों में उनकी यथार्थपरक तथा मनोविश्लेषणात्मक प्रतिनिधि कहानियाँ संगृहीत हैं।

बलवन्त सिंह

स्वातंत्र्योत्तर युगीन लेखकों में श्री बलवन्त सिंह की मुख्य देन उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में है। उनकी प्रतिनिधि कहानियों का एक संग्रह 'मैं जरूर रोऊंगी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। उनकी कहानियों में सामाजिक वातावरण की पृष्ठभूमि में विभिन्न मनःस्थितियों के प्रभावशाली चित्रण मिलते हैं।

विष्णु प्रभाकर

श्री विष्णु प्रभाकर की कहानियों के प्रतिनिधि संग्रह 'खंडित पूजा', 'धरती अब भी घूम रही है', 'संघर्ष के बाद' तथा 'सफर के साथी' आदि हैं। उनकी कहानियों में कही कही पर यथार्थवादी आधारभूमि पर जीवन के आदर्श पक्षों के प्रति आग्रह मिलता है। विष्णु प्रभाकर के पात्र समाज के विभिन्न वर्गों से लिये गये हैं। उन्होंने पिछले युग की आदर्शोन्मुख यथार्थवादी विचारधारा को विशेष रूप से स्वीकारा है।

धर्मवीर भारती

डा० धर्मवीर भारती की कहानियों का एक संग्रह 'चांद और टूटे हुए लोग' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता यह है कि आधुनिक समाज के मध्य वर्ग के पात्रो का यथार्थवादी आधारभूमि पर मनोवैज्ञानिक चित्रण इन्होंने किया है। कहीं कहीं पर वातावरण के भी प्रभावशाली चित्रण उनकी रचनाओं में मिलते हैं। नाटकीयता के तत्व तथा भावात्मकता की भी उनमें कहीं कही प्रधानता हो गयी है।

राजेन्द्र यादव

श्री राजेन्द्र यादव स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानीकारों में महत्वपूर्ण स्थान रखते

हैं। उनकी कहानियों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'किनारे से किनारे तक' आदि संग्रहों में उनकी कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। आधुनिक युग में विभिन्न वर्गों में व्याप्त कुंठाओं और भावनाओं का प्रभावशाली चित्रण राजेन्द्र यादव की कहानियों में मिलता है। कहीं कहीं पर संस्कारबद्ध पात्रों की मनःस्थितियाँ सूक्ष्म अभिव्यंजना से युक्त होकर प्रस्तुत हुई हैं। अनेक विरूपताओं के मध्य भी आज का मनुष्य जैसी अटूट आस्था के साथ जीवन संघर्ष में रत है, इसका चित्रण राजेन्द्र यादव की कहानियों में विश्वसनीय रूप से मिलता है।

मोहन राकेश

स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानीकारों में श्री मोहन राकेश का नाम भी उल्लेखनीय है। उनकी कहानियों में 'मिस पाल', 'आदमी और वारिस', 'नये बादल', 'उसकी रोटी', 'जानवर और जानवर' तथा 'फौलाद का आकाश' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि इनमें विषय वस्तु का विस्तार अपेक्षाकृत अधिक मिलता है। यह सारी कहानियाँ जीवन के विभिन्न पक्षों पर आधारित हैं। यदि एक ओर लेखक आधुनिक सामाजिक विकृतियों का यथार्थवादी दृष्टिकोण से चित्रण करता है तो दूसरी ओर उसके पात्र उच्चतर जीवन के लिए संघर्ष करते प्रतीत होते हैं।

प्रतापनारायण टंडन

डा० प्रतापनारायण टंडन की कहानियों के दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं जो 'बदलते इरादे' तथा 'शून्य की पूर्ति' हैं। इनमें से प्रथम में लेखक की सैंतीस कहानियाँ संगृहीत हैं जिनमें विभिन्न वर्गीय पात्र पात्रियों की मनःस्थितियों के सशक्त चित्र मिलते हैं। कुछ कहानियाँ मानवीय चरित्रों की प्रतिक्रियात्मक संभावनाओं के चित्रण की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। 'बदलते इरादे' की कहानियाँ इसी कोटि की हैं। सामाजिक जीवन के साधारण सूक्ष्म संकेत इनकी कथा वस्तु का आधार हैं। 'शून्य की पूर्ति' की कहानियाँ अपेक्षाकृत प्रौढ़ स्तर की हैं। इनमें जहाँ एक ओर प्रतीकात्मक शैली में कतिपय प्रभावपूर्ण और जीवंत चित्रण मिलते हैं वहाँ दूसरी ओर अप्रत्याशित विडम्बनाओं की भी मार्मिक विवृति मिलती है।

कमलेश्वर

श्री कमलेश्वर की कहानियों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके है जिनमे 'राजा निरबंशिया', 'कसबे का आदमी', 'नीली झील', 'खोई हुई दिशाएं' तथा 'कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ' आदि हैं। कमलेश्वर की कहानियों में व्यंग्यात्मकता बहुत प्रखर रूप में मिलती है। 'प्रेमिका', 'जार्ज पंचम की नाक' तथा 'दिल्ली में एक मौत' जैसी कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। वर्तमान समाज में अस्थिरता तथा अनिश्चयता का जो वातावरण मिलता है उसे भी कमलेश्वर ने अपनी कहानियो मे चित्रित किया है। 'एक रुकी हुई जिन्दगी', 'पीला गुलाब' तथा 'पराया शहर' आदि कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। 'भटके हुए लोग' तथा 'सच और झूठ' जैसी कहानियाँ मध्यवर्गीय सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु

स्वातंत्र्योत्तर युग की आंचलिक आधारभूमि पर कहानी रचना करने वालो में श्री फणीश्वर नाथ रेणु का नाम उल्लेखनीय है। उनकी लोक कथात्मक आधार पर लिखी गयी आंचलिक कहानियो का एक सग्रह 'ठुमरी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। क्षेत्रीय एव आचलिक चित्रण की यथार्थता की दृष्टि से इस संग्रह की कहानियाँ महत्वपूर्ण है। मानव हृदय की सरल अभिव्यजनाएँ आधुनिक जीवन की कठोर विडम्बनाओ में समाविष्ट होकर इनमे उभरी है

मन्नू भंडारी

स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानीकारों में मन्नू भंडारी का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनकी रचनाओं मे मध्यवर्गीय नारी जीवन की कुंठित मनोवृत्तियाँ चित्रित हुई हैं। 'मै हार गयी', 'तीन निगाहों की एक तस्वीर' तथा 'यही सच है' आदि उनकी कहानियों के प्रतिनिधि संग्रह हैं। 'कील और कसक' जैसी कहानियाँ नारी जीवन की संवेदनाओं और दमित कुठाओ की विवृति करती है। इनमें लेखक ने आधुनिक नारी के उन रूपों का चित्रण किया है जो एक ओर परम्परानुगामिता के प्रति आग्रहशील हैं तथा दूसरी ओर आधुनिक सभ्यता के प्रति प्रबल आग्रह लिये हुए हैं।

निर्मल वर्मा

स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानीकारों में प्रतीकवादी शैली का आश्रय लेकर मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखने वालों में श्री निर्मल वर्मा का नाम भी उल्लेखनीय है। निर्मल की कहानियों का एक संग्रह 'जलती झाड़ी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह की कहानियाँ कहानी रचना के क्षेत्र में उनकी प्रतिभा की परिचायक हैं। वातावरण के सशक्त चित्र विभिन्न मनःस्थितियों में किस प्रकार की प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं को उत्पन्न करते हैं यह निर्मल वर्मा की कहानियों में अभिव्यंजित हुआ है। मनोवैज्ञानिक यथार्थ और उसकी स्वीकृत विवृति निर्मल वर्मा की कहानियों में प्रमुखता लिये हुए है।

नरेश मेहता

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानीकारों में श्री नरेश मेहता का नाम भी उल्लिखित किया जा सकता है। इनकी मुख्य देन उपन्यास, कविता तथा नाटक के क्षेत्र में ही है। परन्तु इनकी अनेक कहानियाँ स्फुट रूप से प्रकाशित हुई हैं जो इस क्षेत्र में इनके दृष्टिकोण की परिचायक है। इनकी कहानियों का मुख्य विषय सामाजिक जीवन की पृष्ठभूमि में मनुष्य की भावनाओ का विवेचन करना है। मनोवैज्ञानिक कुंठाएँ और विकृतियाँ रूमानी आधार लेकर इनकी कहानियों में चित्रित हुई है। 'तथापि' शीर्षक से इनकी प्रतिनिधि कहानियों का एक सग्रह प्रकाशित हो चुका है। इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ उपयुक्त दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण कही जा सकती हैं।

कमल जोशी

श्री कमल जोशी का नाम भी स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानीकारों में उल्लेखनीय है। उनकी कहानियों के अनेक प्रतिनिधि संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें 'पत्थर की आँख', 'चार के चार' तथा 'ब्रह्म और माया' आदि प्रमुख हैं। श्री कमल जोशी की कहानियों में आधुनिक सामाजिक जीवन की विरूपताओं और विडम्बनाओं का प्रभावशाली चित्रण मिलता है। सरल हृदय वाले व्यक्ति इस वातावरण में किस प्रकार से शोषित होते हैं और निरीह भाव से अत्याचारों को सहन करते हैं, इसका चित्रण इनकी कहानियों में मिलता है। निम्न मध्यवर्ग के अनेक पात्र-पात्रियों का चयन करके लेखक ने सामाजिक जीवन की विरूपताओं पर प्रकाश डाला है। मध्य-

वर्गीय समाज भी अपनी कुंठाग्रस्तता के कारण किस विरूपता को प्राप्त हो रहा है इसका चित्रण भी इनकी कहानियों में मिलता है। मनोवैज्ञानिक यथार्थ का प्रभावशाली और विश्वसनीय चित्रण इनकी कहानियों की सर्वप्रमुख विशेषता है।

अमरकान्त

श्री अमरकान्त ने मुख्यतः उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनकी स्फुट कहानियाँ सामाजिक जीवन के विविध रूपों का चित्रण करती हैं। आधुनिक जीवन में आस्थावान् युवक वर्ग के सम्मुख किस प्रकार की हतोत्साह करने वाली परिस्थितियाँ हैं और उनके समक्ष युवक समाज अपने आप को कितना विवश अनुभव करता है इसका चित्रण अमरकांत की कहानियों में प्रभावशाली रूप मे हुआ है। मानवीय भावनाएँ मार्मिक अभिव्यक्ति से युक्त होकर उनकी कहानियों में मिलती हैं। नागरिक जीवन के विभिन्न रूपों के चित्रण के साथ साथ ग्रामीण समाज का भी विश्वसनीय चित्रण उनकी कहानियों की विशेषता है।

आजम करेवी

श्री आजम करेवी का नाम भी स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानीकारों में उल्लेखनीय है। इनकी अनेक कहानियाँ उर्दू तथा हिन्दी में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनका प्राथमिक लेखन क्षेत्र उर्दू ही है परन्तु हिन्दी में भी साहित्य रचना करके इन्होंने अपने हिन्दी साहित्यानुराग का परिचय दिया है। समाज के विविध वर्गों की अनुभूतियों और मनोवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है। 'शेख और ब्राह्मण', 'इन्कलाब', 'अंकल' तथा 'नये अफ़साने' आदि संग्रहों में इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। इनकी कुछ कहानियाँ बाल मनोविज्ञान के चित्रण तथा सामाजिक विरूपताओं के प्रति व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण से युक्त होने के कारण भी महत्वपूर्ण कही जा सकती हैं।

नन्दकिशोर

श्री नन्दकिशोर ने आधुनिक जीवन की सामाजिक विरूपताओ को विषय बनाकर कहानी रचना की है। आधुनिक जीवन में विभिन्न क्षेत्रों के अन्तर्गत जिस प्रकार के शोषण की प्रवृत्ति व्याप्त है उसने किस प्रकार की समस्याओं को जन्म दिया है तथा

उसके फलस्वरूप सामाजिक जीवन कितना दूषित और अनिश्चित होता जा रहा है, इसका चित्रण नन्दकिशोर की कहानियों में मिलता है। समाज के अनेक प्रतीकात्मक क्षेत्रों को आधार बनाकर उन्होंने इस तथ्य का भी निरूपण किया है कि आधुनिक समाज की वास्तविकता तथा बाहरी दिखावा भारी अन्तर रखता है। सद्वृत्ति और उच्चतर मूल्यों में आस्था रखने वाले व्यक्तियों को विशेष रूप से विडम्बनाग्रस्त होना पड़ता है।

राधाकृष्ण

श्री राधाकृष्ण का नाम भी स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानीकारों में उल्लेखनीय है। उनकी कहानियो का एक संग्रह 'कटे सर' शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है जिसमें उनकी प्रतिनिधि कहानियाँ संगृहीत हैं। इनकी कहानियों में विविध सामाजिक वर्गों की आर्थिक तथा पारिवारिक समस्याओं का चित्रण मिलता है। आर्थिक स्थिति की कठिनता के कारण मध्यवर्गीय समाज में गृहस्थ जीवन कितना दुरूह हो गया है, इसका यथार्थपरक विवेचन इनकी कहानियों में मिलता है। सभी ओर से सताया हुआ और अनेक परेशानियों में डूबा हुआ मध्यवर्ग का गृहस्थ किसी अकल्पनीय आशा सूत्र के सहारे अपने जीवन के भार को ढोता रहता है। जीवन कुंठाएँ उसे निरीह बनाये रहती है, परन्तु फिर भी वह मानवीयता में अपनी आस्था नहीं खोता और संघर्ष में अपने अस्तित्व को विस्मृत किये रहता है।

सोमा वीरा

सोमा वीरा की कहानियों में सामाजिक नैतिकता की नवीनतम धारणाओं के सन्दर्भ में आधुनिक जीवन मूल्यों का निर्धारण किया गया है। मध्यवर्गीय समाज में जो रीति रिवाज परम्परा से प्रचलित हैं उनमें से कुछ यद्यपि अर्थहीन हो गये हैं परन्तु इसका यह आशय नही है कि वे सारी परम्पराएँ रूढ़िमात्र हैं। सोमा वीरा की कहानियों में यह सन्देश मिलता है कि परम्परागत रूप से व्याप्त कुछ संस्कार ऐसे हैं जो जीवन के प्रति मनुष्य को निष्ठावान् बनाते हैं। उदाहरण के लिए विवाह की समस्या प्रत्येक युग में अनेक रूपों में विद्यमान रही है। सोमा वीरा का मत है कि मध्य वर्ग में वैदिक रीति से जो विवाह हिन्दू समाज में होते हैं उनमें अनेक रीतियाँ वर-वधू को मानसिक रूप से एक उत्तरदायित्व की भावना के साथ विवाह के पवित्र बन्धन के प्रति निष्ठावान्

होने की प्रेरणा देती हैं। इसके विपरीत आधुनिक दृष्टिकोण से युक्त वर-वधू कचहरी में शादी करके भले ही अनेक प्रकार के अपव्यय, होहल्ले तथा कर्मकांड से बच जायं लेकिन उसमें वह भाव नहीं आ पाता। सोमा बीरा की कहानियों में नवीनता के प्रति आग्रह होते हुए भी प्राचीनता के खंडन की वृत्ति नही मिलती है।

रमेश बक्षी

स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानीकारों में श्री रमेश बक्षी का नाम भी उल्लिखित किया जा सकता है। उनकी कहानियों में सामाजिक मान्यताओं के प्रति व्यंग्यात्मकता की भावना मिलती है। नवीन यथार्थ-बोध के साथ-साथ शिल्प के भी आधुनिक प्रयोग उनकी कहानियों मे मिलते है। आधुनिक जीवन मे यांत्रिकता कितनी बढ गयी है और उसके फलस्वरूप मनुष्य की संवेदनाएँ तथा भावात्मक प्रतिक्रियाएँ भी कितनी यंत्रवत् हो गयी है, इसका चित्रण रमेश बक्षी की कहानियों मे मिलता है। आधुनिक सामाजिक जीवन का विकास कुछ इस गति से हो रहा है कि अनेक दीर्घकालीन परम्पराएं नष्ट हो गयी हैं। यांत्रिक जीवन ने मनुष्य की संवेदनशीलता समाप्त कर दी है। इसीलिए आधुनिक जीवन मूल्यों में अस्थिरता व्यापती जा रही है।

उषा प्रियंवदा

स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानी साहित्य में योगदान की दृष्टि से उषा प्रियवदा का नाम भी उल्लेखनीय है। 'जिन्दगी और गुलाब का फूल' नामक संग्रह मे उषा प्रियंवदा की प्रतिनिधि कहानियाँ संगृहीत हैं। नैतिक मान्यताओं का पुन.परीक्षण और उसके साथ साथ जीवन की मानवीय स्तर पर स्वीकृति उषा प्रियवदा की कहानियो मे मिलती है। आधुनिक जीवन का स्वरूप गति की तीव्रता के कारण यद्यपि परिवर्तित हो गया परन्तु फिर भी मूल मनोभावनाएँ तथा अनुभूतियाँ आज भी उतनी ही संवेदनशील हैं। इस दृष्टि से उषा प्रियंवदा की इस संग्रह में प्रकाशित अनेक कहानियाँ महत्वपूर्ण है।

ऊपर स्वातंत्र्योत्तर युग के जिन प्रतिनिधि कहानीकारो का उल्लेख किया गया है उनके अतिरिक्त भी अन्य अनेक कहानीकार ऐसे हुए हैं जिन्होंने इस काल की हिन्दी कहानी के विकास में योगदान किया है। श्याम परमार, ओमप्रकाश निर्मल, मनहर चौहान, धर्मेन्द्र गुप्त, रामनारायण शुक्ल, अवध नारायण, महीप सिंह, गंगाप्रसाद

'विमल', रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, महेन्द्र भल्ला, मधुकर सिंह, विजय चौहान, भीष्म साहनी, हरिशंकर परसाई, गिरिराज किशोर, जगदीश चतुर्वेदी, कामतानाथ, प्रयाग शुक्ल तथा शैलेश मटियानी आदि कहानीकारों ने इस युग में कहानी साहित्य के विकास में योगदान किया है। इन लेखकों की कहानियों मे मुख्य रूप से भारत विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थितियों, नवीन सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना, भारतीय समाज के परिवर्तित स्वरूप, विभिन्न क्षेत्रों में होने वाला परिवर्तन, सामाजिक यथार्थ के नये रूप, नारी समाज मे सामाजिक चेतना के जागरण, आधुनिक शिक्षा की उपयोगिता, विभिन्न सामाजिक समस्याओं, विभिन्न साम्प्रदायिक समस्याओं तथा अनेक नैतिक समस्याओं की विवृति हुई है। स्वातन्त्र्योत्तर युग में ही नयी कहानी तथा अकहानी आदि नामों से कहानी साहित्य क्षेत्र में आन्दोलन हुए है जो इस क्षेत्र में लेखकों की क्रियाशीलता के द्योतक है। इस युग में नयी कहानी में शिल्पगत विकास भी हुआ जिसके फलस्वरूप इस साहित्यांग ने विशेष उन्नति की। नयी कहानी के परिवेश में आधुनिक जीवन के सभी पक्ष समाविष्ट हुए। विचार पक्ष और बौद्धिकता की दृष्टि से भी स्वातंत्र्योत्तर कहानी साहित्य को समृद्धि प्राप्त हुई। सामाजिक दृष्टिकोण की नवीनता और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के समावेश ने भी इसे नवीन रूप प्रदान किया। सामाजिक चेतना के जागरण में भी इस कहानी का योगदान है। सक्षेप में, स्वातंत्र्योत्तर युग में लिखी गयी हिन्दी कहानी अपने विषय, क्षेत्रगत विविधता और दृष्टिकोणगत नवीनता के कारण ही महत्व रखती है। हिन्दी कहानी का विविध युगीन जो इतिहास ऊपर प्रस्तुत किया गया है, वह उसके स्वरूपात्मक विकास का स्पष्टीकरण करता है। विभिन्न युगों में हिन्दी कहानी विकास की अनेक अवस्थाओं से होकर अपने वर्तमान स्वरूप को ग्रहण करने में समर्थ हुई है।

अध्याय ३

कहानी तथा वाङ्मय की अन्य विधाएँ

कहानी आधुनिक साहित्य के क्षेत्र में एक विकासशील विधा के रूप में मान्य की जाती है। यद्यपि इसका वर्तमान स्वरूप आधुनिक काल में ही स्पष्ट हुआ है, परन्तु प्राचीनता की दृष्टि से इसका प्रसार सुदूर अतीत युगों तक है। इस दृष्टि से इसके अस्तित्व के संकेत प्राचीन साहित्य में विश्व की प्रायः सभी भाषाओं के क्षेत्र में उपलब्ध होते हैं। हिन्दी कहानी का वर्तमान स्वरूप अपनी पृष्ठभूमि में स्वरूपगत वैविध्य के साथ ही सुदीर्घ कथात्मक परम्पराओं को भी लिये हुए है। वाङ्मय की अन्य विधाओं में अनेकों से कहानी की तुलना करने पर इस तथ्य का बोध होता है कि इनमें पर्याप्त पारस्परिक समता है। इसी प्रकार से अनेक ऐसे कथा रूप हैं, जिनका शाब्दिक प्रयोग कहानी के ही समानार्थक रूप में किया जाता रहा है। इस दृष्टि से अनेक प्राचीन शास्त्रीय कथात्मक रूप कहानी के पर्याप्त निकट कहे जा सकते हैं। पद्यात्मक काव्य रूपों में कहानी की तुलना कविता, महाकाव्य तथा गद्य काव्य से की जा सकती है। नाट्य रूपों में कहानी से साम्य रखने वाले कतिपय उपकरण नाटक तथा एकांकी में विद्यमान मिलते हैं। वाङ्मय के अन्य शास्त्रों में इतिहास, मनोविज्ञान तथा नीतिशास्त्र का भी कहानी से घनिष्ठ सम्बन्ध है। सत्य तो यह है कि इन विषयों का शास्त्रीय एवं वैषयिक आधार ग्रहण करके आधुनिक कहानी का बहुरूपी विकास हुआ है। आधुनिक साहित्य की गद्यात्मक विधाओं में कहानी का सम्बन्ध और साम्य निबन्ध, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज, डायरी तथा जीवनी आदि से भी है। उपन्यास तथा लघु उपन्यास से तो कहानी का उपकरणात्मक साम्य है ही। इनमें केवल आकार का ही अन्तर है। इसी सन्दर्भ में रोमांस का भी उल्लेख किया जा सकता है, जो उपन्यास आदि आधुनिक बृहत् कथा रूपों का ही प्रारम्भिक स्वरूप द्योतित करता है। इन विधाओं की पारस्परिक तुलना से यह तथ्य भी सामने आता है कि यद्यपि अनेक दृष्टियों से इन साहित्यिक माध्यमों मे पारस्परिक साम्य और वैषम्य मिलता है, परन्तु प्रायः इन सभी की पृष्ठ-

भूमि में मूल मनोवृत्ति एक ही है। बाह्य रूपात्मक अन्तर के कारण ही इन विधाओं में भेद हो जाता है। साथ ही कथात्मक एवं वर्णनात्मक तत्व इन सभी विधाओं के क्षेत्र में किसी न किसी रूप में विद्यमान मिलता है। प्राचीन संस्कृत साहित्यशास्त्रीय विचार से कहानी का उल्लेख गद्य काव्य के एक भेद के रूप में किया जाता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में विविध कथा रूपों के अर्थ में कहानी के पर्याय के रूप में कथा, कथानक, आख्यान, आख्यानक, उपाख्यान, आख्यायिका, खंड कथा, परिकथा, सकल कथा, कथानिका, निदर्शन, प्रवल्हिका, मतल्लिका, मणिकुल्या, उपकथा, गल्प, बृहत्कथा तथा वृत्तान्त आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है।[1] यहाँ पर वाङ्मय की अन्य विधाओं के साथ ही इन कथा रूपों से भी कहानी के सम्बन्ध, साम्य और पृथक्त्व की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है।

कहानी और कथा

स्थूल रूप से कहानी और कथा एक ही साहित्य रूप के बोधक शब्द हैं और प्रायः इन दोनों ही शब्दों का प्रयोग समान अर्थ में किया जाता है। 'कथा' शब्द की व्युत्पत्ति 'कथ' से हुई है, जिसका अर्थ कोई कथन करना है। परन्तु आगे चलकर इसका प्रयोग अन्य रूढ़ अर्थ में होने लगा और इसका एक ऐसी घटना के वर्णन से आशय समझा जाने लगा, जिसमें उसके कारण और परिणाम की ओर भी संकेत किया गया हो। यह घटना अथवा वर्णन काल्पनिक तथा यथार्थात्मिक दोनों ही कोटियों का हो सकता था। सामान्य रूप से कथाओं के दो प्रधान वर्ग किये गये हैं। प्रथम वर्ग में वे कथाएँ आती हैं, जिनमें वर्णित घटनाएँ ऐतिहासिक अथवा पौराणिक हों और द्वितीय वर्ग में पूर्णतः कल्पित कथाएँ आती हैं। इसमें अनेक प्रकार की अलौकिक, चमत्कारिक, नाटकीय तथा पशु पक्षियों से सम्बन्धित कथाएँ भी आती हैं। आधुनिक युग में 'कथा' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी शब्द 'फिक्शन' के अर्थ में किया जाने लगा। इस दृष्टि से आधुनिक साहित्य के दो कथात्मक माध्यमों, उपन्यास और कहानी का अर्थ इससे स्पष्ट होता है, परम्परागत अर्थ के अनुसार कल्पित रचना को कथा कहते हैं। ऐसी रचना के लिए कहानी शब्द का भी प्रयोग होता है। व्यापक अर्थ में कथा से धार्मिक साहित्य; पुराण, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, सुखसागर तथा सत्यनारायण आदि की कथाओं

१. डा० प्रतापनारायण टंडन, 'हिन्दी उपन्यास कला', पृ० २।

का बोध होता है। इस दृष्टि से कथा ऐसी रचना को कहते हैं, जिसका पाठ अथवा पारायण श्रोताओं के समूह के सामने हो। शास्त्रीय दृष्टिकोण से कथा का स्वरूप निरूपण करते हुए संस्कृत के साहित्याचार्य भामह ने बन्ध की दृष्टि से काव्य के चौथे भेद के रूप में इसे मान्यता दी है। भामह की धारणा है कि कथा कवि के अभिप्रायपूर्ण कथनों से युक्त होती है। इसके विषय कन्या हरण, युद्ध तथा वियोग है। इसमें वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग अथवा उच्छ्वास का समावेश नहीं होता। इसमें संस्कृत तथा अपभ्रंश भाषाओं का प्रयोग होता है। इसमें नायक कुलीन पुरुष की भांति अपने गुणों का वर्णन नहीं करता।[2] भामह ने कथा में संस्कृत के साथ ही अपभ्रंश भाषा के प्रयोग का जो अनुमोदन किया है, उससे यह स्पष्ट है कि इस साहित्यिक विधा के सम्बन्ध में यह आवश्यकता आरम्भ से ही अनुभव की गयी कि इसकी भाषा लोकभाषा के अधिकतम निकट हो, ताकि उसमें जन जीवन या यथार्थ जीवन का वास्तविक चित्रण अधिक सरलता से सम्भव हो सके। यही कारण है कि आगे चलकर भी कथा कहानियों मे दैनिक जीवन के व्यवहार और बोलचाल की भाषा को ही सबसे अधिक अपनाया। गया भामह के बाद आचार्य दंडी ने गद्य काव्य के दो भेदों मे कथा को मान्यता दी। दंडी के विचार से कथा का वर्णनकर्त्ता उसका कोई भी पात्र हो सकता है। उसमें यथार्थ वक्ता नायक स्वयं ही अपने गुणों का वर्णन कर सकता है।[3] दंडी ने कथा के उदाहरण स्वरूप 'बृहत्कथा' नामक ग्रन्थ की चर्चा की है। यह रचना पैशाची भाषा मे प्रस्तुत की गयी है। इससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि भामह की भांति ही दंडी ने भी संस्कृत अथवा शास्त्रीय भाषा के साथ ही कथा में लोक प्रचलित भाषा के प्रयोग का भी अनुमोदन किया। आचार्य विश्वनाथ ने भी कथा में वस्तु की सरसता के लिए गद्यात्मकता का समर्थन किया है। विश्वनाथ के विचार से कथा मे कहीं आर्या छन्द और कहीं वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होता है। कथा के प्रारम्भ में उन्होंने पद्यमय नमस्कार और खलादिकों का चरित्र निबद्ध होना भी बताया है। कथा के उदाहरण के रूप मे विश्वनाथ ने 'कादम्बरी' का उल्लेख किया है।[4] आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने कथा के अर्थ में बड़े आकार वाली कल्पित कहानी को कहा है, जिसमें

२. आचार्य भामह, 'काव्यालंकार', १ । २७, २८, २९।
३. आचार्य दंडी । 'काव्यादर्श', १ । २३, २४, २८, ३८।
४. आचार्य विश्वनाथ, 'साहित्यदर्पण', ६ । ३३५।

कम ही घटनाएँ निबद्ध होती हैं। उनकी धारणा है कि ऐतिहासिक, पौराणिक कहानियों को कथा के अन्तर्गत परिगणित नहीं किया जा सकता। उनके लिए मिश्रजी ने पृथक् संज्ञाएँ निर्दिशित की हैं। इस प्रकार से कथा एक शास्त्रीय साहित्य रूप है और उसकी ही परम्परा में आधुनिक यग में उसके पर्याय के रूप में कहानी का प्रयोग होता है।[5]

कहानी और आख्यायिका

प्राचीन भारतीय कथा साहित्य में 'आख्यायिका' शब्द का प्रयोग कहानी के पर्याय के रूप में ही होता था। 'आख्यायिका' की रचना 'ख्या' धातु से हुई है। आख्यायिका प्राय: ऐसी कथात्मक रचना को कहते हैं, जिसमें उपदेशात्मकता के तत्व समाविष्ट रहते हैं। इसे आख्यान के लघु रूप में भी समझा जा सकता है। संस्कृत के साहित्य शास्त्री भामह ने बन्ध की दृष्टि से काव्य के तीसरे भेद के रूप में आख्यायिका का उल्लेख किया है। उन्होंने उस साहित्य रचना को आख्यायिका की संज्ञा दी है, जिसमें प्रकरण की आकुलता न हो, जिसमें श्रव्य शब्द, अर्थ एवं पद हों, जिसका अर्थ उदात्त हो तथा जिसमें उच्छ्वास हो। भामह का यह भी विचार है कि आख्यायिका में नायक अपने वृत्त तथा चेष्टा का वर्णन करता है। उसमे वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों के प्रयोग के साथ अवसर के अनुसार भविष्यत् अर्थ का निरूपण भी होता है।[6] आचार्य दंडी ने केवल नायक द्वारा वर्णित गद्य को ही आख्यायिका की संज्ञा दी है। दंडी का विचार है कि यथार्थ वक्ता नायक द्वारा अपने गुणों का स्वयं वर्णन करना आख्यायिका में दोष नही होता, यद्यपि उसमें अन्य पात्रों द्वारा कथन होने से इस नियम की अवहेलना भी हो जाती है। दंडी ने वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों के साथ आख्यायिका में उच्छ्वासों का विभाग भी अनुमोदित किया है। जहाँ तक आख्यायिका के विषय का सम्बन्ध है, दंडी का विचार है कि कन्या का अपहरण, वियोग जन्य प्रेम तथा नायक का अभ्युदय वर्णन आदि का समावेश आख्यायिका में सामान्य गुणों के रूप में होना चाहिए।[7] आचार्य विश्वनाथ ने आख्यायिका का स्वरूप निदर्शन करते हुए बताया है कि उसमें कवि वंश के वर्णन के साथ अन्य कवियों का वृत्तान्त भी होता है। उसमें कहीं कहीं

५. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, 'वाङ्मय विमर्श', पृ० ६६।
६. आचार्य भामह, 'काव्यालंकार', १ । १८, २५, २६।
७. आचार्य दंडी, 'काव्यादर्श', १ । २४, २५, २७, २९।

पद्यों की योजना भी होती है। आख्यायिका में कथा के विविध भागों को 'आश्वास' संज्ञा दी जाती है। इसमें आर्या, वक्त्र अथवा अपरवक्त्र छन्द के द्वारा अन्योक्ति के माध्यम से प्रत्येक आश्वास के आरम्भ में आगामी कथा की सूचना होती है। आख्यायिका का उदाहरण दंडी ने 'हर्षचरित' को बताया है।[८] इससे स्पष्ट है कि आख्यायिका एक शास्त्रीय विधा के रूप में प्राचीन साहित्य में मान्य थी। आधुनिक रूप में तत्वगत साम्य के कारण इसका प्रयोग कहानी के ही अर्थ में किया जाता है। हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार प्रेमचन्द ने भी कहानी के लिए आख्यायिका शब्द का प्रयोग करते हुए उसका स्वरूप निदर्शन किया है।[९] डा० श्यामसुन्दर दास ने आख्यायिका को 'एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को रखकर लिखा गया नाटकीय आख्यान' बताया है:[१०] इन्होंने इस शब्द का प्रयोग कहानी के पर्याय के रूप में और उसी के अर्थ में किया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि आख्यायिका और कथा उपन्यासों के भेद है, अर्थात् वे बड़ी कथा को निरूपित करते हैं। ऐतिहासिक उपन्यास 'आख्यायिका' के अन्तर्गत माने जाते हैं। उनमें क्रमबद्ध घटनाएँ विस्तार से आती हैं और 'कथा' में कल्पित होती हैं, उसमें घटनाएँ थोड़ी ही कथाबद्ध की जाती हैं। चाहें तो ऐतिहासिक और पौराणिक कहानियों के लिए 'आख्यायिका' शब्द हिन्दी मे गृहीत हो सकता है।[११] इससे स्पष्ट है कि मिश्रजी ने कहानी के पर्याय के लिए तो आख्यायिका शब्द का प्रयोग किया है, परन्तु विशिष्ट रूप में ऐतिहासिक, पौराणिक कथाप्रधान रचना को ही आख्यायिका बताया है।

कहानी और आख्यान

आख्यान को कहानी के नौ भेदों में से एक के रूप मे मान्य किया जाता है। व्यवहार रूप मे आख्यान का प्रयोग भी कथा के स्थूल अर्थ में किया जाता है। आख्यान शब्द भी 'ख्या' धातु से बना है, जिसका अर्थ वर्णन करना है। इस दृष्टि से आख्यान का शाब्दिक अर्थ कथन, निवेदन, किसी घटना का वर्णन अथवा वृत्तान्त है। व्यापक

८. आचार्य विश्वनाथ, 'साहित्यदर्पण', ६। ३३६।
९. मुंशी प्रेमचन्द, 'कुछ विचार', पृ० २४।
१०. डा० श्यामसुन्दरदास, 'साहित्यालोचन', पृ० २२९।
११. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, 'वाङ्मयविमर्श', पृ० ६६।

अर्थ में 'आख्यान' शब्द का प्रयोग कथा-कहानी के लिए भी सामान्य रूप से किया जाता है। संस्कृत साहित्य शास्त्र में आचार्य दंडी ने गद्य काव्य के भेदों में कथा एवं आख्यायिका का निरूपण करते हुए अन्य आख्यान जातियों के अन्तर्गत खंडकथा तथा परिकथा का उल्लेख किया है।[१२] आचार्य विश्वनाथ ने भी दंडी से सहमति प्रकट करते हुए आख्यान का उदाहरण 'पंचतंत्र' आदि को बताया है।[१३] इस दृष्टि से प्राचीन आख्यान और आधुनिक कहानी में प्रमुख अन्तर यह है कि आख्यान में अनेक कथाएँ शृंखलाबद्ध रूप में प्रस्तुत की जाती हैं, जब कि कहानी में प्रायः एक ही मुख्य कथा होती है। वैदिक साहित्य में जो आख्यान उपलब्ध होते हैं, उनका संग्रह अथर्ववेद में 'पुराण संहिता' शीर्षक से उल्लिखित किया गया है। अनेक आख्यानों एवं उपाख्यानों का संग्रह 'जय' शीर्षक से भी उल्लिखित किया जाता था, जिसका परवर्ती रूप 'महाभारत' है और जिसे आख्यान काव्य संज्ञा दी गयी है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' नामक ग्रन्थ मे आख्यान उस कथारूप को बताया है, जो अभिनय, पठन अथवा गायन के रूप में एक ग्रन्थिक द्वारा कहा जाता है। उन्होंने इसका उदाहरण 'गोविन्दाख्यान' को बताया है।

कहानी और आख्यानक

'आख्यानक' शब्द भी 'ख्या' धातु से निर्मित हुआ है। सामान्य रूप में आख्यानक शब्द का प्रयोग प्रायः उस कथात्मक रचना के लिए किया जाता है, जिसमें कोई पात्र सारी कथा का वर्णन स्वयं अपनी ओर से प्रथम पुरुष के रूप में करे। प्राचीन भारतीय साहित्य में इस शब्द का प्रयोग कथा के अन्य शास्त्रीय रूपों के अर्थ में भी किया जाता रहा है। कहानी से इसका प्रमुख अन्तर शैलीगत है। आख्यान में केवल प्रत्यक्ष शैली प्रयुक्त होती है, जब कि कहानी में इस शैली के अतिरिक्त अन्य पुरुष के द्वारा वर्णित कथा शैली भी प्रयुक्त होती है। संस्कृत साहित्य में आचार्य दंडी तथा आचार्य विश्वनाथ ने इन कथा रूपों को कथा तथा आख्यायिका के ही अन्तर्गत उल्लिखित किया है। 'लोकगाथा' तथा 'साहित्यिक गाथा' के लिए आख्यानक के पद्यात्मक रूपबोधक शब्द 'आख्यानक गीत' का प्रयोग किया जाता है।

१२. आचार्य दंडी, 'काव्यादर्श', १ । २८।

१३. आचार्य विश्वनाथ, 'साहित्यदर्पण', ६ । ३३६।

कहानी और उपाख्यान

'उपाख्यान' शब्द की निर्मिति भी 'आख्यान' तथा 'आख्यानक' आदि शब्दों की भांति 'ख्या' धातु से हुई है। सामान्य अर्थ में उपाख्यान शब्द का प्रयोग भी विभिन्न कथा रूपों के लिए किया जाता है। विशिष्ट अर्थ में उपाख्यान को आख्यान का लघु रूप कहा जा सकता है। 'उपाख्यान' शब्द सामान्यतः उन कथा प्रसंगों के लिए भी प्रयुक्त होता है जो किसी प्रधान कथा अथवा बृहत् आख्यान के बीच बीच में प्रासंगिक कथा अथवा दृष्टान्त के रूप में स्मृतिपरक शैली में नियोजित किये जाते हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'काव्यानुशासन' में उपाख्यान को प्रबन्ध का एक भाग कहा है, जो दूसरों के प्रबोधन के लिए लिखा जाता है। उन्होंने इसका उदाहरण 'नलोपाख्यान' को बताया है। आधुनिक हिन्दी कहानी के आविर्भाव काल में सदल मिश्र ने मूल रूप से 'यजुर्वेद' तथा 'कठोपनिषद्' आदि में विद्यमान कथासूत्र के आधार पर 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की थी। इसमें महाराज रघु की पुत्री चन्द्रावती तथा उसके पुत्र नासिकेत की कथाएँ मिलती हैं। इस आधार पर भी उपाख्यान किसी बृहत् आख्यान के उस भाग को कहते हैं, जिसके अनुसार कहानी और उपाख्यान पर्याप्त पारस्परिक निकटता रखते हैं।

कहानी और कथानिका

'अग्निपुराण' के अनुसार गद्य काव्य के पांच भेदों में 'कथानिका' का भी उल्लेख है। कुछ विद्वानों का यह भी अनुमान है कि आधुनिक 'कहानी' का शाब्दिक विकास जिस मूल शब्द से हुआ है, वह 'कथानिका' ही है। शास्त्रीय दृष्टिकोण से कथानिका साहित्य की उस कथात्मक विधा को कहते हैं, जिसमें भयानक अथवा रोमांचकारी घटनाओं के वर्णन के माध्यम से मनोरंजन होता है। कथानिका में मूलतः करुण रस की अभिव्यंजना होती है। उसकी कथा का अन्त नाटकीय रूप में सर्वथा अद्भुत और अप्रत्याशित होता है। उसका अर्थ सुन्दर और सुव्यवस्थित होता है तथा उसकी पदावली अनुदात्त होती है।[१४] इसी प्रकार की विशेषताएँ प्रायः कहानी में परम्परागत रूप से विद्यमान मिलती हैं। इसलिए तत्वतः कहानी और कथानिका में कोई स्पष्ट

१४. भयानकं सुखपरं गर्भे च करुणो रसः।
अद्भुतान्ते सुखप्राप्तौ नोदात्ता सा कथानिका॥

भेद नहीं प्रतीत होता और इन दोनों को एक दूसरे का पर्यायवाची कहा जा सकता है।

कहानी और कथालिका

कहानी और कथालिका में उसी प्रकार से कोई अन्तर नहीं है, जिस प्रकार से उपन्यास और नवल कथा में। ये दोनों ही कथात्मक माध्यम हैं और इनमें स्वरूपगत पूर्ण साम्य है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'अग्निपुराण' के आधार पर गद्य कथा काव्य के पांच भेदों में कथालिका का भी उल्लेख किया है। उनकी धारणा है कि कथा और आख्यायिका की तुलना में कथालिका कहानी के अधिक निकट है।[१५] सामान्य रूप से यहाँ यह भी संकेत किया जा सकता है कि कथालिका चमत्कारिक अथवा कल्पित घटनाप्रधान होती है और इस दृष्टि से वह आधुनिक साहित्यिक कहानी से भिन्न होती है।

कहानी और कथानक

'कथानक' का प्रयोग भी प्रायः कथा के ही अर्थ में किया जाता है। इसकी व्युत्पत्ति भी 'कथा' शब्द से हुई है। 'कथानक' का शाब्दिक अर्थ कथा का लघु रूप अथवा कथा का सारांश है। इस दृष्टि से यह लघु कथा के अधिक निकट है। आधुनिक युग में 'कथानक' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी शब्द 'प्लाट' के समानार्थी के रूप में किया जाता है। उपन्यास के सन्दर्भ में जिस 'कथानक' शब्द का प्रयोग होता है, वह इसी अर्थ का द्योतक है। अपने विशिष्ट अर्थ में कथानक साहित्य के किसी भी प्रकार के कथा पक्ष से सम्बन्धित हो सकता है, जिनमें लोकगाथा, महाकाव्य, खंडकाव्य, नाटक, उपन्यास तथा कहानी आदि हो सकते हैं। एक तत्व के रूप में सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कथानक का मूल उद्देश्य विविध घटनाओं का एक ऐसा ढांचा प्रस्तुत करना है, जिसके सहारे एक कथाकार अपनी रचना में किसी पात्र के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का रोचक अध्ययन प्रस्तुत कर सके। आधुनिक युग में कहानी अथवा उपन्यास के एक विशिष्ट तत्व के रूप में भी 'कथानक' शब्द का प्रयोग होता है। अनेक विचारकों ने इसे विविध कथा रूपों का प्रधान तत्व स्वीकार किया है।

१५. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, 'वाङ्मय विमर्श', पृ० ७२।

कहानी और बृहत्कथा

सामान्य अर्थ के अनुसार कथा के बड़े रूप को 'बृहत्कथा' कहते हैं। बहुत सी कथाओं के बड़े संग्रह के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। प्राचीन भारतीय कथा साहित्य में 'बृहत्कथा' शीर्षक से एक महत्वपूर्ण कथा ग्रन्थ भी उपलब्ध होता है, जिसका रचना काल छठी शताब्दी ई० पू० माना जाता है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि अपने मूल रूप में यह ग्रन्थ पैशाची भाषा में पहली शताब्दी ई० के लगभग प्रस्तुत किया गया था। यद्यपि इस मूल कृति तथा उसके रचयिता के विषय में कोई प्रामाणिक विवरण आज उपलब्ध नही है, परन्तु इसके अनेक संस्करण परवर्ती कालों में निकले तथा इसके आधार पर अनेक कथा कृतियाँ प्रस्तुत की गयीं। विद्वानों का अनुमान है कि भारतीय कथा साहित्य पर 'रामायण', 'महाभारत' तथा 'जातक' के उपरान्त सबसे अधिक प्रभाव 'बृहत्कथा' का ही पडा है। कहानी की तुलना में बृहत्कथा उपन्यास के निकट कही जा सकती है, क्योंकि तत्वगत साम्य के साथ ही इसमें आकारगत भारी विषमता विद्यमान है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' नामक ग्रन्थ में बृहत्कथा का स्वरूप निरूपित करते हुए लिखा है कि उसमें लम्भ नामक परिच्छेद योजना होती है तथा उसकी कथा अद्भुत अर्थ वाली होती है। उन्होंने बृहत्कथा का उदाहरण 'नरवाहनदत्तचरित' को बताया है।

कहानी और सकल कथा

शास्त्रीय दृष्टिकोण से सकल कथा का विवेचन करते हुए आचार्य अभिनवगुप्त ने बताया है कि सकल कथा में इस प्रकार की घटना का वर्णन होता है, जिसके अन्त में समस्त फलों की प्राप्ति हो जाय।[१६] इस धारणा के अनुसार कहानी और सकल कथा में मूल तत्वों तथा आकार की दृष्टि से पर्याप्त समानता होती है। इन दोनों में ही प्रायः एक मुख्य घटना वर्णित होती है। कथा साहित्य के प्राचीन तथा नवीन अन्य भेदों की भांति सकल कथा में अनेक प्रधान तथा सहायक कथाओं की योजना नहीं की जाती है। एक मुख्य वृत्तान्त के निरूपण के साथ ही इसमें पात्र, कथोपकथन, भाषा, शैली तथा उद्देश्यगत समानता भी होती है। आचार्य आनन्दवर्धन ने सकल कथा का स्वरूप निरूपण करते हुए यह निर्देश किया है कि इसकी रचना

१६. समस्तफलान्तेतिवृत्तवर्णना सकल-कथा।

प्राकृत भाषा में भी होती है। इसीलिए उसमें दीर्घ समासों का प्रयोग किया जाता है।"[17]

कहानी और खंडकथा

सामान्य रूप से कहानी और खंड कथा दोनों ही कथात्मक माध्यम हैं। इन दोनों में स्वरूपगत वैभिन्न्य नहीं है। इसीलिए इन दोनों का ही प्रयोग पर्यायवाची शब्दों के रूप में किया जाता है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'खंड कथा' शब्द का प्रयोग छोटी कहानी के अर्थ में किया है।[18] उनका विचार है कि कथा आदि अन्य रूप बड़ी कहानियों के लिए प्रयुक्त होते हैं। उनका यह वर्गीकरण घटना-वैचित्र्य तथा कथा रूप के आधार पर किया गया है। इनका साहित्यिक कहानियों से पृथक्त्व भी उन्होंने इंगित किया है। प्राचीन शास्त्रीय दृष्टिकोण से खंड कथा का पर्यायवाची शब्द परि-कथा को बताया गया है और इन दोनों में विशेष अन्तर नहीं निर्दिष्ट किया गया है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में खंड कथा का उदाहरण 'इन्दुमती' को बताया गया है।

कहानी और उपकथा

सामान्य धारणा के अनुसार कथा के किसी एक भाग को उपकथा कहते हैं। इसका उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्य में एक कथात्मक रूप के अर्थ में मिलता है। कहानी और उपकथा में उपकरणात्मक साम्य के साथ ही आकार सम्बन्धी समानता भी मिलती है। दोनों में ही घटना और पात्र सीमित रहते हैं। उपकथा का स्वरूप प्राचीन संस्कृतसाहित्य शास्त्रियों में भामह, दंडी तथा विश्वनाथ आदि आचार्यों ने दिखाया है। उपकथा का सैद्धान्तिक विवेचन आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' नामक ग्रन्थ में किया है। इनके विचार से किसी प्रसिद्ध कथा के अन्तर्गत किसी भी एक पात्र के माध्यम से प्रस्तुत की गयी रचना को उपकथा कहते हैं। प्राचीन संस्कृत साहित्य में उपकथा का उदाहरण 'चित्रलेखा' को निर्दिष्ट किया गया है।

कहानी और परिकथा

स्थूल रूप से कहानी और परिकथा मे कोई स्वरूपगत अन्तर नहीं है और इन

१७. आचार्य आनन्दवर्धन, 'ध्वन्यालोक', ३ । ७, ९ ।
१८. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, 'वाङ्मयविमर्श', पृ० ६६ ।

दोनों को ही एक दूसरे के पर्याय के रूप में मान्य किया जाता है। ये दोनों ही कथात्मक रूप हैं। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अंग्रेजी शब्द 'फ़ेबुल' के अर्थ में हिन्दी शब्द 'परिकथा' का प्रयोग किया है। उनका विचार है कि पशु पक्षियों के चरित्रों को आधार बनाकर लिखी गयी विलक्षण कहानियाँ परिकथा कहलाती हैं।[१९] उन्होंने यह वर्गीकरण घटना वैचित्र्य तथा कथा रूप आदि के विचार से किया है और इन्हें साहित्यिक कहानियों से पृथक् घोषित किया है। प्राचीन शास्त्रीय दृष्टिकोण से परिकथा की विशेषता यह होती है कि उसमें कथा और आख्यायिका का सम्मिश्रण होता है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' नामक ग्रन्थ में परिकथा का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से किसी एक को लक्ष्य बनाकर लिखी गयी अनेक वृत्तान्तों से युक्त वर्णनात्मक रचना को परिकथा कहते हैं। उन्होंने परिकथा का उदाहरण 'शूद्रक' को बताया है।

कहानी और निदर्शन

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' नामक ग्रन्थ में विविध कथा रूपों के परिचय के प्रसंग में 'निदर्शन' शब्द का भी प्रयोग किया है। निदर्शन के लक्षणों का निरूपण करते हुए उन्होंने बताया है कि जहां अनेक प्रकार की चेष्टाओं के द्वारा कार्य और अकार्य किया जाय, वहां पर निदर्शन होता है। उसके पात्र पशु पक्षी भी होते हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने निदर्शन का उदाहरण 'पंचतंत्र' को बताया है। संस्कृत के आचार्यों में दंडी तथा विश्वनाथ ने आख्यान का उदाहरण 'पंचतंत्र' को निर्दिष्ट किया था। इससे यह स्पष्ट है कि आख्यान और निदर्शन में पूर्ण साम्य होता है। इस धारणा के अनुसार कहानी और निदर्शन में तत्वगत साम्य होते हुए भी आकारगत भिन्नता होती है।

कहानी और प्रवल्हिका

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' नामक ग्रन्थ में कथा साहित्य के विविध भेदों का निरूपण करते हुए उनके अन्तर्गत प्रवल्हिका का भी उल्लेख किया है। हेमचन्द्र के विचार से जहां दो विवादों में से एक की प्रधानता दिखायी जाती है, वहां प्रवल्हिका होती है। उनका यह भी मत है कि इसकी रचना अर्धप्राकृत में भी की जाती है।

१९. वही, पृ० ६६।

प्रवल्हिका का उदाहरण उन्होंने 'चेटक' को बताया है। इससे यह स्पष्ट है कि हेमचन्द्र ने 'प्रवल्हिका' शब्द का प्रयोग एक कथात्मक माध्यम के रूप में प्रायः कहानी से ही मिलते जुलते अर्थ में किया था। इसकी भाषा संस्कृत न होकर अर्धप्राकृत उन्होंने अनुमोदित की है। यह इस कथात्मक रूप की लोकप्रियता की ओर संकेत करता है।

कहानी और मतल्लिका

प्राचीन साहित्य में कथात्मक रूपों के अन्तर्गत मतल्लिका का प्रयोग भी मिलता है। शास्त्रीय दृष्टिकोण से यह भी प्रायः कहानी का ही समानार्थक रूप है। मतल्लिका का स्वरूप आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' नामक ग्रन्थ में निरूपित किया है। उनकी धारणा है कि प्रेतमहाराष्ट्र भाषा में लिखी गयी क्षुद्र कथा को मतल्लिका कहते है। उनकी धारणा है कि मतल्लिका में पुरोहित, अमात्य, तापस आदि व्यक्तियों की भी चर्चा की जा सकती है। आचार्य हेमचन्द्र ने मतल्लिका का उदाहरण 'अनंगवती' को बताया है। इस प्रकार से कहानी की ही भांति विविध तत्वों से युक्त कथात्मक विधा को मतल्लिका कहा गया है।

कहानी और मणिकुल्या

प्राचीन भारतीय साहित्य मे विविध कथा रूपों के लिए 'मणिकुल्या' शब्द का प्रयोग भी मिलता है। इसका स्वरूप आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' नामक ग्रन्थ में निरूपित किया है। आचार्य हेमचन्द्र के विचार से जिसका पूर्व वृत्त किसी रचना के आरम्भ में प्रकाशित न होकर बाद में हो, उसे मणिकुल्या कहते हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि यह कथात्मक विधा स्मृतिपरक शैली में लिखी जाती है, जो आधुनिक हिन्दी कहानी की एक प्रतिनिधि शैली है। इसमें भी कथा का आरम्भ वर्तमान से किये जाने के उपरान्त फिर अतीत के सूत्रों का वर्णन होता है। आचार्य हेमचन्द्र ने मणि-कुल्या का उदाहरण 'मत्स्यहसित' को बताया है।

कहानी और वार्ता

ब्रज भाषा गद्य में वार्ता साहित्य के अन्तर्गत मुख्यतः 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' शीर्षक कृतियां उपलब्ध होती हैं। वल्लभ सम्प्र-दाय के अन्तर्गत पुष्टिमार्गीय विचारधारा के क्षेत्र में यह साहित्य अत्यधिक महत्व

रखता है। इन दोनों ग्रन्थो में प्रमुख कवियों तथा भक्तों की जीवनियां या कथाएं संकलित हैं। इससे यह स्पष्ट है कि कहानी की तुलना में वार्ता का सम्बन्ध जीवनी साहित्य से अधिक होता है। इन वार्ताओं का साहित्यिक महत्व भी है, क्योंकि इनसे सत्रहवीं शताब्दी के व्रजभाषा गद्य का व्यावहारिक स्वरूप द्योतित होने के साथ साथ अनेक वैष्णव कवियों के जीवन चरित्र का भी परिचय मिलता है। इस दृष्टिकोण से कहानी और वार्ता में कथात्मकता आदि के तत्व ही प्रायः समान रूप से विद्यमान मिलते हैं, अन्यथा आकार तथा उद्देश्य आदि की दृष्टि से भारी अन्तर है।

कहानी और गाथा

'गाथा' शब्द प्राय: ऐसी कथाओं के लिए प्रयुक्त होता रहा है, जिनमें गेय तत्वों की प्रधानता हो तथा जिनकी जड़ें लोक साहित्य में हों। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से 'गाथा' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 'ऋग्वेद' में हुआ है। वैदिक युग में यज्ञ के समय गाथिन् द्वारा गाथा गायी जाती थी। परवर्ती काल में विविध जातकों में श्लोकबद्ध रचनाओं के लिए भी गाथा शब्द प्रयुक्त हुआ है। कथा के अर्थ में 'गाथा' शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से भोजपुरी में होता है। खड़ी बोली हिन्दी में भी इस शब्द का प्रयोग प्राय: इसी अर्थ मे कथात्मक रचना के लिए होता है। कथाप्रधान छन्दोबद्ध रचना को भी हिन्दी में गाथा कहते हैं। इस दृष्टि से गाथा शब्द अंग्रेजी के बैलेड शब्द से बहुत कुछ अर्थ साम्य रखता है। प्राचीन संस्कृत साहित्य शास्त्र मे आचार्य भामह ने गद्य काव्य के भेदो में आख्यायिका तथा कथा आदि के साथ ही गाथा को भी मान्यता दी है। गाथा की परिभाषा करते हुए भामह ने बताया है कि श्लोक मात्र की प्रबन्ध विहीन रचना को गाथा कहते है। भामह के विचार से गाथा में भी वक्रोक्ति तथा स्वभावोक्ति आदि की योजना होती है।[20] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कहानी तथा अन्य कथा रूपो की भाति गाथा शब्द का प्रयोग भी ऐसे प्रत्येक साहित्यिक माध्यम के लिए किया जाता है, जिसमें किसी न किसी रूप मे कथा का उपकरण विद्यमान है।

कहानी और गल्प

कहानी और गल्प प्राय: समान कथा रूप हैं और एक दूसरे के पर्याय के रूप में

२०. आचार्य भामह, 'काव्यालंकार', १ । १८, ३०।

ही प्रयुक्त किये जाते हैं। डा० श्यामसुन्दर दास ने 'गल्प' का प्रयोग छोटी कहानी के ही अर्थ में करते हुए उसे उपन्यास की सन्तान माना है, जिसने अपनी प्राचीन मर्यादा छोड़कर नवीन स्वरूप ग्रहण कर लिया है और अब निरन्तर विकास के पथ पर अग्रसर हो रही है।[२१] उनकी यह भी धारणा है कि अपने नवीन स्वरूपात्मक विकास के कारण ही इसकी गणना एक स्वतंत्र विधा में की जाने लगी है। इनका विचार है कि गल्प या छोटी कहानी केवल एक प्रसंग को लेकर उसकी एक मार्मिक झलक दिखा देने का ही उद्देश्य रखती है और इसका उपन्यास आदि अन्य कथा रूपों से उपकरणगत भेद स्पष्ट है। कुछ विद्वानों की यह भी धारणा है कि कहानी यथार्थपरक कथात्मक रचना को कहते हैं और गल्प कल्पनात्मक कथा को। इस दृष्टि से 'गल्प' का विकास 'गप्प' या छोटी कल्पना से भी हुआ माना जाता है। परन्तु आधुनिक युग में इन दोनों का ही अर्थ समान और पर्यायवाची समझा जाता है।

कहानी और किस्सा

सामान्य धारणा के अनुसार कहानी और किस्से में कोई विशेष अन्तर नहीं है और प्रायः इन दोनों शब्दों का प्रयोग समान अर्थ में ही किया जाता है। कहानी और किस्से के मूल तत्वों में पूर्ण समानता होती है। कथा तत्व इन दोनों का ही प्रधान आधार है। अन्तर केवल इतना है कि कहानी का आकार लघु होता है और उसमें प्रायः एक ही मूल घटना होती है, जब कि किस्से का आकार विस्तृत होता है और उसमें अनेक घटनाएं हो सकती हैं। इस दृष्टि से कहानी की तुलना में किस्सा उपन्यास के अधिक निकट होता है। 'किस्सा तोता मैना', 'किस्सा बैताल पचीसी' तथा 'किस्सा चहारदरवेश' आदि ऐसी ही रचनाएं हैं जिनकी कथा बहुसूत्री है। कहानी की भांति ही किस्सा भी अधिकांशतः मनोरंजन के उद्देश्य से ही लिखा जाता था। 'किस्सा चहारदरवेश' की भूमिका में तो इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख भी है कि "यह किस्सा चहारदरवेश को इप्तदा में अमीर खुसरो देहलवी ने इस तरकीब से कहा कि हजरत निजामुद्दीन औलिया जरी जर बख्श जो उनके पीर थे और दरगाह उनकी दिल्ली में किलअ से तीन कोस लाल दरवाजे के बाहर मटिया दरवाजे के आगे लाल बंगले के पास है उनकी तबियत मांदी हुई तब मुरशद का दिल बहलाने के वास्ते अमीर खुशरो यह किस्सा

२१. डा० श्यामसुन्दर दास, 'साहित्यालोचन', पृ० १४६।

हमेशः कहते और तीमारदारी में हाज़िर रहते अल्लाह ने चंद रोज़ में शफ़ा दी तब उन्होंने गुसल सेहत के दिन यह दुआ दी कि जो कोई इस किस्से को सुनेगा, खुदा के फ़जल से तन्दुरुस्त रहेगा।" इस किस्से में एक के बाद दूसरी कथा निकल आती है। इस दृष्टि से किस्सा प्राचीन भारतीय लोक कथा शैली से आधुनिक कहानी की तुलना में अधिक निकटता रखता है।

कहानी और स्वप्न

शास्त्रीय दृष्टिकोण से स्वप्न तैंतीस संचारी भावों में से एक माना जाता है। इसी को परिभाषित करते हुए विद्वानों ने निद्रा की स्थिति विशेष को अनेक दृष्टियों से विवेचित किया है। स्वप्न जाग्रतावस्था में भी हो सकता है। मनोविश्लेषण शास्त्र के अन्तर्गत स्वप्नप्रतीकों आदि का सम्यक् विवेचन मिलता है। प्रसिद्ध मनोविश्लेषण शास्त्री फ्रायड ने स्वप्न मनोविज्ञान का विवेचन करते हुए उसे अचेतन मे स्थित इच्छाओं की प्रच्छन्न रूप से पूर्ति के रूप मे प्रतीकात्मक अर्थ प्रदान किया है। कहानी और स्वप्न दोनों का आधार घटनात्मकता होता है। कहानी में स्वप्न-कथात्मक शैली का प्रयोग भी किया जाता है। आधुनिक हिन्दी कहानी के आविर्भाव काल में 'सपना' अथवा 'स्वप्न' शब्द का प्रयोग कहानी के शीर्षक में भी किया जाता था। राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' लिखित 'राजा भोज का सपना' तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' इसी प्रकार की रचनाएं हैं। कुछ कहानियां ऐसी भी हैं, जो स्वप्न प्रधान हैं तथा स्वप्न शैली में लिखी गयी हैं। परन्तु उनके शीर्षक भिन्न हैं। भारतेन्दु युग में केशवप्रसाद सिंह द्वारा लिखित 'आपत्तियो का पहाड़' शीर्षक कहानी इसी कोटि की है।

कहानी और वृत्तांत

सामान्य रूप से कहानी के पर्यायवाची शब्द के रूप में 'वृत्तान्त' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता है। परन्तु इस कथन के अपवाद रूप में कतिपय रचनाएं उपलब्ध होती है, जो इन दोनो रूपों के कथात्मक साम्य की द्योतक हैं। गणेशीलाल नामक लेखक की लिखी हुई एक रचना 'सालिगा सदाव्रज का वृत्तान्त' शीर्षक से उपलब्ध होती है। इसका रचना काल सन् १८८६ है। यह कृति गद्य पद्य में मिश्रित भाषा में लिखी गयी है। इसका विषयगत आधार एक प्रेमकथा है। कथा की नायिका सालिगा और नायक सदाव्रज है। चार खंडों में विभाजित यह कथा कई जन्मों के आध्यात्मिक

प्रेम पर आधारित है। इसी नाम की एक दूसरी पुस्तक पं० भेदीराम के द्वारा सं० १९४२ में चार भागों में लिखी गयी थी। इसके रचना उद्देश्य के विषय में लिखा गया है कि यह पुस्तक सालिंगा की अति उत्तम और अतिप्रिय ललित भाषा में रसिक जनों के मन बहलाने के लिए पं० भेदीराम ने बनाकर निज छापेखाने में छापी।''[22] इससे यह संकेत मिलता है कि कहानी की तुलना में वृत्तान्त अपने आकारगत विस्तार के कारण उपन्यास के अधिक निकट है।

कहानी और उपन्यास

कहानी और उपन्यास दोनों की ही गणना कथा साहित्य के अन्तर्गत की जाती है। स्थूल रूप से 'कहानी' शब्द के अन्तर्गत प्रायः सभी प्राचीन कथा रूपों का उल्लेख होता है। आधुनिक युग में हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में 'कहानी' शब्द का प्रयोग 'स्टोरी' के तथा उपन्यास शब्द का प्रयोग 'नावेल' के अर्थ में किया जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से प्राचीन कथा रूपों तथा कहानी एवं उपन्यास में पर्याप्त अन्तर मिलता है। प्राचीनता की दृष्टि से ये दोनों ही साहित्यांग अत्यन्त अतीत युगीन परम्पराओं से सबद्ध होते हुए भी अपने नवीन रूप में आधुनिक युग की ही उपज हैं। जैसा कि पीछे उल्लेख किया जा चुका है, कहानी या कथा साहित्य संसार की लगभग सभी भाषाओं में पाया जाता है, क्योंकि इसकी परम्परा मौखिक साहित्य युग तक प्रशस्त है। इसलिए कहानी या प्राचीन कथा साहित्य उपन्यास से भी प्राचीनतर कहा जा सकता है।

स्वरूप विकास—पाश्चात्य कहानी का प्राचीनतम रूप प्रायः चार सहस्र वर्ष ई० पू० के मिस्र में 'टेल्स आफ दि मैजीसिअंश' में मिलता है। भारतीय कथा साहित्य की परम्परा भी न केवल 'जातक', 'बृहत्कथा', 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' तक प्रशस्त है, वरन् 'ऋग्वेद' तक में अनेक ऐसे प्रसंग हैं, जिन्हें कथाओं का आदि रूप सरलता से माना जा सकता है। परन्तु पाश्चात्य साहित्य में कहानी का विकसित रूप उन्नीसवीं शताब्दी से ही मिलता है, जब इस विधा का बड़ा ही योग्य विश्लेषण और सैद्धान्तिक नियमन एडगर ऐलन पो ने प्रस्तुत किया। वस्तुतः पो के बाद से ही पाश्चात्य कहानी का आधुनिक रूप सामने आया, जिसका अत्यन्त विविध रूपात्मक एवं रोचक विकास आगे चलकर, मोपासां, ओ० हेनरी, बालजक, ऐंटन चेखव, कैथरीन मेंसफील्ड, डी०

२२. पं० भेदीराम, 'सालिंगा सदाब्रज का वृत्तान्त', पृ० ३२।

एच० लारेंस तथा अर्नेस्ट हेमिंग्वे की कहानियों में उपलब्ध होता है। इसी प्रकार से आधुनिक हिन्दी कहानी का आरम्भ भी यद्यपि भारतेन्दु युग में हो चुका था, परन्तु इस क्षेत्र में नवीन प्रयोग बीसवीं शताब्दी में ही हुए। 'गुलेरी, प्रेमचन्द्र, 'प्रसाद', जैनेन्द्र, 'अज्ञेय' भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा तथा राजेन्द्र यादव ने इस क्षेत्र में विशिष्ट उपलब्ध्यात्मकता का परिचय दिया है। परन्तु जहां तक हिन्दी की नवीन कहानी का प्रश्न है, इस सन्दर्भ में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि उसमें जो भी प्रयोग हुए, उनकी बहुत कुछ प्रेरणा उपन्यास के ही क्षेत्र से आयी है। यदि कहानी की विधा अपने विकास के चरम बिन्दु पर उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में पहुंची है, तो विशुद्ध शैल्पिक दृष्टि से उपन्यास के क्षेत्र के महत्वपूर्ण प्रयोग बीसवीं शताब्दी की देन माने जा सकते हैं। फ्रान्ज, डयेल तथा रोब ग्रिले आदि जिन लेखकों ने उपन्यास की विधा में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया और जिनकी कृतियों का पूरा प्रभाव बीसवी शताब्दी में ही अनुभव किया गया, इनमें से कई उपन्यासकारों का रचना काल उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम वर्षों को भी समेटता है। प्रभाव की दृष्टि से इन उपन्यासकारों का प्रभाव न केवल उपन्यास के लिए वरन् कहानी के लिए भी उतना ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है।

स्वरूपगत तुलना—कहानी और उपन्यास में पर्याप्त साम्य है। आधुनिक युग के अनेक साहित्य विचारकों ने इन दोनों कथात्मक विधाओं के स्वरूप पर विचार करते हुए इनका साम्य और वैषम्य निर्दिष्ट किया है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के विचार से आख्यायिका और कथा उपन्यासों के भेद हैं, अर्थात् ये बडी कथा को निरूपित करते हैं। ऐतिहासिक उपन्यास 'आख्यायिका' के अन्तर्गत आते हैं। इनमें क्रमबद्ध घटनाएं विस्तार से दी जाती हैं और 'कथा' में कल्पित कथा होती है, उसमें घटनाएं थोडी ही कथाबद्ध की जाती हैं।'[२३] डा० श्यामसुन्दर दास ने कहानी को उपन्यास की ही सन्तान माना है। उनके विचार से 'यह बालिका, जो गल्प कहलाती है, उपन्यास की ही औरस जात है, किन्तु कुछ समय से वह अपने पितृगृह में निवास नही करती। इसने नवीन कुल की मर्यादा ग्रहण कर ली है।... कुछ विद्वान् तो इस 'गल्प' बालिका के शोभाशाली विकास से इतने चकित हो गये हैं कि इसे ये एक स्वतंत्र सृष्टि मानने लगे हैं।'[२४]

२३. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, 'वाङ्मयविमर्श', पृ० ६६।
२४. डा० श्यामसुन्दर दास, 'साहित्यालोचन', पृ० २४६।

डा० गुलाब राय ने बताया है कि 'कहानी अपने पुराने रूप में उपन्यास की अग्रजा है और नये रूप में उसकी अनुजा। वृत्त या कथा साहित्य की वंशजा होने के कारण कहानी और उपन्यास दोनों में ही कई बातों की समानता है। दोनों ही विधाएँ कलात्मक रूप से मानव जीवन पर प्रकाश डालती हैं। इतना होते हुए भी दोनों की अपनी विशेषताएँ हैं, जो कि एक दूसरे को पृथक् करती हैं।'[२५] कुछ लेखकों ने कहानी तथा उपन्यास में शैलीगत वैभिन्न्य भी स्वीकार नही किया है।[२६] आधुनिक युग में कहानी की अपेक्षा उपन्यास का महत्व निरन्तर बढ़ते रहने पर भी कुछ लेखकों ने कहानी की महत्ता उपन्यास की तुलना में अधिक प्रतिपादित की है।[२७]

आकारगत तुलना—कहानी और उपन्यास में मुख्य भेद आकारगत माना जाता है। यह भेद बहुत स्थूल है, क्योंकि बहुत से उपन्यास अथवा लघु उपन्यास आकार में कहानी अथवा लम्बी कहानी से छोटे होते हैं। इन दोनों ही विधाओं की परिभाषा और स्वरूप स्पष्ट करते हुए इनके आकार को प्रमुखता दी गयी है। कहानी के आकार के विषय में कहा गया है कि उसके पारायण में आधे घंटे से लेकर दो घंटे के मध्य तक का समय लगना चाहिए। यह भी कहा जाता है कि कहानी एक निश्चित समय में अथवा अनिवार्यतः एक ही बैठक मे पढ़ ली सकने योग्य होनी चाहिए।[२८] इसी प्रकार से उपन्यास के आकार के विषय में ई० एम० फार्स्टर ने कहा है कि इसमें कम से कम पचास सहस्र शब्द अवश्य होने चाहिए। वस्तुतः इस प्रकार के मन्तव्य कहानी अथवा उपन्यास के स्वरूप का सम्यक् परिचय नहीं दे सकते, क्योंकि इन विधाओं के आकार के विषय में कोई निश्चित नियम नही बनाया जा सकता। एक कहानी भी उपन्यास की भांति आकार में लम्बी रचना हो सकती है और उसमें भी जीवन की किसी महत्त्व-पूर्ण समस्या का विवेचन प्रस्तुत किया जा सकता है। डा० श्यामसुन्दर दास का विचार है कि 'यद्यपि उपन्यास और गल्प दोनों ही मनुष्य जीवन की आनुषंगिक कथा

२५. डा० गुलाब राय, 'काव्य के रूप', पृ० २१६।

२६. श्री श्यामू सन्यासी, 'उपन्यास सिद्धान्त', पृ० ५।

२७. डा० लक्ष्मीनारायण लाल, 'हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास', पृ० ३५६।

२८. विलियम हेनरी हडसन, 'एन इंट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ़ लिटरेचर', पृ० ३३७-३८।

की कल्पना के रंग में रंजित कर गद्य में व्यक्त करते हैं और इस दृष्टि से दोनों का आधार तथा प्रणाली एक ही है, तथापि इन दोनों की सत्ता विभिन्न समझी जाने लगी है। इन दोनों में केवल आकार का भेद ही नहीं माना जाता, वरन् इनके रूप रंग भी भिन्न हो गये हैं।'[२९] डा० गुलाब राय ने भी इन विधाओं की तुलना करते हुए इनका अन्तर स्पष्ट किया है। इनका विचार है कि इन दोनों में केवल आकार का ही भेद नहीं है। हम यह नहीं कह सकते कि कहानी छोटा उपन्यास है अथवा उपन्यास बड़ी कहानी है। यह कहना ऐसा ही असंगत होगा जैसे चौपाए होने की समानता के आधार पर मेंढक को छोटा बैल और बैल को बड़ा मेंढक कहना। दोनों के शारीरिक संस्कार और संगठन में अन्तर है। बैल चारों पैरों पर समान बल देकर चलता है, तो मेंढक उछल-उछल कर रास्ता तय करता है। इस प्रकार कहानीकार भी बहुत सी जमीन छोड़ता हुआ छलांग मारकर चलता है। दोनों के गतिक्रम में भेद है।[३०] प्रेमचन्द जी का भी यह विचार है कि कहानी और उपन्यास में आकार के अतिरिक्त और भी अन्तर है और बहुत बड़ा अन्तर है। उपन्यास घटनाओं, पात्रों और चरित्रों का समूह है, आख्यायिका केवल एक घटना है—अन्य बातें सब उसी घटना के अन्तर्गत होती हैं।[३१] कहानी और उपन्यास का आकारिक भेद इस दृष्टि से भी स्थूल है कि केवल आकार की लघुता अथवा दीर्घता के कारण ही किसी रचना को कहानी अथवा उपन्यास नहीं कहा जा सकता, वरन् अन्य उपकरणों की दृष्टि से भी उसकी परख आवश्यक है। यदि कहानी के प्राचीन और वर्तमान स्वरूप का अध्ययन किया जाय तो यह निष्कर्ष निकलेगा कि कहानी की आकारगत लघुता ही वस्तुतः उसके प्रचार और प्रसिद्धि का उल्लेखनीय कारण रही है। यद्यपि यह सत्य है कि जीवन के संपूर्णात्मक और व्यापक चित्रण की दृष्टि से इसकी तुलना उपन्यास जैसे बृहद् आकार वाले साहित्यिक माध्यम से नही की जा सकती है, परन्तु फिर भी इतना अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि उपन्यास में जो बात व्यापक पृष्ठभूमि में कही जाती है, वही कहानी में सीमित रूप में। कहानी का लघु आकार और सीमित परिवेश इस दृष्टिकोण से इसकी लोकप्रियता और प्रचार का सबसे बड़ा कारण है। वर्तमान

२९. डा० श्यामसुन्दर दास, 'साहित्यालोचन', पृ० १४६।
३०. डा० गुलाब राय, 'काव्य के रूप', पृ० २१६।
३१. मुंशी प्रेमचन्द, 'साहित्य का उद्देश्य', पृ० ३७।

काल में छोटी मोटी यात्राओं, वाचनालयों, पुस्तकालयों, अस्पतालों, क्लबों आदि में समय काटने के लिए कहानी से अच्छा कोई साहित्यिक माध्यम नहीं हो सकता है।

तत्वगत तुलना—तत्वगत एकरूपात्मकता की दृष्टि से कहानी का साहित्य के अन्य माध्यमों की तुलना में सर्वाधिक निकट सम्बन्ध उपन्यास से ही है। प्राचीन भारतीय साहित्य में विभिन्न कथात्मक माध्यमों का इतना सूक्ष्म वर्गीकरण नहीं किया गया था, जितना कि आज किया जा रहा है। इसी कारण पहले कथा, आख्यायिका, गल्प, आख्यान तथा गाथा आदि को प्रायः एक ही वर्ग के अन्तर्गत रखा जाता था। इसके अतिरिक्त इनमें भाषा की दृष्टि से भी एकरूपता थी, क्योंकि प्राचीन काल में कथात्मक तत्वों से युक्त साहित्यिक माध्यमों में भी प्रायः पद्य का ही प्रयोग होता था। परन्तु साहित्यिक विकास के भावी युगों में कथा साहित्य के विविध अंगों में स्वतंत्र गति आयी। इस कारण इस तथ्य को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि कहानी और उपन्यास में प्रायः समान तत्व ही निहित रहते हैं और दोनों में ही कथात्मकता रहती है। इसलिए कहानी और उपन्यास के विषय में प्रचलित यह धारणा सर्वथा भ्रामक है कि ये दोनों साहित्यांग केवल आकार की दृष्टि से ही भिन्नता रखते हैं, अन्यथा इन दोनो में कोई मौलिक भेद नहीं है। वास्तव में यह तथ्य नहीं है। उपन्यास मे सभी मूल भूत तत्वों का निर्वाह आ-श्यक होता है, अन्यथा उसमें स्वरूपगत अपूर्णता रह जाने का भय रहता है। इसके विपरीत कहानी विविध तत्वों में से किसी एक की प्रधानता लिये हुए रह सकती है, जिसका समुचित निर्वाह उसकी सफलता में फलीभूत हो सकता है। कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, भाषा, शैली तथा वातावरण तत्व कहानी और उपन्यास दोनों मे समान रूप से विद्यमान रहते हैं, यद्यपि सातवें तत्व उद्देश्य की उपन्यास में प्रधानता होती है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उपर्युक्त में से प्रथम पाँच तत्वों को कहानी में अनिवार्य बताया है और सातवें तत्व अर्थात् उद्देश्य की अनिवार्यता तथा प्रधानता उपन्यास में सिद्ध की है। प्रेमचन्द का विचार है कि उपन्यास में आप चाहे जितने स्थान लायें, चाहे जितने दृश्य दिखाएँ, चाहे जितने चरित्र खींचें, पर यह कोई आवश्यक बात नही कि वे सब घटनाएँ और चरित्र एक ही केन्द्र पर आकर मिल जायं। परन्तु 'कहानी केवल एक घटना है, अन्य बातें सब उसी घटना के अन्तर्गत होती हैं।'[३२] आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की धारणा है कि कहानी और उपन्यास में

३२. वही, पृ० ३७।

तत्वों की दृष्टि से कोई भेद नहीं है। भेद है घटनाओं की व्यष्टि और समष्टि की योजना की दृष्टि से। कहानी की विस्तार सीमा बड़ी ही होती है, चाहे उसका कितना ही संकोच क्यों न किया जाय। मिश्रजी का विचार है कि चित्रणात्मकता की दृष्टि से इन दोनों साहित्यिक माध्यमों में अन्तर होता है, क्योंकि 'कहानी जीवन का एक चित्र रखती है—निरपेक्ष, स्वच्छन्द। उपन्यास जीवन के एकाधिक चित्रों का योग संघटित करता है—सापेक्ष, सम्बद्ध। घटना वैचित्र्य या घटना चक्र के प्रवर्तन की ओर चित्त को आकृष्ट करने की विशेषता दोनों ही मे होती है। कहानी या उपन्यास की चाहे पुरानी कृतियाँ हों, चाहे आधुनिक, सबमें घटनाचक्र की ओर आकर्षण अवश्य रहता है। तिलिस्मी, ऐयारी, जासूसी कथा कहानियों से लेकर आधुनिकतम कहानियों तक में घटनागत आकर्षण की प्रवृत्ति बनी हुई है और बनी रहेगी।"[33] हमारे विचार से कहानी और उपन्यास में कुछ मौलिक भेद होते हैं। एक भेद तो इसके रूप और आकार से अवश्य ही सम्बन्ध रखता है। पचास साठ पृष्ठों से लेकर दो-दो चार-चार हजार पृष्ठों तक के उपन्यास लिखे जाते हैं और दो-चार पंक्तियों से लेकर तीस चालीस पृष्ठों तक की कहानी। अतः इनके रूपात्मक स्पष्टीकरण के लिए ही बृहत् उपन्यास, लघु उपन्यास, लंबी कहानी, कहानी, छोटी कहानी, लघु कथा आदि रूपों की योजना भी सुविधा के विचार से कर दी गयी है, जो इन दोनों के मध्य के रूप हैं।

विविधता और विस्तार—विषय वस्तु की विविधता तथा क्षेत्रगत विस्तार के कारण ही कहानी और उपन्यास में अनेक रूपात्मक भेद हो जाते हैं। एक कहानीकार के विपरीत एक उपन्यासकार जीवन के बड़े खंड की कथा को उसकी सम्पूर्णता के साथ प्रस्तुत करता है। वह उपन्यास की मूल कथा को संग्रथित करने वाली भिन्न भिन्न घटनाओं को उन्हीं परिस्थितियों के साथ चित्रित करता है। यह व्यापकता भी उपन्यास के स्वरूप को विशिष्टता प्रदान करती है। इस दृष्टि से कहानी में जो केन्द्र-गतता दिखाई पड़ती है, उसका उपन्यास में अभाव होता है। यही नही, बहुधा कहानी में कथावस्तु की जो संगठनात्मकता और उपन्यास में कथानक की जो शिथिलता दिखाई देती है, उसका भी यही कारण होता है। साथ ही, इसी कारण से कहानी और उपन्यास में उद्देश्य की दृष्टि से भी अन्तर हो जाता है। एक कहानी का उद्देश्य

३३. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, श्री श्रीपति शर्मा लिखित 'कहानी कला और प्रेमचन्द' शीर्षक पुस्तक की भूमिका, पृ० २।

केवल मनोरंजन भी हो सकता है, जबकि उपन्यास में एक निश्चित वैचारिक परिणति उपदेशात्मक स्तर पर अवश्य होनी चाहिए। कहानी की लघु सीमा के कारण उसमें किसी विशिष्ट सिद्धान्त को उपदेश का स्वरूप देते हुए उसकी व्याख्या अपेक्षित नहीं होती, जबकि उपन्यास में उसके समावेश के लिए व्यापक सम्भावनाएँ विद्यमान रहती है। आकारगत सीमा के कारण ही कहानी में किसी एक पात्र अथवा परिस्थिति का चित्रण होता है, जबकि उपन्यास में अनेक पात्रों के जीवन का बृहत् चित्रण भी सम्भव होता है। ब्रेंडर मैथ्यू का मत है कि कहानी और उपन्यास में मुख्यत: प्रभावात्मक एकता का अन्तर होता है।

अन्य भेद--कहानी और उपन्यास में उपर्युक्त समानताओं और विषमताओं के साथ साथ अन्य भी अनेक भेद होते हैं। इन दोनों का वर्णन और विषय क्षेत्र भी प्राय: एक समान नही होता। उपन्यास में मानव जीवन का समग्र चित्रण किया जाता है और उसके बृहत् आकार के कारण उसमें उसकी सम्भावनाएँ भी विद्यमान रहती है। इसके विपरीत कहानी की परिधि संकुचित होने के कारण उसमें यह सम्भव नहीं होता और उसमें जीवन के किसी एक पक्ष का ही चित्रण किया जाता है। इसके अतिरिक्त कहानी जीवन को उसकी सम्पूर्णता के साथ प्रतिबिम्बित नही करती, वरन् उसके किसी एक पक्ष का ही चित्र उपस्थित करती है। उपन्यास में अनेक चरित्र और घटनाएँ नियोजित हो सकती हैं, जबकि कहानी में इनकी संख्या भी एक दो ही हो सकती है। इस कारण क्षेत्रीय व्यापकता और गहनता के भेद के कारण प्रभावा-त्मकता की दृष्टि से भी इन दोनों साहित्यांगों में पर्याप्त अन्तर हो जाता है।

कहानी और उपन्यास में पात्रों की संख्या तथा उनके चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी पारस्परिक अन्तर आ जाता है। उपन्यास मानव चरित्र की व्याख्या और विकास चित्रित करता है, जबकि कहानी में किसी चरित्र की झलक मात्र दिखाई जाती है। कहानी में प्राय: एक ही मुख्य पात्र होता है तथा अन्य पात्रों की संख्या कम से कम रखी जाती है, क्योंकि ऐसा होने पर ही पात्रों का चारित्रिक विकास सम्भव होता है और दूसरे तत्वों के साथ उनके सन्तुलन का भी निर्वाह हो जाता है। अधिक पात्र कहानी के परिवेश की संयुक्तता को भी कम कर देते हैं। इसके विपरीत उपन्यास में पात्र संख्या कहानी की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। कुछ बृहत् उपन्यासों में तो कई कई सौ तक पात्र नियोजित होते हैं और सफल चरित्रांकन से उन सबका निर्वाह भली भांति हो जाता है।

उद्देश्य तत्व--कहानी और उपन्यास में उद्देश्यगत भिन्नता भी मिलती है। कहानी गम्भीर उद्देश्य से लिखी जा सकती है और हलका मनोरंजन भी उसका लक्ष्य हो सकता है। इस दृष्टि से जीवन के किसी पक्ष का स्थूल चित्रण उसमें मात्र पर्याप्त हो सकता है। परन्तु उपन्यास से प्रायः यह आशा की जाती है कि उसमें किसी न किसी प्रकार की उद्देश्यगत गम्भीरता अवश्य होगी। उसमें जीवन के चाहे जिस पक्ष का चित्रण हो, उसे अपने आप में पूर्णता लिये होना चाहिए, क्योंकि उद्देश्य पूर्ति की दृष्टि से वह तभी सफल कहा जायगा। सामान्य रूप से यह समझा जाता है कि कहानी का ही विकसित रूप उपन्यास है। परन्तु कुछ विद्वानों ने यह भी भविष्यवाणी की है कि कहानी से उपन्यास का विकास नहीं हुआ है, वरन् इसके विपरीत उपन्यास के विकास की अन्तिम परिणति के रूप में कहानी ही स्थान ग्रहण करेगी।

कहानी और उपन्यास का तुलनात्मक विवेचन करते समय हमें इस तथ्य को भी ध्यान में रखना पड़ेगा कि कहानी की मुख्य विशेषता उपन्यास की तुलना में यह होती है कि उसका आधार कोई एक विचार अथवा घटना हो सकती है। कहानी की रचना लेखक उस घटना को ही केन्द्रित बनाकर कर सकता है। रचना प्रणाली की इसी विशिष्टता के कारण कहानी में चारित्रिक केन्द्रगतता रहती है। उसमें प्रायः एक ही चरित्र मुख्य होता है और इसी का उतार चढ़ाव कहानी का आधार रहता है। कथा साहित्य के अन्य रूपों की भांति कहानी में भी अनिवार्य रूप से तत्व योजना विद्यमान रहती है, परन्तु उसमें प्रमुखता किसी केन्द्रीय विचार अथवा घटना सूत्र की रहती है।

विषय वैविध्य--कहानी और उपन्यास में यह अन्तर भी होता है कि एक उपन्यास में लेखक अपने अभीष्ट विषय का चित्रण विविधता से भरी हुई आधारभूमि पर करता है, जबकि एक कहानीकार इस प्रकार की विविधता को अपना लक्ष्य नहीं बनाता। उपन्यास में हम किसी समाज के विभिन्न वर्गों के अन्तर्गत आने वाले अनेक चरित्रों के विषय में विस्तार से ऐसा विवरण प्राप्त कर सकते हैं, जो जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित और उन पर आधारित हो। इस दृष्टिकोण से उसमें मूल कथा के अतिरिक्त अनेक सहकथाएँ तथा प्रासंगिक कथाएँ भी आयोजित की जा सकती हैं। परन्तु कहानी में इस प्रकार की प्रासंगिक कथा योजना के लिए अधिक स्थान नहीं, क्योंकि उसके सीमित परिवेश में कथा का विस्तार इतनी अधिक स्वतंत्रता के साथ नहीं हो सकता।

एक कहानी और उपन्यास में यह भी अन्तर होता है कि उपन्यास में घटनात्मक बहुरूपता होती है, जिसका ग्रथन ही उसे एक निश्चित आकार और रूप प्रदान करता

है। इसी कारण उसमें अनेक प्रकार की परस्पर भिन्नता रखने वाली परिस्थितियों का चित्रण होता है। इसके विपरीत कहानी में एक ही प्रधान घटना होती है, जो किसी विशिष्ट स्थिति पर आधारित होती है। कहानी और उपन्यास की इसी पारस्परिक भिन्नता को स्पष्ट करते हुए पाश्चात्य आलोचक बेरी पैन ने लिखा है कि यदि उपन्यास एक सन्तुष्टि है, तो कहानी एक उत्तेजना मात्र है, क्योंकि उपन्यास में जीवन को उसकी सम्पूर्णता के साथ अंकित किया जाता है, जबकि कहानी में कोई एक प्रश्न अथवा उसका एक पक्ष मात्र उठाया जाता है।[३४]

एक अन्य दृष्टि से कहानी और उपन्यास में लगभग वही भेद बताया जा सकता है, जो महाकाव्य और खंडकाव्य में होता है। यदि उपन्यास को हम विशाल और प्रशस्त जीवन गाथा पर आधारित महाकाव्य के समान व्यापक चित्र कहें तो कहानी को उसी अनुपात में लघु जीवन खंड पर आधारित खंड काव्य के रूप में मान्य किया जा सकता है। उपन्यास में बृहत् जीवन खंड अथवा सम्पूर्ण जीवन को प्रस्तुत किया जा सकता है, जबकि कहानी में उसका केवल कुछ भाग ही चित्रित करना सम्भव हो पाता है। क्षेत्र के इसी विस्तार तथा संकोच के कारण उपन्यास और कहानी के विविध उपकरणों में भी अन्तर आ जाता है, यद्यपि सामान्य रूप से उपन्यास के आधार भी प्रायः वे ही तत्व होते हैं, जो कहानी के हैं।

इस प्रकार से कहानी और उपन्यास दोनों ही कथा साहित्य के विशिष्ट माध्यम हैं। कहानी को उपन्यास का पूर्ववर्ती रूप कहा जाता है, क्योंकि संसार में प्राचीन कथा साहित्य प्रायः सूत्र अथवा लघु कथाओं के रूप में ही मिलता है। उपन्यास की भांति ही कहानी भी विशिष्ट और महत्वपूर्ण साहित्यिक माध्यम के रूप में मान्य की जाती है। यद्यपि कहानी में उपन्यास की भांति प्रशस्त रूप में जीवन के विशद चित्र उपलब्ध नहीं होते, परन्तु सूत्र रूप में ही इसमें जो गहन तत्व समाविष्ट हो जाते हैं, उनसे इसका महत्व अनायास ही बहुत अधिक बढ़ जाता है। प्राचीन भारतीय कथा साहित्य का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि वैदिक युग में कथा साहित्य के अन्तर्गत कहानी अथवा लघु कथा में जीवन के गम्भीर दार्शनिक तत्वों को समाविष्ट कर दिया जाता था। परवर्ती युगों में भारतीय कथा साहित्य का जो विकास दिखाई देता है, उसमें भी प्रायः आध्यात्मिक और नैतिक तत्वों की ही प्रधानता रही है। नीतिप्रधान

३४. बेरी पैन, 'दि शार्ट स्टोरी', पृ० ४५-४६।

कथा साहित्य के अन्तर्गत जितनी भी रचनाएँ आती हैं, वे प्रायः इसी प्रकार की हैं। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि कहानी न केवल आधुनिक युग में लोकप्रियता प्राप्त किये हुए है, वरन् प्राचीन काल में भी यह अत्यन्त प्रचलित साहित्यिक माध्यम थी।

कहानी और लघु उपन्यास

लघु उपन्यास वास्तव में उपन्यास का ही एक ऐसा रूप है, जिससे उसकी मुख्य भिन्नता परिवेशगत विस्तार में है। कहानी तथा उपन्यास की ही भाँति लघु उपन्यास में भी कथानक, पात्र, कथोपकथन, भाषा, शैली, वातावरण तथा उद्देश्य आदि उपकरण होते हैं। परन्तु लघु उपन्यास के क्षेत्र में सम्भावनाओं की दृष्टि से जो तत्व सबसे अधिक सहायक हुआ, वह यह है कि कथा, पात्र तथा आकारिक सीमितता के होते हुए भी लघु उपन्यास के क्षेत्र में शिल्प के वे सभी रूप सम्भाव्य हैं, जो कि वृहत् उपन्यास के क्षेत्र में प्रयुक्त किये जाते रहे है। यह सुविधा कहानी के साथ नहीं है। आत्मकथात्मक शैली, वर्णनात्मक शैली, पत्र शैली, डायरी शैली, खंडात्मक शैली तथा मिश्रित शैली में अनेक लघु उपन्यास रचे गये है। जीवन मूल्यों की स्थापना और मान्यताओं के स्पष्टीकरण की दृष्टि से भी लघु उपन्यास कहानी से अन्तर रखता है। लघु उपन्यास में लेखक अपनी बात जितनी प्रखरता और सशक्तता के साथ कह सकता है, वैसे कहानी में नहीं।

आवश्यकता—कहानी और लघु उपन्यास मे इस दृष्टि से पूर्ण साम्य है, क्योंकि ये दोनों ही साहित्यिक विधाएँ युग की माँग है और इसी कारण विशेष रूप से विकसित हुई है। यह युग कुछ इस प्रकार की यान्त्रिकता की भावना से युक्त हो गया है कि जहाँ एक ओर उसमें वृहत् उपन्यास जैसे कुछ कथात्मक माध्यम अपनी गम्भीरता और महत्व के कारण कुछ विशिष्टता रखते है और अब भी जीवित हैं, वहाँ दूसरी ओर लघु उपन्यास तथा कहानी जैसे कथा रूप भी युगीन आवश्यकता के कारण तीव्र गति से विकसित हो रहे है। वस्तुतः आधुनिक सामाजिक संगठन की जटिलता, बौद्धिक दुरूहता, विविध क्षेत्रीय समस्याओं की बहुलता आदि को देखते हुए जहाँ वृहत् उपन्यास असंदिग्ध रूप से एक महान् साहित्यांग है, वहाँ कहानी और लघु उपन्यास भी आन्तरिक अनुभूति की तीव्रता और गहराई की दृष्टि से उतना ही महत्व रखते हैं। मानव चरित्र की सशक्तताओं और दुर्बलताओं का भी जितना प्रभावपूर्ण चित्रण उपन्यास में सम्भव है, उतना ही लघु उपन्यास तथा कहानी में। यही बात इन विधाओं के क्षेत्र में प्रयोगात्मकता की दृष्टि से भी समान रूप से सत्य है।

तत्वगत तुलना—जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, कहानी और लघु उपन्यास में तत्वगत पर्याप्त साम्य है। विविध तत्वों के नियोजन की दृष्टि से लघु उपन्यास में विशेष सुविधा रहती है। यद्यपि उसकी परिधि बृहत् उपन्यास के समान विस्तृत नहीं होती, परन्तु तो भी उसका आकार इतना सीमित भी नहीं होता जितना कि कहानी का। इसलिए भी यह कहना अधिक संगत नहीं है कि लम्बी कहानी और लघु उपन्यास में आकारगत या अन्य तत्वगत भेद भी है। कहानी और लघु उपन्यास दोनों में ही मानव जीवन में घटित होने वाली विशिष्ट घटनाओं का संवेदनशील और अनुभूतिबद्ध लेखाजोखा होता है। इन दोनों में वातावरण, चित्रण एवं वर्णनात्मकता के लिए भी अधिक स्थान नहीं रहता। दोनों में ही पात्रों की योजना संक्षिप्त और सोद्देश्य होती है।

आकारगत तुलना—कहानी और लघु उपन्यास की तुलना आकार की दृष्टि से भी की जाती है। इस दृष्टिकोण से लघु उपन्यास कहानी से बड़ा और उपन्यास से छोटा होता है। इन दोनों में कभी कभी इतना अधिक साम्य हो जाता है कि बहुधा लघु उपन्यास और लम्बी कहानी में भेद करना भी कठिन हो जाता है। परन्तु सजग पाठक सरलता से उस सीमारेखा को समझ सकता है, जो इन विधाओं को एक दूसरे से अलग करती है। कहानी और लघु उपन्यास के गुण और तत्व परस्पर पर्याप्त साम्य रखते हुए भी एक नहीं हैं और न उनका पृथक् होना मात्र आकार पर निर्भर करता है। इसी प्रकार लघु उपन्यास और लम्बी कहानी में गुणात्मक अन्तर भी अन्ततः स्पष्ट ही होता है, भले ही आकार कभी कभी दुविधाजनक हो। कहानी की भांति ही लघु उपन्यास भी देशी-विदेशी साहित्य में पर्याप्त प्रचलित रहा है। अंग्रेजी में हेनरी जेम्स लिखित 'टर्न आफ दि स्क्रू' और 'ऐस्पर्न पेपर्स' तथा जोसेफ़ कानराड लिखित 'हार्ट आफ़ डार्कनेस' अपनी सफलता के लिए प्रसिद्ध हैं। हिन्दी में जैनेन्द्र कुमार लिखित 'त्यागपत्र' तथा भगवतीचरण वर्मा लिखित 'वह फिर नहीं आई' इस दृष्टि से अच्छे बन पड़े हैं।

सीमाएँ—कहानी और लघु उपन्यास दोनों की ही कुछ सीमाएँ भी होती हैं। सामान्य रूप से इन दोनों कथात्मक विधाओं के विषय में यह कहा जाता है कि अपनी आकारगत संकुचितता के कारण इनमें मानव जीवन अथवा उसके किसी पक्ष की गम्भीर और विस्तृत व्याख्या सम्भव नहीं है। यह भी एक धारणा प्रचलित है कि किसी उद्देश्य विशेष के स्पष्टीकरण की दृष्टि से भी ये दोनों माध्यम प्रभावात्मक नहीं

हो पाते। वस्तुतः इस प्रकार की भ्रामक धारणाएँ इन दोनों विधाओं के वास्तविक स्वरूप का बोध न होने के कारण ही प्रचलित होती हैं। वस्तुतः जिन प्रबुद्ध पाठकों ने विदेशी भाषाओं के 'सारोज आफ वर्थर', 'एडोल्फ़', 'स्ट्रेट इज़ दि गेट' एवं 'डुएल' आदि तथा हिन्दी के 'त्यागपत्र', 'चित्रलेखा' और 'निर्मला' आदि उपन्यासों का सजग भाव से पारायण किया है, वे उपर्युक्त निष्कर्ष पर नही आ सकते, क्योंकि पाश्चात्य भाषाओं में 'ला मिज़रेबल्स', 'वार ऐंड पीस' तथा 'गान विद दि विंड' एवं हिन्दी में 'चन्द्रकान्ता सन्तति', 'गोदान', 'शेखर : एक जीवनी', 'बूंद और समुद्र', 'भूले बिसरे चित्र' तथा 'झूठा सच' जैसे उपन्यासों के समान ही इनका विशिष्ट महत्व है।

भविष्य—आधुनिक युग में अनेक परिस्थितिगत कारणो से साहित्य के कुछ माध्यमों को विशेष रूप से प्रश्रय मिल रहा है और उनके क्षेत्र में चतुर्मुखी प्रगति हो रही है एवं कुछ माध्यमों का निरन्तर ह्रास हो रहा है और उनका प्रचार भी सीमित होता जा रहा है। यह संयोग की ही बात है कि युगीन परिस्थितियों और आवश्यकताओं के कारण लघु उपन्यास और कहानी दोनों ही साहित्यांग इस समय तीव्रतर गति से पनप रहे हैं। विश्व की अन्य अनेक समृद्ध भाषाओं की भांति ही हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे अब सस्ती पुस्तकें और पाकेट बुक्स की अनेक मालाएँ प्रकाशित हो रही हैं, जिनमें मुख्यतः कथा साहित्य की ही माँग है। अब जितने मूल्य में कोई अच्छी मासिक व साप्ताहिक पत्रिका मिलती है, उतने में ही कोई श्रेष्ठ लघु उपन्यास अथवा कहानी संग्रह भी मिल जाता है। इसलिए प्रचार की दृष्टि से कहानी और लघु उपन्यास दोनों का ही भविष्य बहुत उज्ज्वल कहा जा सकता है।

कहानी और रोमांस

जिस प्रकार से आधुनिक हिन्दी उपन्यास की परम्परा प्राचीन कहानी से सम्बद्ध है, उसी प्रकार से आधुनिक पाश्चात्य उपन्यास की परम्परा रोमांस से सम्बद्ध है। जहाँ तक 'रोमांस' शब्द की व्युत्पत्ति का सम्बन्ध है, उसका विकास मूलतः 'रोमन' शब्द से हुआ है। सामान्यतः साहित्य में इसका आशय असाधारण कृति से समझा जाता है। पाश्चात्य साहित्य के क्षेत्र में रोमांस प्रायः पद्य में लिखी गयी कथाओं को कहते हैं। इनकी प्रमुख विशेषता इनमें निहित प्रेमव्यापार के कल्पनापरक तत्व हैं। रोमांस से ही परवर्ती काल में 'नौवास', 'नावेला', 'टेल्स', 'नोवेल' तथा अन्ततः 'नावेल' शब्दों का विकास पाश्चात्य साहित्य में ठीक उसी प्रकार हुआ, जिस प्रकार भारतीय

साहित्य में 'आख्यान', 'दृष्टान्त', 'उपाख्यान', 'कथा' तथा 'आख्यायिका' आदि से 'उपन्यास' तथा 'कहानी' का।

स्वरूप—कहानी और रोमांस में स्वरूपगत पर्याप्त साम्य है। मध्य युगीन अंग्रेजी साहित्य में ऐसी पद्यकथा को रोमांस कहते थे, जिसमें कथा का विस्तार बहुत अधिक हो, अर्थात् जिसमें एक मूल कथा तथा अनेक प्रासंगिक व सहायक कथाएँ हों, जिनमें चित्रित वातावरण और प्रस्तुत वर्णन अत्यन्त कवित्वपूर्ण हो, जिसमें अन्य विषयों के समावेश के साथ कथात्मकता की ही प्रधानता हो, जिसमें प्रेम और शौर्य की असाधारण घटनाएँ हों तथा सबसे बढ़कर जिसकी कथा मूलतः काल्पनिकता पर आधारित हो। इस दृष्टि से रोमांस और प्राचीन भारतीय कथात्मक माध्यमों के कथा, आख्यायिका, गाथा तथा आख्यान आदि में तत्वगत साम्य मिलता है। कहानी और रोमांस दोनों का ही विषय ऐतिहासिक कथाएँ हो सकती हैं। यूरोप में शार्ल मेन तथा आर्थर की जीवनियों से सम्बन्धित तमाम रोमांसों की रचना हुई, जो आज भी उतनी ही रुचि से पढ़े जाते हैं। प्रसिद्ध रोमांसों में 'सर गवेन ऐण्ड दि ग्रीन नाइट', 'ल मेति दि आर्थर', सर टामस मैलोरी के रोमांस तथा चौसर के 'ट्राइलस ऐण्ड क्रिसीद' आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

तत्वगत तुलना—कहानी तथा रोमांस में कथा, पात्र एवं शैली की दृष्टि से थोड़ा साम्य होते हुए भी कुछ अंतर स्पष्ट है। कहानी की शैली का तो विविध रूपात्मक विकास विभिन्न युगों में हुआ है, परन्तु रोमांस में इस तत्व की दृष्टि से वैशिष्ट्य मिलता है। रोमांस अपने आरम्भिक रूप मे कथा की एक सर्वथा भिन्न शैली में लिखे जाते थे। उनमे वर्णनात्मक शैली में साहसिक कथाओं का प्रस्तुतीकरण किया जाता था। उनमें प्रायः एक से अधिक कथाएँ भी होती थी, जिन्हें परस्पर सम्बद्ध करके एकात्मक रूप प्रदान किया जाता था। विविध कथाओं की यह शैली रोमांस के विकास के साथ ही प्रसार पाती रही। विकास काल के मध्य में छन्दोबद्ध काव्यात्मक कहानियाँ, वीरता की कथाएँ तथा आदर्शात्मक प्रेमगाथाएँ भी प्रायः रोमांस की संज्ञा पाती थी। अनेक वीर सरदारों या 'नाइट्स' के शौर्यपूर्ण कार्य कलाप के रोमांचकारी विवरणों से युक्त वृत्तान्तों का वर्णन मुख्यतः मध्य युगीन रोमांसों में होता था। ये हिन्दी के मध्ययुगीन प्रेम गाथा साहित्य से मिलते जुलते हैं। जहाँ तक घटना नियोजन का सम्बन्ध है, रोमांस में उसके प्रमुख पात्र के विस्तृत कार्य व्यापार में से कथा का आधार एक ऐसी सर्वप्रमुख घटना होती थी, जिसके समक्ष अन्य घटनाएँ अप्राथमिक हो जाती

थीं। प्राचीन हिन्दी पद्यात्मक कथा साहित्य की भांति आरम्भ में रोमांसों का रूप भी पद्यात्मक ही था। कालान्तर में गद्यात्मक रोमान्स भी लिखे जाने लगे। यद्यपि इन पर रोमान्सों के पूर्व रूपों से विपरीत यथार्थता का प्रभाव अधिक था।

प्रेरक अथवा आधार--रोमान्स नामक साहित्यिक रूप आधुनिक यूरोपीय उपन्यासों का प्रेरक अथवा आधार रूप स्वीकार किया जाता है। सैद्धान्तिक रूप से रोमान्स में महाकाव्य के स्तर पर कथा का व्यापक संगठन और विस्तार होता है। इस दृष्टि से प्राचीन भारतीय कथा साहित्य से उसकी तुलना की जा सकती है, जिसमें मूल एवं प्रासंगिक कथाएँ परस्पर निबद्ध होती हैं। रोमान्स में भावात्मक स्तर पर एक ऐसे वातावरण की सृष्टि की जाती है, जो किसी सीमा तक मानवेतर कार्य कलाप के लिए अपनी उपयुक्तता सिद्ध कर सके। एक प्रकार की रूढ़ कथा न्यूनाधिक रूप से विभिन्न रोमान्सों में विद्यमान मिलती है, जिसका आधार लौकिक प्रेम व्यापार और सुखात्मक अन्त के लिए किये गये साहसिक कार्य होते हैं। कथा के बीच बीच में अनेक नाटकीय स्थलों की सृष्टि के द्वारा संवेदनात्मक उतार चढ़ाव की स्थिति का अंकन भी होता है। दूसरे शब्दो में यह कहा जा सकता है कि युग की यथार्थता से रोमान्स का अन्तर पर्याप्त रूप से बढ़ा हुआ होता है। रोमान्स तथा अन्य कथा रूपों में कल्पनात्मकता तथा वास्तविकता का जो स्पष्ट भेद विद्यमान है, उसका आधार उपर्युक्त ही है।

अन्य भेद--पाश्चात्य साहित्य में क्लारा रीव तथा क्रास आदि साहित्य विचारकों ने अन्य कथात्मक माध्यमों की तुलना में रोमान्स के स्वरूप विश्लेषण के प्रयत्न किये हैं। क्लारा रीव ने बताया है कि रोमान्स की प्रमुख विशेषता यह होती है कि उसमें जो कुछ भी वर्णित होता है, वह सर्वथा कल्पित होता है। उसमें यथार्थता का थोड़ा भी अंश नही रहता और इसीलिए उसमें यथार्थता की कभी कोई सम्भावना नही हो सकती। परन्तु उसमें भाषा और वर्णन की उन्नतता और उदारता के गुण अवश्य विद्यमान रहते है। इसके विपरीत कहानी की यह विशेषता होती है कि उसका आधार मुख्यत: मनुष्य का यथार्थ जीवन होता है, यद्यपि कल्पनापरक कहानियाँ भी लिखी जाती हैं। रोमान्स की भांति उसकी वर्ण्य वस्तु हमारे लिए सर्वथा अपरिचित अथवा हमारे अनुभव की सीमाओं से परे की नहीं होती। इसी कारण जहाँ रोमान्स की प्रभावात्मकता कल्पना की वैभवमयी उड़ान में निहित रहती है, वहाँ कहानी की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितनी सरल, स्वाभाविक, यथार्थ और विश्वसनीय चित्रण हमारे सामने प्रस्तुत करती है। क्रास के विचार से रोमांस में जीवन का प्रस्तुतीकरण

बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण विधि से किया जाता है। वह एक ऐसी गद्य कथा होती है, जिसमें अद्भुत, असम्भव तथा अविश्वसनीय कोटि के रोमांचक कार्य कलाप द्वारा किसी महान् और कल्पित आदर्श की प्रतिष्ठा की जाती है। इस रूप में रोमान्स साहसिक कहानियों और प्रेम गाथाओं के पर्याप्त निकट कहा जा सकता है।

इस प्रकार से, रोमान्स को पद्य में लिखी गयी एक ऐसी कथा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसका मूल आधार आदर्शात्मक हो और जिसमें किसी महान् प्रेम व्यापार अथवा रोमांचक घटना व्यापार का चित्रण हो। प्रायः धार्मिक, पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओं मे से इन रोमान्सों के सूत्र प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ग्रहण किये जाते थे। इसीलिए रोमान्स को ऐसी घटनाओं का वर्णन कहा जाता है, जो न कभी घटित हुई होती है और न जिनके घटित होने की कभी सम्भावना होती है। इस रूप में रोमान्स मध्ययुगीन हिन्दी प्रेम कथाओं से साम्य रखते हैं, जिनमें अन्ततः धार्मिक अथवा आध्यात्मिक स्तर पर प्रेम व्यापार की दार्शनिक परिणति मिलती है। आधुनिक कहानी रोमान्स के कल्पनापरक रूप के विपरीत एक ऐसी रचना होती है जिसका आधार पूर्णतः व्यावहारिक और लौकिक होता है तथा जिसमें जीवन की विविध दुरूहताओं, विषमताओं और जटिलताओं का अध्ययन किया जाता है। रोमान्स के विपरीत उसमें काल्पनिक घटनाओं और पात्रों के स्थान पर स्वाभाविक वर्णनों से युक्त एक ऐसी कथा होती है, जिसमें मनुष्य के लिए सर्वथा स्वाभाविक और चिर परिचित व्यक्तियों एवं घटनाओं का वर्णन होता है।

कहानी और संस्मरण

साहित्य के विविध रूपों में संस्मरण भी प्रायः कहानी से पर्याप्त निकटता रखता है। इन दोनों ही विधाओं में कथात्मक एकरूपता होती है। यदि कोई कहानी आत्मपरक है और उसमें मुख्यतः आत्मानुभूति की ही अभिव्यक्ति है, तो वह प्रायः संस्मरणात्मक हो जाती है। इसी प्रकार से यदि कोई संस्मरण कथात्मक रोचकता लिये हुए होता है, तो उसमें भी कहानी के समान ही आनन्द मिलने लगता है। इसके अतिरिक्त कहानी लेखक की जो विविध शैलियाँ होती हैं, उनमें से भी एक संस्मरणात्मक होती है। यह शैली कहानी लेखन की अन्य शैलियों की तुलना में विशेष महत्व रखती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी यह शैली अपेक्षाकृत अधिक प्रभावात्मक होती है। इसीलिए कहानीकारों ने इसे अधिक अपनाया। संस्मरणात्मक शैली में जैनेन्द्र कुमार

ने पर्याप्त महत्त्वपूर्ण कहानियों की रचना की है। यात्रा-संस्मरणात्मक शैली में तो आधुनिक कहानियों के आविर्भाव काल से ही रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। भारतेन्दु युग में लिखित केशवप्रसाद सिंह की कहानियाँ 'चन्द्रलोक की यात्रा' तथा 'कश्मीर यात्रा' इसी कोटि की रचनाएँ हैं।

मुख्य भेद—कहानी और संस्मरण में मुख्य अन्तर यह होता है कि कहानी का विषय किसी भी वर्ग का कोई जीवनखंड अथवा पात्र हो सकता है, जबकि संस्मरण प्रायः किसी विशिष्ट व्यक्ति से सम्बन्धित ही होता है। कभी कभी अतीत जीवन के कुछ अंश भी संस्मरण की संज्ञा प्राप्त कर लेते हैं। विविध यात्रा प्रसंगों को भी यात्रा संस्मरण कहा जाता है। इसीलिए कहानी और संस्मरण परस्पर भिन्न विधाएँ होते हुए भी कथात्मक ऐक्य रखते हैं। यदि किसी कहानी में वर्णित कथा का आधार उसके प्रधान पात्र से सम्बन्धित कोई अतीत जीवन की घटना होती है, तब भी वह संस्मरणात्मक रूप ग्रहण कर लेती है। उदाहरण के लिए श्रीमती महादेवी वर्मा लिखित 'स्मृति की रेखाएँ' तथा 'अतीत के चलचित्र' नामक संग्रहों में प्रस्तुत रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है, जो अनुभूतिप्रधान और संस्मरणात्मक हैं।

कहानी और आत्मकथा

कहानी और आत्मकथा मे भी स्वरूपगत साम्य और सम्बन्ध होता है। कहानी की एक शैली भी आत्मकथात्मक कहलाती है जिसमे प्रथम पुरुष के रूप में कहानी के प्रमुख अथवा अन्य किसी पात्र के द्वारा सारी कथा का प्रस्तुतीकरण किया जाता है। कहानी और आत्मकथा दोनों में ही कथा तत्व समान रूप से विद्यमान रहता है। वस्तुतः ये दोनों ही साहित्यिक माध्यम अनुभूतिप्रधान हैं। आत्मकथा में एक लेखक स्वयं अपने जीवन की कहानी प्रस्तुत करता है। वह एक प्रकार का सिंहावलोकन सा होता है, जिसमें लेखक अपने जीवन में अतीत कालीन घटनाओं का पर्यवेक्षण प्रस्तुत करता है। आत्मकथा से ही मिलते जुलते साहित्य रूप डायरी तथा संस्मरण कहे जा सकते हैं। आत्मकथा में भी इन रूपों तथा कहानी की ही भांति वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना रहती है। इस दृष्टि से रामकहानी, आत्मचरित और आत्मकथा में कोई सैद्धान्तिक भेद नही होता। प्रायः इन सभी शब्दों का प्रयोग एक प्रकार से पर्यायवाची अर्थ में किया जाता है। कहानी और आत्मकथा दोनों ही का लेखन आधुनिक युग में गद्यात्मक भाषा में होता है, यद्यपि अपवाद रूप में इन विषयों

की कतिपय पद्यात्मक रचनाएँ भी यत्र तत्र उपलब्ध हो जाती हैं। 'आत्मकथा' में लेखक अपने जीवन का समस्त विवरण स्मृतिपरक शैली में प्रस्तुत करता है। प्रायः आत्मकथा उन व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत की जाती है, जिनके जीवन की उपलब्धियाँ युगीन सन्दर्भ में किसी दृष्टि से विशेष महत्व रखती हैं। आत्मकथा का कहानी रूप सर्वप्रथम भारतेन्दु युग में उपलब्ध होता है। इस काल में स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती' शीर्षक से प्रस्तुत की थी। भारतेन्दु युग में ही लिखित कार्तिक प्रसाद खत्री की 'दामोदर राव की आत्मकहानी' जैसी रचनाएँ भी मिलती हैं, जिनमें आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

कहानी और डायरी

कहानी और डायरी में विविध तत्वगत साम्य होता है। विषय, आकार, भाषा तथा शैली की दृष्टि से ये दोनों विधाएँ पर्याप्त पारस्परिक निकटता रखती हैं। कहानी के एक शैली विशेष को भी डायरी शैली कहा जाता है। इस शैली में लिखी गयी कहानी वस्तुतः डायरी से स्वरूपगत एकता रखती है। संकुचित अर्थ में तो डायरी दैनन्दिनी को कहते है, जिसमें कोई व्यक्ति दिन प्रति दिन की घटनाओं का ब्योरेवार विवरण प्रस्तुत करता है। परन्तु व्यापक धारणा के अनुसार डायरी का बहुत अधिक महत्व है क्योंकि इसमें मनुष्य के जीवन विवरण के साथ ही साथ अनुभवों तथा पर्यवेक्षणों का सार प्रस्तुत किया जाता है। डायरी आत्मकथात्मक शैली में प्रथम पुरुष के रूप में लिखी जाती है। इसलिए उसमें भी कहानी की ही भांति वैयक्तिकता तथा अनुभूत्यात्मकता की प्रधानता होती है। इस दृष्टिकोण से कहानी की तुलना में डायरी का सम्बन्ध और साम्य आत्मकथा से अधिक निकट का होता है। अन्तर केवल इनमें आकारगत हो सकता है, क्योंकि आत्मकथा प्रायः संपूर्ण जीवन के विवरण को प्रस्तुत करती है और डायरी सारे जीवन की भी हो सकती है तथा एक या दो दिन की भी। इसके अतिरिक्त डायरी में व्यक्ति जिन अनुभवों को प्रस्तुत करता है अथवा जिन विचारों को व्यक्त करता है, वे प्रायः मूल्यांकनपरक होते हैं तथा उनसे वह भविष्य में स्वयं भी लाभ उठा सकता है। इसके विपरीत आत्मकथा में अभिव्यक्त विचार सूत्रों के उद्देश्य से पाठकों का लाभ ही होता है, क्योंकि वह एक प्रकार का सिंहावलोकन सा होता है। कहानी और डायरी दोनों में कथात्मकता तथा विषयगत एकता होती है।

कहानी और जीवनी

कहानी और जीवनी में विषय तथा शैली की दृष्टि से पर्याप्त साम्य होता है। जीवन के अन्तर्गत किसी व्यक्ति विशेष का जीवन वृत्तान्त प्रस्तुत किया जाता है। इस दृष्टि से यह एक यथार्थपरक विधा है, जिसमें किसी वास्तविक व्यक्ति की सच्ची जीवनी कथा लिखी जाती है। इसके विपरीत कहानी पूर्णरूपेण कल्पनापरक रचना होती है। जीवन चरित, जीवन चरित्र अथवा जीवनी प्रायः एक ही महत्वपूर्ण व्यक्ति के जीवन को केन्द्र बनाकर विकासशील रहती है, जबकि कहानी में दूसरे पात्रों को भी प्रमुखता दी जा सकती है। जीवनी में मुख्य पात्र का प्रायः संपूर्ण जीवन विवरण तथा उससे सम्बन्धित महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख रहता है, परन्तु कहानी में केवल एक ही कोई घटना कथावस्तु का मूल आधार होती है। इस दृष्टि से इन दोनों विधाओं में आकारगत अन्तर प्रमुख रूप से मिलता है। कहानी और जीवनी दोनों में ही प्रायः संस्मरणात्मक शैली का प्रयोग समान रूप से हो सकता है। पूर्व भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य में व्रज भाषा में वार्ता साहित्य के अन्तर्गत वस्तुतः जीवनी साहित्य ही मिलता है। वल्लभ सम्प्रदाय के क्षेत्र, पुष्टिमार्गीय विचारधारा के सन्दर्भ मे 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' नामक महत्वपूर्ण कृतियाँ उपलब्ध होती है। ये वस्तुतः विभिन्न भक्तों और कवियों की जीवनियाँ या कथाएँ ही हैं।

कहानी और रिपोर्ताज

कहानी और रिपोर्ताज में कुछ तत्वों की दृष्टि से समानता होती है। ये दोनों ही गद्यात्मक विधाएँ हैं। कथात्मकता तथा वर्णनात्मकता के तत्व इन दोनों मे विशेषकर समान रूप से विद्यमान होते हैं। आकार की दृष्टि से भी इन दोनों में विशेष अन्तर नहीं होता। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'रिपोर्ताज' शब्द फ्रेंच है और इसका समानार्थक अंग्रेजी शब्द 'रिपोर्ट' है। हिन्दी में इसके लिए 'सूचनिका' शब्द का प्रयोग होता है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से रिपोर्ताज किसी भी घटना के तथ्यपरक विवरण को कहते हैं। इस दृष्टि से कहानी का आधार भी कोई घटना ही होती है। अन्तर केवल इतना ही है कि कहानी किसी काल्पनिक घटना पर भी आधारित हो सकती है, जबकि रिपोर्ताज वास्तविक घटना के आधार पर ही लिखा जाता है। रिपोर्ताज में विवरणबद्ध घटना का स्वरूप मात्र समाचारात्मक नही होना चाहिए वरन् उसमें कलात्मकता का होना भी अनिवार्य

है। इस दृष्टिकोण से रिपोर्ट और रिपोर्ताज में अन्तर है, क्योंकि रिपोर्ट में केवल घटनाओं की तथ्यपरकता ही पर्याप्त है, परन्तु रिपोर्ताज में केवल यथातथ्य वर्णन ही नही होना चाहिए, वरन् उसका स्वरूप कलात्मक होना भी आवश्यक है। तभी रिपोर्ट लिखनेवाले पत्रकार तथा रिपोर्ताज लिखने वाले साहित्यकार मे भी अन्तर निर्दिष्ट हो सकेगा। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे रिपोर्ताज नामक साहित्यिक विधा का आविर्भाव पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप ही हुआ है। प्रकाशचन्द्र गुप्त, डा० प्रभाकर माचवे, कृश्नचन्दर तथा अमृतराय आदि ने इस दिशा मे कुछ प्रयास अवश्य किया है परन्तु यह विधा अभी हिन्दी मे लोकप्रिय नही हुई है।

कहानी और रेखाचित्र

कहानी और रेखाचित्र मे भी विविध उपकरणों की दृष्टि से पर्याप्त साम्य है। चरित्र प्रधान कहानी रेखाचित्र के बहुत निकट होती है। रेखाचित्र मे चरित्राकन की प्रधानता होती है। उसमें लेखक किसी पात्र विशेष के चरित्र का रेखाकन प्रस्तुत करता है। डा० नगेन्द्र ने कहानी और रेखाचित्र के तुलनात्मक स्वरूप पर विचार करते हुए लिखा है, "रेखाचित्र मे तथ्य खुलते जाते है, सयोजित नही होते हैं। कहानी के लिए घटना का होना जरूरी नही है, पर रेखाचित्र के लिए उसका न होना जरूरी है, घटना का भराव वह वहन नही कर सकता। इसी प्रकार कहानी के लिए वि लेषण किसी प्रकार भी अवाछनीय नही है, पर रेखाचित्र का वह प्राय: अनिवार्य साधन है।"[३५] आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे अनेक लेखको ने ऐसे रेखाचित्र प्रस्तुत किये हैं, जो व्यावहारिक स्वरूप की दृष्टि से कहानी के समान है। महादेवी वर्मा ने 'अतीत के चल चित्र' तथा 'स्मृति की रेखाएँ' शीर्षक संग्रहो में अनेक विशिष्ट चरित्रों का रेखांकन प्रस्तुत किया है। प्रकाशचन्द्र गुप्त ने 'पुरानी स्मृतियाँ और नये स्केच' में भी इसी प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत की है। अमृतराय लिखित 'लाल धरती' शीर्षक पुस्तक मे भी रेखाचित्र के उदाहरण उपलब्ध होते है। कहानी और रेखाचित्र मे चरित्रांकन की समता के अतिरिक्त घटनात्मकता तथा अनुभूत्यात्मकता की दृष्टि से भी साम्य होता है। कहानी और रेखाचित्र दोनो मे ही किसी एक संवेदना का प्रभावपूर्ण अभिव्यजन होता है। इसके अतिरिक्त वर्णनात्मकता का तत्व भी इन दोनों साहित्यिक विधाओं

३५. डा० नगेन्द्र, 'विचार और विश्लेषण', पृ० ८१।

में समान रूप से विद्यमान रहता है। शिल्प की दृष्टि से इन दोनों में अवश्य स्पष्ट अन्तर होता है। रेखाचित्र में वर्ण्य विषय का प्रवाह उसी प्रकार से गतिशील रहता है जैसा कि कहानी में, परन्तु उसमें कहानी के समान कथावस्तु की चरम सीमा नहीं होती। कहानी का आरम्भ, मध्य और अन्त भी रेखाचित्र से भिन्न होता है। वह एक निश्चित कथावस्तु, पात्र और परिस्थिति को आधार बनाकर विकसित होती है।

कहानी और निबन्ध

कहानी और निबन्ध में विषय, भाषा के गद्यात्मक स्वरूप तथा आकार आदि की दृष्टि से पर्याप्त साम्य होता है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से निबन्ध का अर्थ बाँधना अथवा संग्रह करना है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान युग तक इस शब्द का प्रयोग विभिन्न रूपों तथा भावों के अर्थ में होता है। आधुनिक युग में गद्यात्मक विधा विशेष के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रचलित रूप में हो रहा है। व्यक्ति-प्रधान अथवा वैयक्तिक कोटि के निबन्ध अनुभूत्यात्मकता की दृष्टि से कहानी के अत्यधिक निकट कहे जा सकते हैं। कहानी की भांति ही निबन्ध भी निर्वैयक्तिक अथवा विषय और विचार-प्रधान हो सकता है। आधुनिक कहानी की ही भांति आधुनिक निबन्ध का आरम्भ भी भारतेन्दु युग से ही हुआ है। भारतेन्दु युग से पूर्व संस्कृत तथा ब्रज भाषा में निबन्धात्मक रचनाओं के लिए तथा सूत्र, टीका, वृत्ति, भाष्य अथवा समीक्षा आदि के संग्रह के लिए भी इस शब्द का प्रयोग होता था। कहानी की भांति ही निबन्ध की भी अनेक कोटियाँ हो सकती हैं, जिनके अन्तर्गत कथात्मक, आख्यानात्मक, वर्णनात्मक तथा विचारात्मक निबन्ध आदि हो सकते हैं। इनमें से प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत प्राय: पौराणिक आख्यान, ऐतिहासिक कथाएँ, आत्मकथात्मक रचनाएँ, प्रतीकात्मक कहानियाँ तथा काल्पनिक वृत्तान्त आदि हो सकते हैं। इस कोटि के निबन्ध कहानी के सर्वाधिक निकट हो सकते हैं। उत्तर भारतेन्दु काल से निबन्ध साहित्य का क्षेत्र विषय की दृष्टि से बहुत विस्तृत हो गया। अब कथात्मक, वर्णनात्मक, विचारात्मक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, आलोचनात्मक, भावात्मक, आत्म-चरितात्मक, हास्य व्यंग्यात्मक, यात्रा संस्मरणात्मक तथा स्वप्नकथात्मक निबन्ध भी लिखे गये।

कहानी और नाट्य

शास्त्रीय विचार से कहानी और नाटक में सबसे बड़ा भेद यह है कि कहानी की

गणना श्रव्य काव्य के अन्तर्गत की जाती है और नाटक की दृश्य काव्य के। आधुनिक युग में जिस प्रकार से उपन्यास और कहानी का महत्व अन्य साहित्यांगों की तुलना में अधिक स्वीकार किया जाता है, उसी प्रकार से प्राचीन युग में महाकाव्य और नाटक को प्रमुख विधाओं के रूप में मान्य किया जाता था। संस्कृत साहित्यशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य भरत ने नाटक के विषय में लिखा है कि योग, कर्म, शास्त्र, शिल्प तथा क्रिया कलाप सभी कुछ उसमें हम देख सकते हैं, क्योंकि ये सभी उसमें विद्यमान रहते हैं। भरत मुनि के अतिरिक्त संस्कृत के अन्य साहित्याचार्यों ने भी नाटक के स्वरूप का शास्त्रीय विश्लेषण किया और कथावस्तु, पात्र तथा रस अथवा उद्देश्य को इसके प्रधान तत्वों के रूप में रखा। आधुनिक नाटक के जो तत्व हैं, वे मूलतः इन्हीं पर आधारित है। इनके अन्तर्गत कथावस्तु, चरित्र चित्रण, कथोपकथन, वातावरण, शैली तथा उद्देश्य आदि को रखा जाता है। चूंकि कहानी में भी इन्हीं को मूल उपकरणों के रूप में मान्य किया गया है, अतः इन दोनों विधाओं में तत्वगत समरूपता विद्यमान है, यद्यपि उपर्युक्त तत्वों में से कहानी में जिन्हें प्रधानता दी जाती है, उन्हें नाटक में अप्रधान समझा जाता है तथा जिन्हें नाटक में मुख्यता दी जाती है उन्हें उपन्यास में गौण समझा जाता है। परन्तु कथात्मक वृत्ति की दृष्टि से कहानी तथा नाटक में कोई विषमता नहीं है। ये दोनों ही गद्यात्मक आख्यान हैं।

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, नाटक दृश्य काव्य तथा महाकाव्य एवं अन्य कथा-रूप श्रव्य काव्य के अन्तर्गत उल्लिखित किये जाते हैं। अधिकांश कथा-रूप प्रायः लिखित होते हैं और इनका प्रौढ़ रूप तभी उपलब्ध हुआ है, जब मुद्रण यंत्र का आविष्कार हो गया और छपाई की सुविधा दुर्लभ न रह गयी। चरित्र चित्रण की दृष्टि से नाटक की विधा महाकाव्य आदि की तुलना में कथा साहित्य के अधिक समीप पड़ती है। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में ऐसे अनेक तत्व हैं जो समान रूप से कथा साहित्य पर भी लागू होते हैं और जिनका महत्व आज भी इस सन्दर्भ में उतना ही अधिक है। इसी प्रकार से पाश्चात्य साहित्याचार्य अरस्तू के साहित्य सिद्धान्त भी मुख्य रूप से प्राचीन ग्रीक नाटकों को ही ध्यान में रखकर निकाले गये हैं, लेकिन आज तक वे पुराने नहीं लगते और कथा साहित्य के अनेक सैद्धान्तिक नियम भी उन्हीं सिद्धान्तों से निर्धारित होते से लगते हैं। अरस्तू के 'प्लाट' और 'तीन एकताओं' वाले सिद्धान्त भी केवल नाटक ही नहीं, वरन् कथा साहित्य के क्षेत्र में भी कई दृष्टियों से विचारणीय ठहरते हैं और बहुधा उन सिद्धान्तों के विरुद्ध तर्क देते हुए भी विद्वानों की पहुंच मूल्यवान्

तथ्यों तक होती रही है। कथानक, चरित्रचित्रण, देशकाल और वातावरण तथा नैतिक समस्याओं पर भारतीय विद्वानों ने जो महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं, उन्होंने आधुनिक साहित्य शास्त्र द्वारा न केवल कथा कहानी बल्कि प्रत्येक साहित्यिक विधा को प्रभावित किया है।

तत्वगत तुलना--इस प्रकार से यह स्पष्ट हो जाता है कि कहानी की नाटक से तत्वगत एकरूपता है। कहानी और नाटक दोनों में कथा-तत्व समान रूप से विद्यमान रहता है। पात्र या चरित्र चित्रण तत्व भी दोनों ही विधाओं में समान है, यद्यपि कहानी और नाटक में पात्रों के चरित्रांकन की विधियों में थोड़ा अन्तर है। नाटक मे पात्रों का चित्रण अधिकांशतः प्रत्यक्ष विधि से ही हो सकता है, जो आत्मकथात्मक या प्रथम पुरुष के रूप मे होती है, परन्तु कहानी में इसके अतिरिक्त अन्य अप्रत्यक्ष प्रणालियों का भी उपयोग होता है। उसमें आत्म-कथात्मक प्रणाली के अतिरिक्त डायरी शैली, पत्र शैली, मिश्रित शैली तथा सामान्य वर्णनात्मक शैली आदि का भी प्रयोग किया जा सकता है। इसलिए नायक तथा अन्य पात्रों के चरित्रांकन में एक नाटककार की अपेक्षा कहानीकार को अधिक स्वतंत्रता रहती है। साथ ही कहानी में लेखक जो घटना प्रस्तुत करता है, वह अप्रत्यक्ष और अतीत की प्रतीत होती है, भले ही उसका सम्बन्ध इतिहास के किसी भी युग से न होकर पूर्णतः वर्तमान से ही हो। इसके विपरीत नाटक में लेखक जो भी घटना प्रस्तुत करता है, वह प्रत्यक्ष और वर्तमान की प्रतीत होती है, भले ही वह पूर्णतः ऐतिहासिक अथवा प्रागैतिहासिक ही क्यों न हो।

आकारगत भेद---कहानी तथा नाटक मे आकारगत भेद भी विद्यमान रहता है। स्वतंत्र विधाओं के रूप में इनका आकार एक दूसरे से भिन्न होता है। कहानी में आकार की सीमा अत्यधिक महत्वपूर्ण है, जिसका अतिक्रमण उसकी कलात्मकता को सन्दिग्ध बना सकता है। इसी प्रकार से नाटक मे भी अंक तथा दृश्य योजना का प्रसार एक निश्चित सीमा तक ही हो सकता है। आकारगत सीमा के इस भेद के कारण ही इन दोनों के कथा विकास में भी इसी कारण से भिन्नता आ जाती है। कहानी लेखक को एक नाटककार की भांति रंगमंच सम्बन्धी बन्धन को नहीं मानना होता। वह पूर्णतः अपनी ओर से स्वतंत्र रूप में कहानी की कथावस्तु को विकास की ओर अग्रसर करता है, परन्तु नाटककार को कथा विकास और चरित्र चित्रण में इस प्रकार की सुविधाएँ नहीं रहतीं, क्योंकि उसके लिए व्यावहारिक दृष्टिकोण से सबसे बड़ी कठिनाई यही होती है कि वह अपनी नाट्य कृति में जो कुछ भी कहना चाहता है, उसका माध्यम

केवल उसके पात्र ही हो सकते हैं। उनकी सत्ता और सीमा से पृथक् कुछ भी कह सकना उसके लिए सम्भव नहीं होता। इसके विपरीत एक कहानीकार जिस रूप में और जिस प्रकार से जो कुछ कहना चाहता है, उसे किसी पात्र अथवा स्वयं अपनी ओर से कह सकने के लिए स्वतंत्र होता है। इसके अतिरिक्त नाटक की प्रकृति पर विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि वह कहानी तथा कथा साहित्य के अन्य माध्यमों से सर्वथा भिन्न है। वास्तव में कहानी में जो वर्णनात्मकता रहती है, नाटक में उसका स्वरूप भिन्न होता है। नाटक में दृश्यों के माध्यम से विभिन्न प्रकार के वर्णन प्रस्तुत किये जाते हैं। यद्यपि प्रभावात्मकता की दृष्टि से कहानी और नाटक में कोई बड़ा अन्तर नहीं है, क्योंकि अन्ततोगत्वा विस्तृत वर्णन और दृश्य योजना दोनों एक ही प्रकार के प्रभाव की सृष्टि करते हैं।

वर्णन और कल्पना—कथावस्तु अथवा उसका नियोजन करने वाली घटनाओं के कारण कहानी और नाटक दोनों में ही वर्णनात्मकता तथा कल्पनात्मकता के तत्व समाविष्ट होते हैं। कहानी में इसके लिए अपेक्षाकृत कम सम्भावना रहती है, और बहुधा नाटककार को भी इसके लिए विविध प्रकार के संकेतों से कार्य लेना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कहानी तथा नाटक में कल्पना तत्व के समावेश में भी अन्तर होता है। यथार्थ और कल्पना के समन्वय के लिए एक कहानीकार तथा नाटककार दोनों ही स्वतंत्र होते हैं परन्तु यह स्वतंत्रता जहाँ एक ओर कहानीकार के लिए निर्बाध होती है, वहाँ दूसरी ओर नाटककार के लिए बाधित। इसका कारण यह होता है कि कहानीकार को किसी काल्पनिक दृश्य अथवा स्थिति का वर्णन मात्र करना होता है, भले ही वह व्यावहारिक दृष्टिकोण से विश्वसनीय और सम्मान्य हो अथवा न हो। इसके विपरीत नाटककार के लिए यह आवश्यक होता है कि वह जो कुछ भी वर्णित करे, उसकी प्रत्यक्ष परिणति रंगमंच पर सम्भव हो सके। घटना संयोजन के साथ ही पात्रों आदि की सृष्टि से भी कहानी और उपन्यास में यही अन्तर है।

संवाद योजना—संवाद योजना अथवा कथोपकथन का तत्व कहानी और नाटक दोनों में ही समान रूप से समाविष्ट रहता है, परन्तु इन दोनों विधाओं में इस तत्व की स्थिति में बड़ा अन्तर होता है। एक कहानी में कथोपकथन का प्रयोग मुख्यतः कथा के विकास तथा चरित्र-चित्रण के लिए किया जाता है परन्तु यह कहानी का अनिवार्य तत्व नहीं है और कथोपकथन विहीन कहानी भी हो सकती है। परन्तु इसके विपरीत नाटक में कथोपकथन की योजना कथानक तथा पात्र योजना के समान

ही सर्वथा अनिवार्य है। चूंकि नाटक में रचयिता प्रत्यक्षतः और पृथक् रूप से प्रवेश नहीं कर सकता, इसलिए उसे कथा विकास तथा चरित्र-चित्रण के लिए अनिवार्यतः कथोपकथन का आश्रय लेना पड़ता है। इसके अतिरिक्त नाटक में कथोपकथन के माध्यम से ही घटना चक्र की गति की सूचना तथा अन्य क्रिया कलाप का परिचय मिलता है। यही नही, नाटक की सफलता भी बहुत कुछ कथोपकथन की उत्कृष्टता पर निर्भर करती है। कहानी में कथा का विकास तथा चरित्रांकन वर्णनात्मक रूप से भी हो सकता है, जबकि नाटक में इनका आधार केवल संवाद योजना है। इस प्रकार से इन दोनों ही विधाओं में कथोपकथन का समावेश तो होता है, परन्तु महत्व की दृष्टि से उसमें आनुपातिक भिन्नता होती है।

भाषा-शैलीगत तुलना—कहानी और नाटक में भाषा तत्व की दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नही है। ये दोनों ही गद्य में लिखे जाते हैं और दोनों मे ही मूल आधार के रूप में कथानक तत्व विद्यमान रहता है। पद्य नाट्य तथा गीति नाट्य आदि रूप इस कथन का अपवाद हो सकते है, जिनका साम्य कथा से होता है। कहानी तथा नाटक दोनों मे ही कथा तथा घटना योजना के साथ ही उन्हें स्वरूपगत पूर्णता प्रदान करने के लिए पात्र योजना भी की जाती है। शैली की दृष्टि से अवश्य इन दोनों में पार्थक्य होता है। नाटक में प्रत्येक वस्तु वर्तमान की प्रतीत होती है, जबकि कथा में वही अतीत की लगती है। एक कहानीकार तथा एक नाटककार दोनों ही अपनी सीमाओ मे रहकर कथात्मक परिधि का विस्तार कर सकते है। शैलीगत भेद के कारण ही कहानी में विविध विषयक वर्णनों के लिए नाटक की तुलना में अधिक सम्भावनाएं रहती है। कहानी मे पाठक वर्णनों के स्वरूप की कल्पना मात्र कर सकता है परन्तु नाटक मे उसे कल्पना का सहारा नही लेना पड़ता, प्रत्येक दृश्य उसके नेत्रों के सामने प्रस्तुत किया जाता है। इसके अतिरिक्त एक कहानीकार के लिए अनेक शैलियाँ सुलभ रहती हैं, जब कि एक नाटककार केवल सामान्य सवादात्मक शैली के माध्यम से ही कथा का प्रस्तुतीकरण कर सकता है। शैलीगत विभिन्नता के कारण ही कहानीकार का कार्य नाटककार की तुलना में सैद्धान्तिक रूप में अपेक्षाकृत सरलतर होता है, क्योंकि उसके लिए इस दृष्टि से कोई बन्धन नही होता। उदाहरण के लिए रंगमंच, कला विधि तथा अन्य जटिलताएँ केवल नाटककार के लिए ही होती है, कहानीकार इन क्षेत्रों में स्वच्छंद रहता है।

वातावरण चित्रण--कहानी और नाटक में देश-काल अथवा वातावरण चित्रण का तत्व भी समान रूप से विद्यमान रहता है। कहानी में इस तत्व के अन्तर्गत काल विषयक सूचनाएँ तथा आंचलिक चित्रण आदि आते हैं, जिनसे ऐतिहासिकता तथा स्थानीयता आदि का सूचन होता है। यही नहीं, इस प्रकार के वर्णनों के समावेश तथा अनुपात की दृष्टि से कहानियों का श्रेणीकरण भी कर दिया जाता है। कहने का आशय यह है कि कहानी में देश-काल अथवा वातावरण का चित्रण वर्णनात्मक रूप में ही होता है, क्योंकि श्रव्य काव्य होने के कारण उसमें यही विधि सम्भव होती है और इसी के अनुसार विविध कारणों की विश्वसनीयता की दृष्टि से उसकी सफलता की परख कर ली जाती है। परन्तु नाटक में देश-काल अथवा वातावरण का चित्रण रंगमंच के सयोजन के माध्यम से किया जाता है। उसमें विविध कालों तथा स्थानों के विषय मे बहुधा सांकेतिक योजना की जाती है। इस दृष्टि से इस तत्व का कहानी की तुलना मे नाटक में अधिक महत्व रहता है। नाटक तथा रंगमंच के प्राचीन स्वरूप से लेकर आधुनिक युगीन विकास के इतिहास पर दृष्टि डालने पर यह ज्ञात होता है कि नाटक मे रंगमचीय संकेत और योजना की दृष्टि से पर्याप्त अन्तर आ गया है। पहले जहा इस सम्बन्ध में स्थूल संयोजना से ही काम लिया जाता था, वहाँ आजकल रगमंच के विषय में सूक्ष्म संकेत की भी उपेक्षा नहीं की जाती। इस दृष्टिकोण के परिवर्तित हो जाने का मूल कारण यह है कि आज यह अनुभव किया जाता है कि नाटक के विविध उपकरणों में देश काल अथवा वातावरण का महत्व भी कम नही है। यही नही, आज यह भी समझा जाता है कि नाटक की प्रभावात्मकता और सजीवता की दृष्टि से भी रंगमंचीय संकेत योजनाओं का विशेष महत्व है, क्योंकि उनसे कथात्मक विश्वसनीयता का गुण भी उसमें समाविष्ट हो जाता है।

उद्देश्य तत्व--कहानी तथा नाटक में उद्देश्य तत्वगत एकता भी होती है। ये दोनों ही साहित्यिक माध्यम मानव जीवन की व्याख्या करने का प्रयत्न करते हैं। इस दृष्टि से एक कहानीकार को नाटककार की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता रहती है क्योंकि उसमें लेखक के दृष्टिकोण के लिए सर्वाधिक स्थान रहता है, जबकि नाटक में उसकी सम्भावना कम होती है। कहानी में यह प्रथा सुविधा तथा शैलीगत स्वतंत्रता के कारण होती है, जबकि नाटक में इसका अभाव नाट्य रूपों की संकेतात्मकता और दुरूहता के कारण होता है। परन्तु इन दोनों ही साहित्यिक माध्यमों का जो वर्तमान रूप हम देखते हैं, वह वस्तुतः आधुनिक युग की ही उपज है। इसी कारण

शास्त्रीय दृष्टिकोण से रूपात्मक विविधता होते हुए भी इनमें इतना अधिक साम्य मिलता है, यद्यपि नाट्य रूपों पर प्रतिबन्ध अधिक होने के कारण उनमें शास्त्रीयता के अतिरिक्त रूपगत जटिलता भी है।

इस प्रकार से कहानी और नाटक के तत्वगत साम्य और वैषम्य के सम्बन्ध में निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि कहानी की गणना श्रव्य काव्य के अन्तर्गत की जाती है तथा नाटक की दृश्य काव्य के अन्तर्गत। कहानी में रूप या आकार सम्बन्धी कोई विशेष या निश्चित प्रतिबन्ध नहीं होता। इसके विपरीत नाटक में रंगमंच की सीमाओं को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। प्रभावात्मकता की दृष्टि से इन दोनों साहित्यिक माध्यमों में कोई अन्तर नही होत।। स्वाभाविकता की दृष्टि से इनमें अवश्य अन्तर आ जाता है, क्योंकि कहानी रचना में नाट्य रचना की अपेक्षा अधिक स्वतत्रता रहती है और कहानीकार नाटक की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक रूप मे स्वतंत्रतापूर्वक जीवन सृष्टि कर सकता है। वह अपनी रचना में जहाँ एक ओर स्वयं पात्रों के साथ साथ विचरण करता और कथा सूत्र को आगे बढाता है, वहाँ दूसरी ओर पात्रों के चरित्र के विकास की गति को भी स्वच्छंद रहने देता है। यह सुविधा भी न।टककार को नही रहती है क्योंकि वह जो कुछ भी कहना चाहता है, उसका एक मात्र माध्यम उसके चरित्र ही होते है, जिनकी सत्ता और सीमाओं से अलग कुछ भी कर सकना उसके लिए कठिन होता है। इसीलिए हम कह सकते हैं कि इन दोनों साहित्यांगों के मूल तत्वों मे अधिक भिन्नता न होने हुए भी व्यावहारिक दृष्टिकोण से इनमें पर्याप्त अन्तर आ जाता है।

कहानी और एकांकी

आकारिक तथा तात्त्विक भेद के अनुसार यह कहा जा सकता है कि कहानी नाटक की तुलना में एकांकी के अधिक निकट है। इस दृष्टि से कहानी और उपन्यास में जो पारस्परिक भेद है, वही एकांकी और नाटक में है। उपन्यास की भाँति नाटक में व्यापक पृष्ठभूमि पर जीवन चित्रण उपस्थित किया जा सकता है, जबकि एकांकी में कहानी की भांति उसका कोई एक अंग विशेष ही प्रस्तुत करना सम्भव होता है। सैद्धान्तिक रूप से एकांकी में केवल एक अंक ही होता है। किन्हीं एकांकियों में तो केवल एक ही दृश्य भी होता है तथा कुछ में एक से लेकर तेरह दृश्य तक मिलते हैं। आकार की दृष्टि से भेद होने के कारण एकांकी की विषय वस्तु में भी अन्तर आ जाता है। एक दृश्य के

एकांकी में जहाँ विषय वस्तु का क्षेत्र बहुत सीमित होता है, वहाँ अधिक दृश्यों का संयोजन होने पर उसी अनुपात में उसका विस्तार भी होता जाता है। एक दृश्य वाले एकांकी की विषय वस्तु में किसी अनावश्यक भूमिका की आवश्यकता भी नहीं होती। उसमें एक कहानी की ही भाँति कथावस्तु का आरम्भ लगभग आकस्मिक रूप में होता है। इसी प्रकार से एक दृश्य वाले एकांकी में कथा का विकास भी अपनी पूरी प्रवाहशीलता के साथ होता है। वह चरम सीमा पर पहुंचकर अन्त तक उसी प्रकार से विकासशील रहती है। इस कोटि के एकांकी की प्रमुख विशेषता यह होती है कि संगठनात्मकता की दृष्टि से वह बहुत सफल होता है और उसमे एकांकी के सभी तत्व बहुत पुष्ट रूप में उपलब्ध होते है। इसके अतिरिक्त उसमें संकलन त्रय का निर्वाह भी अपेक्षाकृत अधिक कुशलता के साथ होता है। इसके विपरीत जिन एकांकियों का विस्तार एक दर्जन या उससे अधिक दृश्यो तक विस्तीर्ण रहता है, उनमें विषय वस्तु से सम्बन्ध रखने वाले उपर्युक्त गुणों का अभाव होता है। अधिक दृश्यों का संयोजन एकांकी की विषय वस्तु को अनावश्यक रूप से लम्बी कहानी की भांति संगठनात्मकता की दृष्टि से शिथिल कर देता है।

विषय तत्व---कहानी और एकांकी में विषय वस्तु की दृष्टि से भी पर्याप्त साम्य होता है। स्थूलतः जो भेद एक कहानी और एक उपन्यास की विषय वस्तु में होता है, वैसा ही एकांकी और नाटक मे भी। इस दृष्टि से उपन्यास और नाटक तथा कहानी और एकांकी की विषय वस्तु समान होती है। जिस प्रकार से एक उपन्यास में मुख्यतः एक ही प्रधान कथा रहती है तथा उसके साथ अनेक प्रासंगिक कथाएँ रहती हैं और कहानी में उनका अभाव रहता है, उसी प्रकार से एक नाटक में तो अनेक सूत्री कथा रहती है, परन्तु एकांकी मे यथासम्भव एक ही आधिकारिक कथा रहती है और वही कहानी की भांति प्रवाहात्मक रूप से विकसित होती रहती है। चूँकि विषय वस्तु का सम्बन्ध पात्रों से भी प्रत्यक्षतः होता है, इसलिए उसके आकार के अनुसार ही इनकी संख्या का भी निर्धारण होता है। साथ ही, एकांकी के दृश्य विधान के अनुसार ही उनकी प्रधानता अथवा अप्रधानता का सूचन होता है।

कहानी की ही भांति एकांकी की विषय वस्तु भी क्षेत्र विस्तार की दृष्टि से अपरिमित होती है। इसके आधार स्रोत अनेक होते हैं। कहानी की ही तरह उसका कथा क्षेत्र मानव जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्ध रखता है। सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा धार्मिक आदि अनेक विषयों पर कहानी के ही समान

एकांकी की भी कथा वस्तु आधारित हो सकती है। एकांकी में भी आकारगत सीमा के अनुसार विषय चयन भी नियन्त्रित रहता है। एक या दो दृश्यों के एकांकी की विषय वस्तु किसी महत्वपूर्ण समस्या की ओर इंगित मात्र ही कर सकती है, उसमें उसका विस्तार से प्रस्तुतीकरण तथा निदान निदर्शन सम्भव नही होता। इसीलिए कहानी और एकांकी दोनो के ही लिए विषय वस्तु का चयन करते समय उसके विस्तार और सीमाओं का समुचित विचार कर लेना आवश्यक होता है, अन्यथा उसमें संगठनात्मकता की दृष्टि से दोष आ जाने का भय रहता है।

अन्य तत्व—कहानी और एकांकी दोनों ही आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे अत्यधिक विकासशील विधाएँ है। श्रव्य काव्य के क्षेत्र मे कहानी और दृश्य काव्य के क्षेत्र मे एकाकी के नवीनतर रूप इसी कारण से नित्य जन्म लेते दिखाई दे रहे हैं। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, एकांकी मे भी कहानी की ही भांति कथा वस्तु के विकास की विविध अवस्थाएँ होती है। उसमें विविध सधियो और संकलनों का भी योग रहता है। चरम सीमा पर पहुँचने पर द्रुत गति से उसका अन्त होता है। परन्तु विषय वस्तु की दृष्टि से आधुनिक एकाकी की एक और मर्यादा है। नाटक की ही भाति आज एकाकी को भी मुख्यत: अभिनय की ही वस्तु समझा जाता है और उसे रंगमच पर प्रस्तुत किया जाता है। इस दृष्टि से उसकी कथा मे इस प्रकार की असम्भाव्य बातों का उल्लेख अनावश्यक होता है, जिनका रगमच पर प्रस्तुत किया जाना विशेष रूप से कठिन अथवा असम्भव हो। इस सन्दर्भ में यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि रगमंच के विकास के साथ साथ एकांकी की कला और स्वरूप का भी विकास होता रहा है और उसकी कथावस्तु भी क्रमश. नये ढाचो में ढलती जा रही है। एकाकी की कथा का विविध दृश्यों मे विभाजन करना इस विषय में विशेष सतर्कता की अपेक्षा रखता है।

इस प्रकार से, संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि एकांकी अपने आधुनिक रूप में नाट्य साहित्य का एक अपेक्षाकृत नवीन अंग है। कहानी के समान आकार में लघु होने के कारण उसकी विषयवस्तु भी सीमित रहती है। एकांकी की दृश्य योजना के अनुरूप उसका विस्तार किया जा सकता है। उसमे कहानी की ही भांति जीवन के किसी भी पक्ष का चित्रण किया जा सकता है और किसी भी महत्वपूर्ण समस्या को उठाया जा सकता है। उसकी कथा वस्तु का आधार भी कहानी के समान मूलत: मानव जीवन ही होता है। शास्त्रीय दृष्टिकोण से उसकी विषय वस्तु का विभाजन

आधिकारिक और प्रासंगिक रूपों में होता है। उसके विकास की पांच अवस्थाएं होती हैं, जो मूलतः आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य में कहानी की ही भांति एकांकी का भी जो विकास शीघ्रता पूर्वक हो रहा है, इसके फलस्वरूप इसके क्षेत्र में भी निरन्तर नयी सम्भावनाएं जन्म लेती प्रतीत होती हैं।

कहानी और कविता

कहानी और कविता मे जहाँ एक ओर विषय तथा कथात्मकता आदि की दृष्टि से थोड़ा बहुत साम्य मिलता है, वहाँ दूसरी ओर अन्य तत्वों की दृष्टि से व्यापक भेद भी है। कहानी गद्यात्मक होती है और कविता पद्यात्मक। सामान्य अर्थ के अनुसार केवल छन्दोबद्ध पद्यात्मक रचना को ही कविता कहा जाता है, यद्यपि छन्दविहीन तथा गद्यात्मक रचना के लिए भी विविध स्वरूपों के अनुसार कविता शब्द का प्रयोग होता है। व्यापक अर्थ में कविता का अर्थ प्रायः काव्य के समान समझा जाता है। काव्य शब्द के अन्तर्गत प्राचीन शास्त्रीय धारणा के अनुसार गद्य और पद्य साहित्य की प्रायः सभी विधाएं उल्लिखित की जाती थी। संस्कृत के अधिकांश साहित्य शास्त्रियों ने साहित्य के जिन पद्यात्मक तथा गद्यात्मक रूपों का विवेचन किया है, वह प्रायः काव्य के ही अन्तर्गत है। कहानी और कविता में मुख्य अन्तर यह है कि कहानी अपने लघु परिवेश मे भी जीवन के गम्भीर पक्षों की विवृति करती हुई पाठक को भावनात्मक तल्लीनता की स्थिति में ले आती है। पाठक अपना सुख-दुख पल भर के लिए भूलकर कहानी के पात्रों के सुख-दुख को ही अपना समझने लगता है। ये चरित्र पूर्णतः कल्पनात्मक भी हो सकते है तथा पूर्णरूपेण यथार्थात्मक भी। कविता का संसार भी भावमय होता है, परन्तु उसकी तुलना में कहानी तथा उसके पात्र पाठकों को अपेक्षाकृत निकट प्रतीत होते है। दोनों में ही भावना की प्रधानता होती है, परन्तु कहानी साधारण पाठक को भी व्यापक रूप से प्रभावित करती है।

कहानी और गद्य काव्य

कहानी और गद्य काव्य में विषय तथा अनुभूत्यात्मकता की दृष्टि से साम्य होते हुए भी अन्य तत्वों के विचार से पर्याप्त अन्तर है। प्राचीन धारणा के अनुसार गद्य काव्य का अर्थ बहुत व्यापक है। संस्कृत के विभिन्न आचार्यों ने गद्य काव्य के अन्तर्गत प्रायः छन्द रहित काव्य की विवेचना की है। दंडी ने गद्य काव्य के अन्तर्गत आख्यायिका

दंडी ने भी महाकाव्य के साथ कथा तथा आख्यायिका आदि का शास्त्रीय विवेचन किया है, जो इनकी स्वरूपगत समानता का परिचायक है।

मुख्य भेद—कहानी और महाकाव्य में मुख्य भेद भाषा के माध्यम का है। आधुनिक कहानी गद्य में लिखी जाती है और महाकाव्य पद्य मे। इन दोनों में आकार की दृष्टि से भी बडा भेद है। आकार तथा अन्य तत्वों के विचार से कहानी महाकाव्य की तुलना मे खंड काव्य के अधिक निकट है तथा महाकाव्य कहानी की तुलना मे उपन्यास के। इसलिए रचना प्रक्रिया की दृष्टि से इन दोनों में पर्याप्त अन्तर होता है। साथ ही कहानी मानव जीवन की यथार्थता को जिस रूप मे प्रस्तुत करती है, वह भी महाकाव्य से सर्वथा भिन्न होता है। इसका कारण यह होता है कि एक कहानी-कार की दृष्टि प्राय. जीवन के यथार्थ अनुभव पर आधारित रहती है, जबकि महाकाव्य-कार की दृष्टि में यथार्थ का पुट होते हुए भी कल्पनात्मकता की ही प्रधानता रहती है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप जहाँ एक ओर नवीन महाकाव्य वास्तविकता से दूर होते जा रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर नवीन कहानी में बौद्धिकता का आग्रह बढ रहा है। महा-काव्य मे महाकवि अपनी व्यापक अनुभूतियो को कल्पनात्मक प्रशस्ति देता है, परन्तु कहानीकार कहानी मे अपनी मानवीय सवेदनाओ को भी तार्किक आधार पर ही स्वीकार करता है। साथ ही महाकवि यदि मानवीय जीवन की व्याख्या करता है, तो उसका आधार कल्पना प्रधान भावजगत होता है। इसके विपरीत जब कहानीकार इस दिशा मे आगे बढ़ता है, तो वह उसकी प्रत्यक्ष आलोचना उपस्थित करता है।

जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है, कुछ विद्वानों का अनुमान है कि प्राचीन महाकाव्य ही आधुनिक कहानी तथा अन्य कथा रूपों के प्रारम्भिक रूप है, क्योंकि महाकाव्य के कथानक मे लगभग वे सभी तत्व मिलते है, जिनका समावेश परवर्ती काल मे विविध कथात्मक विधाओ मे हुआ। गद्य और पद्य का भाषागत अन्तर होने के अतिरिक्त कथानक, पात्र, कथोपकथन, भाषा तथा शैली आदि की दृष्टि से इन दोनो माध्यमों मे न्यूनाधिक साम्य दृष्टिगत होता है। प्राचीन काल मे प्रायः सभी कथा रूपों के पद्यबद्ध होने का कारण यह था कि उस समय का अधिकांश साहित्य मौखिक था। इसलिए स्मरणीयता की दृष्टि से पद्य बद्ध कथानक को याद रखना सरल था। भारत मे भी चारण, भाट आदि द्वारा गायी जाने वाली वीर गाथा, विरुदावली तथा प्रेमाख्यानों आदि के पद्यबद्ध होने का एक कारण सम्भवतः यह भी है ताकि उनकी परम्परा सरलता से विस्मृत न हो जाय। इसी प्रकार से, यूरोप मे भी प्राचीन ग्रीक

कवि होमर के प्रसिद्ध महाकाव्य 'इलियड' तथा 'ओडेसी,' एंग्लो सेक्सन 'बिओउल्फ' आदि गाया जा सकने वाला मौखिक साहित्य ही था, जिसके अनुकरण पर बाद में लिखित महाकाव्यों की परम्परा आयी। जैसे वर्जिल का 'ईनिड' दान्ते की 'डिवाइन कामेडी', टासो का 'जेरुसलेम लिबेराता' तथा स्पेन्सर का 'फ़ेयरी क्वीन' आदि। हिन्दी मे भी मध्ययुगीन प्रेमाख्यान महाकाव्यों के रूप मे ही मिलते है।

कहानी और मनोविज्ञान

वैज्ञानिक और शोधात्मक विश्लेषण से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि आधुनिक कहानी मे मनोविज्ञान और उसके विकसित सिद्धान्तो का बहुलता से समावेश हुआ है। यही नही, आधुनिक युगीन कहानियो मे मनोविज्ञान की प्रधानता ली हुई रचनाओ को ही श्रेष्ठतर भी प्रमाणित किया गया है। आज की कहानी मे मनोविश्लेषण शास्त्र के उन तत्वो का समावेश बहुलतापूर्वक मिलता है, जिनके विषय में वैज्ञानिक खोज के द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि वे मानव मन मे चेतन या अवचेतन रूप से निहित रहते हैं और उसके विविध क्षेत्रीय कार्य कलाप को विशद रूप से प्रभावित करते है। आधुनिक कहानी के तत्वों मे कथा वस्तु तथा पात्रो के चरित्र चित्रण मे मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की प्रधानता का ही यह परिणाम हुआ है कि कहानियों की एक नवीन श्रेणी का ही विकास हो गया है, जिसे मनोवैज्ञानिक कहानी कहा जा सकता है। आधुनिक युग मे हिन्दी मे जो कहानिया लिखी जा रही है, उनमे से अधिकाश ऐसी है जिनमे मनोवैज्ञानिक तत्वो की प्रधानता मिलती है। इसके अतिरिक्त कहानी का आधुनिक स्वरूप भी कुछ इस प्रकार का है कि उसमे मानवीय चरित्रों, कार्यों और प्रतिक्रियाओ के सम्यक् विश्लेषण के लिए मनोविज्ञान का आश्रय लेना आवश्यक हो जाता है। वस्तुतः आधुनिक कहानी मे मनोविज्ञान के सिद्धान्तो का अधिकता से समावेश एक युगीन आवश्यकता भी है, जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती। दूसरे शब्दो मे, यह कहा जा सकता है कि आधुनिक युग के कहानी साहित्य मे जो कलात्मक प्रौढता मिलती थी, उसकी सीमाएँ केवल कथा वस्तु तत्व तक ही थीं, चरित्र चित्रण की दृष्टि से उसमें प्रौढता का अभाव था। आधुनिक युग की कहानियो में मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के व्यावहारिक आरोपण से चरित्र चित्रणात्मक प्रौढता भी आयी। इसी के परिणामस्वरूप कुछ विचारको ने यह कहना आरम्भ कर दिया कि कहानी में कथा तत्व के समान ही पात्र तत्व भी महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त किसी सीमा तक यह

भी सत्य है कि आधुनिक युग में जब पाश्चात्य साहित्य का व्यापक प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पड़ा, तब भी उसके फलस्वरूप जिन तत्वों की हिन्दी साहित्य में वृद्धि हुई, उनमें से मनोविज्ञान को भी एक प्रधान तत्व कहा जा सकता है।

सैद्धान्तिक स्वरूप—सिद्धान्ततः मनोविज्ञान के अन्तर्गत मनुष्य के स्वभाव, व्यवहार और प्रकृति का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। मानवीय सभ्यता और संस्कृति के निरूपक शास्त्रो की परम्पराओ का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि मानव मनोविज्ञान के संकेत भी बहुत प्राचीन काल तक मिलते हैं। आधुनिक युग में हमारे देश की अपेक्षा पाश्चात्य देशों में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के खंडन मडन के प्रयत्न अधिकता से हुए। वहाँ पर डार्विन, सिगमंड फ्रायड, युग, गेस्टाल्ट, वाटसन, लैशले, टोलमैन, हल्ल तथा स्किनर आदि सिद्धान्तशास्त्रियों ने मानव मन की प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओ का अध्ययन करते हुए अनेक महत्वपूर्ण और मौलिक तत्वों का अन्वेषण किया। मानव के मन का उसके बचपन से ही विविध भागों में किस प्रकार से विकास होता है एव इस विकास काल मे वह किन-किन बातो से किस-किस प्रकार से प्रभावित होता है तथा इसके फलस्वरूप इसमें कौन-कौन सी शारीरिक अथवा मानसिक प्रक्रियाएं होती है, आदि का सैद्धान्तिक अध्ययन तथा व्यावहारिक परीक्षण इन विद्वानो ने किया। यही नहीं, मनुष्य के अवचेतन के साथ ही साथ मानसिक अपवादों और स्वप्नावस्थाओं का भी विस्तार से विश्लेषण किया गया। इस सम्बन्ध में प्रधानतः यही निष्कर्ष निकाला गया कि स्वप्न में एक व्यक्ति वही कुछ पूर्ण रूप में देखता है, जो उसे यथार्थ जीवन मे अपूर्ण प्रतीत होता है। स्वप्नों मे घटित कार्य-व्यापार प्रायः सांकेतिक और प्रतीकात्मक होते हैं, परन्तु वे सब व्यावहारिक पूर्णता और सम्भावनाओं की दृष्टि से अर्थपूर्ण और सोद्देश्य होते हैं। इन्ही विविध सिद्धान्तों के आधार पर जब शिशु मनोविज्ञान, बाल मनोविज्ञान, नारी मनोविज्ञान आदि की पृथक् पृथक् विवेचना और अध्ययन किया गया तब उसके निष्कर्षों का मानवीय चरित्रों पर व्यावहारिक आरोपण भी सम्भव हुआ। आधुनिक युगीन कहानियों पर मनोविज्ञान का प्रभाव उसकी इसी सार्वजनीनता तथा मानव मन की एकात्मकता के कारण हुआ।

मूल मनोभाव—आधुनिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार समस्त मानव व्यापार मनोजगत के मूल भावों द्वारा ही संचालित होते हैं। जिस प्रकार से शरीर-विज्ञान मानव शरीर के विविध अवयवों का अध्ययन और विवेचन प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार से मनोविज्ञान मनुष्य के मन का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। आधुनिक

मनोविज्ञान का स्वरूप यद्यपि मनोविज्ञान की प्राचीन परम्पराओं से भिन्न है, परन्तु उसका विस्तार अतीत युगों तक है। आधुनिक मनोविज्ञान ने डार्विन के विकास-वाद तथा विविध क्षेत्रों में हुए अन्य सैद्धान्तिक विकास से भी पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की है। मनोविज्ञान के विकसित सिद्धान्तों के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण देन सिगमंड फ्रायड की है, जो स्नायविक रोगों का विशेषज्ञ था। उसने अनेक असाधारण कोटि के प्रयोग किये और उनके आधार पर वे महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जो आगे चलकर इस शास्त्र के सैद्धान्तिक विकास में सहायक सिद्ध हुए। उसने यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि मनुष्य की चेतनावस्था वास्तव में उसकी व्यावहारिक स्थिति की अवगति मात्र है। इस अवस्था में भी वह मानसिक सीमाओं और शक्तियों से सर्वथा अपरिचित रहता है। इसी कारण से जब मनुष्य की चेतना शक्ति का सम्मोहन आदि के द्वारा विलोप कर दिया जाता है, तब वह प्रायः एक प्रकार की अचेतना की स्थिति मे पहुंच जाता है। अचेतना की यह स्थिति भी मनुष्य की चेतना की सामर्थ्य की भांति ही असीम होती है। इसके आधार पर फ्रायड ने यह निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य के मस्तिष्क में अतीत की स्मृतियों के रूप में भावनाएं या कुठाए दबी रहती हैं और यदि भली प्रकार से उनकी खोज हो सके, तो उसके समस्त मानसिक रोगो का उपचार हो सकता है। कहने का आशय यह है कि मनुष्य की चेतना और अचेतना उसके अस्तित्व के दो भिन्न पक्ष हैं। मनुष्य का व्यक्तित्व इन दोनों ही के सयुक्त रूप से निर्मित होता है। परन्तु ये दोनों पक्ष पार-स्परिक पृथक्ता रखते हैं। यदि किसी प्रकार से इस पृथक्ता को दूर करके उनमें पार-स्परिक सम्बन्ध स्थापित किया जा सके, तो मनुष्य की मानसिक और शारीरिक स्व-स्थता की सम्भावनाएं बढ़ सकती है। परन्तु जहा तक फ्रायड के मानव मन से सम्ब-न्धित विश्लेषणात्मक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, उसने मनुष्य के मस्तिष्क में तीन स्तर बताये हैं। उसका विचार है कि मनुष्य की अचेतना और चेतना, ये ही दो स्थितियां नही होती, वरन् इनके बीच एक और स्तर होता है। इसे वह अर्धचेतना की अवस्था कहता है। फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त और मनोवैज्ञानिक पद्धति का अध्ययन करने के लिए उसके इस मन्तव्य को ध्यान में रखना विशेष रूप से आवश्यक है, क्योंकि चेतन और अचेतन की पारस्परिक पृथक्ता के मध्य यही स्तर ऐसा है, जो एक मात्र सम्बन्ध सूत्र का कार्य करता है।

अहम् भावना—मनुष्य के मस्तिष्क की विविध शक्तियों का विश्लेषण करते हुए फ्रायड ने यह बताया है कि मानव मस्तिष्क जिस मूल शक्ति द्वारा संचालित होता है,

वह लिबिडो है। इसी शक्ति की अभिव्यक्ति पर मनुष्य की चेतना पूर्ण नियंत्रण रखती है। इडिपस ग्रन्थि के सम्बन्ध में फ्रायड ने नर-नारियों की बाल, किशोर, युवावस्था वृद्धावस्था वाली कामकुंठाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। मनुष्य की अहम् भावना का विवेचन भी इसी सन्दर्भ में हुआ है। फ्रायड का विचार है कि अहम् एक प्रकार का नियन्त्रक भाव है। मनुष्य के मस्तिष्क में जो कुंठाएं उसके किसी हीन कार्य अथवा हीन भावना के कारण जम जाती हैं, उनका प्रभाव भी उसकी अहम् भावना पर पड़ता है, क्योंकि मनुष्य की प्रत्येक दमित वासना के साथ साथ उसमें कही न कही एक उच्चता की भावना भी सम्बद्ध रहती है।

स्वप्न विज्ञान––इसी सन्दर्भ में फ्रायड ने स्वप्न विज्ञान का भी सम्यक् विश्लेषण प्रस्तुत किया है। फ्रायड का यह विचार है कि मनुष्य के मस्तिष्क में अनेक ऐसी भावनाएं संचित होती चली जाती हैं, जो उसकी विभिन्न क्षेत्रीय भावनाओं का प्रतिरूप होती हैं। इनका दबाव अधिक पड़ने पर मनुष्य के शरीर और मन पर भांति भांति की प्रतिक्रियाएं लक्षित होती हैं। मनुष्य का स्वप्न देखना भी इसी प्रकार की एक प्रतिक्रिया है, क्योंकि स्वप्न में उसकी निषिद्ध वासनाओं की भांति ही विविध वस्तुओं का रूप स्पष्ट अथवा प्रत्यक्ष नहीं होता। इसके विपरीत वे प्रतीकात्मक होते है। मनुष्य स्वप्न में बहुधा जो सर्वथा आश्चर्यजनक वस्तुएं देखता है, उसका कारण यही है। अन्ततः मनुष्य के स्वप्न अथवा व्यावहारिक कार्य व्यापार किसी न किसी रूप में उसकी दमित काम वृत्तियों की मानसिक विकृतियां ही होते है। शारीरिक इच्छाओं की अपूर्ति मानसिक रोगों का कारण होती है। यदि उनका सम्यक् उपचार किया जा सके तो मनुष्य मानसिक स्वस्थता प्राप्त कर सकता है, जिस पर शारीरिक स्वस्थता भी पर्याप्त सीमा तक निर्भर होती है।

फ्रायड के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों में आगे चलकर अन्य अनेक मनोविश्लेषण शास्त्रियों ने योगदान किया, परन्तु उसके सिद्धान्तों का जो मूल स्वर है, उससे किसी ने विशेष मतभेद प्रकट नही किया। इसलिए मनोविज्ञान तथा मनोविश्लेषण के क्षेत्र मे यद्यपि हम अनेक प्रकार के सिद्धान्तों और सम्प्रदायों का परिचय प्राप्त करते हैं, परन्तु उन सबकी नीव मे फ्रायड के ही सिद्धान्त आधार रूप मे विद्यमान हैं।

प्रस्तुत कृति में आगे चलकर हम देखेंगे कि उपन्यास की विभिन्न आधुनिक शैलियों पर सम्भवतः सबसे व्यापक और क्रांतिकारी प्रभाव मनोविज्ञान का ही पड़ा है। विकास क्रम के अनुसार आधुनिक युगीन कहानी का यथार्थवाद के बाद सबसे अधिक झुकाव

मनोविश्लेषण शास्त्र की ओर ही हुआ है। यह इसलिए बिल्कुल स्वाभाविक ही है कि कहानीकार मनुष्य जीवन से सम्बन्धित सही जानकारी के लिए ऐसे विद्या क्षेत्रों से प्रेरणा ग्रहण करता है, जो मानव के सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन कर रहे थे। सामाजिक आर्थिक यथार्थ की दृष्टि से कहानी पर समाजवादी दर्शनों में जिस प्रकार से मार्क्स के सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव पड़ा है इसी प्रकार से प्रभाव की दृष्टि से फ्रायड के सिद्धान्तों का क्रान्तिकारी महत्व है। फ्रायड ने मस्तिष्क की सूक्ष्म प्रक्रियाओं के विश्लेषण और अन्वेषण के द्वारा उन गहरे प्रेरणा स्रोतों का उद्घाटन किया, जिन्होंने मनुष्य के सामने नयी सम्भावनाएं रखी।

कहानी और नीति

कहानी में नीति तत्वों के समावेश, सन्तुलन और पारस्परिक सम्बन्ध के विषय मे विचार करना इसलिए भी अपेक्षित है, क्योंकि कहानी को आज मात्र मनोरंजन का साधन नही, वरन् एक गम्भीर साहित्यिक माध्यम माना जाने लगा है तथा उससे भी गहन उत्तरदायित्व के निर्वाह की अपेक्षा की जाती है। वर्तमान समय में कहानी और नीति के नये मानदंडों के आधार पर नवीन मान्यताओं की स्थापना की आवश्यकता समझी जा रही है। एक दृष्टि से देखा जाय, तो हमें यह भी ज्ञात होगा कि आज की कहानी की एक मुख्य समस्या समाज में प्रचलित नैतिक मान्यताओं तथा नीति सम्बन्धी धारणाओं का खडन करके नवीन नैतिक मूल्यों की स्थापना करना है। मानव चरित्र की विविध सम्भावनाएं मानवीय जीवन की अन्तिम सीमाओं का संस्पर्श करती हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र और पक्ष से उनका सीधा सम्बन्ध होता है। नीति का क्षेत्र भी इन्ही में से एक है। कड़ी नैतिक मर्यादा, जो परम्परा के अनुकूल किन्तु समसामयिक सामाजिक परिस्थितियों के प्रतिकूल पड़ती है, मनुष्य के विचार जगत में एक भीषण क्रान्ति उत्पन्न करती है। वास्तव में इसका मूल कारण मनुष्य की कर्त्तव्य भावना के क्षेत्र में अनिश्चयता का होना है। इसीलिए आधुनिक युग का एक कहानीकार उचित और अनुचित के विवेक के लिए नये मानदंडों का आधार बनाता है और इस प्रकार से नीति परम्पराओं की स्थापनाओं और रूढ़ियों का विरोध करता है। एक कहानीकार की इस क्षेत्र में दृढता का आधार उसका मानव और प्रकृति पर अखंड विश्वास कहा जा सकता है। वह यथार्थ के प्रत्येक पक्ष को संपूर्णता से उभारने का प्रयत्न करता है,

क्योंकि उसका निश्चित विश्वास होता है कि कोई भी प्राकृतिक नियम मानव जीवन के विरोध अथवा उसके अहित में नहीं है।

कहानी और नीति का सम्बन्ध केवल आधुनिक युग में ही घनिष्ठतर नहीं हुआ है वरन् पूर्व युगों से भी रहा है। प्राचीन भारतीय कथा साहित्य को देखने पर यह ज्ञात होता है कि उसमें नीति तत्वों का अंश सर्वाधिक रूप में विद्यमान रहता था और इन्हीं तत्वों की प्रधानता उसकी सबसे प्रमुख विशेषता मानी जाती थी। प्राचीन, अर्वाचीन और मध्यकालीन युगों मे भी नीति प्रधान कथा साहित्य की परम्परा विशेष रूप से विकासशील रही है। यही नहीं, लोक कथा साहित्य के अन्तर्गत जितनी भी कथात्मक रचनाएं आती है, वे सभी प्रायः नीति प्रधान ही हैं। 'पंचतंत्र' तथा 'हितोपदेश' का तो मूल आधार ही नीति शास्त्र के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक स्वरूप का प्रस्तुतीकरण है।

कहानी और नीति का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ होने के साथ ही साथ बहुत जटिल भी है। आज परम्परागत नैतिक मान्यताओं और विधियों के प्रति एक सामान्य विरोध की भावना व्याप्त है। इसीलिए नवीन मूल्यों की स्थापना हो रही है। वस्तुतः नीति के मान-दंड भी युग के अनुसार ही परिवर्तित होते रहते है। इस परिवर्तनशीलता की प्रतिक्रिया में उपन्यासकार का दायित्व अपेक्षाकृत अधिक होता है। वह विवेकपूर्ण दृष्टि से परि-स्थितिजन्य समस्याओं का आलोड़न करके नवीन मूल्यों की खोज का प्रयत्न करता है।

पाश्चात्य आलोचकों में हेनरी जेम्स ने नीति और कथा साहित्य के सम्बन्ध पर विस्तार से विचार किया है। उसने बताया है कि व्यापक अर्थ में कला के प्रश्न कार्य-पूर्ति के प्रश्न होते है और नैतिकता के प्रश्नों से सर्वथा भिन्न होते हैं। उसने कहा है कि एक ऐसा बिन्दु होता है, जहाँ पर किसी कथा कृति की कलात्मक और नैतिक विशेष-ताओं का मिलन होता है। यह बिन्दु है स्रष्टा की अनुभूति और उसकी कृति का सामंजस्य। आशय यह है कि श्रेष्ठ कृतित्व पूरी ईमानदारी चाहता है। अन्ततः कृति में स्रष्टा का मस्तिष्क ही प्रतिफलित होता है। साधारण मस्तिष्क से कभी असा-धारण कृति नहीं निकल सकती। एक कथाकार को चाहिए कि वह अपनी कृति में उसी योजना को प्रतिफलित करने की चेष्टा करे, जिसे वह अपने चिन्तन एवं रागा-त्मिका वृत्ति द्वारा पूर्णतः आत्मसात् कर चुका है। उसके विचार से एक कथाकार का प्राथमिक कर्त्तव्य अपनी कृति को कलात्मक परिपूर्णता प्रदान करना है।[४०]

४०. डा० प्रतापनारायण टंडन, 'आधुनिक साहित्य', पृ० ३७।

कहानी और नीति के पारस्परिक सम्बन्ध तथा कहानी में नैतिक तत्वों के समावेश के विषय में अनेक विचारकों ने विभिन्न प्रकार के मत व्यक्त किये हैं। सार रूप में यह कहा जा सकता है कि कहानी और नीति का सम्बन्ध अन्य विषयों की अपेक्षा प्राचीन-तर है। प्राचीन संस्कृत कथा साहित्य तथा पूर्ववर्ती हिन्दी कथा साहित्य में प्रायः नीति तत्वों का बहुलता से समावेश किया गया है। हमारे देश में नीतिप्रधान कथा साहित्य की एक स्वतंत्र, सुपुष्ट और सुदीर्घ परम्परा मिलती है। साहित्य के माध्यम से किसी धार्मिक, आध्यात्मिक उपदेश की योजना करना नीतिपरक कथा साहित्य का मुख्य आधार और उद्देश्य रहा है। स्पष्ट है कि यह उद्देश्य उससे भिन्न है, जहां मनोरंजन को प्रधानता दी गयी है। प्राचीन कथा साहित्य में नैतिक तत्वों के माध्यम से जो सत्य प्रस्तुत किया जाता था, वह रोचक दृष्टान्तों के रूप में होता था। लगभग इसी प्रकार के साहित्य का विश्लेषण गूढ़ दार्शनिक ग्रन्थों मे भी मिलता था। परन्तु इन दोनों में मुख्य अन्तर यह होता था कि जहाँ एक ओर गूढ़ दार्शनिक ग्रन्थ ज्ञानी जन के चिन्तन और मनन के लिए होते थे, वहां नीतिप्रधान कथा साहित्य सामान्य जन के पारायण की वस्तु होता था।

यद्यपि इसमे कोई सन्देह नही है कि कहानी के नवीन स्वरूप के निर्धारण में वैज्ञानिक खोजों और सैद्धान्तिक चिन्तन का प्रमुख हाथ रहा है, परन्तु इससे यह आशय नही समझा जाना चाहिए कि नैतिक या धार्मिक प्रश्न कहानी से नितान्त बहिष्कृत हो गये हैं। समय के परिवर्तन के साथ कहानीकार अब धार्मिक या नैतिक प्रश्नो को उस प्रकार नहीं उठाता, जैसे इस शताब्दी के आरम्भ में ये प्रश्न उठाये जाते थे, और न ही उस प्रकार के समाधानो से वह सन्तुष्ट ही हो सकता है। लेकिन एक प्रमुख चिन्तक वर्ग आधुनिक युग में भी ऐसा रहा है, जिसने मनुष्य की आध्यात्मिक आवश्यकताओं को भी महत्वपूर्ण माना है और उसका वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किया है। इस वर्ग का भी पर्याप्त महत्वपूर्ण प्रभाव कहानी पर पड़ा है। उदाहरण के लिए प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कार्ल युग के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त मनुष्य की धर्म भावना को उसके व्यक्तित्व का और समाज के व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग मानते हैं, वह चाहे जिस रूप में भी अभिव्यक्त हो, लेकिन वह भावना नष्ट नही हो सकती। इसी प्रकार फ्रेंच कथाकार फ्रांसवा मोरिअक ने अपने कथा साहित्य में मनुष्य की नैतिक और धार्मिक भावना को प्रमुख रखा है।

आधुनिक युग के हिन्दी कहानी साहित्य में बहुत से ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने बुद्धवादी अथवा गांधीवादी विचारधारा को एक प्रकार का नैतिक आधार देकर प्रश्रय दिया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यापक रूप में यदि नीति का अर्थ विश्लेषण किया जाय, तो इसके अन्तर्गत सुसभ्य और सुसंस्कृत मानव जीवन के निदेशक प्रायः सभी आधारभूत तत्व परिगणित कर लिये जायंगे। परन्तु कभी कभी साहित्य में नीति का अर्थ संकुचित रूप में भी ग्रहण किया जाता है और नैतिकता से रहित होने का आशय केवल चरित्र हीनता समझा जाता है।

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में नीति तत्वों के समावेश का यदि हम अध्ययन करें तो इस निष्कर्ष पर आयेंगे कि आधुनिक कहानी साहित्य में मानव जीवन विषयक जो समस्याएं प्रस्तुत की जा रही हैं, उनमें से अधिकांश नीति विषयक ही हैं। इसके सम्बन्ध में व्यावहारिक रूप से प्रायः दो प्रकार के दृष्टिकोण मिलते हैं। एक तो पुरातनवादी दृष्टिकोण और दूसरा आधुनिकतावादी दृष्टिकोण। आधुनिक कहानीकार के सामने नीति सम्बन्धी मुख्य समस्या यह है कि वह किस प्रकार से समाज में प्रचलित नैतिक मान्यताओं तथा नीति सम्बन्धी धारणाओं का खंडन करके उनके क्षेत्र मे नये मूल्यो की स्थापना करे। मानव जीवन के प्रशस्त पक्ष नीति के परिवेश में ही आ जाते है। नैतिक मर्यादा का भी वह रूप जो केवल रूढि मात्र प्रतीत होता है, समाज के लिए सर्वथा घातक है और प्रत्येक प्रकार से उसका निर्मूलन होना आवश्यक है। अतः इस दृष्टि से आधुनिक कहानीकार नीति की परम्परागत स्थापित मान्यताओं का विरोध करता हुआ नये मूल्यों की स्थापना करता है।

कहानी और नीति के पारस्परिक सम्बन्ध और कहानी में नैतिक तत्वों के समावेश के विषय मे इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि नीति का क्षेत्र किसी भी रूप में उस अर्थ मे संकुचित नही है, जिसमे कि हम उसे आचार शास्त्र आदि की निर्धारित रेखाओं मे बद्ध कर देते हैं। वस्तुतः नीति को यदि हम व्यापक अर्थों में ग्रहण करें तो वह हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त रहकर उसे प्रभावित करती प्रतीत होगी। मनुष्य के सारे सामाजिक सम्बन्ध नीति के अन्तर्गत ही आ जाते हैं। कहानियों में निहित नैतिक दृष्टिकोण प्रायः नैतिक मूल्यों के उस स्वरूप को प्रस्तुत करता है, जिसमें शाश्वतता मिलती है।

कहानी और इतिहास

वाङ्मय की विविध विधाओं में कहानी का सम्बन्ध इतिहास से भी बहुत घनिष्ठ है। सम्बन्ध की इसी घनिष्ठता के कारण इसके आधार पर कहानी का एक स्वतंत्र रूप ही विकसित हो गया, जिसे 'ऐतिहासिक कहानी' का नाम दिया गया है। इतिहास में अतीत की घटनाओं का यथातथ्य वर्णन होता है। इतिहास का आशय ही यही है—इतिहास=इति-ह—आस 'यह ऐसा हुआ।' अन्तर दोनों में इतना ही होता है कि इतिहास की नींव ठोस तथ्यों पर आधारित होती है, जो प्रामाणिक रूप से सिद्ध होते है, परन्तु कहानी मे अनिवार्यतः ऐसा नही होता। वह पूर्णतः कल्पनात्मक भी हो सकती है, जिसका कोई भी यथार्थ आधार न हो। इसके अतिरिक्त इतिहास में अतीत युगों की महान् घटनाओं और महान् पुरुषों के कार्य कलाप का ही विवरण प्रधानता लिये हुए होता है, जबकि कहानी के प्रधान अथवा अन्य पात्रों को समाज के उच्चतम अथवा निम्नतम किसी भी वर्ग से लिया जा सकता है। कहानी का नायक एक सम्राट् से लेकर कोई भिखारी तक हो सकता है।

चरित्र विश्लेषण—कहानी और इतिहास मे इस दृष्टिकोण से पूर्ण समानता होती है कि इन दोनों मे ही मनुष्य के चरित्र और उसकी विविध जीवन चेष्टाओं का विश्लेषणात्मक अंकन उपस्थित किया जाता है। किसी व्यक्ति की महत्वाकांक्षा अथवा हीन भावना उसमे किन चरित्रगत प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं को उत्पन्न करती है, यह दिखाना कहानीकार और इतिहासकार दोनों का ही कार्य होता है। एक कहानीकार के लिए कथानक और चरित्र की योजना की दृष्टि से समस्त मानव जीवन आवाहन करता प्रतीत होता है। वह अपनी इच्छानुसार इतिहास अथवा वर्तमान से अपनी कहानी के लिए कथावस्तु और पात्रों का चयन करता है। दोनों ही स्थितियों में उसे कल्पना का आश्रय आवश्यक रूप में ग्रहण करना होता है, क्योंकि इतिहास से लिये गये पात्रों मे ऐतिहासिक तत्व के साथ ही साथ कल्पना तत्व के समावेश की भी आवश्यकता होती है और इसी प्रकार से वर्तमान समाज से लिये गये पात्रों में लगभग उसी अनुपात में सामाजिक तत्व समाविष्ट रहता है, अन्यथा शेष रिक्तता की पूर्ति के लिए दोनों ही परिस्थितियों में कहानीकार कल्पनात्मकता का आश्रय लेता है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वस्तुतः यही वह अंश होता है, जो न केवल कहानी और इतिहास में पारस्परिक समानता अथवा भेद उत्पन्न करता है, वरन् कहानी को इतिहास होने से और इतिहास को कहानी बन जाने से बचाता है।

कथा एवं पात्र—कहानी में जो कथा-तत्व मूल होता है, इतिहास में भी उसका व्यापक रूप से समावेश मिलता है। इस दृष्टिकोण से इतिहास को भी कहानी का समरूप कहा जा सकता है। सम्भवतः इसी कारण से ऐतिहासिक कहानी के रूप में कहानी का एक नवीन भेद विकसित हुआ। कथात्मक कल्पनाओं का ऐतिहासिक तथ्यों से समन्वय इस भेद का आधार है। इस दृष्टि से कहानी साहित्य के विकास में भी इतिहास अथवा ऐतिहासिक प्रवृत्तियों का उल्लेखनीय योग रहा है। कथा तत्व के अतिरिक्त कहानी और इतिहास में पात्रों की दृष्टि से भी अन्तर होता है। कहानी के पात्र प्रायः समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करते है। इनकी छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी गतिविधि का चित्रण उपन्यास में लेखक कर सकता है। इस दृष्टि से उसमें वैयक्तिकता की प्रधानता हो जाना अनिवार्य है। परन्तु इतिहासकार एक विशेष युग के समाज और जीवन का सामूहिक अथवा समष्टिगत चित्रण प्रस्तुत करता है। इतिहास के चरित्र प्रायः वे ही होते है, जिनका अतीत युग में उल्लेखनीय महत्व होता है। उसमे इतिहासकार की दृष्टि चूंकि वैयक्तिकता-प्रधान नहीं होती, अतः अनेक ऐसे विवरण नही आ पाते, जो उसके लिए नगण्य होते हुए भी कहानीकार की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते है। इसके अतिरिक्त एक इतिहासकार और एक कहानीकार के कार्य में यह अन्तर भी होता है कि इतिहासकार अधिकाशतः घटनात्मकता तक ही अपने कार्य को सीमित रखता है। यदि कभी वह किसी चरित्र का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत भी करता है, तो केवल इसलिए कि उन घटनाओं के औचित्य और उपयुक्तता में वह सहायक हो। परन्तु इस कथन का आशय यह नही समझना चाहिए कि इतिहासकार का अपने इतिहास मे वर्णित पात्रों के चरित्र चित्रण से कोई सम्बन्ध नही है। वास्तव में इस तत्व से उसका भी उतना ही प्रत्यक्ष और घनिष्ठ सम्बन्ध है, जितना कि एक कहानीकार का। परन्तु इन दोनों में अन्तर इतना ही है कि कहानीकार एक सशक्त चरित्र की कल्पना करके उसको रचनात्मक स्वरूप प्रदान करता है और इतिहासकार तब तक किसी पात्र के चरित्र चित्रण की कल्पना भी नही करता जब तक कि उस पात्र के ऐतिहासिक दृष्टिकोण मे आवश्यक प्रमाण न उपलब्ध हों और उसकी पृष्ठभूमि में उसकी सम्भावनाएं न हों। इस दृष्टिकोण से भी एक कहानी और इतिहास में निकटतर सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, क्योंकि जिस मानवीय कार्य कलाप, मानवीय स्वप्न व्यापार, हर्ष, क्लेश, द्वेष और आत्मपीड़न की मानवीय भावनाओं का चित्रण कहानी में होता है, वे इतिहास में भी समाविष्ट रहती हैं।

कल्पनात्मकता—कहानी और इतिहास दोनों में ही कल्पना तत्व का न्यूनाधिक रूप में समावेश होता है। इन दोनों की पारस्परिक समरूपता का एक बड़ा कारण यह भी है। इतिहास अतीत का भी हो सकता है और वर्तमान का भी। इस दृष्टि-कोण से संपूर्ण साहित्य प्राय: एक प्रकार का इतिहास ही कहा जा सकता है। जिस प्रकार से वैयक्तिकता की प्रधानता कहानी में होती है, उसी प्रकार से इतिहास में भी। यही नहीं, कुछ विद्वानों ने तो यहां तक कहा है कि वैयक्तिकता से रहित इतिहास की व्यावहारिक सम्भावना हो ही नहीं सकती। इसके अतिरिक्त जहां तक कहानी और इतिहास में कल्पना तत्व के समावेश का सम्बन्ध है, इस दृष्टि से एक कहानीकार को एक इतिहास-कार की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता रहती है, क्योंकि ऐतिहासिक तथ्यों की सीमा रेखा एक कहानीकार की कल्पना धारा को रुद्ध नहीं कर सकती। पाश्चात्य विचारक हेनरी जेम्स ने इस मत का खंडन किया है कि इतिहास पूर्णत: सत्य और कथा साहित्य पूर्णत: कल्पना पर आधारित होता है। उसका विचार है कि कथा साहित्य में भी विषयवस्तु पूर्णत: कल्पित नहीं होती, वरन् वह यथार्थ पर आधारित होती है। एक कथा-कार का प्रयत्न भी एक इतिहासकार की भांति यही होता है कि वह सत्य की खोज तथा उसका उद्घाटन करे। उसका यह भी मत है कि जब तक कथाकार में सत्यता का विवेक न होगा, तब तक वह किसी उत्कृष्ट रचना को प्रस्तुत करने में असमर्थ रहेगा। परन्तु इतिहासकार और कथाकार में इस दृष्टिकोण से अन्तर यह होता है कि कथा-कार को सत्य की खोज के लिए समग्र मानव जीवन का मन्थन करना पड़ता है। मानवता विशाल है, इसलिए उसमें व्याप्त यथार्थ के भी असंख्य रूप हैं। एक कथाकार के लिए सैद्धान्तिक रूप से यह स्पष्ट निर्देशन नहीं किया जा सकता कि वह सत्य की खोज किस विधि से करे, क्योंकि यह वास्तव में उसके स्वयं के अनुभव पर निर्भर करता है। इस-लिए यह निर्देश अपर्याप्त है कि अनुभव से कथा की सृष्टि की जानी चाहिए, क्योंकि इसके साथ ही एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण भी आवश्यक है, जो अनुभव का समुचित उपयोग कर सके।

कलात्मकता और शास्त्रीयता—कुछ दृष्टियों से साम्य होने पर भी कहानी तथा इतिहास में पारस्परिक भेद भी विद्यमान है। वस्तुत: एक साहित्यिक विधा के रूप में विशिष्ट होने के कारण कहानी मूलत: कलात्मक है। इसके विपरीत इतिहास वाङ्मय के विभागों में अपना स्वतंत्र शास्त्रीय रूप में महत्व रखता है। इसी कारण से कहानी के लिए जहाँ तत्वगत कलात्मकता आवश्यक हो जाती है, वहां इतिहास के

लिए वह अनिवार्य नहीं होती। कहानी में यदि ऐतिहासिक तथ्यों और विवरणों का भी संयोजन किया जायगा, तो उन्हे कलापूर्ण रूप से आवृत करने के पश्चात् ही। परन्तु इतिहास में तथ्यों की प्रामाणिकता और दृष्टि की वैज्ञानिकता ही प्राथमिक रूप से महत्वपूर्ण होगी, भले ही उनमें कितनी भी शुष्कता क्यों न हो। साथ ही, इतिहास मे इतिहासकार अपनी ओर से यथासम्भव कुछ न जोड़कर केवल ऐतिहासिक घटनाओं का तथ्यानुसार विवरण उपस्थित कर देता है, क्योंकि उसकी परख की एकमात्र कसौटी उसकी सत्यता ही होती है, परन्तु कहानीकार यदि किसी यथार्थ घटना को भी अपनी कृति में स्थान देता है, तो उसका यथातथ्य वर्णन कलात्मकता से युक्त परिवर्तित रूप में उपस्थित करता है।

शैलीगत तुलना—कथा अथवा विषयवस्तु के विकास की दृष्टि से कहानी और इतिहास में यह अन्तर हो जाता है कि किसी कहानी में कथावस्तु के समान ही शैली-तत्व का भी महत्व होता है, क्योंकि वह वस्तु वास्तव में कहानी की शैली ही है, जिसके द्वारा एक कहानीकार कहानी में प्रस्तुत मानवीय विचार सूत्र का विकास और परिणति करता है। इस दृ ट से उपन्यास में मानवीय संवेदनाओं और मानव मन की प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं का चित्रण प्रधान रूप से किया जाता है। इसके विपरीत इतिहास में इस प्रकार की सम्भावना अथवा उसकी कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता, क्योंकि वहा पर जो कुछ भी होता है, वह प्रत्यक्ष, प्राम णिक और पूर्ण रूप से घटित हो चुका होता है। इसलिए कहानीकार की रचना की सफलता प्राथमिक रचनात्मक अभिव्यक्ति मे होती है और इतिहासकार की उसकी द्वितीयक पुनरभिव्यक्ति में। इस दृष्टि से इन दोनों माध्यमों की रचनात्मक क्रिया पारस्परिक रूप में पर्याप्त प्रभाव ग्रहण कर लेती है, क्योकि जहां पर एक कहानीकार प्रत्येक पात्र अथवा उसके कार्य तथा किसी घटना की रचना करता है, वहां दूसरी ओर एक इतिहासकार केवल उसको एक नवीन रूप में लेखाबद्ध मात्र करता है। कहानीकार की कलात्मक सफलता उसकी रचना शक्ति और मौलिकता में है, जबकि इतिहासकार की समस्त सफलता उसकी पुनरभिव्यक्ति तथा व्याख्या की शैली में।

कहानी और इतिहास में एक अन्तर यह भी है कि कहानी का क्षेत्र असीम है और इतिहास का सीमित। कहानी में एक कहानीकार भूत, भविष्य और वर्तमान, तीनों में समान रूप से अपनी गति रखता है और इनमें निर्द्वन्द्व भाव से विचरण कर सकता है, जबकि इतिहास में एक इतिहासकार केवल अतीत के वर्णन तक ही अपनी लेखनी को

सीमित रखता है। इस प्रकार से, इतिहास और कहानी कुछ तत्वगत समानता रखते हुए भी पर्याप्त पारस्परिक वैभिन्न्य रखते हैं। इस सम्बन्ध में यह मुख्य बात तो स्पष्ट ही है कि ऐतिहासिक कहानी इतिहास के कुछ सत्यों को अपने आप में समाविष्ट किये रहती है। एक सामान्य कहानी के सभी पात्र कल्पित हो सकते हैं, जबकि ऐतिहासिक कहानी के प्रमुख पात्रों का प्रामाणिक होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त इतिहास में मूलतः चरित्रों का बाह्य क्रिया कलाप ही प्रस्तुत किया जाता है, जबकि कहानी में चारित्रिक अन्तरंग का उद्घाटन भी रहता है। यही कारण है कि इतिहास में किसी बड़े राष्ट्र या जाति का बाह्य स्वरूप ही प्रधान होता है, जबकि कहानी में चारित्रिक वैयक्तिकता की प्रधानता होती है।

इस प्रकार से, उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कहानी आधुनिक युग में साहित्य की एक प्रमुख और लोकप्रिय विधा है। इसके स्वरूपगत साम्य और वैषम्य की दृष्टि से इसकी तुलना अन्य अनेक कथात्मक माध्यमों के साथ साथ साहित्य की विविध विधाओं तथा वाङ्मय के अन्य शास्त्रों से भी की जा सकती है। यह तथ्य कहानी की रूपगत विविधता तथा क्षेत्रगत विस्तार का भी सूचक है, क्योंकि एक ओर यदि कहानी साधारण मनोरंजन की दृष्टि से सामान्य रोचक तत्वों से युक्त है, तो दूसरी ओर गम्भीर उद्देश्य से युक्त होने के कारण इसका ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक और नैतिक आधार भी सुदृढ़ है। वैयक्तिक अनुभूति से लेकर विश्वजनीन भावनाएं, विशुद्ध कल्पना से लेकर अति यथार्थ तथा साधारण घटना से लेकर एक महायुद्ध तक कहानी की पृष्ठभूमि निर्मित कर सकता है। साथ ही, आधुनिक युग में ज्यों-ज्यों इसकी लोकप्रियता बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों इसका विषय विस्तार भी होता जा रहा है। यह कहानी के महत्व के साथ ही उसकी स्वरूपगत अभिनवता का परिचायक है।

अध्याय ४

कहानी के भेद

आधुनिक युगीन साहित्य की प्रायः सभी गद्यात्मक विधाओं की भाँति ही कहानी का भी प्रादुर्भाव भारतेन्दु युग से हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने राष्ट्रीय चेतना के जिस स्वर से अपने साहित्य को अनुप्राणित रखा है, कहानी के लिए भी वही चेतना पृष्ठ-भूमि के रूप में मान्य की जा सकती है। स्वदेशी आंदोलन की मांग को बल देते हुए भारतेन्दु ने जनक्रांति का आवाहन किया। उन्होंने स्वदेशी के व्यवहार के लिए एक प्रतिज्ञापत्र भी लिखा था। उनके प्रयत्न से साहित्यिक विकास की नवीन दिशाएं प्रशस्त हो रही थी। उन्होंने साहित्य का परिष्कारयुक्त रूप अनुमोदित करते हुए उसे शिक्षित और सभ्य समज के मध्य विचार-प्रसार का माध्यम बनाया। प्रवृत्ति के विचार से भी उन्होंने शृगारिक और रीति साहित्य की तुलना मे नव जागरण का सदेश प्रसारित करने वाला साहित्य समाजोत्थान के लिए वांछनीय निर्दिष्ट किया। आगे चलकर हिंदी कहानी के द्वितीय विकास काल अर्थात् प्रेमचंद युग में यथार्थपरक दृष्टिकोण को लेखकों द्वारा प्रश्रय मिला। निस्संदेह इस क्षेत्र मे प्रेमचंद ने ही सर्वप्रथम यथार्थ का आभास दिया। पूर्वयुगीन मान्यताओं के अनुसार इस युग की कहानी भी मुख्यतः सुधारवादी ही रही। युग के अधिकांश कहानीकारों ने सामाजिक जीवन की यथार्थ परिस्थितियो को अपनी रचनाओ में चित्रित किया। परन्तु यथार्थ की यह चेतना इस युग में कहानी की कथावस्तु का ही आधार रही, जिसके अन्तर्गत कहानीकार युगजीवन की विविध क्षेत्रीय समस्याएं प्रस्तुत करता था, अन्यथा जहा तक लेखको की दृष्टि-कोणगत परिणति का सम्बन्ध है, उसमें आदर्शवाद की ही प्रधानता रही। इसीलिए कुछ विचारकों ने प्रेमचद युग के कथाकारो के दृष्टिकोण को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद तथा यथार्थोन्मुख आदर्शवाद की सज्ञा भी दी है। उत्तर प्रेमचद काल में हिंदी कहानी के क्षेत्र मे अपेक्षाकृत अधिक गतिशीलता लक्षित होती है। बीसवी शताब्दी के चौथे दशक तक हिंदी कहानी जो अनेकरूपता ग्रहण कर चुकी थी, इस काल के उपरांत

समकालीन विचारांदोलनों और राजनीतिक क्रान्तियों के फलस्वरूप उसमें और भी अधिक वैविध्य तथा युगानकूलता आयी। विगत काल की तुलना में यह कहानी आदर्श, त्याग और बलिदान की उदासपरक भावनाओं का परित्याग कर समकालीन जीवन के विविध पक्षीय यथार्थ को पूर्ण रूप से स्वीकार कर चुकी थी। यह यथार्थ समाज के निम्न और मध्य वर्गों की उस चेतना के जागरण का आधार था, जो वर्गवैषम्य और वर्गसंघर्ष की प्रतिक्रिया था। इस काल में अन्य साहित्यिक माध्यमों की ही भांति कहानी मे भी मानवतावादी स्वर की प्रधानता हो गयी। समाज के निम्न वर्गों में मुख्यतः कृषक तथा श्रमिक एवं मध्यवर्गों में व्यवसायी तथा बाबू वर्गों में, शोषण के विरुद्ध एक सामूहिक विरोध की भावना उत्पन्न हुई। इस काल की कहानियों में यह विरोध अनेक रूपो मे अभिव्यक्त हुआ है। यहां पर इन विविध प्रवृत्तियों के द्योतक प्रमुख रूपों के आधार पर हिन्दी कहानी का वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

ऐतिहासिक कहानी

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में ऐतिहासिक विषयवस्तु-प्रधान रचनाएं प्रायः सदैव ही उपलब्ध रही हैं। भारतीय इतिहास के विविध युग कथात्मकता की दृष्टि से वस्तुतः बहुत ही समृद्ध हैं। ऐतिहासिक कहानी की रचना के लिए यह आवश्यक होता है कि कहानीकार उस युग की पृष्ठभूमि और वातावरण का भली प्रकार से अध्ययन कर ले, जिससे उसने अपनी कहानी की विषय वस्तु का चयन किया है। इस प्रकार का अध्ययन ऐतिहासिक कहानी में विश्वसनीयता की सम्भावनाएं उत्पन्न करने में सहायक होता है। वास्तव में प्रत्येक देश में इतिहास के विविध युग अपने आप में कतिपय विशिष्टताएं लिये हुए होते हैं। जब एक कहानीकार किसी देश के समग्र इतिहास का पर्यवेक्षण करने के उपरान्त उसमें से कोई विषय सूत्र अपनी कहानी के लिए ग्रहण करता है, तब उसके लिए यह भी आवश्यक हो जाता है कि वह उस युग की परिस्थितियों का भी अध्ययन करे। प्रारम्भिक युग में जो हिन्दी कहानियां ऐतिहासिक विषयवस्तु को आधार बनाकर लिखी गयी थी, उनमे केवल कुछ पात्रों के नाम एवं कुछ घटनाएं मात्र ही ऐतिहासिक होती थी, अन्यथा कहानी के शेष भाग का कोई सम्बन्ध इतिहास से नहीं होता था। इस कथन का यह आशय नहीं है कि ऐतिहासिक कहानी में केवल ऐतिहासिक सामग्री ही आरम्भ से अन्त तक प्रस्तुत की जाय और कलात्मकता का ध्यान न रखा जाय। वस्तुतः श्रेष्ठ ऐतिहासिक कहानी में इतिहास और वर्तमान

तथा यथार्थ और कल्पना का बहुत सन्तुलित और आनुपातिक समन्वय होना अत्यन्त आवश्यक है।

इस दृष्टिकोण से ऐतिहासिक कहानी की सर्वप्रथम विशेषता यह होती है कि उसकी रचना के लिए कतिपय नियमों का पालन करना आवश्यक हो जाता है। वस्तुतः ऐतिहासिक विकास के चाहे जिस युग से कथा का चयन किया जाय, उस युग विशेष की पृष्ठभूमि और परिस्थितियो का निरूपण कहानी में अपेक्षित होता है। ऐसा करते समय एक कहानीकार अपनी कल्पना शक्ति से भी काम लेता है। कभी कभी वह अपनी कहानी मे प्रागैतिहासिक कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण भी करता है। ऐसी स्थिति में वह कल्पनात्मकता का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक और स्वतत्र रूप मे कर सकता है, क्योंकि प्रागैतिहासिक युग पर आधारित कथावस्तु मे कल्पना तत्वों के नियोजन से उमे अधिक चमत्कारयुक्त बनाया जा सकता है और उसकी तुलना में ऐतिहासिक कहानी में इसकी सम्भावनाएं अपेक्षाकृत कम हो जाती है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे विविध युगो में लिखी गयी अनेक कहानियों की कथा वस्तु का मुख्य स्रोत भारतीय इतिहास रहा है। इतिहास मे वर्णित अनेक महान् योद्धाओं और नायकों के जीवन की प्रमुख घटनाओं के आधार पर प्राय: सभी युगों के लेखकों ने अनेक रचनाए प्रस्तुत की है। इस दृष्टि से ऐतिहासिक कहानी क्षेत्र मे पात्रों की योजना का प्रश्न कठिन समस्या के रूप मे सामने आता है। ऐतिहासिक कहानी में लेखक जिन पात्रो का प्रस्तुतीकरण करता है, उनका चारित्रिक आधार वस्तुतः ऐतिहासिक ही होता है। उनकी पृष्ठभूमि मे लेखक उनसे सम्बन्धित ऐतिहासिक विवरण और प्रामाणिक तथ्यो को भी प्रस्तुत करता है। उनके विषय मे उस रूप मे कोई पृथक् जानकारी चूंकि इतिहास में अथवा अन्यत्र नही मिलती, इसलिए पाठक उसे विश्वसनीय प्रतीत होने पर यथार्थ भी मान लेता है। ऐसी स्थिति में ऐतिहासिक कहानी लेखक का दायित्व सामान्य कहानीकार की तुलना मे अपेक्षाकृत अधिक हो जाता है, क्योंकि ऐतिहासिक कहानी में कल्पना भी कलात्मक होने पर यथार्थ सी प्रतीत होने लगती है।

हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुशी प्रेमचंद ने साहित्य के उद्देश्य के सन्दर्भ में विचार करते हुए इतिहास सम्बन्धी अपनी धारणा भी व्यक्त की है। उनका विचार है कि साहित्य अथवा उसकी विविध विधाओ में कल्पनात्मकता के माध्यम से पाठक को आनन्द प्रदान करने की भावना विद्यमान रहती है। वस्तुतः अतीत और वर्तमान

दोनों ही व्यवहारतः असुन्दर अतएव असत्य हैं। स्वयं प्रेमचन्द के शब्दों में 'इतिहास मे, और यथार्थ जीवन में भी, आदि से अन्त तक हत्या, संग्राम और धोखे का ही प्रदर्शन है, जो असुन्दर है, इसलिए असत्य है।' प्रेमचंद के विचार से इतिहास के क्षेत्र का जहां तक सम्बन्ध है 'लोभ की क्रूर से क्रूर, अहंकार की नीच से नीच, ईर्ष्या की अधम से अधम घटनाएं आपको वहां मिलेंगी और आप सोचने लगेंगे—मनुष्य कितना अमानुष है। थोड़े से स्वार्थ के लिए भाई, भाई की हत्या कर डालता है और राजा असंख्य प्रजा की हत्या कर डालता है। उसे पढ़कर मन में ग्लानि होती है, आनन्द नहीं, और जो वस्तु आनन्द नहीं प्रदान कर सकती, वह सुन्दर नही हो सकती और जो सुन्दर नही हो सकती, वह सत्य भी नही हो सकती'[1] प्रेमचंद का विचार है कि इतिहास के ये तत्व साहित्य मे ग्राह्य नहीं होने चाहिए, क्योंकि इनका पाठक की भावनाओं पर स्वस्थ प्रभाव नही पड़ता।

हिन्दी गद्य के आविर्भाव कालीन साहित्य में 'बीरबल अकबर का उपहास' शीर्षक से कुछ कथाएं सगृहीत हुई हैं। इन कहानियों में कुछ पात्र ही ऐतिहासिक हैं अन्यथा शेष घटनाएं केवल दन्तकथाओं पर ही आधारित है। भारतेन्दु युग में किशोरीलाल गोस्वामी जैसे कुछ लेखको ने ऐतिहासिक विषय सूत्रों को अपनी कथाओं का विषय बनाया। परन्तु हिन्दी मे ऐतिहासिक कहानी का परिष्कृत और कलात्मक रूप प्रेमचंद युग मे ही उपलब्ध होता है। स्वयं मुंशी प्रेमचंद ने 'राजा हरदौल', 'रानी सारन्धा', 'मर्यादा की वेदी', 'पाप का अग्निकुंड', 'जुगनू की चमक', 'धोखा', 'सती', 'वज्रपात, 'लैला', 'दिलरानी', 'परीक्षा' तथा 'क्षमा' जैसी ऐतिहासिक कहानियों में भारतीय इतिहास की गौरव गाथाएं प्रस्तुत की। इसी युग में जयशंकर प्रसाद ने ऐतिहासिक विषयों पर विश्वसनीय कथानकों से युक्त कहानियां लिखी हैं। ऐतिहासिक यथार्थ के साथ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का समावेश और आदर्शवादी दृष्टिकोण की निहिति उनकी कहानियों की सर्वप्रथम विशेषता है। 'तानसेन', 'जहांआरा', 'अशोक', 'सिकन्दर की शपथ', 'देवरथ', 'सालवती', 'स्वर्ग के खंडहर', 'आकाशदीप', 'ममता', 'पुरस्कार' तथा 'चित्तौड़ उद्धार' आदि 'प्रसाद' की प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियां हैं। इन रचनाओं में लेखक ने राष्ट्रीय प्रेम की आदर्शमयी भावनाओ की अभिव्यंजना की है।

१. मुंशी प्रेमचंद, 'साहित्य का उद्देश्य', पृ० ४०।

चतुरसेन शास्त्री ने भी 'प्रसाद' की परम्परा में ऐतिहासिक कहानियां लिखी हैं। 'हठी हम्मीर', 'सिंहगढ़ विजय', 'जैसलमेर की राजकुमारी', 'टीपू सुलतान', 'सोया हुआ शहर', 'हैदरअली', 'वीर बादल', 'विश्वासघात' तथा 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' आदि इनकी प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियां है। शास्त्रीजी की अधिकांश ऐतिहासिक कहानियाँ भारतीय इतिहास के मुगल तथा अंग्रेजी कालों से सम्बन्धित है। इनकी कहानियों के पात्रों और घटनाओं की योजना में कल्पना तथा ऐतिहासिकता का समन्वय मिलता है। उत्तर प्रेमचन्द काल में उषादेवी मित्रा ने 'महान् की पूजा' तथा 'चम्मच भर आंसू' आदि ऐतिहासिक कहानिया लिखी। इनमें लेखिका ने प्राचीन भारतीय जीवन के गौरवमय आदर्शों के अनुगमन का सन्देश दिया है। यशपाल की ऐतिहासिक कहानियों में 'दास धर्म' तथा 'सत्य का मूल्य' आदि के नाम उल्लिखित किये जा सकते हैं। ऐतिहासिक चेतना का निरूपण इन कहानियों की प्रमुख विशेषता है। डा० वृन्दावनलाल वर्मा की लिखी हुई ऐतिहासिक कथाओं का एक संग्रह 'ऐतिहासिक कहानियां' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इनमें मुख्यत: बुन्देलखंड प्रदेश के इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों की अमर कथाएं वर्णित हैं। आनन्दप्रकाश जैन ने राजस्थानी इतिहास से सम्बन्धित अनेक ऐतिहासिक कहानिया लिखी हैं। जैनेन्द्रकुमार ने भी विविध युगीन भारतीय इतिहास पर आधारित अनेक कहानिया लिखी हैं। इनमें 'जय सन्धि', 'रानी महामाया' तथा 'जनार्दन की रानी' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[२]

ऐतिहासिक कहानी के विकास की रूपरेखा का अध्ययन करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि आरम्भ में इसका स्वरूप कलात्मक परिष्कार से युक्त नहीं था और केवल ऐतिहासिक तथ्यों का निरूपण ही उसमें पर्याप्त समझा जाता था। आगे चलकर प्रेमचन्द, चतुरसेन शास्त्री आदि कहानीकारों ने ऐतिहासिक कहानी के क्षेत्र में अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया। इन्होंने ऐतिहासिक कहानी का कलात्मक स्वरूप प्रस्तुत करने के साथ साथ उसके सम्बन्ध में स्पष्ट धारणा सामने रखी। उनकी रचनाओं से यह भी स्पष्ट हो गया कि किसी सर्वथा काल्पनिक कहानी मे किसी ऐतिहासिक पात्र अथवा घटना का समावेश कर देने मात्र से ही वह ऐतिहासिक नही हो जाती। इन कहानीकारो ने जो ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी, उनमें इतिहास

२. ये कहानियां 'जैनेन्द्र की कहानियां' के प्रथम खंड में संगृहीत हैं।

की नवीन धारणा और अभिनव स्वरूप सामने आया। कल्पनात्मक प्रखरता के योग से ही इनकी ऐतिहासिक कहानियाँ प्रभावपूर्ण बन सकीं। इन लेखकों ने कथावस्तु तथा घटना तत्व के साथ साथ वातावरण और परिस्थितियों का भी इतिहास सम्मत विश्वसनीय चित्रण करके हिन्दी की ऐतिहासिक कहानी को कलात्मक आवरण प्रदान किया।

सांस्कृतिक कहानी

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में स्थूल वर्गीकरण के अनुसार प्रायः सांस्कृतिक कहानी को ऐतिहासिक कहानी की ही श्रेणी में रखा जाता है और इन दोनों में कोई विशेष अन्तर नही समझा जाता, परन्तु वर्तमान युग में सांस्कृतिक तत्वप्रधान कहानियों की एक स्वतत्र और पृथक् परम्परा सी निर्मित होती प्रतीत होती है और इसे ऐतिहासिक कहानी से स्पष्टतः भिन्न समझा जाने लगा है। हिन्दी कहानी के आरम्भिक विकास युग में सांस्कृतिक कहानी की कोई पृथक् कोटि नही थी और विविध विषयक कहानियों में आंशिक रूप से सांस्कृतिक तत्वों का भी समावेश कर दिया जाता था। इसी कारण से उस काल तक सास्कृतिक कहानी का कोई स्पष्ट स्वरूप सामने नही आया था। उस समय केवल मनोरंजन के उद्देश्य से विविध विषयक कौतूहलजनक कहानियाँ प्रस्तुत की जाती थीं। मुशी प्रेमचन्द ने इस युग के साहित्य के विषय में लिखा भी है कि 'हमने जिस युग को अभी पार किया है, उसे जीवन से कोई मतलब न था। हमारे साहित्यकार कल्पना की एक सृष्टि खड़ी करके उसमें मनमाने तिलस्म बांधा करते थे। कहीं फिसानये अजायब की दास्तान थी, कहीं बोस्ताने खयाल की और कही चन्द्रकान्ता सन्तति की। इन आख्यानों का उद्देश्य केवल मनोरंजन था और हमारे अद्भुत रसप्रेम की तृप्ति; साहित्य का जीवन से कोई लगाव है, यह कल्पनातीत था। कहानी कहानी है, जीवन जीवन। दोनों परस्पर विरोधी वस्तुएँ समझी जाती थी।'[१] धीरे-धीरे जब हिन्दी कहानी का कलात्मक स्वरूप स्थिर होने लगा तब विविध लेखकों द्वारा लिखी गयी विशुद्ध सांस्कृतिक कहानियाँ सामने आयी। स्वयं मुंशी प्रेमचन्द ने 'शतरज के खिलाड़ी' जैसी सांस्कृतिक कहानियाँ लिखीं। राहुल सांकृत्यायन, जयशंकर 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री, डा० रांगेय राघव, भगवतीचरण वर्मा तथा अमृतलाल

१. मुंशी प्रेमचंद, 'साहित्य का उद्देश्य', पृ० ३।

नागर जैसे कहानी लेखकों ने इतिहास के विविध युगों से सम्बन्धित सांस्कृतिक कहानियाँ लिखीं। वास्तव में सांस्कृतिक कहानी ऐतिहासिक कहानी से इस अर्थ में भिन्न होती है, क्योंकि उसमें इतिहास की प्रामाणिक घटनाओं तथा पात्रों के स्थान पर अतीत युगों की सांस्कृतिक परिस्थितियों के चित्रण पर अधिक गौरव दिया जाता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में वैदिक–पौराणिक युगीन संस्कृति, बौद्ध–जैन युगीन संस्कृति तथा मुस्लिम और आंग्ल संस्कृति का चित्रण करने वाली रचनाएँ मिलती हैं। सिद्धांततः संस्कृति इतिहास युगीन संस्कारों की परिचायक होती है। डा० गुलाबराय ने संस्कृति की व्याख्या उसका संस्कार, संशोधन अथवा परिष्कार मानकर ही की है, जिसका सम्बन्ध धर्म की तुलना मे देश से अधिक होता है।[४] डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने संस्कृति का क्षेत्र अपेक्षाकृत व्यापक मानते हुए उसकी व्याख्या इस प्रकार की है– 'मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है उसी को संस्कृति कहते हैं।....मनुष्य ने धर्म का जो विकास किया, दर्शन शास्त्र के रूप में जो चिन्तन किया, साहित्य, संगीत और कला का जो सृजन किया, सामूहिक जीवन को हितकर एवं सुखी बनाने के लिए जिन प्रथाओं व संस्थाओं को विकसित किया, उन सबका समावेश हम संस्कृति में करते हैं।'[५] इस दृष्टि से विविध युगीन संस्कृतियो पर आधारित हिन्दी कहानी अपनी आकारगत सीमा के विद्यमान रहते हुए भी अतीत जीवन का सम्यक् चित्रण करने में समर्थ हुई है। यहाँ पर इस तथ्य का उल्लेख करना अनौचित्यपूर्ण न होगा कि ऐतिहासिक कहानी की भाति ही सास्कृतिक कहानी मे भी ऐतिहासिक तथ्यों और कल्पनात्मक तत्वों का सन्तुलित समन्वय मिलता है। प्रेमचन्द लिखित 'राजा हरदौल' तथा 'मर्यादा की वेदी', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'देवरथ', 'आकाशदीप' तथा 'पुरस्कार', डा० वृन्दावनलाल वर्मा लिखित 'राखीबन्द भाई' तथा 'खजुराहो की दो मूर्तियाँ', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'अम्बपालिका', 'कुणाल', 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी', 'वसन्त' तथा 'सिहगढ़ विजय' आदि कहानियाँ बाह्य दृष्टि से ऐतिहासिक प्रतीत होती हुई भी वस्तुतः सांस्कृतिक कोटि की रचनाएँ हैं, क्योंकि इनमे अतीत युगो की संस्कृति सजीव रूप में अभिव्यंजित हुई है।

४. डा० गुलाब राय, 'भारतीय संस्कृति की रूपरेखा', पृ० १-२।
५. डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, 'भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास', पृ० २०।

सामाजिक कहानी

हिन्दी कहानी के इतिहास के अन्तर्गत विभिन्न विकास कालों में जो रचनाएँ प्रस्तुत की गयी हैं, उनमें सबसे बड़ी संख्या उन कहानियों की है, जो सामाजिक विषय वस्तु पर आधारित हैं। भारतेन्दु युग अथवा प्रथम विकास से लेकर वर्तमान युग अथवा चतुर्थ विकास काल तक हिन्दी कहानी के क्षेत्र में सामाजिकता की प्रवृत्ति ही प्रधान रही है। भारतीय समाज के विविध वर्गों में आधुनिक युग में जो नव जागरण हुआ, उसकी पृष्ठभूमि में अनेक वैचारिक आन्दोलन कार्यशील रहे हैं। भारतेन्दु युग में लिखित हिन्दी कहानी समाज मे होने वाले विविध परिवर्तनों का आभास देने में समर्थ है। विभिन्न रूढ़ियों, कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में नवीन सामाजिक चेतना का बौद्धिक परिवेश में जागरण हुआ। भारतेन्दु युगीन कहानियों में नियोजित घटनाएँ और पात्र सैद्धान्तिक रूप में इसी नवीन विचार दर्शन से प्रभावित हैं और व्यावहारिक रूप में इसी प्रक्रिया का आधार हैं जो सामाजिक विकास की पृष्ठभूमि में मिलती है। समाज के उच्च, मध्य तथा निम्न वर्गों में व्याप्त प्रतिक्रियात्मकता की भावना के बहुरूपी परिणाम क्रमश: सामने आये ।

हिन्दी कहानी के प्रथम विकास काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती' लिखी थी, जिसमें समकालीन सामाजिक जीवन और विविध वर्गीय व्यक्तियों की मनोवृत्ति का परिचय प्रस्तुत किया गया है। गिरिजादत्त वाजपेयी तथा पार्वतीनन्दन आदि लेखकों ने भी इस युग मे सामाजिक कहानियों की रचना की। परन्तु हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सामाजिक कहानी का सर्वाधिक प्रौढ रूप प्रस्तुत करने की दिशा में प्रेमचन्द का योगदान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। प्रेमचन्द ने अपने समकालीन सामाजिक जीवन का जितना व्यापक क्षेत्रीय चित्रण विशद आधारभूमि पर प्रस्तुत किया, वैसा अन्य किसी कहानीकार ने नही। समाज के विविध वर्गों के विस्तृत चित्रण के सन्दर्भ में प्रेमचन्द ने सामाजिक यथार्थ के विभिन्न रूपों का उद्घाटन किया है। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्धों के मध्यकालीन भारत का समग्र स्वरूप प्रेमचन्द की कहानियो मे मूर्तिमान् हुआ है। प्रेमचन्द ने समाज के मध्य वर्ग की स्थिति को बहुत अधिक दयनीय बताया है, क्योंकि यह वर्ग मिथ्या आडम्बर, अनुपयोगी शिक्षा तथा रूढियों से सबसे अधिक ग्रस्त है। 'पूस की रात', 'डिग्री के रुपये', 'कफ़न', 'सवा सेर गेहूँ', 'बेटी का धन', 'दो सखियाँ', 'बड़े घर की बेटी', 'नमक

का दरोगा' तथा 'अलग्योझा' आदि कहानियों में प्रेमचन्द ने समाज के विविध रूपों का चित्रण किया है। भारतीय नागरिक समाज के मध्य तथा निम्न वर्गों के आधार पर अपनी कहानियों में जनचेतना का इतिहास प्रस्तुत करने के साथ साथ प्रेमचन्द ने ग्रामीण समाज के शोषक तथा शोषित वर्गों के आधार पर ग्रामोत्थान का व्यापक परिवेशीय अंकन अपनी रचनाओं में किया। ग्रामीण क्षेत्रों से सम्बन्धित शोषित वर्ग में कृषक तथा श्रमिक एवं शोषक वर्ग मे महाजन, साहूकार, पूंजीपति, जमीदार तथा शासनाधिकारियों का चित्रण प्रेमचंद ने किया है। नागरिक और ग्रामीण समाज का समग्र रूप में चित्रण करते हुए प्रेमचंद ने वस्तुतः भारतीय जन जागरण का ही वास्तविक इतिहास प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द के विचार से भारतीय ग्राम्य जीवन में 'हमें अपेक्षाकृत जीवन का मुक्त प्रवाह दिखाई पड़ता है, अपने प्रेम, त्याग, कलह और द्वेष के मौलिक रूप में। जिस देश के अस्सी प्रतिशत मनुष्य गांवों मे रहते हों, उसके साहित्य मे ग्राम्य जीवन ही प्रधान रूप से चित्रित होना स्वाभाविक है। उन्ही का सुख राष्ट्र का सुख, उन्ही का दुख राष्ट्र का दुख और उन्ही की समस्याएँ राष्ट्र की समस्याएँ है।'

प्रेमचद की ही परम्परा मे विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने समाज का बहुपक्षीय चित्रण अपनी कहानियो मे प्रस्तुत किया है। जयशंकर 'प्रसाद' ने अपनी सामाजिक कहानियो में नारी जीवन की भावनाओं की प्रभावशाली अभिव्यजना की है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'श्रीमती गजानन्द शास्त्री', 'ज्योतिर्मयी', 'चतुरी चमार' तथा 'दो दाने' जैसी कहानियो में समाज के विभिन्न पक्षों का चित्रण किया है। चतुरसेन शास्त्री ने सामाजिक जीवन के विडम्बनापरक रूपों का परिचय देने वाली कहानियाँ लिखी है। पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने सामाजिक जीवन के विकृत और अभिशप्त रूपों का चित्रण करते हुए अपनी कहानियो में समाज सुधार के दृष्टिकोण को प्रधान रखा है। जैनेन्द्र कुमार ने अपनी सामाजिक कहानियों में वर्ग और भावनात्मक वैषम्य का चित्रण किया है।

उत्तर प्रेमचन्द काल मे भगवती प्रसाद वाजपेयी ने सामाजिक यथार्थ के विविध पक्षों का निरूपण अपनी कहानियों मे किया है। मध्यवर्गीय समाज को आधार बनाकर वाजपेयीजी ने सामाजिक विकास का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया है। 'सुदर्शन' ने अपनी कहानियों में आधुनिक समाज के ह्रासोन्मुखी जीवन की पृष्ठभूमि मे उसमें निहित उदात्तपरक भावनाओं का विवेचन किया है। इस दृष्टि से 'हार की जीत'

उनकी सर्वप्रतिनिधि कहानी कही जा सकती है। राजा राधिकारमण प्रसाद 'सिंह' ने भी अपनी प्रतिनिधि कहानियों में सामाजिक जीवन के ह्रासोन्मुखी पक्षों का ही चित्रण किया है। श्रीमती उषादेवी मित्रा ने भारतीय नारी समाज का सूक्ष्म चित्रण करते हुए उस पर बढ़ते हुए पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव की प्रवृत्ति को त्याज्य घोषित किया है। भगवतीचरण वर्मा की कहानियों में विभिन्न वर्गीय सामाजिक जीवन का व्यापक चित्रण हुआ है। इलाचन्द्र जोशी की सामाजिक कहानियो में वैयक्तिक पारिवारिक जीवन को कुंठित बनाये रखनेवाली विकृतियों का चित्रण हुआ है। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की कहानियों में भारतीय समाज की पारिवारिक व्यवस्था के विशृंखलन का चित्रण हुआ है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की सामाजिक कहानियों में मध्यवर्गीय यथार्थता का स्वरूप उद्घाटित हुआ है। 'डालिये', 'खिलौने', 'बच्चे', 'निशानियाँ' आदि उनकी प्रतिनिधि सामाजिक कहानियाँ है। डा० वृन्दावनलाल वर्मा की सामाजिक कहानियो मे अर्ध सभ्य तथा पिछडी जातियो के जीवन का चित्रण हुआ है। अमृतलाल नागर की कहानियो मे भी सामाजिक यथार्थ के विविध रूपो का उद्घाटन हुआ है।

समस्याप्रधान कहानी

हिन्दी कहानी के प्रथम विकास काल से ही समस्याप्रधान रचनाएँ उपलब्ध होती है। आधुनिक सामाजिक जीवन में व्याप्त परम्परागत रूढियों और अन्धविश्वासों के निर्मूलन के उद्देश्य से समस्याप्रधान कहानियाँ लिखी गयी है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'एक अद्भुत, अपूर्व स्वप्न' शीर्षक कथात्मक रचना मे समकालीन शिक्षा पद्धति एवं अन्य सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया है। इसी काल में राधाचरण गोस्वामी ने 'यमपुर की यात्रा' शीर्षक कहानी में इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि समाज में जो विविध क्षेत्रीय समस्याएँ परम्परागत रूप से विद्यमान हैं, उनके निर्मूलन की दिशा में कोई प्रयास इसलिए सफल नही हो पाता, क्योंकि उनके पीछे विभिन्न वर्गों के निजी स्वार्थ की भावना विद्यमान रहती है। लेखक ने इस कहानी में यह संकेत स्पष्ट रूप से किया है कि आधुनिक युग में सामाजिक विकास की दिशा में ये समस्याएँ एक बहुत बड़ी बाधा के रूप में कार्य करती हैं। गिरिजादत्त वाजपेयी ने 'पति का पवित्र प्रेम' तथा 'पंडित और पंडितानी' जैसी कहानियों में विवाह और प्रेम की समस्याओं को आधार बनाया है। सामाजिक कहानी लेखकों में पार्वतीनन्दन का नाम भी उल्लेख-

नीय है। 'प्रेम का फुव्वारा', 'एक के दो दो' तथा 'मेरा पुनर्जन्म' आदि कहानियों में लेखक ने विविध सामाजिक समस्याएँ निरूपित की हैं।

आगे चलकर इस परम्परा में समस्याप्रधान कहानी को उच्च आधार भूमि पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय मुंशी प्रेमचन्द को है। पूर्ववर्ती कहानियों में विविध क्षेत्रीय समस्याओं का जो रूप अप्रौढतायुक्त मिलता था, उसी को प्रेमचन्द ने परिष्कृत स्वरूप प्रदान किया। यद्यपि प्रेमचन्द ने जो समस्याएँ अपनी कहानियों में निरूपित की, वे परम्परागत ही हैं, परन्तु जिस रूप में उनका विश्लेषण तथा निराकरण उनके द्वारा किया गया है, वह अवश्य नवीन है। प्रेमचन्द के काल से हिन्दी कहानी में जिन समस्याओं का निरूपण बहुलतापूर्वक हुआ है उनमे कृषक जीवन की समस्या, श्रमिक जीवन की समस्या, बेरोजगारी की समस्या, आर्थिक क्षेत्रीय समस्याएँ, नारी जीवन की समस्याएँ, स्त्री शिक्षा की समस्या, स्त्री स्वातत्र्य की समस्या, वैवाहिक समस्याएँ, कुरीतियों के निवारण की समस्याएँ आदि प्रमुख हैं। प्रेमचन्द ने अपनी विविध विषयक कहानियों मे सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण करते हुए वर्ग वैषम्य एव विकृत रूढियो का तीव्र विरोध किया है। समाज के उच्च वर्गों द्वारा निम्न वर्गों के शोषण की समस्या पर भी प्रेमचन्द ने विचार किया है। पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित समस्याओं का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द ने संयुक्त परिवार की प्रथा के ह्रास की ओर भी संकेत किया है। 'घर जमाई', 'बड़े घर की बेटी', 'कफ़न', 'पूस की रात' तथा 'नेउर' आदि कहानियों में प्रेमचन्द ने विभिन्न सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया है।

प्रेमचन्द युग में ही विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने परदा प्रथा, बाल विवाह, स्त्री शिक्षा तथा पारिवारिक विघटन आदि की समस्याओं को उठाया है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने अपनी कहानियों में भारतीय समाज में व्याप्त रूढिगत समस्याओं का विरोध किया, जिनका मूल कारण अन्धविश्वास की भावना है। चतुरसेन शास्त्री ने परिवार, प्रेम और विवाह सम्बन्धी समस्याओं का चित्रण किया है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने सामाजिक कुरीतियों से सम्बन्धित समस्याओं का निरूपण किया है। जैनेन्द्रकुमार ने आधुनिक समाज का व्यापक पृष्ठभूमि में विस्तृत चित्रण अपनी विविध विषयक कहानियों में प्रस्तुत किया है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं का चित्रण अपनी कहानियों में विशेष रूप से किया है। 'सुदर्शन' ने नैतिक समस्याओं का निरूपण किया है। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने अपनी

समस्याप्रधान कहानियों में समाज में निहित रूढ़िवादी मनोवृत्ति और वैचारिक संकीर्णता का विरोध किया है। श्रीमती उषादेवी मित्रा ने भारतीय नारी समाज में व्याप्त समस्याओं का चित्रण किया है। भगवतीचरण वर्मा की कहानियों में समाज में रूढ़िगत रूप में मान्य अन्धविश्वासों का तीव्र विरोध हुआ है। इलाचन्द्र जोशी की कहानियों में मूलतः भाव के मनोजगत से सम्बन्धित समस्याओं की ही विवृति हुई है। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपनी समस्यापरक कहानियों में आधुनिक समाज के अस्वस्थ वातावरण की पृष्ठभूमि में विभिन्न मनःस्थितियों का प्रभावशाली चित्रण किया है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने आधुनिक समाज में निहित नैतिक मान्यताओं के खोखलेपन की ओर संकेत किया है। यशपाल ने समाज में आर्थिक वैषम्य जनित समस्याओं का निरूपण अपनी कहानियों में किया है। डा० वृन्दावनलाल वर्मा ने अपनी कहानियों मे वर्ग वैषम्य और जातिभेद की समस्याओं का चित्रण किया है। अमृतलाल नागर की कहानियों में समाज के आर्थिक वैषम्य और शोषण से सम्बन्धित समस्याओं का वैचारिक निरूपण हुआ है।

भावप्रधान कहानी--भावप्रधान कहानी अपने व्यावहारिक रूप में वर्णन अथवा वातावरण प्रधान कहानी के अपेक्षाकृत अधिक निकट होती है। इन कहानियों में प्रकृति चित्रण से सम्बन्धित प्रसंगों की अधिकता रहती है। भावप्रधान कहानी का मूल आधार उसकी भावनात्मक सूत्रबद्धता ही होती है। इन कहानियों में कथा-वस्तु की प्रधानता न होने के कारण घटनात्मकता का भी अभाव रहता है। इस दृष्टि से भाव प्रधान कहानी को काव्यात्मक कहानी भी कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें प्रायः काव्योचित भाषा और काव्य शैली में ही भावाभिव्यंजना होती है। इसमें कथावस्तु, चरित्र चित्रण अथवा किसी अन्य तत्व को प्रधानता न दी जाकर केवल मूल भावाभिव्यक्ति पर ही बल दिया जाता है। सामान्य रूप से भाव प्रधान कहानी में मुख्यतः एक ही भावना की प्रधानता रहती है। हिन्दी कहानी के प्रथम विकास काल में रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' शीर्षक कहानी भाव प्रधान कोटि की ही रचना है। इस संपूर्ण कहानी की विषय वस्तु, भाषा, शैली, वर्णनात्मकता आदि में भावात्मकता का ही प्राधान्य है। जयशंकर 'प्रसाद' की लिखी हुई 'हिमालय का पथिक', 'प्रणय चिह्न' तथा 'रूप की छाया' आदि कहानियाँ भी भाव प्रधान ही हैं। 'अनाख्या', 'सुधांशु' तथा 'आँखों की थाह' आदि संग्रहों में उपलब्ध राय कृष्णदास की अनेक कहानियाँ भी भावात्मकता प्रधान कही जा सकती हैं। जैनेन्द्र कुमार की

लिखी हुई 'नीलम देश की राजकन्या' तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'कोठरी की बात' आदि कहानियों का उल्लेख भी इसी श्रेणी की रचनाओं के अन्तर्गत किया जा सकता है।

आदर्शवादी कहानी—हिन्दी कहानी के आविर्भाव काल से ही प्राय: आदर्शवादी कोटि की रचनाएँ उपलब्ध होती रही है। परन्तु आरम्भ में हिन्दी कहानी के क्षेत्र में आदर्शवादी तत्वों का समावेश जिस रूप मे मिलता है, वह मुख्यत: रूढ़िग्रस्तता का ही परिचायक है, जबकि परवर्ती कालीन आदर्शवादी कहानी वैचारिक परिपक्वता की भी द्योतक कही जा सकती है। सैद्धान्तिक रूप मे आदर्शवाद एक उदात्तपरक विचारधारा समझी जाती है। इसमें मुख्यत: विश्व और मानव कल्याण की भावना निहित रहती है। यह भौतिकता की तुलना में आध्यात्मिकता तथा पारलौकिकता का विशेष महत्व निर्दिष्ट करती है।[६] साहित्य के क्षेत्र मे आदर्शवाद मनुष्य को अपने जीवन मे किन्ही उदात्त तत्वो के माध्यम से प्राप्त उपलब्धियों की दिशा में चलने की प्रेरणा देता है जबकि ये ही अन्तत: मनुष्य के आत्मिक सन्तोष और सुख का मूल कारण होती है। इस रूप मे इस विचारधारा की मूल वृत्ति अन्तर्मुखी है।[७]

प्रथम विकास काल मे किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती', रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' तथा गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पति का पवित्र प्रेम' जैसी कहानियाँ आदर्शवादी कोटि की ही है। प्रेमचन्द युग मे आदर्शवादी कहानी का सम्यक् स्वरूप सामने आया। स्वयं मुंशी प्रेमचंद के कहानी साहित्य में आदर्शवादी विचारधारा के प्रति स्पष्ट आग्रह दिखाई देता है। प्रेमचन्द ने समाज की अधिकांश समस्याओं का आदर्शपरक निदान ही सामने रखा। 'नमक का दरोगा', 'मन्त्र' तथा 'बड़े घर की बेटी' जैसी कहानियों में उनकी आदर्शवादी भावना स्पष्ट रूप से अभिव्यजित हुई है। प्रेमचन्द की यह स्पष्ट धारणा है कि सेवा और त्याग के आदर्श ही भारतीय सामाजिक जीवन का उन्नयन कर सकते है। प्रेमचंद ने आदर्शवाद को यथार्थवाद की तुलना में ग्राह्य बताते हुए लिखा है कि "यथार्थवादियों का कथन है कि संसार मे नेकी-बदी का फल कही मिलता नजर नही आता, बल्कि बहुधा बुराई

६. द्रष्टव्य—एल० हैरी गाउल्ड, 'मार्क्सिस्ट ग्लासरी', पृ० २६, सिडनी, १९६०।

७. डा० प्रतापनारायण टंडन, 'समीक्षा के मान और हिन्दी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियां', द्वितीय खंड, पृ० ५५२।

का परिणाम अच्छा और भलाई का बुरा होता है। आदर्शवादी कहता है, यथार्थ का यथार्थ रूप दिखाने से फायदा ही क्या? वह तो अपनी आँख से देखते ही हैं। कुछ देर के लिए तो हमे इन कुत्सित व्यवहारों से अलग रहना चाहिए, नहीं तो साहित्य का मुख्य उद्देश्य ही गायब हो जाता है। वह साहित्य को समाज का दर्पण मात्र नहीं मानता है, जिसका काम प्रकाश फैलाना है। भारत का प्राचीन साहित्य आदर्शवाद का ही समर्थक है। हमे भी आदर्श की ही मर्यादा का पालन करना चाहिए।"[८]

प्रेमचद युग मे ही चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने अपनी लिखी हुई 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी मे आदर्शवाद का परम्परागत स्वरूप प्रस्तुत किया है। प्रेम और कर्तव्य भावना के निर्वाह का जो उदात्त आदर्श इस कहानी में कलात्मक परिणति प्राप्त कर सका है, उसी के कारण इसकी गणना हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियो के अन्तर्गत की जाती है। विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने 'माता का हृदय' तथा 'रक्षा-बन्धन' जैसी कहानियो मे भी मुख्यत: आदर्शपरक दृष्टिकोण ही प्रस्तुत किया है। जयशकर 'प्रसाद' ने 'पुरस्कार' तथा 'ममता' जैसी कहानियो मे ऐतिहासिक कथावस्तु के आधार पर त्याग का ऊँचा आदर्श प्रस्तुत किया है। भगवतीप्रसाद बाजपेयी की कहानियो मे भी जो मानवतावादी दृष्टिकोण मिलता है वह मूलत: आदर्शवाद पर ही आधारित है। प्रेमचन्द की परम्परा के ही कहानीकार 'सुदर्शन' की 'हार की जीत' तथा 'अवलम' शीर्षक कहानियाँ भी आदर्शवादी दृष्टिकोण की प्रधानता लिये हुए है। उषादेवी मित्रा ने नारी जीवन के उदात्त आदर्शों का अनुमोदन करने वाली कहानियाँ लिखी हैं।

यथार्थवादी कहानी

सैद्धान्तिक रूप मे मानव की सहज ज्ञान की शक्तियों की अवगति प्राप्त करने की क्रिया ही यथार्थवाद का मूल तत्व है। आधुनिक पाश्चात्य साहित्य में यथार्थवादी विचार प्रणाली का विकास कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तो का आश्रय लेकर भी हुआ। काडवेल ने मार्क्सवाद के मूलभूत सिद्धान्तो को साहित्य के क्षेत्र मे स्वीकार करते हुए उनका विश्लेषण किया। पाश्चात्य यथार्थवादी आन्दोलन में योग देने वाले विचारक

८. मुंशी प्रेमचन्द, 'साहित्य का उद्देश्य', पृ० ३९।

फ्लावेयर के समय से लेकर वर्तमान काल तक रहे हैं।[१] इसके अतिरिक्त एमाइल ज़ोला तथा मोपासा आदि का भी इसके विकास में योगदान रहा है। वस्तुओं के साहित्य में यथातथ्य वर्णन की प्रवृत्ति से युक्त होने के कारण यथार्थवाद आदर्शवाद का सदैव से विरोधी रहा है। प्रसिद्ध रूसी कथाकार ऐंटन चेखव ने यथार्थवाद की इसी विशेषता पर बल देते हुए लिखा है कि कलात्मक साहित्य को केवल इसीलिए कलात्मक कहा जाता है, क्योंकि उसमें जीवन का ठीक वैसा ही चित्रण होता है जैसा कि वह वास्तव में है। इसकी कसौटी सभी प्रकार के प्रतिबन्धों से रहित और ईमानदारी से पूर्ण सच्चाई ही है। उन्नीसवीं शताब्दी के रूसी कथाकार पम्पालोव्स्की ने अपनी कहानियों में समकालीन जीवन का यथार्थपरक चित्रण किया है। इसी काल की इवान अल्येवसेविच की कहानियाँ भी उनमें निहित यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण ही विशिष्टता रखती हैं।

कहानी में यथार्थ चित्रण के विषय में विविध विद्वानो ने परस्पर विरोधी विचार प्रकट किये है। जिन विचारकों ने कहानी मे यथार्थ चित्रण के समावेश को औचित्य-पूर्ण मानते हुए इस पर विशेष बल दिया है, उनकी यह धारणा है कि उसमे घटना क्रम और पात्रों की योजना ठीक उसी प्रकार से होनी चाहिए जैसी कि वह व्यावहारिक रूप में समाज में विद्यमान होती है। इस कोटि के आलोचकों का यह भी विचार है कि कहानी में प्राचीनतावादी दृष्टिकोण के अनुसार सत्य, शिव, सुन्दर की आदर्शपरक भावनाओं के समावेश का युग अब समाप्त हो गया और अब उसे व्यावहारिक यथार्थ की आधार-भूमि पर प्रतिष्ठित करना चाहिए। चूंकि कहानी में नियोजित घटनाएँ और पात्र वास्तविक समाज और जीवन का चित्रण प्रस्तुत करते हैं, इसलिए उनका आदर्श अथवा कल्पित होना औचित्यपूर्ण नहीं है। मुशी प्रेमचन्द ने सैद्धान्तिक और व्याव-हारिक रूप में साहित्य में यथार्थवाद के समावेश का विरोध किया है। उनकी धारणा है कि 'यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है, मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नज़र आने लगती है।' एक अन्य स्थल पर प्रेमचन्द ने यथार्थवाद विषयक अपनी मान्य-ताओं की अभिव्यक्ति करते हुए यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि 'मैं यथार्थवादी नहीं हूँ।

१. जोसेफ़ टी० शिप्ले, 'डिक्शनरी आफ़ वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स', पृ० ३२५।

कहानी में वस्तु ज्यों की त्यों रखी जाय, तो वह जीवन चरित्र हो जायगी। शिल्पकार की तरह साहित्यकार का यथार्थवादी होना आवश्यक नहीं, वह हो भी नहीं सकता। साहित्य की सृष्टि मानव समुदाय को आगे बढाने, उठाने के वास्ते ही होती है। आदर्श अवश्य हो, पर यथार्थवाद और स्वाभाविकता के प्रतिकूल न हो। उसी तरह यथार्थ-वादी भी आदर्श को न भूले, तो वह श्रेष्ठ है। हमें तो सुन्दर भावों को चित्रित करके मानव हृदय को ऊपर उठाना है। नही तो साहित्य की महत्ता और आवश्यकता क्या रह जायगी।'

प्रेमचन्द ने कहानी में यथार्थ चित्रण के समावेश पर विचार करते हुए बताया है कि वर्तमान कहानी में जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को ही मुख्य ध्येय समझा जाता है। प्रेमचन्द ने इस मान्यता से असहमति व्यक्त की है। उन्होंने लिखा है कि '. . .यह समझना भूल होगी कि कहानी जीवन का यथार्थ चित्र है। यथार्थ जीवन का चित्र *मनुष्य स्वयं हो सकता है, परन्तु कहानी के दुख-सुख से हम जितना* प्रभावित होते है, उतना यथार्थ जीवन से नही होते, जब तक यह निजत्व की परिधि में न आ जाय। अगर हम यथार्थ को हूबहू खीचकर रख दें, तो उसमें कला कहा है। कला केवल यथार्थ की नकल का नाम नही है। कला दीखती तो यथार्थ है, पर यथार्थ होती नही। उसकी खूबी यही है कि वह यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मालूम हो।''[१०] श्री जैनेन्द्र कुमार ने यथार्थ के सम्बन्ध में प्रचलित तथाकथित धारणाओ का विरोध किया और उनका विचार है कि यथार्थ का आशय उसके व्यापक अर्थ में समझना चाहिए। यथार्थ और अयथार्थ की स्थूल धारणा के विषय में विचार करते हुए उन्होंने लिखा है, 'क्या मुझे मानना होगा कि जहाँ पेड़ और पौधे और चिड़ियाँ आदमी की बोली में बोलते हैं, वह कहानी अयथार्थ है ? क्या वह एकदम असम्भव, इसलिए व्यर्थ वस्तु है ? हो सकती है वह असम्भव और अयथार्थ। और किसी के लिए तो वह एकदम व्यर्थ भी हो सकती है। पर डर भी तो अयथार्थ है। पर जो डर के मारे मर तक गया है उसकी मृत्यु ही क्या उसके निकट उस डर से अत्यन्त यथार्थ होने का प्रमाण नहीं है।''[११]

१०. मुंशी प्रेमचन्द, 'मानसरोवर', भाग १, भूमिका, पृ० २-३।
११. श्री जैनेन्द्र कुमार, 'साहित्य का श्रेय और प्रेय', पृ० ३४३।

आधुनिक हिन्दी साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के युग से ही हिन्दी कहानियों मे यथार्थ चित्रण मिलने लगता है। स्वयं भारतेन्दु ने 'एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' जैसी रचनाओं में आधुनिक समाज का बहुपक्षीय चित्रण यथार्थवादी दृष्टिकोण से किया है। इसी युग में राधाचरण गोस्वामी तथा गिरिजादत्त वाजपेयी की कहानियों में भी यह प्रवृत्ति विद्यमान मिलती है। परन्तु हिन्दी कहानी के क्षेत्र मे वैचारिक परिपक्वता के साथ मुशी प्रेमचंद ने सर्वप्रथम यथार्थवादी कहानी का आरम्भ किया। उनकी अनेक कहानियाँ इस प्रवृत्ति से न केवल युक्त हैं, वरन् इसका सशक्त एवं प्रभावशाली रूप सामने रखती है। इस दृष्टि से 'कफ़न' प्रेमचन्द की एक प्रतिनिधि रचना है, जिसमें सामाजिक यथार्थ का उसकी समस्त कटुता और विषाक्तता के साथ विडम्बनात्मक स्वरूप उद्‌घाटित किया गया है। 'पूस की रात', 'सवा सेर गेहूँ', 'नेउर' तथा 'सफ़ेद खून' जैसी कहानियो मे भी प्रेमचन्द की यथार्थवादी विचारधारा की सशक्त रूप मे अभिव्यजना हुई है। जयशंकर 'प्रसाद', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा यशपाल आदि कहानीकारों ने भी इस युग में यथार्थवादी कहानियों की रचना की।

अति यथार्थवादी कहानी—सैद्धान्तिक रूप मे अति यथार्थवाद यथार्थवाद का ही विकसित रूप है। यथार्थवाद ने यदि साहित्य को नयी दृष्टि दी, तो अति यथार्थवाद ने उसकी वैचारिक सम्भावनाओं को प्रशस्त किया। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इसका आरम्भ प्रथम विश्वयुद्ध के बाद यूरोप में एक प्रतिक्रियात्मक रूप मे हुआ। प्रारम्भ में इस वाद का प्रमुख समर्थक चार्ल्स बोदेलेयर रहा। उसने तथा हाब्रीमान, आर्थर रिम्बो एवं मेलार्मे आदि ने उन्नीसवी शताब्दी में ही इस विचारान्दोलन का सैद्धान्तिक निदर्शन किया। बीसवी शताब्दी में इस विचारधारा का पोषण हर्बर्ट रीड जैसे चिन्तकों ने भी किया। सिद्धान्ततः अति यथार्थवादियों के अनुसार कला या साहित्य को पूर्णतः बौद्धिक नहीं होना चाहिए, क्योंकि वैसा होने से मनुष्य की वैयक्तिक अनुभूतियों के अन्तर्विरोध के चित्रण की सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं। जहाँ तक नीति विषयक मान्यताओं का सम्बन्ध है, अति यथार्थवादी विचारधारा के समर्थकों के अनुसार आधुनिक सभ्य समाज में जो नैतिक दृष्टिकोण आदर्श रूप मे मान्य है, वह वस्तुतः मिथ्या प्रदर्शन मात्र है और इसलिए निरर्थक है। अति यथार्थवाद के इसी स्वच्छंदतापरक दृष्टिकोण के कारण ही ह्यू साइक्स डेवीज़ जैसे विचारकों ने अपना यह मन्तव्य प्रकट किया है कि यह कोई नई विचारधारा नही है, वरन् उन्नीसवीं शताब्दी में प्रचलित

स्वच्छंदतावाद का ही बीसवीं शताब्दी में परिवर्तित और विकसित रूप है। वस्तुतः जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, अतियथार्थवादी विचारधारा का ध्येय यथार्थ की सीमाओं का विस्तार करना है। विश्व युद्ध के उपरान्त जब सापेक्षित विज्ञानों के द्वारा घोषित बौद्धिकता के प्रति अनास्था और अविश्वास से पूर्ण विद्रोह बढ़ा था तब इस विद्रोह को आगे बढ़ाने में सापेक्षवादी वैज्ञानिकों, विशेषकर फ्रायड का भी योग था। फ्रायड ने मानव के ऊपर ओढ़ी हुई बौद्धिकता की चादर को दूर करके मानव मानस के अवचेतन में झाँकने का प्रयत्न किया। इस अवचेतन पर किसी का वश नहीं था। इसकी कार्य प्रणाली मानव बुद्धि के परे थी, क्योंकि इस पर तर्कशास्त्र की कोई क्रिया लागू नही होती थी। यह बौद्धिकता से भी परे थी। इस दृष्टि से फ्रायड, हीगेल तथा मार्क्स की त्रयी ही अति यथार्थवाद की प्रसारक कही जा सकती है। फ्रायड ने अचेतन तथा सर्वोच्चवादी मनस् का उद्घाटन किया, हीगेल ने निषेधात्मकता के संश्लेषण द्वारा विनाश का प्रतिपादन किया तथा मार्क्स ने वर्तमान मूल्यों के प्रति घृणाशील मस्तिष्क तथा राजनैतिक क्षेत्र मे एक निश्चित कार्य प्रणाली का सृजन किया।

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में यथार्थवाद तथा प्रगतिवाद आदि के साथ ही अति यथार्थ-वाद का प्रभाव भी मिलता है। भारतेन्दु युगीन कहानी में यथार्थवादी तत्वों का आंशिक रूप से समावेश अवश्य आरम्भ हो गया था, परन्तु प्रेमचन्द युग से ही इस प्रवृत्ति का विकास हुआ। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा यशपाल आदि कहानीकारों की कुछ रचनाएँ इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं। हिन्दी कहानी की पृष्ठभूमि में जो आदर्शपरक परम्पराएँ विद्यमान रही हैं, उनके प्रभाव के कारण हिन्दी में अति यथार्थवादी जैसी कथाप्रवृत्तियों का विशेष रूप से विकास नही दृष्टिगत होता है क्योंकि हिन्दी कहानी की मूल प्रवृत्ति प्रधानतः परम्परा-वादी रही है।

प्रगतिवादी कहानी

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवादी आन्दोलन मुख्यतः विदेशी साहित्य और चिन्तन के प्रभावस्वरूप आरम्भ हुआ तथा इसका विकास यथार्थवादी विचारधारा से संयुक्त होकर हुआ। सैद्धान्तिक रूप से इस विचारधारा का नियमन मार्क्सवादी जीवन दर्शन के आधार पर हुआ है, जो मूलतः समाज में वर्ग संघर्ष के आर्थिक कारणों

का विश्लेषण करता है। स्थूल रूप से मार्क्सवादी जीवनदर्शन या द्वन्द्वात्मक भौतिक-वादी सिद्धान्तों की साहित्यिक परिणति को भी प्रगतिवाद कहा जाता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से एक साहित्यिक वाद के रूप में प्रगतिवाद का हिन्दी में आरम्भ छायावाद के उत्तरकाल से हुआ। राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशचन्द्र गुप्त, डा० राम विलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, मन्मथनाथ गुप्त, डा० रांगेय राघव तथा श्री रामेश्वर शर्मा आदि ने इसके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक स्वरूप का निदर्शन किया है। राहुल सांकृत्यायन ने इस धारणा का विरोध किया है कि प्रगतिवाद कोई संकुचित विचार-दर्शन है। उनके विचार से 'प्रगतिवाद का काम है प्रगति के रुंधे रास्ते को खोलना, उसके पथ को प्रशस्त करना। प्रगतिवाद कलाकार की स्वतंत्रता का नही, परतंत्रता का शत्रु है।...प्रगतिवाद कला की अवहेलना नही कर सकता। वह तो कला और उच्च साहित्य के निर्माण में बाधक रूढियों को हटाकर सुविधा प्रदान करता है। वह रूढिवाद और कूपमंडूकता दोनो का विरोधी है।'[१२] प्रकाशचन्द्र गुप्त के विचार से वही लेखक प्रगतिशील कहा जायगा, जो जर्जर समाज व्यवस्था पर निर्मम प्रहार करता है।'[१३] डा० रामविलास शर्मा ने साहित्यकार को स्वभावतः प्रगतिशील बताया है।[१४] शिवदान सिंह चौहान ने इस आरोप का निराकरण किया है कि प्रगतिवाद में प्रचार-वादिता का आधिक्य है।[१५] मन्मथनाथ गुप्त के विचार से 'स्वाभाविक रूप से वह साहित्य, जो समाज को आगे की ओर जाने में मदद देता है, प्रगतिशील है।'[१६] डा० रांगेय राघव के विचार से प्रगतिशील साहित्य का उद्देश्य 'जन कल्याण के और मनुष्य के जीवन का सर्वांगीण चित्रण करते हुए श्रेष्ठ कला को जन्म देना है। वह व्यंग्य और प्रहारों में समाप्त नही हो जाता, वह स्वयं नया निर्माण है।'[१७]

प्रथम विश्व युद्ध के उत्तर काल से लेकर वर्तमान युग तक प्रगतिवादी विचारों से प्रभावित कहानियाँ हिन्दी में बहुत बड़े अनुपात मे लिखी गयी हैं। सन् १९३६

१२. महापंडित राहुल सांकृत्यायन, 'जीने के लिये', पृ० ४२।
१३. प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त, 'आधुनिक हिन्दी साहित्य', पृ० ३६।
१४. डा० रामविलास शर्मा, 'प्रगतिशील साहित्य की समीक्षाएं', पृ० ८०।
१५. श्री शिवदान सिंह चौहान, 'साहित्य की परख', पृ० २४।
१६. श्री मन्मथनाथ गुप्त, 'प्रगतिवाद की रूपरेखा', पृ० ६।
१७. डा० रांगेय राघव, 'प्रगतिशील साहित्य के मानदंड', पृ० ७।

से ही, जब अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन हुआ था, यह विचारधारा साहित्य के क्षेत्र में प्रसार पा रही है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि इस काल में या तो कहानी के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की निहिति बढ़ रही थी और या प्रगतिशीलता के तत्व बहुलता से समाविष्ट हो रहे थे। परन्तु इस कथन का यह आशय नही समझना चाहिए कि इस काल में लिख रहे सभी तथा-कथित प्रगतिशील लेखकों के पास कोई स्पष्ट निर्धारित जीवन दर्शन था। वास्तव में यह वह युग था जब साहित्य के किसी युग विशेष में चल पड़ने वाले फैशन की भांति ही रूढ़ियुक्त कहानीकारों ने प्रगतिवाद को अंगीकृत कर लिया था। इस काल की लिखी हुई अधिकांश प्रगतिवादी रचनाएँ कतिपय निश्चित सिद्धान्तों और नारों के सीमित परिवेश में चक्रबद्ध रूप में उपलब्ध होती है, जिनमें स्थूल रूप से व्यक्तिवाद और आत्मपरकता का विरोध और समाजवाद और समाजपरकता का समर्थन मिलता है।

मुशी प्रेमचंद ने प्रगतिशीलता अथवा प्रगतिवाद को कोई विशिष्ट अथवा पृथक् विचारान्दोलन मानने का विरोध किया है। उनकी धारणा है कि 'साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। अगर वह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार ही न होता। उसे अन्दर भी एक कमी महसूस होती है और बाहर भी। इस कमी को पूरा करने के लिए उसकी आत्मा बेचैन रहती है। अपनी कल्पना में वह व्यक्ति और समाज को सुख और स्वच्छंदता की जिस अवस्था में देखना चाहता है, वह उसे दिखाई नही देती।' प्रगतिवादी कहानी का आविर्भाव पुष्ट वैचारिक पृष्ठभूमि में प्रेमचन्द के ही समय से हुआ। वर्ग भेद, अछूतोद्धार, शोषण का निर्मूलन तथा आर्थिक वैषम्य के अन्त का समर्थन करते हुए प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में प्रगतिवाद को प्रश्रय दिया। प्रेमचन्द के अतिरिक्त जयशंकर 'प्रसाद', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा यशपाल आदि लेखकों ने हिन्दी में प्रगतिवादी कहानी की परम्परा के विकास में योग दिया है।

राजनीतिक कहानी

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में राजनीतिक तत्वों का समावेश प्रेमचन्द युग से ही मिलता है। पूर्व प्रेमचन्द कालीन कहानी में यत्र-तत्र कोई राजनीति विषयक विचार तत्व समाविष्ट मिल सकता है, परन्तु स्पष्ट राजनीतिक विचारधारा का समावेश

उसमें नहीं उपलब्ध होता। वास्तव में भारतेन्दु युग के पूर्व भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम महान् आन्दोलन विफल हो चुका था। सरकारी दमन चक्र के फलस्वरूप कुछ समय तक इस प्रकार की विचारधारा पनप न सकी और इस युग के अधिकांश लेखकों ने प्रायः सामाजिक चेतना के जागरण के आवाहन को ही स्वर दिया तथा सामाजिक रूढ़ियों और कुरीतियों के निर्मूलन की दिशा मे भी प्रयास किया। प्रेमचन्द-युगीन कहानी में समाज सुधार तथा कुरीति निवारण की यह भावना तो विद्यमान मिलती ही है, साथ ही राजनीतिक विचार तत्वों का भी स्पष्ट रूप से समावेश मिलता है। इस युग की हिन्दी कहानी में समाविष्ट राजनीतिक तत्वों का आधार या तो भारतीय स्वतंत्रता के लिए होने वाले दीर्घकालिक संग्राम के विविध पक्ष थे, या वे राजनीतिक मतवाद, जिनका प्रचार भारत में पाश्चात्य चिन्तन के प्रभाव के साथ बढा था। स्वतंत्रता के आन्दोलन के सन्दर्भ में ही महात्मा गांधी आदि महान् पुरुषों की विचारधारा का समावेश भी हिन्दी कहानी मे हुआ। गांधीजी की अहिंसावादी विचारधारा, सत्याग्रह आन्दोलन तथा स्वदेशी आन्दोलन आदि से सम्बन्धित तत्वों का कहानीकारों ने निरूपण किया। मार्क्सवादी विचारधारा द्वारा प्रभावित सशस्त्र क्रान्ति के समर्थन में भी अनेक कहानीकारों ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। वास्तव में हिन्दी कहानी के क्षेत्र मे राजनीतिक तत्वों का विकास भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता की मांग के साथ प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त हुआ। अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत भारत को जो एक दीर्घकाल तक राजनीतिक परतंत्रता में रहना पड़ा और उसके पश्चात् भारतीय स्वतंत्रता के लिए जो अनेक प्रकार के आन्दोलन किये गये, उन सबका विस्तृत चित्रण प्रेमचन्द तथा उनकी परवर्ती कहानी में मिलता है। भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए किये गये क्रान्तिकारी आन्दोलनों का इतिहास देखने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि भारत मे क्रान्तिकारी राजनीतिक दलों का संगठन इतने व्यापक रूप में किया गया और उसके सूत्र इतने विकसित थे कि वे केवल देशव्यापी न होकर विश्वव्यापी थे। भारत के बाहर भी भिन्न-भिन्न देशों के गुप्त और प्रकट राजनीतिक और क्रान्तिकारी दलों से उनका सम्बन्ध था और इनकी नीतियाँ प्रायः गम्भीर वाद विवाद के पश्चात् निर्धारित की जाती थी। हिन्दी कथा साहित्य में निरूपित राजनीतिक समस्याओं और विचारधाराओं का जो स्वरूप मिलता है, वह उपर्युक्त पृष्ठभूमि में भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए किये गये आन्दोलनों से सम्बन्धित है। ये आन्दोलन सशस्त्र क्रान्ति के आन्दोलन भी थे और अहिंसावादी

आन्दोलन भी। इसलिए कथा साहित्य में भी इनके प्राय: ये ही रूप मिलते हैं। हिन्दी की राजनीतिक कहानी मे देश की स्वतंत्रता प्राप्ति की समस्या को राष्ट्र प्रेम की समस्या से सम्बद्ध करके उठाया गया। विभिन्न विचारधाराओं का संघर्ष एवं उसके परिणाम समय-समय पर सामने आये और उनका चित्रण शासकीय शक्तियों की शोषण वृत्ति के अभिशाप के साथ कहानी मे उपस्थित किया गया। हिन्दी मे राजनीतिक कहानी की प्रवृत्ति या तो साम्यवादी सिद्धान्तों का आधार ग्रहण कर पनपी है और या गाधीवादी साम्यवादी सिद्धान्तो का आरोपण यथार्थवादी तथा प्रगतिवादी कहानी मे भी मिलता है। गाधीवादी कहानी का परिचय आगे पृथक् से प्रस्तुत किया जा रहा है। इन विविध विचारधाराओ के पोषक हिन्दी कहानीकारो मे प्रेमचन्द, राहुल साकृत्यायन, यशपाल, भगवती प्रसाद वाजपेयी, रागेय राघव, नागार्जुन तथा भैरव-प्रसाद गुप्त आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

राजनीतिक कहानी की परम्परा मे एक बहुत बडी सख्या ऐसी रचनाओ की है, जिनमे साम्यवादी, गाधीवादी तथा अन्य राजनीतिक विचारधाराओ का पोषण हुआ है। ऐसी रचनाएँ कभी कभी तो मार्क्सवादी जीवन दर्शन का आधार लेकर गम्भीर रूप मे प्रस्तुत की जाती है और कभी कभी उनमें केवल विविध पात्रो के लम्बे वक्तव्य शुष्क तर्क-वितर्क के आधार पर मिलते है। जहाँ तक मार्क्सवादी विचार-धारा का सम्बन्ध है उसके मूल मे वस्तुवादी दृष्टिकोण है। मार्क्सवाद के जीवन दर्शन मे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का विशिष्ट स्थान है, क्योकि मार्क्स के अनुसार मनुष्य की निकटवर्ती भौतिक परिस्थितियाँ और वातावरण ही उसके व्यक्तित्व के विकास अथवा ह्रास मे व्यापक रूप से सहायक या बाधक सिद्ध होते हैं। प्राय. ऐसा होता है कि मनुष्य उन्ही के अनुसार अपने स्वरूप का निर्धारण कर पाता है, यद्यपि वह पूर्ण और अनिवार्य रूप से परिस्थितियो का दास नही होता और उन्हे परिवर्तित भी कर सकता है। मार्क्सवादी विचारधारा मानव समाज को सामान्य रूप से शोषक और शोषित वर्गों के अन्तर्गत ही विभाजित कर देती है। यदि कोई मनुष्य किसी प्रकार के शोषित वर्ग के अन्तर्गत नही आता, तो वह किसी न किसी रूप मे अनिवार्यत: शोषक वर्ग मे अवश्य आता है। इस प्रकार से समाज का यह वर्ग विभाजन मूलत: आर्थिक कारणो पर आधारित होता है और समाज की आर्थिक विषमता की ओर ही सकेत करता है। मनुष्य के भौतिक जीवन में संपन्नता या विपन्नता का एक मात्र आधार आर्थिक जीवन होता है। उसके समस्त सांस्कृतिक और सामाजिक कार्य व्यापारों का

स्वरूप निर्धारण अर्थ व्यवस्था पर ही निर्भर करता है। इसीलिए मार्क्सवाद आर्थिक व्यवस्था का सम्बन्ध कतिपय सीमित और संकुचित क्षेत्रों से न मानकर समस्त मानव जीवन से उसके संपूर्ण विस्तार के साथ मानता है। सामाजिक, आर्थिक दुर्व्यवस्था के निर्मूलन और संयोजित समाज की स्थापना के लिए मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार समाजवादी व्यवस्था ही उपादेय हो सकती है और समाजवादी यथार्थ ही यथार्थ का वास्तविक स्वरूप है। इससे यह स्पष्ट है कि मार्क्सवादी जीवन दर्शन में साहित्य का जो स्वरूप मान्य है उसकी उपयोगिता का मूल आधार समाजवादिता ही है। मनुष्य एकान्तिक या वैयक्तिक रूप से उसमें कहीं पर भी अधिक महत्व नहीं रखता। उसका व्यक्तित्व अपना न होकर उस समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें वह रहता है। उसकी भावनाएँ और मनोवृत्तियाँ अपनी न होकर उस वर्ग विशेष की होती हैं, जिनका वह प्रतिनिधित्व करता है। समाजवादी यथार्थ की विवृति की दृष्टि से किसी व्यक्ति का चरित्र उसकी वैयक्तिकता का नहीं, वरन् उस विशिष्ट वर्ग या समाज के स्वभाव और स्वरूप का परिचायक होता है, जिसके साथ उसके आर्थिक हित सम्बद्ध होते है। यदि कोई विशिष्ट चरित्र अपने वर्ग अथवा समाज का वास्तविक प्रतिनिधित्व करने मे असमर्थ है और उसकी वैयक्तिकता प्रधान हो जाती है, तो वह मार्क्सवादी दृष्टिकोण से वांछनीय चरित्र नहीं होता। राजनीतिक प्रवृत्ति प्रधान अधिकांश कहानियों में उपर्युक्त कारण से ही पात्रों का चरित्र चित्रण कलात्मक ढंग से नहीं हो पाता और न ही उनके व्यक्तित्व का समुचित विकास सम्भव होता है, क्योंकि उनमें परिस्थिति और वातावरण की विशिष्टता के अनुसार रूप परिवर्तन होता रहता है और अन्ततः उनकी समस्त प्रतिक्रियाएँ और कार्य व्यापार परिस्थिति या वातावरण द्वारा संचालित और निर्देशित होते हैं। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि उनका अपना व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है और वे मानवीय संवेदना के कोमल पक्षो से रहित हो जाते हैं।

गांधीवादी कहानी—बीसवी शताब्दी मे भारतीय साहित्य, धर्म, समाज और राजनीति में जिन प्रमुख विचारधाराओं का प्रचार रहा है, उनमे से गांधीवाद भी एक है। गांधीवाद के व्याख्याताओं की यह धारणा रही है कि यह एक समन्वयवादी विचारधारा है, जिसमें विविध विचारदर्शनों की कल्याणमयी भावनाएँ संयोजित हैं। गाधीवाद के मूल सिद्धान्त प्राचीन एवं परम्परागत विचारधाराओं से गृहीत हैं। भारतीय विचारदर्शनों में शताब्दियों से जो उदात्तपरक मूल्य प्रशस्तिमान् रहे हैं,

गांधीवाद उन्हीं का एक समन्वित रूप है। सत्य, सेवा, त्याग, प्रेम, संयम तथा अहिंसा की जिन भावनाओं को गांधीवाद का मूल तात्त्विक आधार माना जाता है, वे विविध भारतीय विचारदर्शनों में प्राचीन काल से ही मान्य होती आ रही हैं। इतना अवश्य है कि महात्मा गांधी ने इन सिद्धान्तों की जो विश्वसनीय और प्रभावपूर्ण व्यावहारिक परिणति उपस्थित की, वह असाधारण और सर्वथा नवीन है।

महात्मा गांधी की विचारधारा में व्यापकता और समन्वय है। उन्होंने धर्म, नीति, सत्य, सदाचार, सेवा, त्याग, संयम तथा अनुशासन आदि से सम्बन्धित जिन नियमों के पालन पर बल दिया, वे सभी वैयक्तिक हैं, परन्तु गांधी दर्शन में इन सबका समाजीकरण कर दिया गया है। स्वदेशी आन्दोलन को गांधी दर्शन में जो विशेष महत्ता दी गयी है, उसका कारण आर्थिक समरूपता की नीति है। गांधीजी की स्वदेशी नीति उनकी राष्ट्र प्रेम की भावना का अंग है। उनका विचार था कि स्वदेशी नीति का आर्थिक व्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा। औद्योगिक क्रान्ति के इस युग में स्वदेशी आन्दोलन शोषण रोकने का एक बहुत बड़ा साधन होगा। खादी के प्रचार के साथ साथ गांधीजी ने आर्थिक व्यवस्था की समानता के लिए अन्य ग्रामोद्योगों के लघु स्तरीय विकास पर भी बल दिया। आर्थिक शोषण और हीनता से ग्रस्त मानव समाज को उन्होने सभ्यता के लिए अभिशाप और कलंक बताते हुए निम्न वर्गों के उत्थान को भी अनिवार्य प्राथमिक कर्तव्य के रूप में मान्य किया।

अहिंसा गांधीदर्शन का आधारभूत तत्व है। इसका प्रयोग भी महात्मा गांधी ने व्यापक अर्थों में किया था। उनके विचार से अहिंसा मूलतः एक प्रेम भावना है। यह प्रेम भावना मानव मात्र के लिए ही नही, वरन् जीव मात्र के लिए होनी चाहिए। उनकी धारणा है कि किसी भी प्रकार के अन्याय के विरोध के लिए हिंसा के मार्ग का अवलंबन सर्वथा अनुचित है, क्योंकि अहिंसा विरोध का एक सशक्त रूप है। अहिंसा की व्याख्या एक वीरधर्म के रूप में करते हुए गांधीजी ने बताया है कि यह एक सामाजिक भाव है और इसलिए समग्र समाज अहिंसा का आचरण कर सकता है। अहिंसा को जो लोग कायरता बताते हैं, वे इसका दूषित और संकुचित अर्थ भ्रमवश समझते हैं। वस्तुतः गांधीजी ने अहिंसा का एक शाश्वत दर्शन के रूप में प्रयोग किया है, जिसके अनुसार अहिंसा कोई वैयक्तिक भावना न होकर विश्व कल्याण की नियामक हो जाती है।

गांधीवादी जीवन दर्शन के मूल तत्वों में सत्य भी एक है। महात्मा गांधी ने सत्य को उसके व्यापक अर्थों में प्रयुक्त किया। इसीलिए उन्होंने सत्य को ईश्वर का

पर्याय मानते हुए उस पर सर्वाधिक गौरव दिया। उनका मत था कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सत्य का वरण मनुष्य को करना चाहिए, क्योंकि सत्य ही सदैव जयी होता है, यह तथ्य परम्परा से स्वयं सिद्ध है। सत्य की प्राप्ति अथवा सत्य के बोध के लिए उनके विचार से एक अनवरत साधना और संयम की आवश्यकता होती है। गांधी दर्शन के अन्तर्गत सत्याग्रह का भी विशेष रूप से महत्व है। सत्याग्रह का सम्बन्ध गांधीवाद के कर्म पक्ष से है। राजनीतिक विरोध के प्रतीक के रूप में सत्याग्रह का प्रचार हुआ। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि अहिंसा के मार्ग का अवलंबन करते हुए सविनय विरोध की भावना ही सत्याग्रह है। स्वदेशी आन्दोलन की रूपरेखा नियोजित करते हुए गांधीजी ने चरखे के प्रयोग और खादी के प्रचार पर बल दिया। इसकी पृष्ठभूमि में आर्थिक क्षेत्रीय क्रान्ति की भावना भी विद्यमान थी। महात्मा गांधी ने खादी को सामाजिक स्वदेशी व्रत की पहली सीढ़ी बताया। स्वदेशी व्रत उन्होंने सबसे बड़ा स्वधर्म कहा। उनका कथन था कि स्वधर्म के पालन से कभी परधर्म अथवा परधर्मी का विरोध अथवा हानि नही हो सकती।

गाधीवाद की व्याख्या अनेक विचारको ने विभिन्न दृष्टियों से की है। डा० बी० पट्टाभिसीतारमैया ने गांधीवादी मूल्यो का निरूपण करते हुए बताया है कि 'गाधीवाद वस्तुतः भारत की उस आचारपरक आध्यात्मिक जीवन दृष्टि तथा सांस्कृतिक परम्परा का आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्द्धित एवं संशोधित संस्करण है, जो शताब्दियों से सत्य, अहिसा, सेवा, प्रेम, त्याग, सहिष्णुता, अस्तेय, अपरिग्रह, आत्मसयम आदि नैतिक मूल्यों को भौतिक जीवन-मानों की अपेक्षा अधिक काम्य और वरेण्य मानती आयी है।'[१८] हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार जैनेन्द्र कुमार के विचार से 'गांधीजी की यथार्थता राजनीति में नही, धर्म में देखनी होगी। राजनीति कर्मगत है, धर्म भावरूप।'[१९] इस प्रकार जैनेन्द्रजी ने गांधीवाद के धार्मिक पक्ष पर उसके राजनीतिक पक्ष की अपेक्षा अधिक गौरव दिया है। उन्होंने गांधीवाद को एक वाद भी नही माना है और गांधीवाद शब्द पर ही आधारभूत शंका की है। उनके ही शब्दो मे 'गांधीवाद पर शुरू में ही मुझे कहना होगा कि मेरे लेखे यह शब्द मिथ्या है। जहां वाद है, वहा विवाद भी है। वाद का काम है प्रतिवाद को विवाद द्वारा खंडित करना और इस तरह अपने को

१८. डा० बी० पट्टाभिसीतारमैया, 'गांधी और गांधीवाद', प्रथम भाग, पृ० २८।
१९. श्री जैनेन्द्र कुमार, 'सर्वोदय', पृ० ६७।

चलाना। गांधी के जीवन में विवाद एकदम नहीं है। इसलिए गांधी को वाद द्वारा ग्रहण करना सफल नहीं होगा।'[२०]

आधुनिक हिन्दी कहानी के क्षेत्र में अनेक कहानीकार ऐसे हुए हैं, जिन्होंने गांधीवादी जीवन सिद्धान्तों का व्यावहारिक आरोपण अपनी कहानियों मे किया है। यहां पर इस तथ्य का उल्लेख करना असंगत न होगा कि उत्तर प्रेमचंदकाल की हिन्दी कहानी में गांधीवादी विचारधारा का समावेश विशेष रूप से हुआ है और अन्य विचार दर्शनों की तुलन में भी इसे प्रमुखता मिली है, परन्तु इसक, समावेश कहानी साहित्य में आंशिक रूप में ही मिलता है। कहने का आशय यह है कि आधुनिक कहानीकारों ने अपने किसी पात्र के माध्यम से इस दर्शन का प्रतिनिधित्व भले ही किया हो, परन्तु केवल इसी का निरूपण अथवा प्रतिष्ठा करने के लिए इन कहानीकारों ने रचना नही की। 'सुदर्शन', भगवती प्रसाद वाजपेयी, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह आदि कहानीकारो ने अपनी कहानियों मे गांधीवादी विचारदर्शन के नियामक सूत्रों की सांकेतिक अभिव्यक्ति की। गाधीवादी सिद्धान्तो मे साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, मद्य निषेध, खादी प्रचार, नारी जीवन का उत्थान तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता का आन्दोलन आदि विषय हिन्दी कहानी में समाविष्ट हुए हैं। प्रेमचन्द की लिखी हुई 'सुजान भगत', 'नमक का दरोगा', 'ईदगाह', 'पंच परमेश्वर' तथा 'मंत्र' आदि कहानियां गांधीवादी जीवन दर्शन का व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत करती हैं। 'सुदर्शन' की कहानी 'हार की जीत' गांधीवाद के हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त की प्रतिनिधि उदाहरण है। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की कहानी 'गांधी टोपी' भी गांधीजी के सिद्धान्तों को कर्म रूप में ग्रहण करने की प्रेरणा देती है, क्योंकि लेखक के विचार से 'गांधी टोपी निरी आराधना नही, साधना भी है। गांधी टोपी पहनने वाले के द्वारा सिर झुकाकर ही सिर पर रखी जाती है, आतंक फैलाकर नही।'

दार्शनिक कहानी

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में एक बड़ी संख्या ऐसी रचनाओ की है जिनमें दार्शनिक तत्वों के बहुलता से समावेश के कारण स्वरूपगत वैशिष्ट्य मिलता है। हिंदी कहानी का स्वरूपगत विकास होने के साथ ही साथ उसके गम्भीर रूप भी सामने आये और

२०. श्री जैनेन्द्र कुमार, 'मंथन', पृ० १०१।

दार्शनिक कहानी का उद्‌भव हुआ। जैनेन्द्र कुमार ने दर्शन की कथात्मक परिणति के विषय में लिखा भी है कि दार्शनिक तत्व के रूप में सत्य अत्यन्त गरिष्ठ है, उस रूप में वह सत्य अपरोक्षित भी है। वह अधिकांश के लिए अग्राह्य है, उसको दृष्टान्तगत, चित्रगत और कथा के रूप में परिवर्तित करो, तभी वह रुचिकर और कार्यकारी बनता है। जैनेन्द्र का विचार है कि जब तक दार्शनिक सिद्धान्तों का सरल और सम्भव स्वरूप सामने नहीं आयगा, तब तक वह व्यवहार्य नही होगा। उन्होंने लिखा है, 'शास्त्र ने तो कह दिया सत्यं वद, लेकिन असली जिन्दगी में सत्यं वद सीधी सादी चीज नहीं रह जाती। सत्यं वद पर जब चलना आरम्भ करते हैं तो पेंच पर पेंच पैदा होते हैं। उस सीधे सादे कथन में शंकाएं निकलती जाती हैं, जब आदमी कहता है, शास्त्र का सत्यं वद हमको मत दो, दुनिया के सामने रखकर दृष्टान्त मे हमें दिखलाओ, सत्यं वद क्या है, कैसे यह टिकता है।'[२१]

आधुनिक युगीन विभिन्न दार्शनिक चिन्तन धाराओं के प्रभावस्वरूप हिंदी में दार्शनिक कहानी के अनेक रूप उपलब्ध होते है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी कहानी पर यदि एक दृष्टि डाली जाय, तो इस तथ्य की अवगति होगी कि प्रेमचन्द युग से विभिन्न कहानीकारों ने दार्शनिक तत्वों का समावेश अपनी रचनाओं में किया। स्वयं मुशी प्रेमचन्द ने अपनी कृतियो में गांधी दर्शन तथा मार्क्सवाद आदि का व्यावहारिक आरोपण प्रस्तुत किया। 'मन्त्र', 'कफ़न', 'नमक का दरोगा' तथा 'मुक्ति मार्ग' आदि कहानियो में उनका इसी प्रकार का दृष्टिकोण मिलता है। जयशंकर 'प्रसाद' की दार्शनिक कोटि की कहानियों मे 'पत्थर की पुकार', 'कला', 'वैरागी' तथा 'प्रलय' आदि का उल्लेख किया जा सकता है। सियारामशरण गुप्त की लिखी हुई दार्शनिक तत्वप्रधान कहानियों में 'मानुषी', 'त्याग' तथा 'कोटर और कुटीर' आदि प्रमुख है। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की दार्शनिक कहानियों में 'चिड़ियाघर', 'पुरुष का भाग्य' तथा 'कोठरी की बात' आदि के नाम उल्लेखनीय है। 'मकड़ी का जाला' तथा 'चित्रकार और शिल्पी' आदि कहानियों में रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' ने दार्शनिक तत्वों का समावेश किया है। उषादेवी मित्रा की लिखी हुई दार्शनिक कहानियों में 'प्रथम छाया', 'कलाकार' और 'बुलबुल' आदि प्रमुख है। 'खेल', 'दो चिड़िया' तथा 'देवी देवता'

२१. श्री जैनेन्द्र कुमार, 'एक रात', भूमिका, पृ० १-२।

आदि कहानियों में जैनेन्द्र ने आध्यात्मिक दर्शन से सम्बन्धित तत्त्वों का निरूपण किया है।

प्रतीकवादी कहानी

सैद्धान्तिक रूप से प्रतीकवादी विचारान्दोलन के अन्तर्गत प्रतीक का प्रयोग चिह्न अथवा प्रतिरूप आदि के अर्थ में किया जाता है। स्थूल व्याख्या के अनुसार एक सत्य के स्तर पर उससे साम्य रखने वाले दूसरे सत्य का उल्लेख ही प्रतीक है। व्यापक अर्थ के अनुसार तो भाषा और शब्द को भी प्रतीक ही कहा जायगा, क्योंकि प्रत्येक शब्द अपने आप में किसी न किसी भावनात्मक या दृश्यात्मक सत्य की निहिति रखता है। प्रतीकवाद एक साहित्यिक प्रक्रिया के रूप में भाषा की शिथिलता अथवा लचीलेपन पर आधारित है। यह शिथिलता अनेक स्तरों से अभिव्यक्त होती है। इन्हें आत्मवाद अथवा अध्यात्मवाद, सादृश्य तथा प्रत्यक्ष बिम्ब कहा जा सकता है। स्थूल रूप से प्रतीकों के जितने भी रूप होते हैं, उनका आधार तथा सम्भावनाएं उपर्युक्त स्तरों पर ही होती हैं। प्रतीकवाद साहित्य के क्षेत्र में शैली की नवीनता के कारण इसलिए भी मान्य है, क्योंकि इसका विधान विविध प्रकार से विभिन्न क्षेत्रों में संभावित है। किसी भी प्रत्यक्ष, जड़ अथवा चेतन पदार्थ को देखने पर हमारे हृदय मे कोई न कोई भावना जन्म लेती है। यह भावना स्वाभाविक रूप से हमारा ध्यान किसी ऐसी वस्तु की ओर ले जाती है, जो गुण में उसी वस्तु के समान होती है, परन्तु वह एक प्रकार से भावनात्मक रूप से ही अपना अस्तित्व रखती है। इस प्रकार से प्रतीक प्रचलित रूप में किसी भी अव्यक्त की अभिव्यक्ति होता है। उदाहरण के लिए उषा को हम किसी भी प्रकार के उत्साह, आशा, नवीनता तथा नवजीवन का संकेत मानते हैं और इसी कारण से उसको प्रतीक के रूप में इन सबके लिए प्रयुक्त करते हैं। इसी प्रकार से किसी ऊंचे पर्वत को देखकर हमें उसकी दृढता, स्थिरता, गम्भीरता आदि का बोध होता है तथा इनके लिए हम उसका प्रयोग प्रतीक के रूप में करते हैं।

सामान्यतः प्रतीकों के हम दो भेद कर सकते हैं, जो साहित्यिक तथा वैज्ञानिक प्रतीक हैं। साहित्य में जिन प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है, उनमें भावनात्मक तथा व्यंजनात्मक साम्य का तथा इनके साथ ही प्रतिनिधित्व का भी ध्यान रखा जाता है, परन्तु विज्ञान में एक प्रतीक किसी विशिष्ट पदार्थ अथवा बिम्ब या विचार के किसी

प्रतीक के द्वारा ही प्रकट किया जाता है।[२१] इस प्रकार से बाह्य अथवा स्थूल विशेषताओं में साम्य रहते हुए भी इनमें विषय के अनुसार पर्याप्त अन्तर हो जाता है। वस्तुतः प्रतीकों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। अनेक प्रतीक ऐतिहासिक, धार्मिक तथा अन्य क्षेत्रों में मान्य हैं, जिनकी परिधि जीवन के अन्य पक्षों को भी आवरित कर लेती है। इसी कारण कुछ प्रतीक स्थायी रूप से मान्य हो जाते हैं। उदाहरण के लिए संसार के प्रत्येक राष्ट्र का ध्वज उसकी संपूर्ण एकता का प्रतीक होता है। इसी प्रकार से प्रत्येक देश में धार्मिक तथा ऐतिहासिक चिह्न तथा चरित्र भी ऐसे होते हैं, जो वहां की पवित्रता और देवत्व के भी प्रतीक होते हैं। इसलिए प्रतीकवाद को कोई असामान्य विचार-धारा नहीं मानना चाहिए, क्योंकि प्रतीकों का प्रयोग साहित्य अथवा कला के साथ ही साथ सामान्य और व्यावहारिक जीवन में भी बहुलता के साथ अत्यन्त स्वाभाविक रूप में किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि एक प्रकार से हमारे सारे कार्यकलाप ही प्रतीकात्मक होते हैं। भाव प्रेषण की अनुभूति के व्यक्तिकरण के जितने भी माध्यम होते है, उन सबको इस दृष्टिकोण में प्रतीकात्मक कहा जा सकता है।

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रथम विकास काल के अन्तर्गत राधाचरण गोस्वामी लिखित 'यमपुर की यात्रा' तथा केशवप्रसाद सिंह लिखित 'आपत्तियों का पहाड़' जैसी रचनाएं प्रतीकवाद की सांकेतिक अभिव्यंजना करती हैं। प्रेमचंद युगीन कहानीकारों की रचनाओं में इस विचारधारा का स्पष्ट रूप उपलब्ध होता है। जयशंकर प्रसाद लिखित 'करुणा की विजय' कहानी भी प्रतीकात्मक है। जैनेन्द्रकुमार की लिखी हुई अनेक कहानियां इसी कोटि में हैं। 'वह बेचारा', 'दो चिड़ियां', 'तत्सत्' तथा 'चिड़िया की बच्ची' आदि कहानियों में जैनेन्द्र ने प्रतीकात्मक रूप से विविध जीवन सत्यों को निरूपित किया है। यशपाल लिखित 'परलोक' शीर्षक कहानी को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। राय कृष्णदास की लिखी हुई 'वसन्त का स्वप्न' शीर्षक कहानी में भी ज्ञान और माया का निरूपण प्रतीकात्मक रूप में किया गया है। उनकी लिखी हुई एक प्रतीकात्मक कहानी 'कला और कृत्रिमता' भी है। 'सुदर्शन' की कहानियों में 'एथेन्स का सत्यार्थी' तथा 'कमल की बेटी' इसी कोटि की है। 'सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की प्रतिनिधि प्रतीकात्मक कहानियों में 'चिड़ियाघर', 'पुरुष का भाग्य', 'कोठरी

२२. इस विषय में विशेष अध्ययन के लिए द्रष्टव्य, आर० एम० ईटन कृत 'सिम्बालिज्म ऐंड ट्रुथ', १९२५।

की बात', 'पठार का धीरज' तथा 'साप' आदि का उल्लेख किया जा सकता है। कमला कान्त वर्मा लिखित 'पगडंडी', 'तकली' तथा 'खंडहर' आदि रचनाओं को भी प्रतीक-वादी कहानी के अन्तर्गत उल्लिखित किया जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक कहानी

आधुनिक हिन्दी कहानी पर मनोविज्ञान का व्यापक प्रभाव मिलता है। आधुनिक युग में यूरोपीय भाषाओं के अन्तर्गत उन्नीसवीं तथा बीसवी शताब्दी में कतिपय मनो-विश्लेषण शास्त्रियों, विशेष रूप से फ्रायड, एडलर, युंग, वाटसन तथा गेस्टाल्ट आदि ने अपने सिद्धान्तों का जो प्रतिपादन किया तथा उनके आधार पर मानव मन का जो क्रान्तिकारी तथा सर्वथा नूतन विश्लेषण किया उसका साहित्य पर व्यापक क्षेत्रीय प्रभाव पडा। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी कहानी के क्षेत्र में बीसवी शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश से ही मनोवैज्ञानिक तत्वों का समावेश मिलता है। ये तत्व मुख्यतः विदेशी मनोविश्लेषण शास्त्रियो के उस सैद्धान्तिक निदर्शन के है जिनका सम्बन्ध मनुष्य की काम ग्रन्थियो और उसके अचेतन से है। सामान्य रूप से मनुष्य की काम भावना का सम्बन्ध उसके जीवन की अवस्था विशेष तथा पात्र की विशिष्टता से समझा जाता रहा है। मनोविज्ञान शास्त्रियो ने यह सिद्ध कर दिया है कि इस प्रकार की धारणाएं सर्वथा भ्रमपूर्ण हैं। मनुष्य की काम वृत्तियों के विचित्र रूपों में अनुभव और विवेचन के उपरान्त इन मनोवैज्ञानिकों ने यह निर्देश किया है कि काम व्यापार का अर्थ लोग बहुत संकुचित रूप मे ही प्रायः समझते हैं, जबकि उसका सम्बन्ध विस्तृत क्षेत्रीय भाव-नाओं से है और वे मनुष्य के जीवन को संपूर्णता और विविधता से प्रभावित करती हैं। मनुष्य की काममूलक प्रवृत्तियों और विकृतियों के वैज्ञानिक अध्ययन से मानस शास्त्रियों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि मानव की यह वृत्ति पात्रगतता के आधार पर ही विविध रूप ग्रहण करती है और उसी के अनुसार सामान्य या असामान्य चेष्टाओं के रूप में उसकी परिणति सामने आती है। मनोविज्ञान वेत्ताओं की यह मान्यता अत्यन्त व्यापक रूप से मान्य हुई कि मानव के समस्त कार्य कलाप में उसकी काम भावना ही मूल प्रेरणा के रूप मे विद्यमान रहती है। इसीलिए मनुष्य के उपचेतन में ये भावनाएं दमित रूप में स्थिर रहती हैं क्योंकि विविध नैतिक तथा धार्मिक अवरोध इनकी पूर्ति में बाधक होते है। व्यावहारिक रूप से पूर्ण न हो पाने के कारण ये वासनाएं कुंठाग्रस्त होती चलती हैं तथा इनको अतृप्ति ही उसकी विविध अनुभूतियों तथा प्रतिक्रियाओं

की जन्मदात्री होती है। इस कारण से काममय भावनाओं का अभिव्यंजन साहित्य मे सर्वथा स्वाभाविक होता है और इनके सम्यक् मूल्यांकन के लिए मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से उनका परीक्षण आवश्यक हो जाता है। इसके अतिरिक्त रचनात्मक साहित्य के क्षेत्र मे जितनी भी विधाएं है और जितने भी सम्प्रेषणात्मक माध्यम हैं, उन सबमे भी आधुनिक युग में मनोविश्लेषणात्मकता का समावेश बहुलतापूर्वक हुआ है। क्रियात्मक साहित्यकार भी बहुधा इन्ही भावनाओं से प्रेरित होकर साहित्य सृजन की दिशा में अग्रसर होते हैं। काव्य की अपेक्षा गद्य कथात्मक विधाओं के क्षेत्र में इस प्रवृत्ति का समावेश अपेक्षाकृत अधिक मिलता है।

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में विशुद्ध मनोवैज्ञानिक तत्वों का समावेश प्रेमचंद युग से आरम्भ हुआ। इस दृष्टि से हिन्दी कहानीकारों मे सर्वप्रथम प्रेमचन्द का नाम ही उल्लेखनीय है। प्रेमचन्द ने समय के अनुसार परिवर्तित होते हुए साहित्य की अवगति रखते हुए यह अनुभव किया कि अब साहित्य की प्रवृत्ति अहंवाद या व्यक्तिवाद तक परिमित नही रह गयी है, बल्कि वह मनोवैज्ञानिक और सामाजिक होता जाता है। अब वह व्यक्ति को समाज से अलग नही देखता है। इसलिए नही कि वह समाज पर हुकूमत करे, उसे अपने स्वार्थ साधन का औजार बनाये, मानो उसमें और समाज में सनातन शत्रुता है, बल्कि इसलिए कि समाज के अस्तित्व के साथ उसका अस्तित्व कायम है और समाज से अलग होकर उसका मूल्य शून्य के बराबर हो जाता है। इसी-लिए प्रेमचन्द ने कहानी में मनोवैज्ञानिक चित्रण तथा स्वाभाविकता को विशेष महत्व देते हुए उसके आधुनिक स्वरूप का निदर्शन किया। प्रेमचन्द के विचार से 'वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम और अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है। इतना ही नही, बल्कि अनुभूतियां ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है।' 'एक अन्य स्थल पर भी प्रेमचन्द ने आधुनिक कहानी के मनोवैज्ञा-निक पक्ष पर बल देते हुए लिखा है कि 'गल्प का आधार अब घटना नही, मनोविज्ञान की अनुभूति है। आज लेखक कोई रोचक दृश्य देखकर कहानी लिखने नहीं बैठता। उसका उद्देश्य स्थूल सौन्दर्य नही, वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहता है, जिसमें सौन्दर्य की झलक हो, और इसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओं को स्पर्श कर सके।'[२३]

२३. मुंशी प्रेमचंद, 'मानसरोवर', भाग १, पृ० ९।

आधुनिक युगीन मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में इलाचन्द्र जोशी का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जोशीजी के विचार से भारतीय साहित्य में वैयक्तिक कुंठा को भी उतना महत्व नहीं दिया गया, जितना आज दिया जा रहा है। उनकी धारणा है कि समाज की बाह्य परिस्थितियाँ ही वैयक्तिक कुंठा को जन्म देती हैं और वे ही उसके विकास अथवा ह्रास का कारण होती हैं। जोशीजी के विचार से 'वैयक्तिक कुंठा की प्रतिक्रिया मोटे तौर पर दो रूपों में होती है। एक तो यह कि कुंठित व्यक्ति जीवन से हारकर भीतर के और बाहर के संघर्ष से कतराकर उस हद तक जड़ बन जाय कि उस स्थिति से उबरने की कोई प्रवृत्ति ही उसमें शेष न रहे। दूसरा यह कि कुंठित भावनाएं विद्रोह का रूप धारण कर लें।'[२४] आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मनोविज्ञान के तत्वों पर विचार करते हुए जोशीजी ने बताया है कि उसमें उनका समावेश विविध रूपो मे हुआ है। उनकी धारणा है कि 'आधुनिक समाज में पुरुष की बौद्धिकता ज्यो ज्यों बढ़ती चली जा रही है, त्यों त्यों उसका अहं भाव तीव्र से तीव्रतर और व्यापक से व्यापकतर रूप ग्रहण करता चला जाता है।...चूकि वर्तमान युग में अहंवाद और बुद्धिवाद का सघर्ष व्यक्तियों के भीतर उसी भीषण रूप में चल रहा है, जिस प्रकार बाह्यजगत में सामूहिक अहंवाद और बुद्धिवाद का अन्तरराष्ट्रीय संघर्ष, इसलिए उपन्यासकार को अत्यन्त जटिल प्रकृत पात्रों का विश्लेषण अत्यन्त गहरे स्तर की मनोवैज्ञानिकता के आधार पर करना पड़ता है।'[२५] श्री इलाचन्द्र जोशी का विचार है कि हिन्दी के वर्तमान साहित्य में मनोविश्लेषण के विषय में जिन धारणाओं का प्रचार है, वे बहुत भ्रामक हैं। उनके विचार से मनोविश्लेषण अपने आप में कोई वाद नहीं है। वह भी एक शैली ही है, जिसका प्रयोग विविध साहित्यकार विभिन्न रूपों में करते हैं। इनका यह भी विचार है कि हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस शैली का प्रयोग व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से भी किया गया है तथा इसके विपरीत भी। बौद्धिकता के सन्दर्भ में इसकी मान्यताओं का विश्लेषण करते हुए जोशीजी ने यह मत प्रकट किया है कि 'जनवादी दृष्टिकोण को मध्यवर्गीय बौद्धिक समाज केवल अपने अहंवादी संस्कार के कारण ही नहीं स्वीकार कर पा रहा है। इसलिए उसके निराकरण का एक मात्र उपाय है सूक्ष्म मनोविश्लेषण के अन्तःप्रवेशक अस्त्र का प्रयोग। अतएव जो मनोवैश्लेषिक कलाकार

२४. श्री इलाचन्द्र जोशी, 'देखा परखा', पृ० ६५।
२५. श्री इलाचन्द्र जोशी, 'विश्लेषण', पृ० ८८-८९।

इस प्रकार के उपायों द्वारा जनवादी मनोभावना के लिए जमीन तैयार करते हैं उनका कार्य क्या दूसरे प्रगतिशील कलाकारों से कुछ कम महत्व पूर्ण है ? उन्हें प्रतिक्रियावादी करार देना वास्तविकता के प्रति आँख मूँद लेना है।'[२६] जोशीजी ने मनोविश्लेषण-वाद को अन्तर्जगत के क्षेत्र में उसी सीमा तक प्रगतिशील बताया है जिस सीमा तक मार्क्सवाद बहिर्जगत में।'[२७]

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे मनोवैज्ञानिक कहानियों का विकास कहानी की कलात्मक परिपक्वता के समानान्तर ही हुआ है। पूर्व प्रेमचन्द युग तक की हिन्दी कहानी प्राय: घटना प्रधान होती थी, इसलिए उसमें चारित्रिक विश्लेषण का पक्ष उपेक्षित था और मनोवैज्ञानिक आधार की भी अपेक्षा नही थी, परन्तु प्रेमचन्द युग से चरित्र प्रधान कहानियो का लेखन अधिक होने लगा। स्वय प्रेमचन्द ने अपनी अधिकाश कहानियों को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान कर कलात्मक श्रेष्ठता से युक्त बनाया। प्रेमचन्द की 'मन्त्र', 'कफ़न', 'बड़े घर की बेटी', 'शतरंज के खिलाड़ी' तथा 'नमक का दरोगा' जैसी कहानिया लेखक के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की सूक्ष्मता की द्योतक हैं। जयशकर 'प्रसाद' ने भी 'गुडा', 'पुरस्कार', 'मधूलिका' तथा 'आकाशदीप' जैसी कहानियों में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का आरोपण किया है। जैनेन्द्र कुमार की लिखी हुई 'ग्रामोफोन का रिकार्ड', 'एक रात' तथा 'मित्र विद्याधर' जैसी कहानियां मानव चरित्र की मनो-वैज्ञानिक विकृति की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इलाचन्द्र जोशी ने विशुद्ध मनोविश्ले-षणात्मक सिद्धान्तों का व्यावहारिक आरोपण हिन्दी कहानी पर किया। जोशीजी की प्रतिनिधि मनोवैज्ञानिक कहानियों मे 'मैं' तथा 'दुष्कर्मी' आदि के नाम उल्लिखित किये जा सकते है। यशपाल की लिखी हुई 'एक राज़' तथा 'तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूं' आदि कहानियां मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त हैं। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की कहानियों में 'छाया', 'सांप', 'नम्बर दस', 'रोज़', 'पठार का धीरज' तथा 'सिगनेलर' आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की लिखी हुई मनोवैज्ञानिक कहानियों मे 'सपने', 'नज्जिया', 'चट्टान', 'वह मेरी मंगेतर थी', 'नासूर', 'अकुर', 'बदरी', 'फूल का अंजाम', 'उबाल', 'पलंग' तथा 'जुदाई की शाम का गीत' आदि का उल्लेख किया जा सकता है ।

२६. श्री इलाचन्द्र जोशी, 'साहित्य चिन्तन', पृ० ५७।
२७. वही, पृ० ५८।

इस प्रकार से आधुनिक हिन्दी कहानी में मनोवैज्ञानिक तत्वों का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में ही हो चुका था। लगभग पांच दशाब्दियों तक मनोवैज्ञानिक तत्वों का विभिन्न रूपों में समावेश और नियोजन सामान्य गति से ही किया जाता रहा। प्रेमचंद युग तक आते आते मनोविज्ञान हिन्दी कहानी का एक प्रमुख तत्व बन गया। स्वयं मुंशी प्रेमचन्द ने उसे सर्वोपरि मान्यता प्रदान करते हुए मनोवैज्ञानिक कहानी को सर्वश्रेष्ठ कोटि की कहानी घोषित किया। उत्तर प्रेमचन्द काल में भी कहानी पर मनोविज्ञान का प्रभाव अपेक्षाकृत बढ़े हुए रूप में व्याप्त रहा। यही नहीं, इस काल में मनोविज्ञान के सूक्ष्मतर और परिष्कार युक्त वैज्ञानिक स्वरूप मनोविश्लेषण का समावेश भी हिन्दी कहानी की एक उल्लेखनीय विशेषता बन गयी। इस काल के कहानीकारों का एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है, जो मनोविश्लेषण शास्त्र का आधार ग्रहण करके क्रियाशील रहा।

पौराणिक कहानी

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में एक बडी संख्या ऐसी कहानियों की है, जिनकी विषय वस्तु का आधार पौराणिक विषय वस्तु है। यह मूलत: संस्कृत कथा परम्परा का प्रभाव है। हिन्दू देवी-देवताओं से सम्बन्धित जितनी पौराणिक कथाएं संस्कृत में मिलती है, उतनी विश्व के किसी धर्म अथवा भाषा में नहीं मिलती। हिन्दुओं के देवी-देवताओं की संख्या तैंतीस करोड़ मानी गयी है। इनमें से प्रमुख देवता तीन ही हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के रूप में पूजे जाते हैं। इन त्रिदेवों में ब्रह्मा की कल्पना सृष्टि के जनक के रूप में, विष्णु की पालक के रूप में तथा शिव की संहारक के रूप में की गयी है। इनमें से ब्रह्मा की पत्नी देवी सरस्वती, विष्णु की पत्नी देवी लक्ष्मी तथा शिव की पत्नी देवी पार्वती मानी जाती हैं। सरस्वती की कल्पना विद्या की देवी और लक्ष्मी की कल्पना धन की देवी के रूप में भी की गयी है। हिन्दू धर्म में विष्णु के विविध अवतारों की कल्पना भी देव रूप में ही की गयी है। इन अवतारों में मत्स्य, वराह, कच्छप, नृसिंह, वामन, परशराम, राम, बलदेव, बुद्ध तथा कल्की अवतारों का उल्लेख मिलता है। राम तथा कृष्णावतारों से सम्बन्धित सहस्रों पौराणिक कथाओं का प्रचलन है। विविध ग्रहों को भी हिन्दू धर्मशास्त्र में देवताओं के रूप में ही मान्यता मिली है। इन्द्र की कल्पना देवराज के रूप में की गयी है। बृहस्पति देवगुरु तथा शुक्र दैत्य गुरु माने गये है। जल का देवता वरुण है। वायु, अग्नि, सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध आदि देवगण भी

प्रधान हैं। वैदिक पौराणिक युगों में इन देवताओं की विशेष मान्यता थी। बलदेव उपाध्याय लिखित 'वैदिक कहानियां', रामनिरंजन पांडेय लिखित 'महाभारत की कहानियां', शंभूदयाल सक्सेना लिखित 'वेदों की कहानियां', शिवनन्दन शर्मा लिखित 'शिशु रामायण' तथा हनुमान प्रसाद पोद्दार लिखित 'बाल चित्र रामायण' आदि इसी कोटि की रचनाएं हैं। जैनेन्द्र कुमार ने भी 'बाहुबली', 'गुरु कात्यायन', 'भद्रबाहु' तथा 'देवी देवता' जैसी पौराणिक कहानियों की रचना की है।[२८]

प्राचीन रोमन देवी-देवताओं से सम्बन्धित पौराणिक कथाएं आज भी विदेशों में प्रचलित हैं। रोमन जाति अनेक देवी-देवताओं के अस्तित्व में विश्वास करती थी। ये देवता अधिकांशतः यूनानी मान्यताओं के अनुसार ही थे। कुछ यूनानी देवता ऐसे अवश्य थे, जिनके नाम रोमनों ने परिवर्तित कर दिये थे। शेष की कल्पना उन्होंने अपनी मौलिक बुद्धि से की थी। यूनानी मान्यताओं के अनुसार युद्ध का देवता 'एरस' था, परन्तु रोमनों ने उसे 'मार्स' की सज्ञा दी और युद्ध का देवता इसी नाम से रोमनों में प्रसिद्ध हुआ। कुछ देवताओं के नाम पर विविध ग्रहों के नाम भी रखे गये हैं। सौर मंडल के सबसे बड़े ग्रह का नाम बृहस्पति अथवा जुपिटर है। जुपिटर ही रोमन देवताओं मे सर्वप्रधान है। उसका स्थान देवताओं के राजा के रूप में मान्य है। इसी के नाम पर बृहस्पति ग्रह का भी नामकरण किया गया है। जुपिटर जब क्रोध करता है तो बिजली कड़कने की आवाज के साथ वज्र गिरता है। देवराज जुपिटर की पत्नी का नाम देवी जूनो है। यह सुन्दरी, ईर्ष्यालु और क्रोधी मानी गयी है। बुध ग्रह का नाम मर्करी है। यह नामकरण भी देवता जुपिटर के दूत मर्करी के आधार पर रखा गया है। चूंकि यह ग्रह सूर्य की परिक्रमा सर्वाधिक तीव्र गति से करता है अतएव रोमनो की यह कल्पना है कि इस देवदूत के पैरों में पंख लगे हुए है और यह बहुत तीव्र गति से उड़ता है। रोमनों ने वीनस की कल्पना सौन्दर्य की देवी के रूप में की है। उसी के नाम पर आकाश के सबसे अधिक चमकीले तारे का नाम वीनस अथवा शुक्र रखा गया है। सूर्य का देवता रोमनों ने अपोलो को माना है। उसके विषय में यह कल्पना है कि वह सफेद रंग के सात घोड़ों से जुते हुए स्वर्ण रथ पर यात्रा करता है। वन की देवी के रूप में डायना की कल्पना की गयी है। कहा जाता है कि यह देवी सदैव ही धनुष बाण अपने पास रखती है। इसी से वह जंगल में रहने वाले

२८. श्री जैनेन्द्र कुमार, 'जैनेन्द्र की कहानियां', तृतीय भाग, पृ० ८।

पशु-पक्षियों की रक्षा करती है। डायना को चन्द्रमा की देवी के रूप में भी कल्पित किया गया है। यह भी मान्यता है कि वह सूर्य के देवता अपोलो की जुड़वां बहिन है। बुद्धि, विवेक, कला और सुरक्षा की देवी रोमनों के अनुसार मिनर्वा है। समुद्र अथवा जल के देवता के रूप में नैप्च्यून की कल्पना की गयी है। इसी के आधार पर एक ग्रह का नामकरण भी हुआ है। इसका शस्त्र त्रिशूल माना जाता है। अग्नि के देवता के रूप मे वल्कन की कल्पना की गयी है। अंग्रेजी में ज्वालामुखी अथवा 'वाल्केनो' शब्द की व्युत्पत्ति मूल वल्कन से हुई है। इस देवता का हथियार हथौड़ा है। इसे देवताओं का लोहार भी माना जाता है। पाताल के देवता के रूप में प्लूटो की कल्पना की गयी है। इस नाम के आधार पर भी एक ग्रह का नामकरण हुआ है। वेस्टा की कल्पना गृह देवी के रूप में की गयी है। इसी मान्यता के अनुसार प्राचीन रोम में वेस्टा देवी की पूजा नगर की स्त्रियों के द्वारा की जाती थी। शनि का अथवा सैटर्न ग्रह का नामकरण इसी नाम के देवता के नाम के आधार पर किया गया है। यह कृषि के देवता के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रेम के देवता क्यूपिड माने गये है। इन देवी देवताओं के अतिरिक्त रोमन पुराणशास्त्र में 'एटलस' नामक एक विशालकाय दैत्य की भी कल्पना की गयी है। अंग्रेजी का 'ऐटलस' शब्द इसी के आधार पर प्रचलित हुआ है। कल्पना की जाती है कि संपूर्ण पृथ्वी को यही दैत्य अपने कंधों पर सम्हाले हुए है।

प्राचीन नार्स देवी-देवताओं से सम्बन्धित पौराणिक कथाओं का भी यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। वोडेन, हाथ, थार, फ्रे, निओर्ड, इडुना, लाकी, टियू, फ्रिग, बाल्डर तथा फ्रेया आदि इन देवताओं में प्रमुख हैं। इनके नाम पर ही अंग्रेजी भाषा में कुछ साप्ताहिक दिनों के नाम भी रखे गये हैं। उदाहरण के लिए युद्ध के देवता 'नियू' के नाम पर मंगलवार को 'ट्यूजडे' कहा जाता है। इन देवताओं में सर्वप्रधान 'वोडेन' के नाम पर बुधवार को 'वेन्जगे' कहा गया। देवता 'थार' के नाम पर बृहस्पति-वार को 'थर्सडे' कहा गया तथा देवी 'फ्रिग' के नाम पर शुक्रवार को 'फ्राइडे' नाम दिया गया। देवी फ्रिग प्रधान देवता वोडेन की पत्नी है। इसकी कल्पना आकाश की देवी के रूप में की गयी है। देवता टियू युद्ध का देवता माना गया है। बाल्डर तथा हाथ नामक देवता जुड़वां भाई स्वीकारे गये हैं। बाल्डर को प्रकाश तथा हाथ को अंधकार का देवता बताया गया है। फ्रे धूप तथा वर्षा का देवता है। फ्रेया की कल्पना सौन्दर्य की देवी के रूप में की गयी है। निओर्ड को समुद्र का देवता माना गया है। नार्स

लोगों ने अपने इन देवी-देवताओं में मानवीयता के गुण-दोषों की भी कल्पना की है। उनकी धारणा है कि ये देवता आकाश में बादलों के ऊपर रहते हैं। इस स्वर्ग स्थान को उन्होंने 'आस्गार्ड' नाम दिया है। उनकी यह भी कल्पना है कि इन्द्रधनुष उसी स्वर्ग का पुल है। संसार में घटने वाले प्रत्येक क्रियाकलाप को नार्स लोग इन्ही देवताओं का प्रभाव समझते थे। उदाहरण के लिए बिजली कड़कने पर वे यह विश्वास कर लेते थे कि देवता थार अपना रथ हांक रहा है अथवा वज्र पात कर रहा है। वसंतागमन को वे इडुना का निद्रा त्याग के उपरान्त जागरण समझते थे। ओले पाले गिरने को वे देवता लाकी का खिलवाड़ मानते थे। जो घटनाएँ वे न समझ पाते थे उनके विषय में भी किसी देवी देवता से सम्बन्धित कोई कथा कल्पित कर लेते थे। नार्स देवताओं से सम्बन्धित ये पौराणिक कथाए अन्य पौराणिक आख्यानों की भांति ही काल्पनिक और लोक प्रचलित हैं।

विदेशी पौराणिक गाथाओं में अमेजनों की कहानियाँ, ट्राय की कहानियां, नूह की कहानिया, राजा आर्थर और उसकी गोल मेज के दरबारी वीरों की कहानी, पेंडोरा की कहानी, माइनोटार राक्षस की कहानी, वीणा वादक आरफ़ीयस की कहानी, इकारस की कहानी, परसीयस की कहानी, हरक्यूलीज की कहानी, ईसा की कहानियां, यूसुफ और उसके भाई की कहानी, हजरत मूसा की कहानी, बालक डेनियल की कहानी, डेविड और गोलियथ की कहानी तथा विदास राजा की कहानी आदि विशेष रूप से लोक प्रचलित हैं।

नीतिप्रधान कहानी

हिन्दी में नीति प्रधान कहानी की परम्परा प्राचीन भारतीय नीतिपरक कथा साहित्य से प्रभावित है। प्राचीन भारतीय कथा साहित्य का अधिकांश नीतितत्व-प्रधान है। वैदिक, पौराणिक, जातक, पंचतंत्र, हितोपदेश तथा मध्ययुगीन लोक कथा साहित्य में भी नीति तत्वों की ही प्रधानता है। सैद्धान्तिक रूप से नीति और कहानी दोनों ही उपदेशपरक होते हैं। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द के विचार से 'नीति शास्त्र और साहित्य शास्त्र का लक्ष्य एक ही है, केवल उपदेश की विधि में अन्तर है। नीति शास्त्र तर्कों और उपदेशों के द्वारा बुद्धि और मन पर प्रभाव डालने का यत्न करता है, साहित्य ने अपने लिए मानसिक अवस्थाओं और भावों का क्षेत्र चुन लिया है। हम जीवन में जो कुछ देखते हैं, या जो कुछ हम पर गुजरती है,

वही अनुभव और वही चोटें कल्पना में पहुंचकर साहित्य सृजन की प्रेरणा करती हैं।'[29]

प्राचीन भारतीय कथा साहित्य के एक प्रमुख ग्रन्थ 'पंचतंत्र' को भारतीय तथा विदेशी विद्वानों ने नीति तत्वों की प्रधानता तथा नीति निरूपण के कारण नीति विषयक ग्रन्थ ही कहा है। 'पंचतंत्र' एक नीति शास्त्र या नीति का ग्रन्थ है। नीति का अर्थ है जीवन में बुद्धिपूर्वक व्यवहार। पश्चिमी सभ्यता को इसके लिए कुछ लज्जित होना पड़ता है कि अंग्रेजी, फ्रेंच, लैटिन या ग्रीक, उसकी किसी भाषा में नीति के लिए कोई ठीक पर्याय नहीं है।...सर्वप्रथम, नीति इस बात को मानकर चलती है कि मनुष्य विचारपूर्वक अपने लिए सधूकड़ों का मार्ग छोड़कर सामाजिक जीवन का मार्ग चुनता है। दूसरे, नीतिप्रधान दृष्टिकोण इस प्रश्न का सराहनीय उत्तर देता है कि मनुष्यों के बीच में रहकर जीवन का अधिक से अधिक रस किस प्रकार प्राप्त किया जाय।'[30]

प्राचीन भारतीय नीतिपरक कथा साहित्य में 'जातक', 'पंचतंत्र' तथा 'हितोपदेश' का व्यापक प्रभाव परवर्ती देशी-विदेशी भाषाओं के कथा साहित्य पर मिलता है। विश्व की अनेक भाषाओं में इन कथा ग्रन्थों के अनुवाद भी बहुत लोकप्रिय हुए। विदेश में अरबी साहित्य के क्षेत्र में आठवी शताब्दी में 'पंचतंत्र' की कथाओं का अनुवाद हुआ। यह अनुवाद संस्कृत से किया गया था। पहलवी में किया गया इसका अनुवाद काल खुसरो के समय से साम्य रखता है। पंचतंत्र का अरबी में 'कलील वा दिम्न' अथवा 'बिदपाई की कहानियाँ' शीर्षक से अनुवाद हुआ था। इसका अनुवाद कर्त्ता इब्ने अल मुकफ्फा था, जिसका एक नाम रूज्वी भी था। यह अनुवाद मूल भाषा से प्रस्तुत किया गया था। दसवीं शताब्दी में फ़ारसी ग्रंथ 'हजार अफ़साने' तथा अरबी ग्रंथ 'अल्फ लैला व लैला' अर्थात् 'सहस्र और एक रजनी' भी रचना विधान की दृष्टि से 'पंचतत्र' से पर्याप्त साम्य रखते हैं। 'पंचतंत्र' की कहानियों का प्रभाव अंग्रेजी साहित्य के क्षेत्र में चौदहवी शताब्दी में प्रचलित फ़ेबुल्स पर स्पष्टतः लक्षित होता है। इस प्रभाव से युक्त कहानियों में 'दि वीपिंग बिच', 'दि फ़ाक्स ऐंड दि वुल्फ़', 'स्प्रिंग टाइम' तथा 'दि सांग आफ दि हज़बेंडमन' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

'ईसप की कहानियाँ' सारे संसार में आज तक प्रसिद्ध हैं। इनका रचयिता ईसप आज से लगभग ढाई सहस्र वर्ष पूर्व जन्मा था। यद्यपि वह सुशिक्षित और

२९. मुंशी प्रेमचंद, 'साहित्य का उद्देश्य', पृ० ५।
३०. डा० मोतीचन्द्र, 'पंचतंत्र', आमुख, पृ० १३ से।

विवेकशील था, परंतु परिस्थितिवश उसे दास बनकर रहना पड़ा था। अपना संपूर्ण जीवन प्राचीन यूनान में उसे दास के रूप में ही व्यतीत करने को बाध्य होना पड़ा था। भारतीय 'पंचतंत्र' तथा 'हितोपदेश' की भांति ही ईसप की कहानियाँ भी नीति प्रधान ही हैं। इनमें अधिकांश कहानियाँ पशु-पक्षियों के जीवन और चरित्र पर ही आधारित हैं। इनमें उपदेशात्मकता की प्रधानता है। 'लोमड़ी और अंगूर' तथा 'खरगोश और कछुए' जैसी कहानियाँ अत्यन्त शिक्षाप्रद हैं। कहा जाता है कि ईसप की ये कहानियाँ उसके द्वारा लिखी नहीं गयी थी, केवल उसने इन्हें कहा भर ही था। अनेक पीढ़ियों तक मौखिक रूप में ही प्रचलित रहने के उपरांत ईसप की मृत्यु के लगभग दो सहस्र वर्षों के बाद इन्हे भाषाबद्ध किया गया। आज विश्व की अनेक भाषाओं में इनका अनुवाद किया जा चुका है।

प्राचीन रूसी नीतिप्रधान लोक कथाओं 'ईल्यामूरोम्येत्स', 'सादको', 'राजकुमार सारिविच की कहानी' तथा 'भूरा भेड़िया' आदि के लेखक अज्ञात हैं, परन्तु इनमें उच्च नैतिक आदर्शों के संकेत निहित हैं। इन्ही की परपरा में आगे चलकर पद्यबद्ध दीर्घ आख्यान मिलते हैं, जो 'बिलीना' के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'वल्गा और पिकूला' लोकप्रिय बिलीना का एक प्रतिनिधि उदाहरण है। कलात्मक उत्कृष्टता की दृष्टि से 'नोवगोरद' बिलीना उल्लेखनीय है। वास्तव मे नीतिपरक कथा साहित्य के प्रचार-प्रसार का एक बड़ा कारण यह है कि इसका महत्व अनेक कारणों से है। श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन के शब्दों में 'यदि मनोरंजन के साथ साथ उपदेश ग्रहण करना हो, यदि हृदय को उदार तथा शुद्ध बनाने वाली कथाओं के साथ साथ बुद्धि को प्रखर करने वाली कथाएं पढ़नी हों, यदि अपने देश की प्राचीन आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक अवस्था से परिचित होना हो, तो हम जातक कथाओं से बढ़कर किसी दूसरे साहित्य की सिफारिश नहीं कर सकते।'[31] आधुनिक युग में भी जो नीतिपरक कथा साहित्य लिखा जा रहा है, वह समकालीन जीवन के बहुपक्षीय स्वरूप का निरूपण करने में समर्थ है। प्रेमचन्द लिखित 'मन्त्र' तथा 'नमक का दरोगा', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पुरस्कार' तथा 'ममता' तथा 'सुदर्शन' लिखित 'हार की जीत' तथा डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'नीति की कहानियाँ' जैसी रचनाएं नैतिक आदर्शों का उदात्त स्वरूप अभिव्यंजित करती है।

३१. श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन ,'जातक', प्रथम खंड, पृ० ३२।

साहसिक कहानी

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में साहसिक कहानी का विकास अनेक रूपों में हुआ है। प्रायः विविधक्षेत्रीय खोजों, दस्युओं, शिकार, जंगल आदि से सम्बन्धित कहानियां इस कोटि के अन्तर्गत परिगणित की जा सकती हैं। डा० वृन्दावनलाल वर्मा लिखित 'दबे पांव', अरविन्द गुर्टू लिखित 'हवाई छतरी', अली अहमद खां लिखित 'एवरेस्ट की कहानी' तथा 'बिजली की कहानी', कमल जोशी लिखित 'विज्ञान की विभिन्न कहानियाँ' तथा काशीनाथ अग्रवाल लिखित 'पाताल में टार्जन' आदि इस विषय की प्रतिनिधि कहानी पुस्तकें कही जा सकती हैं। सुलताना डाकू आदि से सम्बन्धित कथाएं और किवदन्तियां भी लोकप्रिय कहानियों के रूप में प्रचलित हैं। अंग्रेजी में राबिन हुड नामक प्रसिद्ध दस्यु से सम्बन्धित कथाओ की गणना भी साहसिक कहानी के अन्तर्गत की जा सकती है। कहा जाता है कि यह लुटेरा अपने दल-बल से केवल उन्ही लोगों को लूटता था जो खूब धनवान् होते थे। फिर लूट में प्राप्त हुए धन से वह निर्धनों, निर्बलो की सहायता करता था। राबिन हुड का आविर्भाव काल आज से लगभग सात सौ वर्ष पूर्व माना जाता है। यह डाकू शेरवुड के जंगलों में रहता था। वाण विद्या मे इसकी कुशलता अद्वितीय थी। यह अनेक प्रकार के वेश भी धारण कर सकता था। इसे गिरफ्तार करने के लिए पुरस्कार भी घोषित किया गया था। इसके शौर्य और साहस से सम्बन्धित कहानियों का ग्रामो मे विशेष रूप से प्रचार था। यह भी अनुमान किया जाता है कि राबिन हुड नाम का कोई वास्तविक व्यक्ति नहीं था, बल्कि यह केवल साहसिक कथाओ का काल्पनिक नायक है।

सोलहवीं-सत्रहवी शताब्दी के यूरोपीय लेखक मिगुएल दा सर्वांटे सावेद्रा का नाम साहसिक कथा परम्परा के प्रवर्त्तकों में उल्लेखनीय है। इसकी लिखी हुई डान क्विक जोट की कथा विश्व प्रसिद्ध है। इस कथा के लेखक ने भी कथा के नायक की ही भांति अत्यन्त संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत किया था। परिस्थितिवश उसे एक सैनिक का काम करना पड़ा था, समुद्री लुटेरों का बंदी बनकर रहना पड़ा था, एक दास के रूप में जीवन यापन करना पड़ा था, जेल यात्रा करनी पड़ी थी तथा साथ में वह एक लेखक और उच्च अधिकारी भी रहा था। डान क्विक जोट और उसके सेवक शांको पांजा की कहानी संसार की अनेक भाषाओं में अनूदित हुई है। हास्य के साथ साहसिकता का सम्मिश्रण इस रचना की प्रमुख विशेषता है।

साहसिक कथाओं के क्षेत्र में राबर्ट लुई स्टीवेंसन की लिखी हुई 'ट्रेजर आइलैंड' अथवा 'खजाने की खोज में' शीर्षक कृति का भी उल्लेख किया जा सकता है। यह कहानी लेखक ने अपने गोद लिये पुत्र के लिए लिखी थी। इसका स्थान विश्व के प्रसिद्ध साहसिक कथा साहित्य में है, जो बीहड़ समुद्र यात्राओं पर आधारित है।

फ्रांसीसी कथाकार जुले वर्न का नाम उन्नीसवीं शताब्दी के साहसिक कहानी लेखकों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बाल्यावस्था से ही नौका विहार, यंत्र रचना तथा लेखन कार्य में इसकी रुचि थी। पेरिस में रहते हुए एक लेखक क्लब में जुले वर्न को अपनी विश्व प्रसिद्ध साहसिक कहानी 'गुब्बारे में पांच सप्ताह' लिखने का विषय सूत्र मिला था, जहां कुछ व्यक्ति गुब्बारों का अध्ययन कर रहे थे। यंत्र रचना में अत्यधिक रुचि तथा प्रखर बुद्धि-प्रतिभा के कारण जुले वर्न ने हवाई जहाज, पनडुब्बी तथा टेलिविज़न आदि वैज्ञानिक आविष्कारों की पूर्व कल्पना कर ली थी। 'समुद्र की गहराइयों में' तथा *'अस्सी दिन में दुनिया की सैर'* जुले वर्न *की अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त* साहसिक कथाएं हैं, जिनका अनुवाद विश्व की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं में हो चुका है।

साहसिक कहानी लेखकों में उन्नीसवी शताब्दी के अमरीकी कहानीकार जेम्स फ़ेनिमोर कूपर का नाम भी उल्लिखित किया जा सकता है। कूपर की इस श्रेणी की कहानियां अधिकांशतः समुद्री जीवन से सम्बन्धित हैं। समुद्र में तूफानों और तोपो से जूझते नाविकों का चरित्रांकन उसने सशक्त कथात्मक पृष्ठभूमि मे अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। इनके साथ ही उसने अमरीकियों से वहां के आदिवासियों के संघर्ष की कथाएँ भी साहसिक रोमांचक रूप में प्रस्तुत की हैं। जंगल और शिकार से सम्बन्धित भी कुछ कहानियां कूपर ने लिखी। इस दृष्टि से उसकी 'लेदर स्टाकिंग' कहानियां विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। 'दि लास्ट आफ दि मोहिकिन्स', 'दि प्रेरी', 'दि पाथ फाइंडर' तथा 'दि डीअर स्लेमअर' आदि कहानियों में कूपर ने साहसिक वृत्ति के कलात्मक निरूपण के साथ साथ मर्मस्पर्शी भावाभिव्यजना से युक्त प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किये हैं। पोलिश लेखक जोसेफ कानराड ने अपने रचनाकाल, बीसवी शताब्दी के प्रमुख चतुर्थांश में साहसिक वृत्तिप्रधान कहानियों की रचना की। समुद्री वातावरण मे रहने वाले पात्रों की मनोवृत्ति एवं उनसे सम्बन्धित घटना व्यापार का प्रभावशाली अंकन कानराड की कहानियों में उपलब्ध होता है। 'टेल्स आफ अनरेस्ट', 'ए सैट आफ सिक्स', 'विदिन दि टाइडस' तथा 'टेल्स आफ हियरसे' इसी कोटि की रचनाएँ हैं।

वैज्ञानिक कहानी—हिन्दी में वैज्ञानिक कथा साहित्य का प्रवृत्तिगत रूप में आरम्भ भारतेन्दु युग से ही मिलता है। इस कोटि की एक कल्पना प्रधान रचना केशव प्रसाद सिह लिखित 'चन्द्रलोक की यात्रा' है। परन्तु इस प्रकार की रचनाओं का स्वरूप यूरोपीय वैज्ञानिक कथाकारों की कृतियों, उदाहरण के लिए एच० जी० वेल्स लिखित 'दि वार इन दि एयर', 'दि व्हील्स आफ चास' तथा 'काइप्स' आदि से सर्वथा भिन्न है। वस्तुतः हिन्दी मे विदेशी साहित्य के फलस्वरूप तथा आधुनिक युग मे हुई वैज्ञानिक प्रगति के प्रभावस्वरूप वैज्ञानिक कथा साहित्य का लेखन हुआ है। अंतरिक्ष की यात्रा से सम्बन्धित कथा साहित्य विदेशी भाषाओं के समान ही हिन्दी में भी न्यूनाधिक रूप में अवश्य उपलब्ध होता है। वस्तुतः वैज्ञानिक कथा साहित्य का उद्देश्य विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले नवीनतम आविष्कारों का कथात्मक माध्यम से परिचय देना है, क्योकि ये परिवर्तन सदैव ही जीवन को प्रभावित करते हैं। हमारा वर्तमान जीवन हमारे अतीत जीवन से जो बडी भिन्नता लिये हुए है, उसका कारण वैज्ञानिक उन्नति का प्रभाव ही है। वैज्ञानिक कहानी मे लेखक कल्पना तत्वों की सहायता से शुष्क विज्ञान सम्बन्धी विवरण को भी एक आकर्षक, रोचक कथात्मक स्वरूप प्रदान कर देता है। हिन्दी में अरविन्द गुर्टू लिखित 'हवाई छतरी', अली अहमद खाँ लिखित 'बिजली की कहानी' तथा कमल जोशी लिखित 'विज्ञान की विचित्र कहानियाँ' आदि रचनाए वैज्ञानिक कहानियो के अन्तर्गत ही उल्लिखित की जा सकती हैं।

शिकार सम्बन्धी कहानियाँ—शिकार सम्बन्धी कहानियों का आरम्भ भी भारतेन्दु युग में ही हो चुका था। मास्टर निजाम शाह का नाम इस क्षेत्र के प्रवर्त्तक कहानीकारों में उल्लिखित किया जा सकता है। इनकी लिखी हुई एक कहानी 'सुअर का शिकार' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी।[१२] यह कहानी लेखक के अपने अनुभव पर आधारित है, जब वह एक बार संयोगवश एक साप, रीछ तथा सुअर का एक साथ शिकार करने में सफल हुआ था। प्रेमचन्द युग मे श्रीराम शर्मा तथा डा० वृन्दावनलाल वर्मा ने शिकार सम्बन्धी कहानियों की रचना विशेष रूप से की। वर्माजी की शिकार विषयक कहानियों का एक संग्रह 'दबे पांव' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है जिसकी रचनाएं स्वयं लेखक के शिकार सम्बन्धी अनुभवों के आधार पर लिखी गयी हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध पाश्चात्य कथाकार रुडयार्ड किपलिंग ने भी जंगल और शिकार

१२. 'सरस्वती', अगस्त १९०५, भाग ६, सं० ८, पृ० २९९।

सम्बन्धी कहानियां लिखी हैं। 'प्लेन टेल्स फ्राम दि हिल्स', 'जस्ट सो स्टोरीज', 'ट्रैफिक्स ऐंड डिस्कवरीज', 'पक साफ पुक्स हिल्स' तथा 'रिवार्ड ऐंड जेरीज़' की अनेक कहानियाँ इसी कोटि की है।

जासूसी कहानी—साहसिक कहानियों के ही अन्तर्गत जासूसी कहानी का उल्लेख भी किया जा सकता है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में जासूसी कहानियों का लेखन भी भारतेन्दु युग से ही आरम्भ हो गया था। इस क्षेत्र के प्रवर्तक कहानीकारों में गोपालराम गहमरी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गहमरीजी की लिखी हुई प्रमुख जासूसी कहानियां 'शिक्षा का युद्ध' उर्फ़ 'रावत मानसिंहचरित्र', 'गल्पपचक', 'त्रिवेणी'[३३] तथा 'सुभद्रा' आदि कहानी संग्रहों में उपलब्ध हैं। ये कहानियां मिश्रित कोटि की कहानियां हैं, जिनमें जासूसी के साथ ही अन्य तत्व भी समाविष्ट है। आगे चलकर जासूसी कहानी क्षेत्र में अनेक अनूदित रचनाएं भी प्रस्तुत की गयी। जासूसी कथा साहित्य के विश्व प्रसिद्ध लेखक आर्थर कानन डायल की अधिकाश कृतियो के अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत किये गये। उन्नीसवी शताब्दी के अमरीकन कहानीकार एडगर एलन पो ने भी रहस्य, रोमांच आदि के तत्वों से युक्त जासूसी कहानियो की रचना की है। 'दि मार्डर्स इन दि रूमोर्ग' आदि कहानियां भय और रोमाच की भावना से युक्त है। इसी कोटि की उसकी अन्य कहानियों मे 'दि ब्लैक कैट', 'दि कास्क आफ़ अमान्टिलाडो', 'दि फ़ाल आफ दि हाउस आफ़ अशर' तथा 'लिजीया' आदि के नाम उल्लिखित किये जा सकते हैं। पो ने भूत-प्रेत तथा मृतात्माओ से सम्बन्धित कहानियाँ भी लिखी है। 'लिज़ी पा', 'दि ओवल पोट्रेट' तथा 'एलीनोरा' आदि कहानियों मे उसने मृतात्माओं की कल्पना करके रोमाचपूर्ण तथा भयोत्पादक कथानक निर्मित किये है। आधुनिक युग के प्रसिद्ध अमरीकी कथा लेखक सैमुएल लांगहार्न क्लीमेन्स, जो साहित्य के क्षेत्र में मार्क ट्वेन के नाम से विख्यात हैं, ने भी कौतूहल प्रधान जासूसी कोटि की कहानियों की रचना की है। अनेक जासूसी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी इस कोटि की कहानियों का प्रचार-प्रसार बढा। परन्तु इस प्रकार की रचनाओं में कलात्मक उत्कृष्टता का अभाव होने के कारण इनका साहित्यिक महत्व सदैव सन्दिग्ध समझा जाता रहा। इसीलिए श्रेष्ठ कहानी लेखकों ने जासूसी कहानी के क्षेत्र में अपनी रचनात्मक प्रतिभा का उपयोग नही किया, यद्यपि कौतूहल वृत्ति का समावेश उन्होंने

३३. ये कहानीसंग्रह जासूस आफ़िस, बनारस सिटी द्वारा प्रकाशित किये गये थे।

अन्य विषयों की रचनाओं में भी किया, जो जासूसी कथा साहित्य में रहस्य, रोमांच तथा चमत्कार आदि के साथ प्रमुख रूप से विद्यमान रहती है।

बालोपयोगी कहानी

बालोपयोगी कहानी का विषय क्षेत्र अत्यन्त प्रशस्त है। प्राचीन वैदिक-पौराणिक साहित्य तथा पशु-पक्षियों पर आधारित नीति परक लोक कथा साहित्य आदि से हिन्दी की बालोपयोगी कहानी की पृष्ठभूमि निर्मित हुई। आविर्भाव युग की अनेक कृतियाँ भी इसी कोटि की हैं। प्रेमचन्द जैसे महान् कथाकारों ने 'कुत्ते की कहानी' तथा 'मोटेराम शास्त्री' आदि बालोपयोगी कहानियां लिखी है। आधुनिक युगीन बाल कथा साहित्य के लेखकों ने प्रायः पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा काल्पनिक विषयों पर रचनाए प्रस्तुत की हैं। अनूपलाल मंडल लिखित 'उपदेश की कहानियां', अमृतलाल दुबे लिखित 'जमालो के मिया', अरविंद गुर्टू लिखित 'हवाई छतरी', डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'नीति की कहानियाँ', अली अहमद खा लिखित 'एवरेस्ट की कहानी', हरनारायण स्वामीजी लिखित 'सरल लोक कथाएं', आत्माराम देवकर लिखित 'सीताफल की चोरी', जगदानन्द झा लिखित 'सियार का न्याय', आरसी प्रसाद सिंह लिखित 'चांद मामा', काशीराम त्रिवेदी लिखित 'बलिदान की कहानियाँ' तथा केदारनाथ मिश्र लिखित 'आश्चर्यजनक कहानियाँ' आदि इसी कोटि की रचनाए हैं।

बालोपयोगी कहानी के अन्तर्गत परियों की कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। अनुमान लगाया जाता है कि परियों के जीवन से सम्बन्धित विश्व की सबसे प्रथम पुस्तक सन् १६९७ में फ्रांस में प्रकाशित हुई थी। यह पुस्तक सिंडरेला नामक एक दुखियारी लड़की के जीवन से सम्बन्धित है। एक परी उसकी सहायता करके उसे सुखी बनाती है। उन्नीसवी बीसवी शताब्दी में नार्वे के साहित्यकार योनास ली ने परियो की कहानियाँ लिखी। हिन्दी में विंध्याचल प्रसाद गुप्त लिखित 'परियों का देश' आदि कृतियाँ इसी कोटि की है। परियों से सम्बन्धित विषयों पर लिखने वाले लेखक हांस क्रिश्चियन ऐंडरसन का जन्म डेनमार्क में हुआ था। इसका स्थान उन्नीसवी शताब्दी के विश्व प्रसिद्ध कथाकारों में है। इसके पिता ने उसे बचपन में जूते बनाते समय अनेक मनोरंजक कहानियाँ सुनायी थीं। ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही इसे पितृ वियोग सहन करना पड़ा। फलतः इस पर अपने जीवन यापन का दायित्व

भी आ गया। अनेक प्रकार के रोजगारों के उपरांत यह नाटक कंपनी में अभिनय का कार्य करने लगा। सत्रह वर्ष की अवस्था से इसने लेखन कार्य आरम्भ किया। डेन्मार्क के बादशाह ने इसकी रचनाओं से प्रसन्न होकर इसकी आर्थिक सहायता की। उन्होंने इसकी शिक्षा दीक्षा की भी समुचित व्यवस्था की। बादशाह के दिये हुए धन से इसने अनेक भ्रमण किये। बाद में इसने अपने सारे यात्रा वृत्तांत लिख डाले। बच्चों के लिए इसने परियों की मनोरंजक कहानियाँ लिखी। ये कहानियाँ इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि संसार की प्रायः सभी भाषाओं में इनका अनुवाद किया गया।

बाल कहानियों के क्षेत्र में उन्नीसवी सदी के अमरीकी कथाकार जोएल शैंडलर हैरिस का नाम भी उल्लिखित किया जा सकता है। इसने मुख्यतः कल्पना प्रधान बालोपयोगी कहानियों की रचना की है। ये इतनी प्रभावशाली हैं कि बिल्कुल सच्ची मालूम होती है। कल्पनात्मकता के साथ विश्वसनीयता का सम्मिश्रण इन कहानियों का प्रधान गुण है। ये रचनाएँ 'चाचा रेमस की कहानियां' शीर्षक से सन् १८७१ में प्रकाशित हुई थी। इन कहानियो को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। इन कहानियो में मानव पात्रों के स्थान पर पशु पात्रों की योजना हुई है, जो मनुष्यो की तरह ही बोलते चालते है। इन कहानियो का अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं मे हुआ है।

बालोपयोगी कहानी साहित्य के क्षेत्र में अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय देने वाले लेखको मे रुडयार्ड किपलिग का नाम भी उल्लेखनीय है। इसका जन्म बम्बई मे हुआ था। भारतवर्ष में अपने पिता के साथ रहते हुए इसने यहां भारतीय धायो से जगली जानवरों आदि से सम्बन्धित अनेक कहानियां सुनी थी। आगे चलकर इसने लाहौर में लेखन कार्य आरम्भ किया। कुछ समय तक यह इलाहाबाद में भी रहा। इसने जो बालोपयोगी कहानियां लिखी है, वे प्रायः जंगल से सम्बन्धित हैं। 'दि जंगल बुक', 'दि सेकेंड जंगल बुक' तथा 'जस्ट सो स्टोरीज' इसकी प्रमुख कहानी पुस्तकें है, जिनके नाम लोकप्रियता की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

लेविस कैरोल का नाम भी बालोपयोगी कहानी लेखकों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनका रचना काल भी उन्नीसवी शताब्दी ही है। इनका वास्तविक नाम चार्ल्स लुटविग डाग्सन था, परन्तु इन्होंने साहित्य रचना अपने उपनाम लेविस कैरोल से ही की थी। यह आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक थे। यद्यपि यह जीवन भर अविवाहित रहे, परन्तु इनको बालको से सदैव ही अत्यधिक स्नेह रहा। बताया जाता है कि एक बार अपने एक मित्र की तीन छोटी बच्चियों के साथ

यह नदी में नौका विहार करने गये। इनमें से एक बच्ची का नाम एलिस था। बच्चियों के मनोरंजन के लिए इन्होंने एलिस नाम की ही एक लड़की की अत्यंत रोचक और कौतूहलजनक कहानी सुनानी शुरू की। एलिस पाताल लोक में जाकर अनेक आश्चर्यजनक वस्तुएं देखकर चकित रह जाती है। ये कहानियां इतनी रोचक थीं कि इनका सिलसिला पूरी ग्रीष्म ऋतु तक चलता रहा। बाद में ये कहानियां पुस्तक रूप मे प्रकाशित हुईं और इसका शीर्षक 'आश्चर्य लोक में एलिस' अथवा 'एलिस इन वंडरलैंड' रखा गया। इसमें पगला हैटवाला, ऊंघनेवाला चूहा तथा बैसाखी खरगोश आदि जिन हास्यजनक पात्रों की सृष्टि हुई है, वे अत्युत्तम हैं। यह पुस्तक विश्व-विख्यात सिद्ध हुई। इसकी मूल प्रति महान् चित्रकार सर जान टेनिएल द्वारा सचित्र की गयी थी, जो ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन मे आज भी सुरक्षित है। इसकी बीस सहस्र पौंड तक कीमत लगाई जा चुकी है।

बालोपयोगी कहानियां लिखने वालों मे अमरीकी कहानी लेखिका लुइसा के एल्काट का नाम भी उल्लेखनीय है। इसका रचना काल उन्नीसवीं शताब्दी है। इसने अपना जीवन अनेक संघर्षपूर्ण परिस्थितियों में व्यतीत किया। निर्धनता के कारण इसे पंद्रह वर्ष की आयु से ही अपने परिवार की आर्थिक सहायता के लिए कार्य करना पड़ा। इसने अनेक पुस्तकों की रचना की, जो बालकों में अत्यधिक लोकप्रिय हुईं। इसकी लिखी हुई सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'नन्ही महिलाएं' अथवा 'लिटिल वीमेन' है। इस कृति में लेखिका ने वस्तुतः स्वयं अपनी ही कहानी लिखी है। यह कहानी छोटी लडकियों के लिए लिखी गयी थी और उनके द्वारा इसका अतीव स्वागत भी हुआ।

बालोपयोगी कहानी साहित्य के क्षेत्र में डेनियल डिफ़ो की लिखी हुई कृति 'राबिसन क्रूसो' भी विश्वविख्यात है। यह पुस्तक लेखक ने अपने एक परिचित जहाजी अलेक्जेंडर सेल्किर्क के जीवन की सच्ची कहानी के आधार पर लिखी थी। सेल्किर्क का जहाज डूब गया था और उसे एक रेगिस्तानी टापू पर शरण लेनी पड़ी थी। डिफ़ो ने इस वास्तविक कहानी को अपनी उच्च कल्पना के योग से चमत्कार और प्रभावपूर्ण रूप प्रदान किया है। विश्व की अनेक भाषाओं में अनूदित यह कृति बाल कथा साहित्य के क्षेत्र में एक विशिष्ट उपलब्धि के रूप में मान्य है।

वाशिंगटन इर्विंग का स्थान अमरीका के लोकप्रिय कहानीकारों में अग्रगण्य है। उनकी लिखी हुई 'रिप वान विंकल' की कहानी यूरोपीय देशों में बहुत अधिक प्रचलित है। यह कहानी उन्नीसवीं शताब्दी की एक विश्व प्रसिद्ध कथा है जिसका बहुत

अधिक प्रचार है। बालोपयोगी कहानियों में इस रचना का विशिष्ट स्थान है। उन्नीसवीं शताब्दी के अमरीकन कहानीकार नथेनिपल हाथर्न ने भी बालोपयोगी कहानियों की रचना की है। 'टैंगिल वुड टेल्स' में उसकी इसी कोटि की कहानियाँ संगृहीत हैं।

जादू की कहानियाँ—जादू की कहानियां प्राय: बालोपयोगी कथा साहित्य के अन्तर्गत परिगणित की जा सकती हैं। इस प्रकार की कहानियों में कथावस्तु का विकास प्राय: सर्वथा अव्यावहारिक, चमत्कारिक तथा नाटकीय रूपों में होता है। सामान्य रूप से जादू की कहानियो से बाल पाठको की कौतूहल भावना को परितृप्ति मिलती है। प्राचीन साहित्य में इस प्रकार के साहित्य के अन्तर्गत 'अलिफ लैला' की कहानिया अथवा 'दास्ताने हज़ार रात' विश्व साहित्य का एक लोकप्रिय कथा संग्रह है। कहा जाता है कि ये कहानियां बगदाद के एक सुल्तान को उसकी एक बेगम के द्वारा सुनायी गयी थी। यह सुल्तान अत्यन्त क्रूर हृदय था। वह नित्य अपना एक विवाह करता था और अगले ही दिन प्रात: काल अपनी पत्नी की हत्या करवा देता था। एक बार उसकी एक बुद्धिमती बेगम ने अपने प्राणों की रक्षा करने का एक विचित्र उपाय सोचा। उसने रात को सुल्तान को एक ऐसी रोचक कहानी सुनायी, जो सबेरे तक समाप्त ही नही हुई। अत्यन्त रोचक प्रसंग होने के कारण सुल्तान अपनी उत्कंठा को न रोक सका और उसने अगली रात कहानी पूरी हो जाने की आशा से केवल चौबीस घंटे के लिए बेगम की जान बख्शी। अगली रात भी बेगम ने उसे एक अत्यन्त कौतूहल जनक कहानी सुनायी जिसका अन्त और भी अधिक रोमांचक था। प्रात:काल अपनी उत्कंठा के वशीभूत होकर सुल्तान ने एक दिन के लिए और उसकी हत्या मुल्तवी कर दी। यह क्रम एक हजार एक रातों तक चलता रहा। इस बीच सुल्तान को उस बेगम से कई संतानें भी हुई। अतत: सुल्तान ने इस बेगम की जान बख्श दी। इन कहानियों के विषय मे यह अनुमान लगाया जाता है कि ये किसी एक देश या समय में किसी व्यक्ति विशेष द्वारा नही रची गयी थी, बल्कि विविध देशीय लोकप्रिय कहानियों के रूप में मौखिक रूप में ही प्रचलित थी। इनको एक स्थान पर संकलित करके नाटकीय रूप में परस्पर सम्बद्ध कर दिया गया है। 'अलादीन और जादू का चिराग' तथा 'सिंदबाद जहाजी' आदि की विश्व प्रसिद्ध कहानिया 'अलिफ़ लैला' से ही ली गयी हैं। अमरीकन साहित्यकार नथेनिपल हाथर्न ने भी 'यंग गुडमैन ब्राउन' जैसी जादू की कहानियाँ लिखी है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भी इस प्रकार की अनेक कथा कृतियाँ मिलती हैं। इस विषय की आधुनिक रचनाओं में रमेशचन्द्र मिश्र लिखित 'जादू

का चिराग', दयाभानु 'अलख' लिखित 'जादू का हंस', ठाकुरदत्त मिश्र लिखित 'जादू की अंगूठी' तथा संतराम लिखित 'जादू की नाव' आदि के नाम उल्लिखित किये जा सकते हैं।

हास्य-व्यंग्यप्रधान कहानी

कहानी में हास्य सृष्टि के तात्विक आधार पर ही हास्य व्यंग्य प्रधान कहानी की प्रवृत्ति का विकास हुआ है। परम्परागत विकास की दृष्टि से भी कहानी में हास्य तत्व का समावेश एक उल्लेखनीय विशेषता रही है। प्राचीन काल में केवल मनोरंजन के ही उद्देश्य से विशाल परिमाण में कहानियों की रचना की जाती थी। ऐसी कहानियां प्रायः हास्य रस प्रधान ही होती थीं, इसलिए इसके अतिरिक्त चूंकि कहानी एक हल्की फुल्की साहित्यिक विधा है इसलिए भी इसमें गम्भीर साहित्यांगों की तुलना में हास्य तत्व के समावेश की अधिक संभावनाएं रहती हैं। कहानी के पाठकों में एक बहुत बड़ी संख्या उन लोगों की होती है, जो केवल मनोरंजन के लिए ही कहानियां पढ़ते हैं। इन पाठकों की रुचि की परितृप्ति भी मुख्यतः हास्य तत्व प्रधान कहानी मे ही होती है। हास्य मे नैसर्गिक रूप से विद्यमान सरसता और मधुरता ऐसे पाठको को संतुष्टि प्रदान करती है, जो जीवन के संघर्ष अथवा नीरसता के कारण किसी समय थकान अथवा ऊब का अनुभव करते हैं। परन्तु सिद्धान्ततः कहानी में समाविष्ट हास्य शिष्ट और संयत होना चाहिए। कलात्मकता और परिपक्वता की दृष्टि से भी शिष्ट और संयत हास्य कहानी मे समाविष्ट होना चाहिए। हास्य प्रधान कहानी में व्यंग्यात्मकता के तत्व भी स्वाभाविक रूप में समाविष्ट होते हैं। सामाजिक आचार, विचार, रीतियों तथा व्यवस्था की अर्थहीनता के प्रति व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण व्यक्त करनेवाली कहानियाँ सुधारपरक भावना से भी युक्त होती हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी कहानी में हास्य-व्यंग्य के तत्वों का समावेश भारतेन्दु युग से ही आरम्भ हो गया था। बंग महिला लिखित 'दुलाई वाली' तथा गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पंडित और पंडितानी' [34] आदि इसी कोटि की कहानियां हैं। 'दुलाई वाली' में हास्य सृष्टि की चेष्टा है, जबकि 'पंडित और पंडितानी' में अनमेल विवाह की कुरीति के प्रति व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण मिलता है। भारतेन्दु की रचना 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' में आधुनिक शिक्षाविदों के दम्भपूर्ण ज्ञान पर व्यंग्य

३४. 'सरस्वती', सितम्बर १९०३, भाग ४, सं० ३, पृ० १३६।

किया गया है। आगे चलकर प्रेमचद ने अपनी कहानियों में सामाजिक अन्धविश्वास, कुरीतियों, पाखंड तथा सभ्यता जनित विडम्बना आदि के प्रति हास्य-व्यंग्यपूर्ण कहानियाँ लखी है। उनकी लिखी हुई 'मोटेराम शास्त्री', 'कफन', 'मन्त्र', 'बड़े भाई साहब' तथा 'शतरंज के खिलाड़ी' आदि कहानियां मार्मिक एवं सूक्ष्म व्यंग्य भावना से युक्त है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'विधवाश्रम' शीर्षक कहानी में आधुनिक युगीन समाज सुधार की भावना की मिथ्यापूर्णता पर व्यंग्य किया है। 'वंस मोर' कहानी में उन्होंने आधुनिक सभ्यता पर व्यग्य किया है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भी अपनी 'स्वामी नारदानन्दजी महाराज और मैं' जैसी कहानियों में धर्मक्षेत्रीय पाखड और साधु-सन्त तथा तन्त्र-मन्त्र के प्रति व्यग्यात्मक भाव व्यक्त किये है। डा० वृन्दावन लाल वर्मा ने भी आधुनिक समाज में व्याप्त कुरीतियों और अन्धविश्वासों के प्रति व्यग्यात्मक कहानिया लिखी है। 'मेढकी का व्याह'[३५] शीर्षक कहानी मे वर्माजी ने समाज की धार्मिक मान्यताओं के खोखलेपन की ओर व्यंग्य किया है। 'कागज का हीरा'[३६] शीर्षक उनकी कहानी आधुनिक प्रशासन व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'मोको चूनरी की साध' जैसी कहानियों मे बाल विवाह आदि कुरीतियों पर व्यग्य किया है। यशपाल ने 'परदा' कहानी में नारी समाज मे व्याप्त परदे की प्रथा पर व्यंग्य किया है।[३७] 'पाव तले की डाल' शीर्षक कहानी में यशपाल ने शिक्षित वर्ग की नैतिक मान्यताओं पर व्यग्य किया है।[३८] डा० रागेय राघव ने आधुनिक समाज की पूंजीवादी व्यवस्था के साथ साथ रूढिवादिता पर भी व्यंग्य किया है। 'गदल', 'भय', 'कठपुतले', 'अन्धेर नगरी चौपट राजा' तथा 'आवाज घुटने लगी' आदि इस दृष्टि से उनकी प्रतिनिधि कहानियां कही जा सकती है।[३९] भगवतीचरण वर्मा की कहानियों मे भी समाज के विविध वर्गों की मान्यताओं, अन्धविश्वासों, रूढियों आदि पर कठोर और मार्मिक व्यंग्य किया गया है। इस दृष्टि से 'बाय ए पेग', 'दो बांके', 'प्रेजेंट्स', 'प्रायश्चित्त' तथा 'एक विचित्र चक्कर' आदि वर्मा जी की प्रतिनिधि हास्य-व्यंग्य प्रधान कहानियां है। अमृतलाल नागर की हास्य-व्यग्य प्रधान

३५. डा० वृन्दावन लाल वर्मा, 'मेंढकी का व्याह', पृ० १।

३६. वही, पृ० २९।   ३७. श्री यशपाल, 'तर्क का तूफान', पृ० १३३।

३८. 'चित्र का शीर्षक', पृ० ९०।

३९. डा० रांगेय राघव, 'इंसान पैदा हुआ,' पृ० ५०।

किहानियों में 'जुएं', 'प्याले में तूफ़ान', 'भगवान के घर की एक शाम', 'पढ़े लिखे बराती' तथा 'लंगूरा' आदि का उल्लेख किया जा सकता है। राधाकृष्ण तथा जी० पी० श्रीवास्तव ने भी हास्य व्यंग्यपूर्ण कहानियां लिखी हैं। जी० पी० श्रीवास्तव ने कुछ हास्य कहानियां अंग्रेजी रचनाओं के आधार पर लिखी हैं, जिनमें 'झेंपू की कथा' तथा 'काठ का उल्लू' प्रमुख हैं।[४०] श्रीवास्तवजी की मौलिक हास्य-व्यंग्य प्रधान कहानियों में 'दिल बहलाव', 'मौलवी साहब', 'अंडर ग्रेजुएट', 'ओवरकोट', 'काली मेम', 'श्रीमान चडूलानन्द', 'अंट संट', 'जी हुजूर', 'मीठी हँसी', 'पंडितजी', 'कालेज मैच', 'चचा भतीजे', 'पिकनिक' तथा 'स्वामी चौखटानन्द' आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में जिन मुख्य प्रवृत्तियो का प्रचार है, उनके आधार पर ही उसके कतिपय विशिष्ट भेदों का उल्लेख यहां किया गया है। उपर्युक्त विषयगत वर्गीकरण के अतिरिक्त मूल उपकरणों के आधार पर भी कहानी के कुछ वर्ग किये जाते है, जिनका उल्लेख इस पुस्तक के आगामी अध्यायों में इन्हीं तत्वों के सन्दर्भ में किया जायगा। प्राय: एक शताब्दी के काल तक के प्रशस्त हिन्दी कहानी के क्षेत्र में जो मुख्य रूप ऊपर उल्लिखित किये गये है, उनका आधार भारतेन्दु युग, प्रेमचन्द युग, प्रेमचन्दोत्तर युग तथा स्वातंत्र्योत्तर युग में लिखा गया कहानी साहित्य ही है। ऐतिहासिक, सामाजिक, हास्य-व्यंग्यात्मक तथा पौराणिक आदि कहानियों का सूत्रपात भारतेन्दु युग में ही हो चुका था। इन सभी वर्गो की कहानियों में कल्पना तत्वों का अवश्य ही आधिक्य था। आगे चलकर हिन्दी कहानी के कलात्मक स्वरूप का ज्यों-ज्यो विकास होता गया, त्यों-त्यों उसका वैचारिक और बौद्धिक पक्ष भी पुष्ट होता गया। विदेशी भाषाओं के साहित्य के प्रभाव के फलस्वरूप भी आधुनिक कहानी का विषय विस्तार हुआ। ऊपर कहानी के जिन भेदों का उल्लेख किया गया है, उनके अतिरिक्त भी कुछ सामान्य भेद मिलते हैं। परन्तु उनकी चर्चा यहाँ इसलिए नहीं की गयी है क्योंकि कहानी के उपर्युक्त भेदों के परिवेश मे ही प्राय: उनका स्वरूप समाहृत हो जाता है। तात्विक प्राधान्य के आधार पर कहानी के विविध रूपों का परिचय आगे कहानी के मूल तत्वों के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया जा रहा है। यहाँ पर उल्लिखित हिन्दी कहानी के प्रमुख भेद उसके विषय वैविध्य तथा क्षेत्रगत विस्तार के साथ-साथ उसके वैचारिक और चिन्तन पक्ष की समृद्धि के भी द्योतक हैं।

४०. 'इन्दु,' सन् १९१३, पृ० १०७ एवं ३३९।

अध्याय ५

कहानी का शीर्षक

शीर्षक का प्राथमिक महत्व

एक पाठक जब किसी कहानी को उठाता है, तो सबसे पहले उसकी दृष्टि कहानी के शीर्षक पर ही पड़ती है। इसलिए कहानी के सभी उपकरणो में प्राथमिक महत्व शीर्षक का ही होता है। कहानी के शीर्षक में यदि पाठक को कोई नवीनता अथवा आकर्षण नही प्रतीत होता, तो वह उसे पढ़ने की ही इच्छा नही अनुभव करता। बहुत से शीर्षक कहानी की संपूर्ण विषय वस्तु की ही अभिव्यंजना कर देते हैं। ऐसी स्थिति मे यदि पाठक को उस विषय मे कोई रुचि नही होती, तो वह उस कहानी को बिना पढे ही छोड देता है। उदाहरण के लिए यदि किसी कहानी का शीर्षक 'भिखारी' है, तो साधारण पाठक भी उस शीर्षक से यह अनुमान लगा लेगा कि उसमें किसी भिखमगे के दारुण जीवन की करुण गाथा वर्णित की गयी है। उस समय यदि वह इस प्रकार की करुणाजनक कहानी पढने की मनःस्थिति मे नही है, तो वह उस कहानी को नही पढ़ेगा। इसी प्रकार यदि किसी कहानी का शीर्षक 'अनाथ बालक' है, तो पाठक यह अनुमान सहज ही लगा सकता है कि उसमें किसी ऐसे बालक की मार्मिक कथा वर्णित है, जो सर्वथा निराश्रित और माता पिता के सरक्षण से हीन है। अब अगर पाठक उस समय कोई हास्य प्रधान अथवा रोमांचक कहानी पढ़ना चाहता है, तो वह केवल शीर्षक पढ़कर ही कहानी से उदासीन हो जायगा। इससे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि कहानी के समग्र स्वरूप में उसके शीर्षक का महत्वपूर्ण स्थान है।

शीर्षक की आवश्यकता

शीर्षक कहानी का न केवल प्राथमिकता की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण उपकरण है, वरन् समग्र कहानी के स्वरूप का बोध कराने की दृष्टि से भी उसकी महत्ता है। इसलिए शीर्षक कहानी का एक सर्वथा अनिवार्य तत्व है। उसकी आवश्यकता इस

कारण से भी हो सकती है क्योंकि शीर्षक से युक्त होने पर ही कहानी अर्थपूर्ण होती है। यद्यपि केवल अपवाद रूप में कुछ कहानियां शीर्षक विहीन रूप में उपलब्ध होती हैं, परन्तु उनमें एक प्रकार का पहेली बूझने का सा भाव रहता है। जिस प्रकार से साहित्यिक महत्व से हीन पारिवारिक पत्र-पत्रिकाओं में बहुधा कोई एक चित्र देकर 'इस चित्र का शीर्षक बताइए' के रूप में शीर्षक प्रतियोगिता का आयोजन होता है और 'सर्वोत्तम शीर्षक बताने वाले को पुरस्कार दिया जायगा' के आकर्षण मे पाठक वृन्द अनेक प्रकार के उपयुक्त-अनुपयुक्त शीर्षक बताया करते हैं, उसी प्रकार से कभी कभी 'इस कहानी का शीर्षक बताइए' और 'सर्वाधिक उपयुक्त शीर्षक बताने वाले को पुरस्कृत किया जायगा' के रूप में प्रतियोगिताएं होती हैं तथा उनमें भी शीर्षक विहीन कहानियां प्रकाशित की जाती हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि कहानी के शीर्षक के अभाव में भी उसका स्वरूप सम्यक्ता से युक्त अर्थात् निर्दोष नही रहता है। वस्तुतः शीर्षक कहानी का एक सर्वथा अनिवार्य अंग है। जिस प्रकार से नाम के अभाव में किसी मनुष्य की कोई वैयक्तिकता नहीं होती, उसी प्रकार से शीर्षक के अभाव में किसी भी कहानी को समग्र रूपात्मक नही कहा जा सकता। कभी कभी आश्चर्य सूचक अथवा प्रश्न सूचक चिह्नों के रूप में भी कहानियों के शीर्षक दिये रहते हैं। ये शीर्षक कहानी में निहित भावना का द्योतन करते हैं। अतएव इस प्रकार के शीर्षकों से युक्त कहानी को शीर्षक विहीन कहानी नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त शीर्षक विहीन कहानी श्रेष्ठ कोटि की होते हुए भी आकर्षण रहित हो जाती है, क्योंकि शीर्षक का न होना पाठक की दृष्टि में एक ऐसा अटपटापन सा लगता है कि उसे कहानी एक भूलभुलैया अथवा पहेली सी लगने लगती है और उसे पढ़ने का उत्साह स्वयमेव नष्ट हो जाता है।

शीर्षक का स्वरूप

उपकरणात्मक रूप में कहानी के शीर्षक का स्वरूप विविधात्मक होता है। कहानी का शीर्षक उसके विषय, वस्तु, रचना काल, घटना स्थल, पात्र अथवा भावना आदि का द्योतन करता है। पूर्व भारतेन्दु युगीन कहानियों के शीर्षक जिस प्रकार के रखे जाते थे, स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानियों के शीर्षक उनसे सर्वथा भिन्न हैं। इन दो युगों के बीच में कहानीकारों के कलात्मक दृष्टिकोण में निरन्तर परिष्कार होते रहने के कारण शीर्षकों में अन्तर मिलता है। 'उदयभान चरित' या 'रानी केतकी

की कहानी' जैसे शीर्षक कहानी रचना का युगीन सन्दर्भ द्योतन करते हैं जो भारतेन्दु काल के पूर्व की अवस्था थी। यह कहानी की कल्पनात्मकता का भी परिचायक है। भारतेन्दु युग में 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती' जैसे शीर्षक कहानी की तथ्यपरकता के द्योतक हैं। प्रेमचंद युग की कहानियों के शीर्षक 'मर्यादा की वेदी' आदि लेखकों के आदर्शवादी दृष्टिकोण का सूचन करते हैं, साथ साथ भाषा की समृद्धि और संस्कारयुक्तता के परिचायक है। प्रेमचन्दोत्तर काल मे 'डायरी के नीरस पृष्ठ' जैसे शीर्षक मनोवैज्ञानिक तत्वो के कहानी में समावेश का संकेत देते हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल मे 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' 'जैसे शीर्षक लेखकों के बुद्धिवादी दृष्टिकोण के प्रतीक है। इस रूप में कहानी का शीर्षक अपने आप में ही पर्याप्त अर्थपूर्णता रखता है।

शीर्षक सम्बन्धी पाश्चात्य धारणाएं

पाश्चात्य आलोचना शास्त्रियों ने भी कहानी के स्वरूप के सैद्धान्तिक निरूपण के सन्दर्भ मे उसके शीर्षक का विवेचन किया है। प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक चार्ल्स बैरेट ने कहानी के शीर्षक के सम्बन्ध में अपनी धारणा स्पष्ट करते हुए इस तथ्य की ओर सकेत किया है कि कहानी के शीर्षक में विषयानुकूलता, स्पष्टता, आकर्षण, नवीनता एवं सक्षिप्तता आदि के गुणों का समावेश होना चाहिए।[1] फ्रांसिस विवियन ने कहानी के शीर्षक को उसका प्राथमिक अंश बताया है, क्योंकि पाठक का ध्यान सबसे पहले उसी पर जाता है।[2] यदि कहानी का शीर्षक अच्छा होता है, तो वह पाठक को सदैव ही उसके पारायण की प्रेरणा देता है। उसके विपरीत यदि कहानी का शीर्षक अच्छा नही होता, तो पाठक अच्छे शीर्षक से युक्त कहानी की तलाश में पृष्ठ पलटने लगता है। विवियन का विचार है कि सामान्य रूप से अनेक लेखक शीर्षकों से ही आरम्भ करते है, जो अवकाश के क्षणों में या बस अथवा ट्रेन में सफर करते समय उनके मस्तिष्क में आ जाते है। ये शीर्षक तीन प्रकार के हो सकते हैं--क्रियात्मक शीर्षक, कैसे और क्यों शीर्षक तथा घटनात्मक शीर्षक। इनमें से प्रथम के अन्तर्गत वह ऐसे शीर्षकों को रखता है, जो किसी दृष्टान्त, अफवाह, साहसिकता, किस्से, कहानी,

१. चार्ल्स बैरेट, 'शार्ट स्टोरी राइटिंग', पृ० ६७।
२. फ्रांसिस विवियन, 'क्रियेटिव टेक्नीक इन फिक्शन', पृ० ५८।

समस्या अथवा सूत्र पर आधारित होते हैं।[३] इसी श्रेणी के अन्तर्गत वह प्रथम कोटि से ही मिलते जुलते परन्तु भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करने वाले शीर्षकों को रखता है।[४] तीसरी कोटि के शीर्षकों को वह अधिक उपयोगी नहीं समझता। ऐसे शीर्षक प्रायः संक्षेप में कहानी के विचार सूत्र का परिचय देते हैं।[५] डी० मेकांजी ने कहानी के शीर्षक और वर्ण्य विषय में सम्बन्ध निर्दिष्ट करते हुए यह संकेत किया है कि कहानी के शीर्षक को उसकी विषय वस्तु की अभिव्यंजना करने में समर्थ होना चाहिए। मेकांजी का विचार है कि कहानी का शीर्षक उसका महत्वपूर्ण भाग है, जिसकी श्रेष्ठता पर कहानी की सफलता निर्भर करती है।[६]

हिन्दी कहानी के प्रारम्भिक कालीन शीर्षक

आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व जब हिन्दी कहानी का आविर्भाव हुआ था, तब जिस प्रकार के शीर्षकों का उपयोग कहानी में होता था, वैसा स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में दृष्टिगत नहीं होता। हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी का शीर्षक 'रानी केतकी की कहानी' था। यह शीर्षक साहित्यिक विधा के रूप में न केवल 'कहानी' का स्पष्टीकरण कर देता है, वरन् इसके साथ ही एक नवीन साहित्यांग के रूप में भी उसका परिचायक है। यदि भारतेन्दु युगीन साहित्य का उसकी पूर्ववर्ती परम्पराओं की पृष्ठभूमि मे अवलोकन किया जाय, तो इस तथ्य की अवगति होगी कि उस समय अधिकांश गद्यात्मक विधाओ के क्षेत्र मे ऐसी कृतियां उपलब्ध हो जाती है, जिनके शीर्षकों में 'कहानी', 'उपन्यास' अथवा 'नाटक' शब्द जुडा हुआ है। कहानी के क्षेत्र में यदि इंशाअल्ला खां लिखित 'रानी केतकी की कहानी' तथा भारतेन्दु हरिश्चंद्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती' जैसे शीर्षक उपलब्ध होते है, तो उपन्यास

३. उदाहरणार्थ, 'दि केस आफ दि पेपर लेडी', 'दि क्लू आफ दि ट्री आफ हेवेन', 'दि प्राब्लेम आफ दि हैंड ऐंड गेट' तथा 'मिस्ट्री आफ दि थर्ड सिस्टर' आदि शीर्षक।

४. उदाहरणार्थ, 'हाऊ ही वन हर', 'व्हाई दि फर्स्ट टी वाज हांटेड' तथा 'व्हाई शी उड नाट मेरी जेम्स' आदि शीर्षक।

५. उदाहरणार्थ, 'शी वांटेड टु फ़ाल', 'ही वाक्ड इरेक्ट', 'ही टोल्ड एवीथिंग बट दि ट्रथ' तथा 'दि आइडिया वाज सोल्ड' आदि शीर्षक।

६. डी० मेकांजी, 'दि क्राफ्ट आफ दि शार्ट स्टोरी', पृ० २५।

के क्षेत्र में भी भूदेव मुखोपाध्याय लिखित 'ऐतिहासिक उपन्यास'[७] तथा 'मनोहर उपन्यास'[८] जैसे शीर्षक मिलते हैं। इसी प्रकार से नाटक के क्षेत्र में भी 'नहुष नाटक', बेश्यानाटक', 'विचित्र नाटक', 'रामायण नाटक' तथा 'रामलीला बिहार नाटक' जैसे शीर्षक उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार के प्रायः अधिकांश शीर्षकों में लेखकों के अधुनातन दृष्टिकोण से भिन्नता मिलती है। 'कहानी' शब्द न जुड़ा होने पर भी जो शीर्षक रचना काल की प्रारम्भिक स्थिति का द्योतन करते हैं, उनमे राधाचरण गोस्वामी लिखित 'यम-पुर की यात्रा', भारतेन्दु हरिश्चंद्र लिखित 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' तथा सूर्यनारायण दीक्षित लिखित 'चद्रहास का अद्भुत आख्यान' आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

शीर्षक तत्व का स्वरूपात्मक विकास

पूर्व भारतेन्दु युगीन हिन्दी कहानी के क्षेत्र मे 'रानी केतकी की कहानी', 'बैताल पच्चीसी', 'सिंहासन बत्तीसी' तथा 'नासिकेतोपाख्यान' आदि शीर्षक उपलब्ध होते है। ये संस्कृत कथा परम्परा से प्रभावित और प्रायः उसी पर आधारित है। 'इन्दुमती', 'चन्द्रहास का अद्भुत आख्यान' तथा 'दान प्रतिदान' आदि भारतेन्दु युगीन कहानियों के शीर्षक भी प्रायः इसी प्रकार के है। इस युग मे रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय', बंग महिला लिखित 'कुम्भ में छोटी बहू' तथा फूलदेवी लिखित 'बड़े घर की बेटी' आदि कहानियों के शीर्षक में कुछ नवीनता अवश्य मिलती है। आगे चलकर प्रेमचन्द युग में हिन्दी कहानी का सर्वप्रथम प्रौढ रूप उपलब्ध होता है। इस युग में प्रेमचन्द ने 'ऐक्ट्रेस', 'इस्तीफ़ा' 'मर्यादा की वेदी', 'बैंक का दिवाला', 'जिहाद' तथा 'कफ़न', चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने 'उसने कहा था', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने 'माता का हृदय' तथा 'रक्षा बन्धन', जयशंकर 'प्रसाद' ने 'नूरी', 'गुंडा', 'भिखारिन' तथा 'गूदड साई', सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला' ने 'लिली' तथा 'चतुरी चमार', चतुर सेन शास्त्री ने 'सोया हुआ शहर' तथा 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी', पांडेय शर्मा 'उग्र' ने 'दोजख की आग' तथा 'यह कचन सी काया' तथा जैनेन्द्र कुमार ने 'ध्रुवयात्रा' एवं 'प्रणय दंश' आदि शीर्षकों का प्रयोग किया, जो कहानी के स्वरूपात्मक वैविध्य के द्योतक है। उत्तर प्रेमचन्द काल में भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने 'खाली बोतल',

७. यह पुस्तक बंगला में सन् १८५६-५७ में प्रकाशित हुई थी।
८. डा० माताप्रसाद गुप्त, 'हिन्दी पुस्तक साहित्य', पृ० २७।

'सुदर्शन' ने 'अंगूठी का मुकदमा', राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने 'नारी : क्या एक पहेली', उषादेवी मित्रा ने 'आंधी के छन्द', भगवतीचरण वर्मा ने 'राख और चिनगारी', इलाचन्द्र जोशी ने 'डायरी के नीरस पृष्ठ', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन ने 'पैगोडा वृक्ष', उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने 'कहानी लेखिका और झेलम के सात पुल', यशपाल ने 'भस्मावृत चिनगारी', डा० बृन्दावनलाल वर्मा ने 'चोरबाजार की गंगोत्री', राय कृष्ण दास ने 'अंतःपुर का आरम्भ' तथा चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने 'क ख ग' आदि शीर्षक रखे, जो इस क्षेत्र में लेखकों की दृष्टिकोणगत नवीनता के परिचायक हैं। स्वातंत्र्योत्तर युग में कहानी के अन्य सभी तत्वों के साथ शीर्षक तत्व के क्षेत्र में भी अनेक नवीन प्रयोग मिलते हैं। अमृतलाल नागर लिखित 'पढ़े लिखे बराती', बलवन्त सिंह लिखित 'मैं जरूर रोऊंगी', विष्णु प्रभाकर लिखित 'सफर के साथी', डा० धर्मवीर भारती लिखित 'चांद और टूटे हुए लोग', राजेन्द्र यादव लिखित 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' मोहन राकेश लिखित 'जानवर और जानवर', डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'शून्य की पूर्ति', कमलेश्वर लिखित 'खोई हुई दिशाएं' तथा मन्नू भंडारी लिखित 'यही सच है' आदि कहानियो के शीर्षक कहानी में बढती हुई मनोवैज्ञानिकता, प्रयोगात्मकता तथा बौद्धिकता की प्रवृत्तियों के द्योतक है।

कहानी के शीर्षक की प्रमुख विशेषताएं

कहानी के शीर्षक में जब तक कतिपय विशेषताएँ न होंगी, तब तक उसकी सफलता संदिग्ध रहेगी। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, शीर्षक कहानी का प्राथमिक उपकरण है और कहानी पढने के पूर्व सर्वप्रथम शीर्षक का ही प्रभाव पाठक पर पड़ता है। इसलिए कहानी के शीर्षक का कुछ अनिवार्य विशेषताओं से युक्त होना और भी आवश्यक हो जाता है। संक्षेप में, इन विशेषताओं के अन्तर्गत स्पष्टता, विषयानकूलता, लघुता, आकर्षण यु-तता, अर्थपूर्णता तथा नवीनता का उल्लेख किया जा सकता है। हिन्दी कहानी के इतिहास में विविध विकास कालों के अन्तर्गत जो शीर्षक प्रयुक्त किये गये हैं, उनमें प्रायः सभी युगों में इन विशेषताओं से युक्त शीर्षक मिलते हैं। यहां पर इन्ही विशेषताओं के सन्दर्भ में विविध युगीन कहानी के शीर्षकों की सक्षिप्त परिचयात्मक व्याख्या पृथक् पृथक् रूप से प्रस्तुत की जा रही है।

स्पष्टता—कहानी के शीर्षक का सर्वप्रथम गुण उसकी स्पष्टता है। स्पष्ट शीर्षक सदैव ही पाठक के मन पर अपना सहज प्रभाव डालता है। सामान्य रूप से प्रायः

सभी विषयों की कहानियों के शीर्षक स्पष्टता युक्त होने पर ही सफल कहे जाते हैं, यद्यपि जासूसी कोटि की कहानियों के शीर्षक रहस्यमय और अस्पष्ट रखने की भी परम्परा है। हिन्दी कहानी के आविर्भाव काल मे इशाअल्ला खां लिखित 'रानी केतकी की कहानी' जैसी रचनाओ के शीर्षकों में एक प्रकार की सहज स्पष्टता मिलती है, यद्यपि यह कहानी के परम्परागत स्वरूप की ही द्योतक है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी' : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती', प्रेमचंद लिखित 'पूस की रात', विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक लिखित 'रक्षाबन्धन', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पुरस्कार', भगवतीचरण वर्मा लिखित 'दो बांके', विनोद शकर व्यास लिखित 'विद्रोही', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'शरणदाता' तथा उषादेवी मित्रा लिखित 'देशभक्त' आदि कहानियो के शीर्षकों मे स्पष्टता का गुण विद्यमान है। दार्शनिक, प्रतीकात्मक तथा बौद्धिक कोटि की कहानियों मे जो शीर्षक रखे जाते हैं, वे प्रायः इस गुण से रहित होते है । उनमे अभिव्यक्तिगत दुरूहता और क्लिष्टता होती है। हिन्दी मे इस कोटि की रचनाओ मे जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पत्थर की पुकार', राय कृष्णदास लिखित 'वसन्त का स्वप्न', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'पठार का धीरज', कमलाकान्त वर्मा लिखित 'पगडंडी' तथा रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाडी' लिखित 'मकडी का जाला' आदि का उल्लेख किया जा सकता है, जिनके शीर्षक इस दृष्टि से सफल कहे जा सकते है।

विषयानुकूलता:—कहानी की विषय वस्तु का परिचय सर्वप्रथम उसके शीर्षक से ही मिलता है। इसलिए कहानी के शीर्षक की एक विशेषता उसका विषयानुकूल होना भी है। यदि कहानी के शीर्षक और उसके वर्ण्य विषय में कोई सामंजस्य नहीं होता, तो पाठक को वह शीर्षक अनुपयुक्त लगता है और उसके सन्दर्भ मे कहानी भी विचित्र सी प्रतीत होती है। इसलिए कहानी के शीर्षक को विषयानुकल बनाने की दिशा में लेखक को अवश्य सजग रहना चाहिए। हिंदी कहानी के प्रथम विकास काल से लेरक स्वातन्त्र्योत्तर युगीन कहानी तक मे विषयानुकूल शीर्षक उपलब्ध होते हैं। गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पति का पवित्र प्रेम', सूर्यनारायण दीक्षित लिखित 'चन्द्रहास का अद्भुत आख्यान', प्रेमचन्द लिखित 'बैंक का दिवाला' तथा 'माता का हृदय', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'करुणा की विजय', इलाचन्द्र जोशी लिखित 'क्रान्तिकारिणी महिला' तथा यशपाल लिखित 'फलित ज्योतिष' आदि कहानियों के शीर्षक विषय वस्तु की अनुकूलता के गुण से युक्त कहे जा सकते हैं।

लघुता—कहानी के शीर्षक का एक आवश्यक गुण उसका लघु होना भी है। लघु आकार वाला शीर्षक सदैव ही तात्कालिक प्रभाव की सृष्टि करने वाला होता है। व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी कहानी के क्षेत्र में 'मां', 'क्षमा', 'मन्त्र', 'दंड' तथा 'ममता' आदि एक शब्द वाले शीर्षकों से लेकर 'कोई दुख न हो तो बकरी खरीद लो' जैसे आठ शब्दों वाले और एक वाक्य तक के शीर्षक उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार के लम्बे आकार वाले शीर्षक सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से तो अनुमोदनीय नहीं ही होते, साथ ही व्यावहारिक दृष्टि से भी हास्यास्पद लगते हैं। प्रथम विकास काल से लेकर वर्तमान काल तक की हिन्दी कहानी में लघु एवं दीर्घ आकार वाले शीर्षकों का प्रयोग सामान्य रूप से होता रहा है। इनमें बड़ी संख्या यद्यपि लघु शीर्षकों की ही है, परन्तु प्रचार बड़े शीर्षकों का ही प्रायः सदैव ही रहा है। यही नहीं, हिन्दी कहानी के लगभग प्रत्येक विकास काल में दोहरे शीर्षक रखने की भी परम्परा मिलती है। हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी 'उदयभान चरित' अथवा 'रानी केतकी की कहानी' का भी शीर्षक उभयात्मक था। आगे के पृष्ठों में कहानी के शीर्षकों के आकार के अन्तर्गत इन विशेषताओं का पृथक् रूप से उल्लेख किया जा रहा है। यहाँ पर केवल इतना ही संकेत करना पर्याप्त होगा कि संक्षिप्त और लघु शीर्षक अनेक दृष्टियों से प्रभावाभिव्यंजक होता है। प्रेमचन्द लिखित 'कफन', 'मन्त्र' तथा 'मन्दिर', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'ममता', 'आंधी' तथा 'पुरस्कार', रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' लिखित 'सफ़र', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'छाया' तथा 'द्रोही', भगवतीचरण वर्मा लिखित 'प्रायश्चित्त', विनोदशंकर व्यास लिखित 'करुणा' तथा सियारामशरण गुप्त लिखित 'मानुषी' आदि कहानियों के शीर्षक इस दृष्टि से सफल कहे जा सकते हैं।

आकर्षण—कहानी का शीर्षक ही वह प्राथमिक उपकरण है, जो पाठक पर सबसे पहला प्रभाव डालता है। यदि कहानी के शीर्षक को पढ़कर ही पाठक के मन में आकर्षण नहीं उपजता, तो वह कहानी को पढ़ेगा ही नहीं, भले ही उसके शेष सभी उपकरण अत्यन्त कलात्मक रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। इसीलिये कहानी के शीर्षक का आकर्षक होना सफल कहानी का पहला लक्षण है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि शीर्षक ही कहानी का विज्ञापन है, जो उसके मूल्य में कमी अथवा वृद्धि करता है। आकर्षण की दृष्टि से हिन्दी कहानी से अनेक सफल शीर्षकों के उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, यथा—'पूस की रात', 'बुद्धू का कांटा', 'जुगनू की चमक', 'मर्यादा की वेदी', 'अंतःपुर का आरम्भ', 'चार के चार', 'तीन निगाहों की एक तस्वीर'

तथा 'जार्ज पंचम की नाक' आदि। भारतेन्दु युग में राधाचरण गोस्वामी लिखित 'यमपुर की यात्रा', केशवप्रसाद सिंह लिखित 'आपत्तियों का पहाड़' तथा गंगाप्रसाद अग्निहोत्री लिखित 'सच्चाई का शिखर' आदि शीर्षक युगीन पृष्ठभूमि की दृष्टि से आकर्षण युक्त कहे जा सकते हैं। प्रेमचन्द युग में प्रेमचन्द लिखित 'बड़े घर की बेटी', तथा 'शतरंज के खिलाड़ी', चन्द्रधर शर्मा गुलेरी लिखित 'उसने कहा था', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'सिकन्दर की शपथ', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'राजा साहब का ठेंगा', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी' तथा जैनेन्द्र कुमार लिखित 'नीलम देश की राजकन्या' आदि कहानियों के शीर्षक भी इस गुण से युक्त हैं। प्रेमचन्दोत्तर काल में भगवतीप्रसाद वाजपेयी लिखित 'कबाड़ी का ताजमहल', 'सुदर्शन' लिखित 'हार की जीत', राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह लिखित 'नारी : क्या एक पहेली', उषादेवी मित्रा लिखित 'आंधी के छन्द', भगवतीचरण वर्मा लिखित 'दो बांके', इलाचन्द्र जोशी लिखित 'खंडहर की आत्माएं', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'पठार का धीरज', उपेन्द्रनाथ 'अश्क' लिखित 'कहानी लेखिका और झेलम के सात पुल', यशपाल लिखित 'तुमने क्यों कहा था मै सुन्दर हूं', डा० वृन्दावनलाल वर्मा लिखित 'चोर बाजार की गंगोत्री', राय कृष्णदास लिखित 'अन्त:पुर का आरम्भ' तथा 'चन्द्रगुप्त विद्यालंकार लिखित 'क ख ग' आदि कहानियों के शीर्षक भी आकर्षक कहे जा सकते हैं। स्वातन्त्र्योत्तर युग में हिन्दी कहानी मे मनोविश्लेषणात्मक तथा बौद्धिकता के प्रवृत्तिगत बाहुल्य के फलस्वरूप भी कहानी के शीर्षकों में आकर्षण आया। इस दृष्टि से अमृतलाल नागर लिखित 'पाप मेरा वरदान', राजेन्द्र यादव लिखित 'जहां लक्ष्मी कैद है,' कमलेश्वर लिखित 'खोई हुई दिशाएं' तथा निर्मल वर्मा लिखित 'जलती झाड़ी' आदि शीर्षक उल्लिखित किये जा सकते हैं।

अर्थपूर्णता—कहानी के शीर्षक मे अर्थपूर्णता भी होनी चाहिए। कहानी की विषय वस्तु और लेखक के अभीष्ट के अनुसार ही उसकी सार्थकता भी स्वतः सिद्ध होनी चाहिए। इसके विपरीत यदि कहानी का शीर्षक अर्थहीन हो और कहानी के वर्ण्य विषय तथा कहानीकार के उद्देश्य से उसका लेश मात्र भी तालमेल न बैठता हो, तो उससे न तो पाठक प्रभावित होता है और न उसकी उत्सुकता वृत्ति का ही उससे शमन होता है। इसलिए भी कहानी के शीर्षक में सार्थकता का गुण समाविष्ट होना आवश्यक है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में अनेक शीर्षक ऐसे मिलते हैं, जो कहानी में वर्णित विषय वस्तु के अनुकूल अर्थ इंगित करते हैं। उदाहरण के लिए 'सज्जनता का

दंड', 'बैंक का दिवाला', 'सुजान भगत', 'गृहदाह', 'बूढ़ी काकी', 'मनुष्य का परम धर्म', 'त्याग का प्रेम', 'शरणदाता', 'मेजर चौधरी की वापसी', 'गुदड़ी में लाल' तथा 'उतरा नशा' आदि शीर्षकों का उल्लेख किया जा सकता है। भारतेन्दु युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती', कार्तिक प्रसाद खत्री लिखित 'दामोदर राव की आत्मकहानी', गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पति का पवित्र प्रेम' तथा बंगमहिला लिखित 'कुम्भ में छोटी बहू' आदि कहानियों के शीर्षक भी अर्थ व्यंजना के गुण से युक्त हैं। प्रेमचन्द युग में प्रेमचन्द लिखित 'डिग्री के रुपये', 'घर जमाई', 'दो बहिनें' तथा 'माता का हृदय', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'माता का हृदय','रक्षा बन्धन', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'करुणा की विजय' तथा चतुरसेन शास्त्री लिखित 'विधवा आश्रम' जैसे शीर्षक भी कहानी में वर्णित विषय वस्तु को अभिव्यंजित करते हैं। प्रेमचन्दोत्तर तथा स्वातंत्र्योत्तर युगों में कहानी बौद्धिक, दार्शनिक और प्रतीकात्मक प्रवृत्तियों से युक्त हो गयी, परन्तु फिर भी शीर्षकों में यह गुण सदैव विद्यमान रहा। 'सुदर्शन' लिखित 'अलबम', राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह लिखित 'गांधी टोपी', भगवतीचरण वर्मा लिखित 'दो बांके', इलाचन्द्र जोशी लिखित 'क्रान्तिकारिणी महिला', अमृतलाल नागर लिखित 'गरीब की हाय' तथा कमल जोशी लिखित 'पत्थर की आंख' आदि कहानियों के शीर्षक भी कहानी के मूल विषय की अर्थ व्यंजना करने में समर्थ हैं।

नवीनता—कहानी के शीर्षक में नवीनता भी होना आवश्यक है। यदि कहानी का शीर्षक साधारण, प्रभावहीन, अर्थरहित तथा घिसा पिटा होता है, तब भी उससे पाठक के मन में किसी प्रकार की जिज्ञासा नहीं उपजती। इसके विपरीत अभिनव प्रतीत होने वाला शीर्षक पाठक के मन में एक प्रकार की स्वाभाविक कौतूहल की भावना को जाग्रत करता है। 'एक आंख की कसर', 'सिर्फ एक आवाज', 'कोठरी की बात', 'सुइयां गलत चलती हैं', 'एथेन्स का सत्यार्थी', 'कैसेंड्रा का अभिशाप', 'नारद का अधर्म', 'पत्थर की पुकार', 'स्वर्ग के खंडहर', 'आखिरी स्केच', 'अंगूठी का मुकदमा', 'पुतली जी उठी', 'रमणी का रहस्य', 'अन्तःपुर का आरम्भ', 'हार की जीत', 'उसने कहा था' तथा 'मैं हार गई' आदि शीर्षक इस दृष्टि से सफल कहे जा सकते हैं। सामान्य रूप से शीर्षक की स्वरूपगत नवीनता से उसके रचना काल का बोध भी होता है। यदि कहानी के शीर्षक में कोई नवीनता नहीं होती तो उससे पाठक को युग बोध नहीं होता और परम्परागत साहित्य में रुचि न होने पर वह प्रायः शीर्षक के ही नवीन न

होने पर कहानी की उपेक्षा कर जाता है। भारतेन्दु युगीन रचनाओं, विशेषतः किशोरी लाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती', कार्तिकप्रसाद खत्री लिखित 'दामोदर राव की आत्म कहानी' तथा गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पति का पवित्र प्रेम' आदि कहानियों के शीर्षकों में कोई नवीनता लक्षित नही होती है और ये शीर्षक हिन्दी कहानी के आविर्भाव युगीन स्वरूप का द्योतन करते हैं। प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती युगों में यद्यपि अनेक कहानीकारों ने परम्परागत दृष्टिकोण के ही आधार पर अपनी रचनाओं के शीर्षक रखे, परन्तु इस काल में अनेक लेखकों ने नवीन ढंग के शीर्षक भी रखे। इन युगो के नवीनता सूचक शीर्षकों मे प्रेमचन्द लिखित 'सफ़ेद खून', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'रूप की छाया', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'सोया हुआ शहर', होमवती देवी लिखित 'धरोहर', राधाकृष्ण लिखित 'लैला की शादी', अमृतलाल नागर लिखित 'प्याले में तूफान', रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' लिखित 'आखिरी स्केच', इलाचन्द्र जोशी लिखित 'परित्यक्ता', राय कृष्णदास लिखित 'आंखों की थाह', यशपाल लिखित 'फूलों का कुर्ता' तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'दुख और तितलियां' आदि उल्लिखित किये जा सकते हैं।

शीर्षक का आकार—शीर्षक के आकार के सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम निर्धारित नही है। इस विषय में कोई रूढ़ नियम बताना उचित भी नहीं है। परन्तु इसका आशय यह नही है कि शीर्षक कितना भी बडा हो सकता है। वस्तुतः शीर्षक कहानी का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। उसका महत्व कहानी के अन्य सभी तत्वों की तुलना मे प्राथमिक है। सर्वप्रथम एक पाठक कहानी के शीर्षक से ही उसकी विषय वस्तु का अनुमान लगाता है। अपनी रुचि-अरुचि के अनुसार वह केवल शीर्षक देखकर ही कहानी को पढ़ने अथवा न पढ़ने का निश्चय करता है। इसीलिए शीर्षक को सतुलित आकार का भी होना आवश्यक है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में एक शब्द से लेकर एक वाक्य तक के शीर्षक मिलते हैं। उदाहरण के लिए एक शब्द के शीर्षक में प्रेमचन्द लिखित 'मंत्र' तथा एक वाक्य के शीर्षक में यशपाल लिखित 'तुमने क्यों कहा था मैं सुंदर हूं?' कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। हिन्दी कहानी के इतिहास के प्रथम विकास काल से ही छोटे शीर्षकों के साथ कतिपय बड़े शीर्षक भी उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के लिए भारतेन्दु युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती' का उल्लेख किया जा सकता है। आगे चलकर 'कोई दुख न हो तो बकरी खरीद लो', 'बासी भात में खुदा का साझा', 'दुखवा मैं कासे कहूं

कोरी सजनी' तथा 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' जैसे लम्बे शीर्षक मिलते हैं। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रायः एक से लेकर तीन शब्दों तक के शीर्षकों की संख्या सबसे अधिक है। यहां पर शब्द संख्या के आधार पर विविध युगीन हिन्दी कहानियों के शीर्षकों का संक्षिप्त वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

एक शब्द वाले शीर्षक—हिन्दी कहानी के आविर्भाव काल से ही एक शब्द वाले शीर्षकों के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती', बंगमहिला लिखित 'वालिया' तथा प्यारेलाल गुप्त लिखित 'समालोचक' आदि कहानियों के शीर्षक इसी कोटि के हैं। आगे चलकर हिन्दी कहानी के विकास के परवर्ती युगों में तो एक शब्द वाले शीर्षक बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं। 'शांति', 'प्रतिज्ञा', 'पागल', 'कफ़न', 'आंधी', 'रोज', 'पाजेब', 'नूरी', 'शिकार', 'ममता', 'मिलाप', 'अंधेर', 'अमृत', 'उपदेश', 'फतेह', 'सत्याग्रह', 'परीक्षा', 'चकमा', 'नेकी', 'विमाता', 'धोखा', 'अमृत', 'क्षमा', 'नैराश्य', 'मंदिर', 'इस्तीफा', 'विद्रोही', 'न्याय', 'मा', 'कजाकी', 'दंड', 'लैला', 'चोरी', 'शूद्रा', 'वेश्या' तथा 'भूत' आदि एक शब्द वाले शीर्षक परवर्ती विकास युगों में मिलते है। सैद्धान्तिक रूप से एक शब्द वाले शीर्षकों में लघुता का गुण स्वभावतः विद्यमान रहता है। यदि लेखक सजग भाव से कहानी के वर्ण्य विषय के अनुसार उसके उपयुक्त शब्द का चयन करके उसे शीर्षक रूप में प्रयुक्त करता है, तो उसमें विशेष प्रभावयुक्तता आ जाती है। प्रेमचन्द लिखित 'फ़ातिहा', 'विस्मृति', 'मन्त्र', 'प्रारब्ध' तथा 'कफ़न', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'आंधी', 'आकाशदीप', 'देवदासी' तथा 'प्रतिध्वनि', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'टकराहट', 'कुछ', 'खेल' तथा 'पाजेव', पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'जल्लाद' तथा 'चादनी', यशपाल लिखित 'अभिशप्त', भगवतीचरण वर्मा लिखित 'प्रायश्चित्त' तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'विपथगा' तथा 'रोज़' आदि कहानियों के शीर्षक इस दृष्टि से सफल कहे जा सकते हैं।

दो शब्दों वाले शीर्षक—दो शब्द वाले कहानियों के शीर्षक भी हिन्दी कहानी के प्रथम विकास काल से ही उपलब्ध होते हैं। भारतेन्दु युग में बंगमहिला लिखित 'दान प्रतिदान' तथा 'दुलाई वाली', चांदनी लिखित 'प्रोषित पतिका', लक्ष्मीधर वाजपेयी लिखित 'तीक्ष्ण छुरी', प्रेमनाथ भट्टाचार्य लिखित 'पक्का गठबन्धन', सत्यदेव लिखित 'कीर्त्ति कालिमा', मधु मंगल लिखित 'भुतही कोठरी' तथा शिवनारायण शुक्ल लिखित 'सात कुमार' आदि कहानियों के शीर्षक इसी कोटि के हैं। आगे चलकर

'खून सफ़ेद', 'रानी सारंधा', 'राजा हरदौल', 'तिरिया चरित्तर', 'धर्म संकट', 'सैलानी बंदर', 'बूढ़ी काकी', 'विषम समस्या', 'लाल फीता', 'विचित्र होली', 'स्वत्व रक्षा', 'बांका जमींदार', 'अनाथ लड़की', 'पंच परमेश्वर', 'ईश्वरी न्याय', 'कप्तान साहब' तथा 'लाल सरोवर' आदि शीर्षक परवर्ती युगों में उपलब्ध होते हैं। सैद्धान्तिक दृष्टि-कोण से दो शब्द वाले शीर्षकों की गणना भी लघु आकार वाले शीर्षकों के अन्तर्गत ही की जाती है। व्यवहारतः एक शब्द वाले शीर्षकों की तुलना में दो शब्द वाले शीर्षकों मे कहानी के वर्ण्य विषय की अर्थ व्यंजना अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टता से होती है। ऐसे शीर्षक भी कहानी की प्रभावपूर्णता में वृद्धि करते हैं। दो शब्दों वाले कलात्मक शीर्षकों में प्रेमचन्द लिखित 'स्वत्व रक्षा', 'समर यात्रा', 'गुप्त धन' तथा 'पूर्व संस्कार', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'व्यर्थ प्रयत्न', 'रेल में' तथा 'काल धर्म', जयशंकर प्रसाद लिखित 'समुद्र सन्तरण', 'सुनहला सांप' तथा 'व्रत भंग', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'अमर वल्लरी' तथा 'एकाकी तारा', भगवती चरण वर्मा लिखित 'दो बांके' तथा अन्नपूर्णानन्द लिखित 'अकबरी लोटा' आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

तीन शब्दों वाले शीर्षक—आरम्भिक युगीन कहानी साहित्य से लेकर वर्तमान काल तक की हिन्दी कहानी में तीन शब्द वाले शीर्षकों का प्रयोग बहुत अधिकता से हुआ है। प्रथम विकास काल में राधाचरण गोस्वामी लिखित 'यमपुर की यात्रा', केशव प्रसाद सिंह लिखित 'आपत्तियों का पहाड़', पार्वतीनन्दन लिखित 'प्रेम का फुव्वारा', गंगाप्रसाद अग्निहोत्री लिखित सच्चाई का शिखर तथा रुद्रदत्त भट्ट लिखित अजीब दास की जासूसी' आदि शीर्षक इसी कोटि के हैं। परवर्ती युग में भी 'सिर्फ एक आवाज', 'नमक का दरोगा', 'हार की जीत', 'उसने कहा था', 'गैरत की कटार', 'बेटी का धन', 'घमंड का पुतला', 'दुर्गा का मंदिर', ब्रह्मा का स्वांग', 'शोक का पुरस्कार', 'अमावस्या की रात', 'त्यागी का प्रेम', 'शादी की वजह', 'माता का हृदय', 'सुहाग का शव' तथा 'दिल की रानी' आदि तीन शब्दों वाले शीर्षक विभिन्न लेखकों द्वारा प्रयुक्त किये गये हैं। सैद्धान्तिक रूप में तीन शब्दों वाले शीर्षक भी प्रायः संक्षिप्त शीर्षकों की कोटि में ही रखे जाते हैं। एक और दो शब्दों वाले शीर्षकों की तुलना में तीन शब्दों वाले शीर्षक अर्थ सृष्टि तथा प्रभावाभिव्यंजना की दृष्टि से उपयोगी होते हैं। तीन शब्दों वाले कलात्मक शीर्षकों के अन्तर्गत प्रेमचन्द लिखित 'सुहाग की साड़ी' तथा 'लोकमत का सम्मान', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'एक पन्द्रह मिनट', सियाराम शरण गुप्त लिखित 'कोटर और कुटीर', यशपाल लिखित 'पिंजड़े की उड़ान', राय कृष्णदास लिखित

'अन्तःपुर का आरम्भ', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'आशंकित का हृदय', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'खँडहर की लिपि' तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'कैसेंड्रा का अभिशाप' आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

चार शब्दों वाले शीर्षक—हिन्दी कहानी के इतिहास के सभी विकास युगों में चार शब्दों वाले शीर्षक उपलब्ध होते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न', रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय', गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पति का पवित्र प्रेम' तथा सूर्यनारायण दीक्षित लिखित 'चन्द्रहास का अद्भुत आख्यान' शीर्षक इसी कोटि के हैं। परवर्ती युगों में भी 'गंगा, गंगदत्त और गांगी', 'उस पार का योगी', 'एक आंच की कसर', 'यही मेरी मातृभूमि है', 'पंडित मोटेराम की डायरी', 'दो बैलों की कथा', 'नबी का नीति निर्वाह', 'मनुष्य का परम धर्म', 'सभ्यता का एक दिन', 'चारा काटने की मशीन', 'बड़े घर की बेटी' तथा 'सुइयां गलत चलती हैं' आदि चार शब्दों वाले शीर्षकों का प्रयोग विभिन्न कहानीकारों द्वारा किया गया है। सिद्धान्ततः चार शब्दों वाले शीर्षकों की गणना लघु आकार वाले संक्षिप्त शीर्षकों के अन्तर्गत नहीं की जाती है। इस श्रेणी के शीर्षक जब तक विशेष रूप से अर्थयुक्त अथवा कलात्मक नहीं होते, तब तक वे कहानी की प्रभावात्मकता की वृद्धि में सहायक नहीं होते। प्रेमचन्द लिखित 'एक आंच की कसर', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'दिन, रात और सबेरा', 'सुदर्शन' लिखित 'दिल्ली का अन्तिम दीपक' तथा 'धर्म की वेदी पर', उषादेवी मित्रा लिखित 'जीवन का एक दिन', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'राजा साहब का ठेंगा', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'राजा साहब की पतलून', इलाचन्द्र जोशी लिखित 'डायरी के नीरस पृष्ठ', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'नई कहानी का प्लाट' तथा उपेन्द्रनाथ 'अश्क' लिखित 'वह मेरी मंगेतर थी' आदि कहानियों के शीर्षक इस दृष्टि से सफल कहे जा सकते हैं।

पांच शब्दों वाले शीर्षक—सैद्धान्तिक रूप से पांच शब्दों वाले शीर्षक कहानी में वाछनीय नहीं समझे जाते। आरम्भिक युगीन हिन्दी कहानी में इस प्रकार के शीर्षकों का अभाव भी मिलता है। इस युग में कुन्दनलाल शाह लिखित 'प्रत्युपकार का एक अद्भुत उदाहरण' तथा उदयनारायण वाजपेयी लिखित 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' ही इस कथन का अपवाद हैं। प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती युगों में इस प्रकार के शीर्षक उपलब्ध होते हैं। 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन', 'सांसारिक प्रेम और देश प्रेम', 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी', 'चैत की निंदिया जिया अलसाने' तथा 'लाल

रेशम का पतला धागा' आदि इसी कोटि के शीर्षक हैं। बड़े शीर्षक हिन्दी कहानी के क्षेत्र में बढ़ती हुई प्रयोगात्मकता तथा विचारात्मकता का द्योतन भी करते हैं। ये शीर्षक अपने आप में ही एकरूपात्मक प्रभावपूर्णता के प्रतीक होते हैं। इसीलिए आधुनिक युग के अनेक कहानीकारों ने न्यूनाधिक रूप से पांच शब्दों वाले शीर्षकों का प्रयोग किया है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' लिखित 'जुदाई की शाम का गीत', पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'घूंघट का पट खोल री', राजेन्द्र यादव लिखित 'भविष्य के आसपास मंडराता अतीत', मन्नू भंडारी लिखित 'तीन निगाहों की एक तस्वीर' तथा उषा प्रियंवदा लिखित 'जिन्दगी और गुलाब का फूल' आदि शीर्षकों का उल्लेख इसी श्रेणी में किया जा सकता है।

पांच से अधिक शब्दों वाले शीर्षक—पांच से अधिक शब्दों वाले शीर्षकों का प्रयोग भी विविध युगीन हिन्दी कहानी के क्षेत्र मे अनेक लेखकों द्वारा किया गया है। भारतेन्दु युग से लेकर स्वातंत्र्योत्तर युग तक की कहानी में ऐसे शीर्षक समान रूप मे विद्यमान मिलते है। कही कही तो इनका विस्तार एक वाक्य तक है। 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती', 'कोई दुख न हो तो बकरी खरीद लो', 'बासी भात में खुदा का साझा', 'घोड़े पर हौदा हाथी पर जीन', 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी', तथा 'तुमने क्यों कहा था मैं सुदर हूं' आदि शीर्षक पांच शब्दों से अधिक के हैं। कलात्मक दृष्टि से बड़े शीर्षक कहानी के लिए अनुपयुक्त बताये जाते है। परन्तु यदि इनके शब्द-चयन में सजगता बरती जाय और ये कहानी में निहित अर्थ की सांकेतिक अथवा प्रतीकात्मक व्यंजना करने मे समर्थ हो तो इनसे उसकी प्रभावात्मकता में अवश्य वृद्धि हो जाती है। जैनेन्द्र कुमार लिखित 'अमिया तुम चुप क्यों हो गईं', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'स्वामी नारदानन्द जी महाराज और मैं', कृष्णदेव प्रसाद गौड 'बेढब बनारसी' लिखित 'मंगल ग्रह की युवती से मुलाकात', उपेन्द्रनाथ 'अश्क' लिखित 'कहानी लेखिका और झेलम मे सात पुल' तथा पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'और तब महाराजकुमार को नीद आई' आदि शीर्षक इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उर्दू शब्दों वाले शीर्षक—हिन्दी कहानी के क्षेत्र में अनेक शीर्षक उर्दू शब्दावली पर आधारित हैं। उर्दू शब्दों का देवनागरी में प्रयोग तथा प्रचलन इसका एक कारण है। हिन्दी के अनेक लेखक पहले उर्दू में साहित्य रचना करते थे। वे भी इस परम्परा को अपने साथ लाये। 'पाजेब', 'गिला', 'आखिरी मंजिल', 'नसीहतों का दफ़्तर',

'फ़तेह', 'इस्तीफा', 'आखिरी खत', 'फातिहा', 'कातिल' तथा 'तगादा' आदि शीर्षक उर्दू शब्दों वाले ही हैं। मुंशी प्रेमचंद लिखित 'खुदाई फ़ौजदार', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'सजा', पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'दोज़ख की आग', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'नूरी', रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' लिखित 'सफ़र', जी० पी० श्रीवास्तव लिखित 'दिल बहलाव', यशपाल लिखित 'दर्देदिल' तथा राधाकृष्ण लिखित 'लैला की शादी' आदि शीर्षक भी उर्दू शब्दों पर आधारित हैं। स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानी की भाषा में देशी-विदेशी अनेक भाषाओं की प्रचलित शब्दावली को सहज भाव से ग्रहण कर उसका प्रयोग किया जा रहा है। इसी कारण इस काल की हिन्दी कहानी में उर्दू शब्दों वाले शीर्षकों की संख्या में भी वृद्धि हुई है।

अंग्रेजी शब्दों वाले शीर्षक—अंग्रेजी भाषा के अनेक शब्दों का प्रयोग हिन्दी में सामान्य रूप से होने के कारण बहुत से शीर्षक अंग्रेजी शब्दों पर आधारित भी उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार के शीर्षकों का विशेष व्यवहार प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती युगों में हुआ। 'स्पेशल परमिट', 'डिमांस्ट्रेशन', 'किडनेप्ड', 'इंस्टालमेंट', 'लाटरी', 'क्रिकेट मैच', 'इंटरव्यू लेटर', 'ओवरकोट', 'कालेज मैच', 'वारंट' तथा 'टी पार्टी', 'फ़ायर ब्रिगेड', 'सिगनेलर' तथा 'पिकनिक' आदि इसी कोटि के शीर्षक हैं। हिन्दी कहानियों मे अंग्रेजी शीर्षको का व्यवहार कुछ स्थितियों में तो कहानी के वर्ण्य विषय के अनुकूल होता है तथा कुछ में केवल प्रयोगात्मकता की प्रवृत्ति को प्रश्रय देने के लिए किया जाता है। कुछ अंग्रेजी शीर्षक कहानी की विषय वस्तु की अर्थव्यजना में समर्थ होने के कारण सफल भी कहे जा सकते हैं। प्रेमचन्द लिखित 'ऐक्ट्रेस', यशपाल लिखित 'गुडबाई', जी० पी० श्रीवास्तव लिखित 'अंडर ग्रेजुएट', भगवतीचरण वर्मा लिखित 'विक्टोरिया क्रास', हरिशंकर शर्मा लिखित 'पंक्चुअलिटी', इलाचन्द्र जोशी लिखित 'केस हिस्ट्री', होमवती देवी लिखित 'एप्रिल फूल', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन लिखित 'लेटर बक्स', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'फोटोग्राफ़ी' तथा रमेश बक्षी लिखित 'क्रासिंग' आदि शीर्षक इसी प्रकार के हैं।

शीर्षक के विविध रूप तथा भेद

कहानी के शीर्षक के स्वरूप निदर्शन के सन्दर्भ में ऊपर इस तथ्य की ओर संकेत किया जा चुका है कि उसका स्वरूप विविधात्मक होता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में विभिन्न रूपों तथा भेदों के अन्तर्गत विविध प्रकार के शीर्षक उपलब्ध होते हैं। कहीं

पर किसी शीर्षक से कहानी में निहित मुख्य भाव का बोध होता है, तो कहीं पर उससे कहानी की मुख्य घटना का संकेत किया जाता है। कहीं पर यदि कोई संज्ञासूचक शीर्षक मिलता है, तो कहीं विशेषण परक शीर्षक। इसी प्रकार से यदि कुछ शीर्षक संबंध सूचक होते हैं, तो कुछ शीर्षक तथ्यपरक होते हैं। यहाँ पर स्थान सूचक शीर्षक, घटना-व्यापार सूचक शीर्षक, कौतूहलजनक शीर्षक, व्यंग्यपूर्ण शीर्षक, हास्योद्भावक शीर्षक, नायक अथवा नायिका के नाम पर शीर्षक, मनोवृत्ति पर आधारित शीर्षक, भावना पर आधारित शीर्षक, ऐतिहासिक कहानियों के शीर्षक, बालोपयोगी कहानियों के शीर्षक, सम्बन्ध सूचक शीर्षक, कालावधि सूचक शीर्षक, मुहावरों-कहावतों पर आधारित शीर्षक तथा दोहरे शीर्षकों आदि के रूप में हिन्दी कहानी के इतिहास के विविध विकास युगों में उपलब्ध शीर्षकों के विविध रूपों और भेदो का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया जा रहा है।

स्थानसूचक शीर्षक—हिन्दी कहानी के क्षेत्र में बहुत से स्थान सूचक शीर्षक मिलते हैं। ये कहानी के घटना क्षेत्र के परिचायक होते हैं। भारतेन्दु युग में राधाचरण गोस्वामी लिखित 'यमपुर की यात्रा' तथा केशवप्रसाद सिंह लिखित 'चन्द्रलोक की यात्रा' आदि शीर्षक इसी प्रकार के हैं। ये कहानियां मुख्यतः कल्पनात्मक हैं। आगे चलकर यथार्थपरक कहानियों के क्षेत्र में भी स्थान सूचक शीर्षक उपलब्ध होते हैं। प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती युगों में मुंशी प्रेमचन्द लिखित 'ईदगाह', 'दुर्गा का मन्दिर' तथा 'पिसनहारी का कुआं', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'दिल्ली में', पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'दिल्ली की बात', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'पेरिस की नर्तकी' तथा 'सुदर्शन' लिखित 'दिल्ली का अन्तिम दीपक', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'सिंहगढ़ विजय' तथा 'जैसलमेर की राजकुमारी', जैनेन्द्रकुमार लिखित 'नीलम देश की राजकन्या', इलाचन्द्र जोशी लिखित 'खंडहर की आत्माएँ', उपेन्द्रनाथ 'अश्क' लिखित 'कहानी लेखिका और झेलम के सात पुल', डा० वृन्दावनलाल वर्मा लिखित 'अम्बरपुर के अमर वीर' तथा अमृतराय लिखित 'कस्बे का एक दिन' आदि स्थान सूचक शीर्षक उपलब्ध होते हैं।

घटना व्यापार सूचक शीर्षक—कहानी का शीर्षक उसके घटना व्यापार का सूचक रखने की परम्परा का प्रकार भी वर्तमान हिन्दी कहानी में समान रूप से मिलता है। आरम्भिक विकास काल में इस प्रकार के शीर्षक रखने की आकर्षक परम्परा अपेक्षाकृत अधिक थी। इस प्रकार के शीर्षक घटना व्यापार का पूर्ण बोध कराने में समर्थ होते हैं। 'प्रतिज्ञा', 'प्रायश्चित्त', 'बैंक का दिवाला', 'वैर का अंत', 'क्रिकेट मैच', 'होली का उपहार', 'सत्याग्रह' तथा 'इस्तीफा' आदि शीर्षक कहानी के घटना

व्यापार का सूचन करने वाले हैं। प्रथम विकासकालीन हिन्दी कहानी में मधु मंगल लिखित 'भुतही कोठरी', रुद्रदत्त भट्ट लिखित 'अजीबदास की जासूसी' तथा गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पति का पवित्र प्रेम' आदि कहानियों के शीर्षक भी इसी कोटि के हैं। प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती कहानी साहित्य में भी इस प्रकार के प्रयुक्त शीर्षक प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। प्रेमचन्द लिखित 'त्यागी का प्रेम' तथा 'माता का हृदय', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'अन्धे का भेद' तथा 'कश्मीर प्रवास के दो अनुभव', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'परिवर्तन', 'उषादेवी मित्रा लिखित 'रूप का मोह', सियारामशरण गुप्त लिखित 'त्याग', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पुरस्कार' तथा चन्द्रगुप्त विद्यालंकार लिखित 'भूल' एवं 'सन्देह' आदि कहानियों के शीर्षक भी घटना व्यापार का ही सूचन करते हैं।

कौतूहलजनक शीर्षक—कहानी के जो शीर्षक कौतूहल जनक होते हैं, वे पाठक के हृदय में इस रचना को पढ़ने की उत्कंठा जाग्रत करते हैं। इस कोटि के शीर्षक उन शीर्षकों से भिन्न होते हैं, जो कहानी की मूल घटना का द्योतन अपने माध्यम से ही करने में समर्थ होते हैं। 'उसने कहा था', 'वह हंसी थी', 'आंधी', 'वज्रपात', 'ज्वालामुखी', 'सुहाग का शव' तथा 'डामल का कैदी' आदि शीर्षकों से पाठक के मन में कहानी की वर्ण्य वस्तु के प्रति उत्कंठा की भावना उत्पन्न होती है। प्रेमचन्द लिखित 'जीवन का शाप', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'ग्रामोफोन का रिकार्ड', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', लिखित 'देवी', यशपाल लिखित 'फूलों का कुर्त्ता', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'आकाश-दीप' तथा 'स्वर्ग के खंडहर में', विनोदशंकर व्यास लिखित 'घृणा का देवता', अमृत लाल नागर लिखित 'प्याले में तूफान', इलाचन्द्र जोशी लिखित 'रात्रिचरण' तथा राजेन्द्र यादव लिखित 'भविष्य के आसपास मंडराता अतीत' आदि शीर्षक पाठक के हृदय में कौतूहल की भावना उत्पन्न करते हैं।

व्यंग्यपूर्ण शीर्षक—कहानी के कुछ शीर्षक ऐसे होते हैं, जो किसी विडम्बनाजनक स्थिति के प्रति व्यंग्य के सूचक होते हैं। इस प्रकार के शीर्षक प्रायः परस्पर विरोधी भावनाओं का भी द्योतन करते हैं। भारतेन्दु युग में केशवप्रसाद सिंह लिखित 'आपत्तियों का पहाड़' तथा गंगाप्रसाद अग्निहोत्री लिखित 'सच्चाई का शिखर' आदि शीर्षक भी इसी कोटि के हैं। प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती युगों में 'जन्म के अंधे', 'सुहाग का शव', 'गैरत की कटार', 'घमंड का पुतला', 'सौभाग्य के कोड़े', 'आंसुओं की होली', 'अग्नि समाधि' आदि शीर्षक भी पाठक के हृदय में कहानी में वर्णित विडम्बनात्मक अथवा

विरोधात्मक वस्तु के प्रति कौतूहल उत्पन्न करते हैं। जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'स्वर्ग के खंडहर में', प्रेमचन्द लिखित 'नरक का मार्ग', राय कृष्णदास लिखित 'नर राक्षस', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'स्वामिनी नमक हलाल', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'आदम की डायरी', रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' लिखित 'भद्दी दुनिया' तथा उषादेवी मित्रा लिखित 'चम्मच भर आंसू' आदि शीर्षकों का उल्लेख इसी श्रेणी में किया जा सकता है।

हास्योद्भावक शीर्षक—कहानी के कुछ शीर्षक ऐसे होते हैं, जिनको पढ़ते ही हास्य की उद्भावना होती है। इस प्रकार के शीर्षक मुख्यतः हास्य प्रधान कहानियों के ही रखे जाते है। ये पात्रों के नाम पर भी होते है तथा इनसे कहानी में वर्णित विषय वस्तु का सूचन भी होता है। इस प्रकार के शीर्षक हिन्दी कहानी के सभी विकास युगों में उपलब्ध होते हैं। 'सैलानी बंदर', 'मोटेराम शास्त्री', 'भाड़े का टट्टू', 'होली का उपहार', 'पंडित मोटेराम की डायरी', 'मुगलो ने सल्तनत बख्श दी', 'बासी भात मे खुदा का साझा', 'अंटसंट', 'श्रीमान चंडूलानन्द', 'लम्बी दाढ़ी', 'किराये का टट्टू, 'गर्दभगान' तथा 'मेरी हजामत' आदि शीर्षक इसी कोटि के हैं। बालोपयोगी कहानियों के शीर्षक भी प्रायः हास्य की अभिव्यंजना करने वाले होते हैं। हिन्दी कहानी के प्रायः सभी विकास युगों में हास्योद्भावक शीर्षकों का प्रयोग विभिन्न कहानीकारो द्वारा किया जाता रहा है। प्रेमचन्द लिखित 'मोटर के छींटे', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी', जी० पी० श्रीवास्तव लिखित 'स्वामी चौखटानन्द', भगवतीचरण वर्मा लिखित 'लाला तिकड़मी लाल', हरिशंकर शर्मा लिखित 'माननीय मुशी कसरतराय', अन्नपूर्णानन्द लिखित 'महाकवि चच्चा', अन्नपूर्णानन्द लिखित 'अकबरी लोटा', राधाकृष्ण लिखित 'लैला की शादी' तथा विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'डपोरशंख' आदि कहानियों के शीर्षक पाठक के हृदय में हास्य की उद्भावना करते हैं।

नायक अथवा नायिका के नाम पर शीर्षक—कहानी का शीर्षक प्रधान पात्र अथवा प्रधान पात्री के नाम पर आधारित भी होता है। 'सालवती', 'सलीम', 'शांति', 'मिस पद्मा', 'कुसुम', 'मधुआ', 'खुदाराम', 'रानी महामाया', 'रानी सारन्धा', 'सुभागी', 'राजकुमार सागर', 'कमला', 'श्यामा' आदि शीर्षक कहानी के प्रमुख पात्र अथवा पात्री के नाम पर ही रखे गये है। इस प्रकार के शीर्षक स्पष्टतः इस बात का संकेत देते हैं कि उनमें नायक अथवा नायिका ही प्रधान है और उसी के जीवन की

किसी घटना को कथा वस्तु का आधार बनाया गया है। भारतेन्दु युग में किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' शीर्षक कहानी में भी नायिका की कथा ही रचना का मूल आधार है। प्रेमचन्द लिखित 'शान्ति', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'त्रिवेनी', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'घीसू', विनोदशंकर व्यास लिखित 'रधिया', रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' लिखित 'रज्जो', 'सुदर्शन' लिखित 'फूलवती' तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'ज्योतिर्मयी' आदि कहानियां भी इसी कोटि की रचनाओं में उल्लिखित की जा सकती हैं। कहानी का शीर्षक नायक अथवा नायिका के नाम पर रखने की शैली अपेक्षाकृत प्राचीन समझी जाती है और नई कहानियों में इसे प्रायः अंगीकार नहीं किया जाता, वरन् भिन्न प्रकार के शीर्षक रखे जाते हैं।

मनोवृत्ति पर आधारित शीर्षक—अनेक कहानियों का शीर्षक उनमें नियोजित मुख्य पात्र अथवा पात्री की मनोवृत्ति के आधार पर रखा जाता है। 'नशा', 'कायर', 'उन्माद', 'वेश्या', 'अभिलाषा', 'चोरी', 'क्षमा', 'नैराश्य', 'बलिदान', 'विस्मृति', 'द्रोही' आदि शीर्षक कहानी मे निहित मूल मनोवृत्ति का परिचय देते हैं। इस प्रकार के शीर्षक भारतेन्दु युगीन कहानी में भी मिलते हैं। इस काल में बंगमहिला लिखित 'दान प्रतिदान' कहानी का शीर्षक इसी कोटि का है। प्रेमचन्द तथा उनके समकालीन तथा परवर्ती कहानीकारो ने इस प्रकार के शीर्षक बड़ी संख्या में रखे। मनोविश्लेषणात्मक तत्वों के हिन्दी कहानी में बहुलता से समावेश के साथ ही इस प्रकार के शीर्षकों का भी प्रचार बढ़ा। प्रेमचन्द लिखित 'दुस्साहस', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'मुक्ति', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'न्याय', जी० पी० श्रीवास्तव लिखित 'दिल बहलाव', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'बदला', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'मोह', इलाचन्द्र जोशी लिखित 'शराबी', चन्द्रगुप्त विद्यालंकार लिखित 'सन्देह' तथा विनोदशंकर व्यास लिखित 'करुणा' आदि कहानियों के शीर्षक विविध मनोवृत्तियों पर ही आधारित हैं।

भावना पर आधारित शीर्षक—बहुत सी कहानियों के शीर्षक भावनात्मक रखे जाते हैं। ये मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं। प्रथम तो वे शीर्षक जो भावना विशेष पर आधारित होते हैं और द्वितीय वे जो परस्पर विरोधी भावनाओं पर आधारित होते हैं। प्रथम कोटि में 'अंतर्द्वन्द्व', 'ममता', 'पुरस्कार' तथा 'प्रणय चिह्न' आदि शीर्षकों का उल्लेख किया जा सकता है, जो विशुद्ध भावनाओं पर आधारित हैं। इसके विपरीत द्वितीय कोटि में 'सज्जनता का दंड', 'शोक का पुरस्कार' तथा 'अभागे का घर' आदि

शीर्षक आते हैं जो परस्पर विरोधी भावनाओं का संकेत देते हैं। इन दोनों ही प्रकार के भावनात्मक शीर्षकों का व्यवहार प्रायः प्रेमचन्द काल से ही हिन्दी कहानी के क्षेत्र में मिलता है। प्रेमचन्द लिखित 'आंसुओं की होली' तथा 'ममता', डा० वृन्दावनलाल वर्मा लिखित 'डाकू की ममता', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'जीना मरना', विनोदशंकर व्यास लिखित 'प्रेम की चिता', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'करुणा की पुकार', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'दुख और तितलियां', 'सुदर्शन' लिखित 'परिवर्तन' तथा विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'पथ भ्रष्ट' आदि कहानियों के शीर्षक भावनात्मक कोटि के ही हैं।

ऐतिहासिक कहानियों के शीर्षक—ऐतिहासिक कहानियां हिन्दी कहानी के प्रायः सभी विकास युगों में उपलब्ध होती हैं। ये प्रामाणिक तथ्यों पर आधारित होते हुए भी कल्पनात्मक तत्वो से युक्त होती हैं। भारतेन्दु युग में किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' इस विषय की आरम्भिक रचनाओं का स्वरूप उपस्थित करती है। आगे चलकर विविध युगीन हिन्दी कहानीकारों ने बड़ी संख्या में ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी। 'शतरंज के खिलाड़ी', 'रानी सारंधा', 'राजा हरदौल', सालवती', 'ममता', 'पुरस्कार', 'देवरथ', 'सत्य का मूल्य' तथा 'चम्मच भर आंसू' आदि ऐतिहासिक कहानियों के शीर्षक या तो पात्र-पात्रियों पर आधारित हैं और या भावनात्मक हैं। नामवाचक शीर्षक परम्परागत दृष्टिकोण के सूचक हैं, जबकि भावनात्मक शीर्षक इस क्षेत्र मे परिष्कृत दृष्टिकोण का परिचय देते हैं। मुंशी प्रेमचन्द लिखित 'मर्यादा की वेदी', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'ममता', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी', यशपाल लिखित 'दास धर्म', उषादेवी मित्रा लिखित 'महान की पूजा', विनोदशंकर व्यास लिखित 'विद्रोही', राय कृष्णदास लिखित 'गडूला' तथा डा० वृन्दावनलाल वर्मा लिखित 'शेरशाह का न्याय' आदि कहानियों के शीर्षक इस दृष्टि से परिष्कार युक्त कहे जा सकते हैं।

बालोपयोगी कहानियों के शीर्षक—बालोपयोगी कहानियों के शीर्षक प्रायः राजकुमारो, राजकुमारियों, परियों, पशु पक्षियों आदि के नाम पर रखे जाते हैं। ये अपेक्षाकृत नीति शिक्षा पर भी आधारित होते हैं। धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक तथा राजनीतिक महापुरुषों के नाम पर भी बालोपयोगी कहानियों के शीर्षक रखे जाते हैं। 'राजकुमार सागर', 'रुस्तम सोहराब', 'शिकारी राजकुमार', 'कुत्ते की कहानी', 'मोटेराम शास्त्री', 'रंगा सियार', 'बन्दर और मगर', 'अच्छी सीख', 'मूर्ख सेवक',

'चुहिया का ब्याह', 'बुद्धिमान बन्दर', 'तीन ठग', 'खरगोश और शेर' तथा 'बगला और केकड़ा' आदि इस प्रकार के शीर्षक हैं। इनमें से कुछ 'पंचतंत्र' तथा 'हितोपदेश' आदि की नीतिपरक कथाओं पर भी आधारित हैं। आधुनिक युगीन हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द लिखित 'कुत्ते की कहानी' तथा 'मोटेराम शास्त्री', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'डपोरशंख', 'सुदर्शन' लिखित 'खटपट लाला', भगवतीप्रसाद वाजपेयी लिखित 'मिठाईवाला', अरविन्द गुर्टू लिखित 'नीली दाढ़ी', आत्माराम देवकर लिखित 'सोने की मछली', गोपाल देवी लिखित 'परियों का देश' तथा स्नेहलता भार्गव लिखित 'राजकुमारी चांद और बौने' आदि कहानियों के शीर्षक विषयगत वैविध्य के द्योतक हैं।

संबंध सूचक शीर्षक—सम्बन्ध सूचक शीर्षक रखने की प्रवृत्ति भी हिन्दी कहानी के आरम्भिक युग से ही मिलती है। इस क्षेत्र में गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पंडित और पंडितानी' तथा फूलदेवी लिखित 'बड़े घर की बेटी' आदि कहानियों के शीर्षकों का उल्लेख किया जा सकता है। प्रेमचन्द युग से इस प्रकार के शीर्षकों का व्यवहार बहुलता से किया जाने लगा। 'भाई बहिन', 'दो भाई', 'ताई', 'बड़े भाई साहब', 'घर जमाई', 'जीजाजी', 'भाई भाई', 'दो सखियाँ', 'काकी', 'विमाता', 'पत्नी', 'भाभी', 'बहिन' आदि इसी कोटि के शीर्षक हैं। आधुनिक युग में हिन्दी कहानी में बौद्धिक प्रवृत्ति के विकास के फलस्वरूप यद्यपि सम्बन्ध सूचक शीर्षकों को अधिक कलात्मक नही समझा जाता है, फिर भी ऐसे शीर्षक बड़ी संख्या में उपलब्ध होते है। प्रेमचन्द लिखित 'बेटों वाली विधवा', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'मामा मामी', पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'उसकी मां', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'जीजाजी', यशपाल लिखित 'उसमी की मां', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'सुकुल की बीबी' तथा महीपसिंह लिखित 'पुत्र' आदि कहानियों के शीर्षक सम्बन्ध सूचक कोटि के अन्तर्गत ही उल्लिखित किये जा सकते हैं।

कालावधि सूचक शीर्षक—हिन्दी कहानी के क्षेत्र में कालावधि सूचक शीर्षकों की श्रेणी में सर्वप्रथम रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' का उल्लेख किया जा सकता है।[१] आगे चलकर प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती काल में हिन्दी कहानीकारों द्वारा भी इस प्रकार के शीर्षकों का उपयोग किया गया। 'पांच मिनट', 'एक रात',

१. 'सरस्वती', सितम्बर, सन् १९०३।

'चार दिन', 'सभ्यता का एक दिन', 'एक घंटे में', 'एक शाम' तथा 'एक सप्ताह' आदि कालावधि सूचक शीर्षक इन्हीं युगों की कहानियों के हैं। इस कोटि के शीर्षक विकासशील हिन्दी कहानी के परिचायक हैं। ये कहानी में बढ़ती हुई बौद्धिकता तथा प्रयोगात्मकता की प्रवृत्तियों के भी द्योतक हैं। मोहनलाल महतो 'वियोगी' लिखित 'पांच मिनट', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'एक पन्द्रह मिनट' तथा 'एक रात', उषादेवी मित्रा लिखित 'उन्नीस सौ पैंतीस', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'एक घंटे में', रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' लिखित 'पांच मिनट', चन्द्रगुप्त विद्यालंकार लिखित 'चौबीस घंटे' तथा 'एक सप्ताह' आदि कहानियों के शीर्षकों का उल्लेख इसी श्रेणी में हो सकता है।

मुहावरों, कहावतों पर आधारित शीर्षक-हिन्दी कहानी के क्षेत्र में विविध विकास युगों के अन्तर्गत कुछ ऐसे भी शीर्षक उपलब्ध होते हैं, जो प्रचलि । मुहावरों तथा कहावतों पर आधारित है। 'दो दिन की दुनिया', 'सूली ऊपर सेज पिया की', 'हाथी के दांत', 'चैत की निंदिया जिया अलसाने', 'घोड़े पर हौदा तथा हाथी पर जीन', आदि शीर्षक इसी कोटि के हैं। यद्यपि आविर्भाव कालीन हिन्दी कहानी में इस प्रकार के शीर्षकों का अभाव मिलता है, परन्तु प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती काल की कहानी में ये अवश्य उपलब्ध होते है। प्रेमचन्द लिखित 'बासी भात में खुदा का साझा' तथा 'एक आंच की कसर', जी० पी० श्रीवास्तव लिखित 'काठ का उल्लू', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'गुदडी में लाल', राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह लिखित 'इस हाथ दे, उस हाथ ले' तथा डा० रांगेय राघव लिखित 'अन्धेर नगरी चौपट राजा' आदि कहानियों के शीर्षकों का उल्लेख इस श्रेणी में किया जा सकता है।

दोहरे शीर्षक—हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में पूर्व भारतेन्दु युग से ही कहानियों के दोहरे शीर्षक रखने की परम्परा है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी 'उदयभान चरित' अथवा 'रानी केतकी की कहानी' का ही शीर्षक दोहरा था। इसी परम्परा में सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' अथवा 'चन्द्रावती' शीर्षक रखा था। आगे चलकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी अपनी एक कथात्मक रचना का दोहरा शीर्षक 'कुलीन कन्या' अथवा 'चन्द्रप्रभा और पूर्ण प्रकाश' रखा था। भारतेन्दु युग मे ही गोपालराम गहमरी ने अपनी एक कथात्मक रचना का एक दोहरा शीर्षक 'शिक्षा का युद्ध' उर्फ़ 'रावत मानसिंह चरित्र' रखा था। हिन्दी के हास्य-व्यंग्य प्रधान कथाकार जी० पी० श्रीवास्तव ने भी अपनी अनेक रचनाओं के दोहरे शीर्षक रखे हैं।

ऐसे शीर्षकों में 'जनाब मौलाना बरबाद अली वाही तबाही' उर्फ़ 'मौलवी साहब' तथा 'बाबू क्षपसटनाथ एफ० ए० फेल' उर्फ 'मास्टर साहब' आदि उल्लेखनीय हैं।

शीर्षक तत्व का महत्व

सैद्धान्तिक रूप से शीर्षक कहानी का सबसे पहला तत्व है। इस दृष्टिकोण से कहानी में शीर्षक का महत्व भी प्राथमिक होता है। श्री भालचन्द्र गोस्वामी 'प्रखर' ने कहानी के शीर्षक के महत्व का प्रतिपादन करते हुए बताया है कि 'कहानी यदि फूलो से भरा सरोवर है, तो शीर्षक उन फूलों से तैयार किया हुआ सुवासित इत्र।'[10] डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने शीर्षक का महत्व निर्दिष्ट करते हुए लिखा है—'जो चतुर और प्रवीण कहानी प्रेमी है वह केवल शीर्षक की ओर ध्यान देता है। या तो वह शीर्षक की आकर्षकता के आग्रहसे आकृष्ट होगा अथवा उसकी सहायता से अनुमान लगायेगा कि रचना की गति क्या हो सकती है और उसी अनुमान परिणाम के आधार पर या तो कहानी पढ़ेगा अथवा छोड देगा। इस प्रकार के पाठकों के लिए शीर्षक का विशेष महत्व होता है। उत्तम कोटि के शीर्षक से पाठक के अनुमान, कल्पना और भाव प्रवणता को उत्तेजन प्राप्त होता है।'[11] हिन्दी कहानी में शीर्षक तत्व के क्षेत्र में भी पर्याप्त विकास हुआ है। प्रारम्भिक युगीन कहानी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती', सूर्यकान्त दीक्षित लिखित 'चन्द्रहास का अद्भुत आख्यान' तथा महेन्द्रलाल वर्मा लिखित 'पेट की आत्म कहानी'[12] आदि कहानियों के शीर्षक इस क्षेत्र की प्राथमिक स्थिति के द्योतक हैं। इसके विपरीत चन्द्रगुप्त विद्यालंकार लिखित 'क ख ग', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'दिन, रात और सबेरा'[13] तथा राजेन्द्र यादव लिखित 'भविष्य के आसपास मंडराता अतीत'[14] आदि कहानियों के शीर्षक इस क्षेत्र की वर्तमान स्थिति के परिचायक हैं। कहानी के अन्य सभी मूल तत्वों की भांति शीर्षक तत्व का यह विकास भी उसके महत्व के साथ ही साथ कहानी क्षेत्रीय कलात्मक विकास का द्योतन करता है।

१०. श्री भालचन्द्र गोस्वामी 'प्रखर', 'कहानी दर्शन', पृ० १५९।
११. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, 'कहानी का रचना विधान', पृ० १४१।
१२. 'सरस्वती', सितम्बर, सन् १९०४।
१३. श्री जैनेन्द्र कुमार, 'जैनेन्द्र की कहानियां', नवां भाग, पृ० १७२।
१४. श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ, '१९६६ की श्रेष्ठ हिन्दी कहानियां', पृ० ३२।

अध्याय ६

कहानी की कथावस्तु

कथावस्तु का स्वरूप

कथावस्तु कहानी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण है। इसके समानार्थक शब्दों में कथा, विषय वस्तु तथा कथानक आदि का प्रयोग किया जाता है। अंग्रेजी में इसके लिए 'प्लाट' तथा 'थीम' आदि शब्द प्रयुक्त होते है। कहानी की कथावस्तु लेखक के जीवनानुभव की उपज होती है। वह अपने अनुभव को कल्पना के संयोग से एक सर्वथा नवीन स्वरूप प्रदान करता है। यह आवश्यक नही है कि कहानी की कथावस्तु का सम्बन्ध किसी प्रकार के विषय विशेष से हो। सामान्य साहित्य की भांति ही कहानी की कथा वस्तु का विषय क्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक है। कहानी का प्राण तत्व होने के कारण यह कथावस्तु मानव जीवन और मानव स्वभाव की भांति ही प्रशस्त क्षेत्र वाली होती है। कहानी की कथावस्तु में निबद्ध घटनाएं और कार्य व्यापार कहानी की गतिशीलता में वृद्धि करते हैं। यह गतिशीलता कहानी के विकास और समाप्ति के साथ अन्य भी अनेक स्थितियों में समान रूप से बनी रहती है। कहानी की चरम सीमा पर पहुंचने पर यह गतिशीलता एक प्रकार की प्रभावात्मकता में परिवर्तित हो जाती है। कभी कभी यह प्रभाव नाटकीयता से भरा हुआ होता है और कथावस्तु में नियोजित घटनाओं की अप्रत्याशित परिणति का द्योतन करता है। कुछ आलोचक नाटकीयता को ही कहानी की श्रेष्ठता का आधार मानते हैं। उनकी धारणा है कि नाटकीय रूप में घटनाओं का उतार-चढ़ाव न केवल उसकी प्रभावात्मकता में वृद्धि करता है, वरन् वह उसकी चरम सीमा तथा कथावस्तु की अन्तिम परिणति को भी कलापूर्णता प्रदान करता है।

प्राचीन कथाओं में असम्भव बातें, कल्पित घटनाएं पौराणिक तथा मानवेतर आधारभूमि पर वर्णित की जाती थीं, परन्तु ज्यों ज्यों मनुष्य का बौद्धिक विकास होता गया, त्यों त्यों इस कथा प्रवृत्ति में भी परिवर्तन होता गया और उसमें सहजता, स्वा-

भाविकता और यथार्थता की वृद्धि होती गयी। पाठकों की रुचि में परिवर्तन के साथ भी कहानी का स्वरूप परिवर्तित हुआ। अब कहानी में वास्तविक समाज का चित्रण किया जाने लगा। उसमें पाठकों का मनोरंजन करने के हेतु केवल काल्पनिक घटनाएं प्रस्तुत करने के स्थान पर समाज में विद्यमान यथार्थ जीवन की समस्याओं का विवेचन किया जाने लगा। सामाजिक चित्रण की यह प्रवृत्ति आरम्भ में केवल नागरिक समाज तक ही सीमित रही, परन्तु आगे चलकर इसका क्षेत्रगत विस्तार हुआ और ग्रामीण समाज से सम्बन्धित समस्याओं को भी कहानी में प्रस्तुत किया जाने लगा। इस क्षेत्र में भी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार मुंशी प्रेमचन्द ने विशेष रूप से महत्वपूर्ण कार्य किया। उनकी कहानियों में भारतीय समाज के नागरिक रूप के साथ ही ग्राम्य रूप का भी समग्रता के साथ चित्रण किया गया है।

आधुनिक हिन्दी कहानी अपने लगभग एक शताब्दी के इतिहास में अनेक विचार-धाराओं और अनेक स्वरूपात्मक आन्दोलनों को समाविष्ट किये हुए है। भारतेन्दु युग से आरम्भ होकर वर्तमान काल तक हिन्दी कहानी का जो विकास हुआ है, वह विविध कालीन प्रवृत्तियों से प्रभावित है। भारतेन्दु काल से ही हिन्दी कहानी के क्षेत्र में यथार्थपरक तत्वों का समावेश मिलने लगा था। स्वभावतः इस काल के कहानी-कारों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों और रूढ़ियों के निर्मूलन की दिशा में अपनी रच-नाओं के माध्यम से सुधारवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। कुछ लेखकों ने अपनी कहा-नियों की कथावस्तु के लिए धार्मिक पाखंड को आधार भूत तत्व बनाया तथा कुछ ने आर्थिक समस्याओं को प्रधानता दी। इन रूपों में आधुनिक कहानी अपने आविर्भाव काल से ही सोद्देश्य रही। कहानीकार ने प्रायः सदैव ही विभिन्न क्षेत्रीय परिस्थितियों में यथार्थपरक चित्रण के साथ उसकी एक आदर्शवादी परिणति प्रस्तुत की। यही दृष्टि-कोण भारतेन्दु युग से आरम्भ होकर आदर्शोन्मुख आदर्शवाद के रूप में प्रेमचन्द युगीन कहानी में अपने अपेक्षाकृत अधिक परिपक्व रूप में विद्यमान मिलता है।

कथावस्तु की प्रधानता तथा अनिवार्यता

कहानी के अन्य सभी उपकरणों में कथावस्तु कहानी का प्रधान तथा अनिवार्य तत्व है। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने इसी तत्व को प्रमुखता देते हुए कहानी में उसके सर्वाधिक महत्व का निदर्शन किया है। इसी कारण से कहानी की सफलता

के लिए यह आवश्यक है कि उसकी कथावस्तु का चुनाव सजग भाव से किया जाय। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी कहानी का विकासात्मक अध्ययन करने पर इस तथ्य का बोध होता है कि पूर्ववर्ती कहानी में कथावस्तु तत्व ही प्रधान रहता था, जबकि परवर्ती कहानी में इसे उतना अधिक महत्व नही दिया जाता। यही नहीं, आधुनिक युगीन हिन्दी कहानी में कथावस्तु के तात्विक ह्रास की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। परन्तु यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि प्राचीन भारतीय कथा साहित्य में कथावस्तु तत्व ही प्रधान तथा अनिवार्य रूप मे विद्यमान मिलता है।[1] वैदिक साहित्य, संहिता ग्रन्थ, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक ग्रन्थ, उपनिषद् साहित्य, पुराण साहित्य, महाभारत, रामायण, जातक साहित्य, पचतंत्र, हितोपदेश, बृहत्कथा, कथा सरित्सागर, 'रानी केतकी की कहानी', 'माधवानल कामकन्दला', 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी', 'प्रेम-सागर', 'माधव विलास', 'राजनीति' तथा 'नासिकेतोपाख्यान' आदि में कथा तत्व का ही केन्द्रीय महत्व है। आधुनिक युग के आलोचकों ने भी कहानी में कथावस्तु को ही प्रधान और आवश्यक माना है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इस सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है कि कहानी के लिए सबसे आवश्यक वस्तु है घटना सम्बन्धित कथानक का ऐसा प्रसार, जो अपनी सीमा में, एक प्रभावशाली और असाधारण जीवन मर्म को पूरा पूरा व्यक्त कर दे।[2] वास्तव में कथावस्तु ही कहानी का मूल आधार है। एक कहानी में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में से किसी न किसी प्रकार का कथासूत्र अवश्य अभिव्यंजित किया जाता है। कहानी की आकारगत सीमा के कारण उसकी कथावस्तु का यह आधार सूत्र भी महत्वपूर्ण होते हुए भी यथासम्भव संक्षिप्त अथवा सांकेतिक होता है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से कहानी की कथावस्तु प्रायः एक-सूत्री ही होती है। यदि उसकी कथावस्तु बहुसूत्री होती है, तो वह विशृंखलित सी हो जाती है और संगठनात्मकता की दृष्टि से कहानी सदोष हो जाती है। एक-सूत्री कथावस्तु मे वर्ण्य विषय का प्रस्तुतीकरण अपेक्षाकृत अधिक कलात्मकता के साथ सम्भव होता है। परन्तु प्रत्येक स्थिति में किसी भी कहानी में कथावस्तु का होना अनिवार्य है और वही कहानी का प्रधान तत्व है।

१. ए० बैरीडेल कीथ, 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर' में 'दि ओरीजिन आफ दि फेबिल', पृ० २४२।

२. श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, 'आधुनिक साहित्य', पृ० १९०।

घटना प्रधान कहानी

कथावस्तु के आधार पर कहानी का वर्गीकरण करते हुए उसे घटना प्रधान कहानी के अन्तर्गत रखा जाता है। सैद्धान्तिक रूप से इस कोटि की कहानी उन कहानियों से भिन्न होती है जिन्हें चरित्र प्रधान कहानी की कोटि में रखा जाता है और जिनमें कथा-वस्तु की तुलना में चरित्र चित्रण तत्व को अधिक महत्व दिया जाता है। वास्तव में कहानी में घटना नियोजन अपेक्षाकृत अधिक सतर्कता से अपेक्षित है। यदि कहानी की घटनाएं परस्पर सम्बद्ध और क्रमिक रूप में विकासशील होंगी, तो पाठक की कौतू-हल भावना भी बनी रहेगी तथा कहानी भी कलात्मक हो जायगी। घटना विन्यास की सफलता वस्तुतः उसके सुनियोजित रूप पर ही निर्भर करती है। घटना प्रधान कहानी के स्वरूप निर्धारण का आधार कथावस्तु का तत्व ही होता है। व्यावहारिक रूप से घटना प्रधान कहानी दो प्रकार की हो सकती है। प्रथम कोटि के अन्तर्गत उस रचना को रखा जा सकता है जिसमें कथावस्तु की आधारभूत घटनाओं मे कोई पारस्परिक सूत्रबद्धता नही होती और उसके सूत्र प्रायः विशृंखलित रूप में मिलते है। ये कहानिया प्रायः किसी एक मूल घटना पर आधारित नही होतीं। उनकी प्रभावात्मकता का आधार भी कहानी में प्रस्तुत कोई केन्द्रीय अथवा प्रधान घटना नही होती। इसके विपरीत उसमें ऐसी घटनाओं का बाहुल्य सा प्रतीत होता है, जिनमें कोई पारस्परिक तारतम्य नही मिलता। यदि ये घटनाए रोचक होती है, तो पाठक को उनमे नीरसता का बोध नही होता, अन्यथा वे प्रभावहीन सिद्ध होती हैं। यहां पर इस तथ्य का उल्लेख करना असंगत न होगा कि जो कहानियां मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणप्रधान होती हैं, उनमें घटनात्मक विशृंखलता का दोष बहुधा विद्यमान मिलता है, परन्तु इसका कारण कलात्मकता का अभाव न होकर उस कोटि की कहानियों में चारित्रिकता की प्रधानता होती है। द्वितीय कोटि के अन्तर्गत उस कहानी को रखा जायगा, जिसमे घटनात्मकता की दृष्टि से पारस्परिक सूत्रबद्धता मिलती है। इस श्रेणी की रचनाओं की कथा मुख्यतः एकसूत्री होती है। इनकी कथावस्तु का मूल आधार भी प्रायः कहानी में वर्णित एक मुख्य अथवा केन्द्रीय घटना होती है। यदि उसमें कुछ अन्य घटनाएं भी नियोजित होती हैं तो वे केन्द्रीय घटना सूत्र की सहायक और पूरक होती हैं। वे उससे प्रत्यक्षतः सम्बन्धित होने के कारण कहानी की प्रभावात्मक एकता में भी वृद्धि करती हैं। इन दोनों ही कोटि की कहानियो में घटना तत्व की प्रधानता होने के कारण इन्हें घटना प्रधान कहानियों के अन्तर्गत परिगणित किया जा सकता है।

कथावस्तु की परिभाषा

कथावस्तु की परिभाषा करते हुए उसे कहानी में सुनिबद्ध घटनासूत्रों का संकलन कहा जा सकता है, जिसका समग्र रूप कहानी का मूल आधार होता है। इस दृष्टिकोण से कथावस्तु के अन्तर्गत वे समस्त घटनाएं और विषय सूत्र आ जाते हैं, जिनसे कथा-वस्तु का निर्माण होता है। इस रूप में कथावस्तु ही कहानी का मूल आधार होती है। कहानी के अन्य तत्व यदि पारस्परिक समानता तथा सन्तुलन से युक्त न भी हों, तो उसकी आनुपातिकता प्रभावित नही होती, परन्तु कथावस्तु का सम्यक् नियोजन कहानी में अनिवार्य है। कथावस्तु को घटनाओं का आलेख भी कहा जा सकता है, क्योंकि कहानी की सफलता इसमें निबद्ध घटनाओं की कलात्मकता पर भी निर्भर करती है। वस्तुतः कहानी मे कथावस्तु के माध्यम से जीवन का प्रतीकात्मक रूप प्रस्तुत किया जाता है। कथावस्तु में संग्रथित विविध प्रकार की घटनाएं मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करती है। प्रसिद्ध पाश्चात्य कहानीकार मोपासां ने कहानी की कथावस्तु के विषय में लिखा है कि कहानी लिखने से पूर्व लेखक को अपनी इच्छित वर्ण्य वस्तु का गम्भीरता से परीक्षण करना चाहिए। ऐसा करने से लेखक को वही वस्तु प्रत्येक बार एक अभिनव स्वरूप से युक्त प्रतीत होगी। किसी सामान्य वस्तु का यही अभिनव पक्ष एक कहानीकार द्वारा उद्घाटित होता है, और तब वह पाठक को भी प्रभावित करता है।

सैद्धान्तिक स्वरूप के अनुसार कथावस्तु ही वह प्रारूप है, जो कहानी की निर्मिति मे आधारभूत रूप से कार्य करता है। खंड विभाजन के अनुसार कथावस्तु को आरम्भ, मध्य और अन्त मे विभाजित कर दिया जाता है। कथावस्तु की एकात्मकता की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि उसके आरम्भ से पाठक को आगे आने वाली घटना का आभास मिल जाय, उसके मध्य का सम्बन्ध आरम्भ तथा अन्त में प्रस्तुत सूत्रों से हो तथा अन्त का सम्बन्ध आरम्भ और मध्य में आयोजित घटना सूत्रों से ही हो। ऐतिहा-सिक दृष्टिकोण से कथावस्तु क्षेत्रीय इस रूढ नियम का पूर्ण रूप से निर्वाह हिन्दी कहानी के किसी भी विकास युग में नहीं मिलता है। भारतेन्दु तथा परवर्ती युगों में लिखी गयी, केवल परम्परागत शैली की रचनाओं में ही इसका निर्वाह स्फुट रूप से मिलता है। प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती युगों में कहानी के कलात्मक स्वरूप के विकास के उपरान्त से कहानीकारों के द्वारा इस नियम का कट्टर अनुगमन नहीं किया जाता। वर्तमान कहानी लेखक ऐसे किसी शास्त्रीय बन्धन का औचित्य नहीं स्वीकार करता, क्योंकि

उससे कहानी क्षेत्रीय नवीन सम्भावनाएं रुद्ध रहती हैं। इस दृष्टिकोण का मुख्य कारण यह है कि आधुनिक वैचारिक सन्दर्भ में इस प्रकार के रूढ नियम अपूर्ण और किसी सीमा तक अर्थहीन लगते हैं। वास्तव में प्राचीन कथा साहित्य में प्रधान आधार के रूप में घटना तत्व मान्य होने के कारण घटना क्रम पर विशेष बल दिया जाता था। आगे चलकर कहानी में कथातत्व के ह्रास के साथ ही इस घटनाक्रम की उपेक्षा मिलने लगी। प्रसिद्ध यूरोपीय विचारक ई० एम० फार्स्टर ने कथा तत्व और कथानक के मध्य सूक्ष्म अन्तर प्रस्तुत करते हुए बताया है कि कथा तत्व घटनाओं का क्रम मात्र है जब कि प्लाट उनके बीच कार्य-कारण सम्बन्ध को भी महत्व देता है। कथा तत्व का काम केवल मनुष्य की स्वाभाविक उत्सुकता को जगाना और उसे सन्तुष्ट करते चले जाना है, परन्तु कथानक पाठक से किञ्चित् बुद्धिमता, स्मृति और धैर्य की भी अपेक्षा रखता है। इसीलिए कथानक कहानी की अपेक्षा उपन्यास की अधिक विकसित अवस्था का द्योतक है।[1]

कथावस्तु का स्वरूपात्मक विकास

हिन्दी कहानी के आविर्भाव से पूर्व जो कथा साहित्य उपलब्ध होता है, उसमें कथावस्तु को ही केन्द्रीय उपकरण के रूप में मान्यता दी गयी है। हिन्दी गद्य के आविर्भाव काल में इंशाअल्ला खां लिखित 'रानी केतकी की कहानी', सदल मिश्र लिखित 'नासिकेतोपाख्यान', राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' लिखित 'राजा भोज का सपना' तथा लल्लूलाल लिखित 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी' एवं 'माधोनल' आदि कृतियों मे जो कथावस्तु मिलती है, उसका आधार पौराणिक एवं काल्पनिक तत्व हैं। भारतेन्दु युग को हिन्दी कहानी के इतिहास का प्रथम विकास काल कहा जा सकता है। इस युग में ही आधुनिक हिन्दी कहानी का आविर्भाव हुआ और प्रारम्भिक विकास हुआ। पूर्ववर्ती कथा परम्परा के प्रभाव स्वरूप इस युग में लिखित कहानियों में भी कल्पना तत्व की ही प्रधानता रही। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न', राधाचरण गोस्वामी लिखित 'यमपुर की यात्रा', किशोरी लाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती', रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय', केशवप्रसाद सिंह लिखित 'चन्द्रलोक की यात्रा', पार्वतीनन्दन लिखित 'प्रेम का फुव्वारा', तथा गंगा-

१. ई० एम० फार्स्टर ' 'एस्पेक्ट्स आफ दि नावेल', पृ० ९८।

प्रसाद अग्निहोत्री लिखित 'सच्चाई का शिखर' आदि कहानियों में काल्पनिकता को ही प्रमुखता दी गयी है। कुछ कहानियों में अवश्य सामाजिकता की प्रवृत्ति अपने आरम्भिक रूप में कल्पना तत्वों से समन्वित होकर उपलब्ध होती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती कुछ जग बीती' तथा गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पंडित और पंडितानी' आदि इसी कोटि की रचनाएं हैं। जासूसी कथा प्रवृत्ति के अन्तर्गत इस युग मे रुद्रदत्त भट्ट लिखित 'अजीबदास की जासूसी' जैसी रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है।

प्रेमचन्द युगीन हिन्दी कहानी में कथावस्तु का क्षेत्र अत्यन्त प्रशस्त रूप में मिलता है। पूर्ववर्ती कथा परम्परा के प्रभाव स्वरूप इस युग के कुछ कहानीकारों ने कल्पना तत्व प्रधान कहानियां अवश्य लिखी, परन्तु अधिकांश कहानीकारों ने सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा मनोवैज्ञानिक कथावस्तु पर आधारित रचनाएं प्रस्तुत की। इस युग के सर्वप्रथम कथाकार मुशी प्रेमचन्द की रचनाओं में समाज के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्धित विषयों को आधार बनाया गया है। 'रानी सारन्धा' तथा 'राजा हरदौल' जैसी कहानियों में ऐतिहासिक कथावस्तु, 'शतरंज के खिलाडी' जैसी कहानियों में सांस्कृतिक कथावस्तु, 'खून सफेद' तथा 'ठाकुर का कुआं' में हरिजन समस्या, 'कफन' तथा 'सवा सेर गेहूं' जैसी कहानियों मे निम्नवर्गीय शोषित समाज, 'बडे घर की बेटी' जैसी कहानियों में पारिवारिक कथावस्तु तथा 'मन्त्र' एवं 'नमक का दरोगा' जैसी कहानियो में प्रेमचन्द ने नैतिक धारणाओ का उदात्तपरक स्वरूप प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द की कहानियों में भारतीय समाज अपनी समग्रता से चित्रित हुआ है। प्रेमचन्द का प्रभाव उनके समकालीन तथा परवर्ती कहानीकारों पर व्यापक रूप में पडा। फलतः प्रेमचन्द द्वारा विवेचित विषय वस्तु के अनेक पक्षों से सम्बन्धित रचनाएं अन्य लेखकों ने भी बड़ी संख्या में प्रस्तुत की। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' तथा विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' आदि कहानीकारों ने प्रेमचन्द की ही कथा परम्परा का प्रसार किया। इन लेखको ने अपनी कहानियो में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण को ही प्रश्रय दिया। प्रेमचन्द युग के जिन कहानीकारो की रचनाओं में यथार्थ की ओर अधिक झुकाव मिलता है, उनमें जयशंकर 'प्रसाद', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तथा पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की रचनाओं मे संग्रथित कथावस्तु कहीं कही तो यथार्थवाद की सीमाओं का अतिक्रमण करके अति यथार्थवाद तथा प्रकृतिवाद की कोटि में भी आ गयी है। जयशंकर 'प्रसाद' तथा चतुरसेन शास्त्री ने इस युग में ऐतिहासिक कथावस्तु को आधार बनाकर भी अनेक

श्रेष्ठ कहानियों की रचना की। इसी परम्परा में जैनेन्द्र कुमार का नाम भी उल्लिखित किया जा सकता है, जिन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, पौराणिक तथा दार्शनिक विषयों के साथ साथ मनोवैज्ञानिक कथावस्तु को अपनी रचनाओं मे विशेष रूप से प्रश्रय दिया है।

हिन्दी कहानी के तृतीय विकास काल अर्थात् प्रेमचन्दोत्तर युग में कथावस्तु का आधार क्षेत्र पूर्ववर्ती रचनाओं की तुलना में अधिक व्यापकता लिये हुए मिलता है। भारतीय स्वतंत्रता के लिए किये जाने वाले आन्दोलनों के विस्तार तथा जन चेतना के जागरण के फलस्वरूप इस युग में एक बहुत बड़ी संख्या ऐसी कहानियों की मिलती है, जिसकी कथावस्तु का आधार राजनीतिक विषय वस्तु है। मनोविश्लेषण शास्त्र के क्षेत्र में होने वाले वैचारिक विकास के प्रभाव स्वरूप हिन्दी में भी इस कोटि की कहानियां लिखी गयी है। बंगाल के दुर्भिक्ष तथा द्वितीय विश्वयुद्ध की प्रतिक्रिया स्वरूप कहानीकारो के दृष्टिकोण में मानवतावाद की भी प्रधानता मिलती है। समाज के चतुर्मुखी जागरण के चिह्न सभी वर्गों की जनता मे दिखाई दे रहे थे, जिसकी विस्तृत अभिव्यक्ति इस युग में लिखी गयी हिन्दी कहानी में मिलती है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी, 'सुदर्शन', राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, उषादेवी मित्रा, शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, सियारामशरण गुप्त, मोहनलाल महतो 'वियोगी', होमवती देवी, विनोदशंकर व्यास, गोविन्दवल्लभ पन्त, विश्वम्भरनाथ जिज्जा तथा कमलादेवी चौधरी आदि कहानीकारों ने मुख्यतः सामाजिक विषय वस्तु पर आधारित रचनाए ही प्रस्तुत की जिनमें आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण की निहिति मिलती है। भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने मनोविश्लेषणात्मक तत्वों का समावेश अपनी कहानियों में अन्य तत्वों की अपेक्षा बहुलतापूर्वक किया। यशपाल तथा मन्मथनाथ गुप्त आदि कहानी लेखकों ने राजनीतिक कथावस्तु प्रधान कहानियां लिखी। डा० वृन्दावनलाल वर्मा तथा राय कृष्णदास ने ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक कथावस्तु को अपनी कहानियों की रचना का आधार बनाया। कमलाकान्त वर्मा जैसे कहानीकारों ने प्रतीकात्मक एवं दार्शनिक कथावस्तुप्रधान कहानियों की रचना की। इस युग के अन्य प्रतिनिधि कहानीकारों ने भी पूर्ववर्ती तथा समकालीन प्रवृत्तियों के अनुसार अपनी कहानियों में विविध विषयक कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण किया।

स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानी में पूर्ववर्ती प्रवृत्तियों के साथ प्रयोगात्मकता

तथा बौद्धिकता का समावेश भी मिलता है। इस युग में सामाजिक कथावस्तु के अन्तर्गत मुख्यतः रूढिवादिता का विरोध मिलता है। राजनीतिक कथावस्तु के क्षेत्र में इस युग के कहानीकारों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही भारत विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थितियों को भी चित्रित किया है। आधुनिक युगीन समाज में यान्त्रिक सम्यता की प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं का चित्रण भी इस काल के अनेक कहानीकारों ने किया। मनोवैज्ञानिक कुंठाओं और विकृतियों के यथार्थपरक अंकन पर भी अनेक लेखकों ने बल दिया। विभिन्न वैचारिक आन्दोलनों के प्रभाव से लेखकों ने दार्शनिक बौद्धिक समस्याओं का निरूपण भी अपनी कहानियों में किया। सामाजिक यथार्थ के प्रति कटु व्यंग्यात्मकता प्रधान दृष्टिकोण प्रस्तुत करने की दृष्टि से अमृतलाल नागर, राधाकृष्ण तथा जी० पी० श्रीवास्तव के नाम उल्लेखनीय हैं। रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' ने सामाजिक यथार्थ का अंकन मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया है। आदर्शवादी कथावस्तु को अपनी कहानियो में प्रश्रय देने वाले लेखकों मे सत्यजीवन वर्मा 'भारतीय', विष्णु प्रभाकर तथा अमरकान्त के नाम उल्लेखनीय हैं। अमृतराय, बलवन्त सिंह तथा निर्मल वर्मा ने यथार्थपरक कथावस्तुप्रधान कहानियां लिखी। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव तथा कमलेश्वर ने कथावस्तु के क्षेत्र में शिल्पगत प्रयोगात्मकता की दृष्टि से नवीनता का परिचय दिया। रमेश बक्षी, उषा प्रियंवदा तथा मन्नू भंडारी ने बौद्धिकता से आगृहीत कथावस्तु को अपनी कहानियों का आधार बनाया है। इस प्रकार से कथावस्तु के क्षेत्र में विशुद्ध कल्पनात्मक स्तर से लेकर यथार्थपरक आधारभूमि तक का यह तात्विक विकास हिन्दी कहानी की परिपक्वता और परिष्कार का प्रतीक है।

कथावस्तु के गुण

कहानी के समस्त मूल उपकरणों मे कथावस्तु ही मूल है। सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दृष्टियों से उसका महत्व कहानी के अन्य सभी तत्वो की तुलना में अधिक है। वास्तव मे कथावस्तु कहानी का केन्द्रीय आधार होता है। अन्य सभी तत्व कथावस्तु के ही सहायक और पूरक होते हैं। वे कथावस्तु में निबद्ध घटनाओं को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए विविध सूत्र जुटाते है और कहानी को स्वरूपगत परिपूर्णता प्रदान करते हैं। इस दृष्टि से कहानी की कथावस्तु विविध घटनात्मक विवरणों के आधार पर निर्मित होती है। कथावस्तु के सफल और कलात्मक रूप में प्रस्तुतीकरण के लिए यह आवश्यक

है कि उसमें घटना विन्यास सम्बन्धी कतिपय विशेषताओं का समावेश हो। सामान्य रूप से कहानी की कथावस्तु को संक्षिप्त होना चाहिए, क्योंकि आकारगत सीमा के कारण उसमें बहुसूत्री कथा के लिए स्थान नहीं होता। उसमें मौलिकता भी अपेक्षित है, जो कहानीकार की प्रतिभा शक्ति की परिचायक होती है। रोचकता भी कथावस्तु का एक ऐसा गुण है, जिसके अभाव में श्रेष्ठ कहानी भी असफल हो जाती है। कथावस्तु में प्रस्तुत विभिन्न घटनाओं में क्रमबद्धता का होना भी आवश्यक है, क्योंकि इससे कहानी में प्रवाहशीलता बनी रहती है। इसके साथ ही कथावस्तु में विश्वसनीयता का गुण भी होना आवश्यक है। यह कहानी की यथार्थपरकता का बोध कराता है। कहानी के आरम्भ से लेकर अन्त तक पाठक के हृदय में कौतूहल अथवा उत्सुकता भी बनी रहनी आवश्यक है क्योंकि अन्ततः कहानी के माध्यम से पाठक की अद्‌भुत रस तृप्ति भी होती है। एक सफल कहानी में यह गुण स्वाभाविक रूप से समाविष्ट मिलता है, इसके लिए नाटकीय सूत्रों की आयोजना नही की जाती। शिल्पगत नवीनता भी कहानी की कथावस्तु का एक विशेष गुण है। प्राचीन कथा साहित्य मे कथावस्तु के उपरान्त इसी तत्व को महत्व दिया जाता था। आधुनिक कहानी में यद्यपि चरित्र चित्रण का तात्विक महत्व बढ़ गया है, परन्तु फिर भी शिल्प तत्व को प्राथमिकता दी जाती है। कहानी की कथावस्तु की एक अन्य विशेषता उसकी प्रभावात्मक एकता है, जिसका आधार उसका सुनियोजित प्रस्तुतीकरण है। सामान्य रूप से कहानी की कथावस्तु की सफलता का आधार ये ही विशेषताएं हैं। यहां पर संक्षेप में इनकी पृथक् पृथक् व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है।

संक्षिप्तता—कहानी की कथावस्तु का सर्वप्रथम गुण उसकी संक्षिप्तता है। कहानी की आकारगत सीमाओं के कारण उसकी कथावस्तु में अनेकसूत्री घटनाओं के संग्रथन को औचित्यपूर्ण नहीं माना जाता। हिन्दी कहानी में आरम्भिक काल से लेकर वर्तमान समय तक कथावस्तु का आधार प्रायः कोई एक महत्वपूर्ण घटना होती है, जिसकी प्रभावात्मकता में वृद्धि के लिए कुछ सहायक सूत्र नियोजित किये जाते हैं। इसी प्रकार से एक कहानी में सामान्य रूप से किसी एक ही प्रधान चरित्र की सृष्टि की जाती है और इसके साथ कतिपय सहायक चरित्रों की आयोजना भी की जाती है। कहानी के कलात्मक रूप के विकास के साथ साथ उसमें कथातत्व का ह्रास भी होता मिलता है। सब मिला कर एक सूक्ष्म अनुभूति भी कहानी की कथावस्तु का रचनात्मक आधार हो सकती है। इससे यह स्पष्ट है कि कथावस्तु का यह गुण हिन्दी कहानी में प्रायः सदैव ही विद्यमान

रहा है। इस कथन के अपवाद रूप में कुछ कहानियां ऐसी अवश्य मिल सकती हैं, जिनकी कथावस्तु में बहुसूत्री घटनाएं और उन्हीं के अनुरूप चरित्र बाहुल्य मिलता है। प्राचीन भारतीय लोककथा साहित्य में, विशेष रूप से 'पंचतंत्र', 'जातक' तथा 'हितोपदेश' में जिस प्रकार की बहुसूत्री कथावस्तु मिलती है, वैसी आधुनिक कहानी में नही। अब कहानी की कथावस्तु के एक सूत्र में से दूसरे सूत्र को निकालते हुए एक के बाद दूसरी कथा का वर्णन नही मिलता। फिर भी दीर्घ-सूत्री कथावस्तु के कुछ उदाहरण आधुनिक कहानी में भी मिल जाते हैं। 'सुदर्शन' की लिखी हुई 'चार कहानियां' शीर्षक कहानी सग्रह में जो रचनाएं उपलब्ध होती हैं, वे अपनी परम्परागत दीर्घता के कारण कभी कभी कहानी न होकर लघु उपन्यास का भ्रम उत्पन्न करती हैं। प्रेमचन्द की भी अनेक कहानियां कही कही विस्तार युक्त कथावस्तु का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। उनकी लिखी हुई 'ईश्वरीय न्याय' शीर्षक कहानी इसी कोटि की है। संक्षिप्त कथावस्तु से युक्त कहानियो में प्रेमचन्द लिखित 'जादू' तथा जैनेन्द्र कुमार लिखित 'देवी देवता' आदि रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है।

मौलिकता—कहानी की कथावस्तु का दूसरा गुण उसकी मौलिकता है। यह विशेषता वास्तव मे कहानीकार की प्रतिभा शक्ति की द्योतक होती है, क्योंकि कहानी की कथावस्तु में जितनी अधिक मौलिकता होती है, उसकी सफलता की सम्भावनाए भी उतनी ही बढ़ जाती है। इस दृष्टि से मौलिकता कहानी की कथावस्तु का एक अनिवार्य गुण है। एक कहानीकार जीवन के विविध क्षेत्रो मे से जिस प्रकार की कथा-वस्तु का चयन अपनी कहानी के लिए करता है, वह इस तथ्य की भी द्योतक होती है कि उस क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित मूलभूत समस्याओं तथा तथ्यो का उसने किस सीमा तक और किस रूप मे साक्षात्कार किया है। सामान्य रूप से मौलिकता का गुण कहानी की कथावस्तु मे तभी आ सकता है, जब कहानी लेखक मे मौलिक अनुभूतियों के सूक्ष्म तथा विस्तृत अकन की समर्थता होती है। विषय वस्तु के अनुसार यदि आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य का वर्गीकरण किया जाय, तो इस तथ्य की अवगति होगी कि उसका क्षेत्र विस्तार बहुत अधिक है। मनुष्य का जीवन अपनी सपूर्ण विराटता के साथ विविध विषयक कहानियो में अभिव्यंजित हुआ है। कहानीकार की कल्पना ने उसके प्रत्येक क्षेत्र को प्रस्तुत किया है। परन्तु फिर भी कुछ कहानियां ऐसी होती हैं, जो समकालीन प्रवृत्तियो से भिन्न सर्वथा मौलिक भावभूमि पर लिखी जाती हैं। इसी कोटि की रच-नाए कहानीकार की मौलिक दृष्टि का सूचन करती हैं। प्रेमचन्द लिखित 'शतरंज

के खिलाड़ी', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पुरस्कार' तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'रोज' जैसी कहानियां कथावस्तु के विषय क्षेत्र में कल्पनात्मकता के साथ साथ लेखकों की मौलिक दृष्टिसंपन्नता की भी परिचायक हैं। इन कहानियों के लेखकों ने सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक वातावरण की पृष्ठभूमि में जिस मौलिकता के साथ कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण किया है, वह वस्तुतः कहानीकला के उत्कृष्ट रूप को सामने रखता है।

रोचकता—रोचकता कथावस्तु का एक ऐसा गुण है, जिसके अभाव में अच्छी से अच्छी कहानी भी पाठक का मनोरंजन नहीं कर सकती है और न ही पठनीय हो सकती है। सैद्धान्तिक रूप से इसी कारण से कहानी की कथावस्तु में रोचकता का होना अत्यन्त आवश्यक है। व्यवहारतः कहानी की कथावस्तु के आरम्भिक भाग से लेकर उसके अन्तिम भाग तक समान रूप से रोचकता बनाये रखना प्रौढ़ कहानीकारों के लिए भी सम्भव नही हो पाता। पूर्ववर्ती युगों में कहानीकार अपनी रचना में रोचकता के निर्वाह के लिए प्रायः कल्पनात्मक और चमत्कारिक तत्वों का आश्रय लेता था। ये तत्व सर्वथा अविश्वसनीय और अव्यावहारिक होते थे और इनके समावेश से कहानी प्राणहीन हो जाती थी। इस कोटि की कहानियों से केवल अपरिपक्व बुद्धि वाले पाठकों का ही मनोरंजन होता था, अन्यथा प्रौढ़ बुद्धि से युक्त पाठकों के लिए यह रचना निरर्थक होती थी। इसीलिए रोचकता को कथावस्तु का एक अनिवार्य गुण माना जाता है। प्रतिभासंपन्न कहानीकार को अपनी रचना में रोचकता बनाये रखने के लिए विशेष यत्न नहीं करना पड़ता, परन्तु फिर भी वह उसमें अपनी कल्पनात्मकता से इस प्रकार के वातावरण का सफलतापूर्वक चित्रण करता है। भगवतीचरण वर्मा तथा अन्नपूर्णानन्द ने अपनी कतिपय कहानियों में ऐतिहासिक संकेतों के आधार पर रोचकता की जो सृष्टि की है, वह परम्परागत कोटि की ऐतिहासिक तथा हास्य व्यंग्य-प्रधान कहानियों से भिन्न प्रकार की होते हुए भी विशेष रूप से सफल बन पड़ी है। इस दृष्टिकोण से भगवतीचरण वर्मा लिखित 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' 'तथा श्री अन्नपूर्णानन्द लिखित 'अकबरी लोटा' शीर्षक कहानियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जयशंकर 'प्रसाद' ने भी अपनी कल्पना-प्रधान ऐतिहासिक तथा सामाजिक कहानियों की कथावस्तु में रोचकता की सृष्टि की है। इस कोटि की रचनाओं में 'ममता', 'आकाशदीप' तथा 'मधुआ' आदि प्रमुख हैं। जी० पी० श्रीवास्तव तथा अमृतलाल नागर की कहानियों में भी रोचकता का गुण स्वाभाविक रूप में विद्यमान मिलता है।

क्रमबद्धता—कथावस्तु को घटनाओं का आलेख भी कहा जा सकता है, क्योंकि उसमें विविध घटनाएं एक क्रमबद्ध रूप में नियोजित की जाती हैं। सामान्य रूप से हमारे दैनिक जीवन में प्राय: दो प्रकार का घटनाक्रम रहता है। एक तो वह जिसका सम्बन्ध सांसारिक यथार्थ अथवा व्यावहारिकता से होता है और दूसरा वह जो हमारे मानस में चक्र रूप में चलता रहता है। जिस प्रकार से एक घटना के पश्चात् दूसरी घटना घटित होती है, उसी प्रकार से हमारे मस्तिष्क में भी एक विचार के पश्चात् दूसरा विचार आता है। ये दोनों घटनाक्रम वस्तुत: अन्योन्याश्रित रूप से पारस्परिक सम्बद्धता रखते हैं, क्योंकि जिस प्रकार से कोई घटना वास्तविक रूप में घटित होकर हमारे मस्तिष्क में किसी विचार को जन्म दे सकती है, उसी प्रकार से हमारे मस्तिष्क में उत्पन्न हुआ कोई विचार किसी घटना का मूल कारण हो सकता है। इसलिए घटना और विचार का महत्व निर्धारण उसके बाह्य रूप से न किया जाकर उसकी गहराई के आधार पर किया जाना चाहिए। आन्तरिक अनुभूति का चित्रण करने वाली कहानी इसी कारण से घटनाप्रधान कहानियों की तुलना में उत्कृष्ट होती है। इस दृष्टि से भी कहानी की कथावस्तु में क्रमबद्धता के गुण का समाविष्ट होना वांछनीय है। बहु-सूत्री कथावस्तु पर आधारित कहानियों में तो इस गुण की और भी अधिक अपेक्षा होती है। 'सुदर्शन' लिखित 'संन्यासी'[४] शीर्षक कहानी इस कोटि की एक प्रतिनिधि रचना कही जा सकती है। इस कहानी की संपूर्ण कथा छह परिच्छेदों में विभक्त है और घटनात्मक बाहुल्य से युक्त है। पात्र तथा चरित्र योजना की दृष्टि से भी इसमें पर्याप्त वैविध्य मिलता है। परन्तु लेखक ने इस कहानी की कथावस्तु में संग्रथित घट-नाओं को इस प्रकार से क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया है कि यह रचना न केवल अत्यन्त मर्मस्पर्शी और प्रभावपूर्ण बनी है, वरन् कलात्मक उत्कृष्टता का भी विशिष्ट उदाहरण सामने रखती है।

विश्वसनीयता—कहानी की कथावस्तु का चौथा आवश्यक गुण उसकी विश्वस-नीयता है। एक कहानी में लेखक जो कथावस्तु प्रस्तुत करता है, उसका आधार चाहे जितना अधिक यथार्थपरक हो, परन्तु उसमें कल्पना तत्व का न्यूनाधिक रूप में योग अवश्य रहता है। डा० श्यामसुन्दर दास के विचार से 'बौद्धिक वृत्ति जागरूक रहने के कारण आख्यायिका का पाठक उसके लेखक से बहुत अधिक विवेक की अपेक्षा रखता

४. श्री 'सुदर्शन', 'सुदर्शनसुधा', पृ० १८६।

है। लेखक को भी तदनुसार ही अधिक कौशलपूर्वक अपना कार्य करना पड़ता है। वह अपनी आख्यायिका में कहीं भी अविश्वसनीय अंश न आने देगा, ऐसा अंश जो पाठक की कल्पना को कुछ भी खटके। वह आख्यान को अधिक स्थायी प्रभावकारक बनाने के आशय से वस्तुओं के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि का सूक्ष्म वर्णन करेगा। ये तन्मात्राएं पाठक के मन में बैठ जाती हैं और उसकी स्मृति को दृढ़ करती हैं।''[5] प्राय: ऐसा भी होता है कि कथावस्तु पूर्णत: कल्पित होती हुई भी यथार्थता की सम्भावनाओं को प्रस्तुत करती है और विश्वसनीय प्रतीत होती है। यही स्थिति उसकी कलात्मक सफलता की द्योतक होती है। वास्तव में एक कहानीकार अपनी रचना में व्यवहारतः यह चित्रित करने की चेष्टा करता है कि विभिन्न परिस्थितियों में मानव चरित्र की क्या प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाएं हो सकती हैं। इस अभिव्यक्तिकरण को प्रभावशाली और विश्वसनीय बनाने के लिए ही वह कल्पनात्मकता का आश्रय लेता है। इस दृष्टि से ये कल्पनातत्व कथावस्तु को यथार्थपरक रूप में प्रस्तुत करने के लिए ही कहानी में समाविष्ट किये जाते हैं। इसीलिए इस कोटि की कल्पना सृष्टि के पीछे कहानी लेखक का यह उद्देश्य होता है कि वह अपनी रचना के माध्यम से समाज के उस यथार्थ स्वरूप को उद्घाटित कर सके, जो वास्तव में विश्वसनीय हो, क्योंकि इस गुण के अभाव में कोई भी कहानी प्रभावाभिव्यंजना की दृष्टि से सफल नही कही जा सकती। प्रेमचन्द की लिखी हुई 'सवा सेर गेहूं' शीर्षक कहानी में कथावस्तुगत यह विशेषता विद्यमान मिलती है। इस कहानी में लेखक ने एक निर्धन कृषक के जीवन की विडम्बनात्मक परिणति चित्रित की है, जो सर्वथा यथार्थपरक और विश्वसनीय प्रतीत होती है। जयशंकर 'प्रसाद' की लिखी हुई 'आकाशदीप', 'ममता' तथा 'पुरस्कार' आदि कहानियां भी इस दृष्टिकोण से उल्लेखनीय हैं।

उत्सुकता—कहानी की कथावस्तु की एक उल्लेखनीय विशेषता उसमें औत्सुक्य की निहिति है। एक सफल कहानी की कथावस्तु में यह गुण स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहता है। इसीलिए उसका पारायण करते समय पाठक के मन में निरन्तर कौतूहल की भावना बनी रहती है। एक सफल कहानीकार अपनी कथावस्तु में विविध स्थलों पर इस प्रकार की सम्भावनाओं की सृष्टि करता है, जिनकी पूर्व कल्पना एक सामान्य पाठक नहीं कर पाता और उसके हृदय में कहानी की समाप्ति तक एक प्रकार की

५. डा० श्यामसुन्दर दास, 'साहित्यालोचन', पृ० १९०-१९१।

उत्सुकता बनी रहती है। साहसिक कोटि की कहानियों की कथावस्तु में यह तत्व विशेष रूप से विद्यमान रहता है। क्योंकि कहानीकार का विविध रहस्यात्मक परिस्थितियों की सृष्टि करना अपेक्षाकृत सुविधाजनक होता है। डा० रामकुमार वर्मा के विचार से 'अच्छी कहानियो में कुतूहलता का आविर्भाव अनेक बार होता है। पर प्रत्येक बार कुतूहलता पैनी होती जाती है। यदि पहला कौतूहल एक भावना को जाग्रत करता है तो दूसरा और तीसरा अनेक भावनाओं को, प्रत्येक बार भावना तीव्र भी होती जाती है। यदि ऐसा न हो तो कहानी का विकास नहीं हो सकता और उसकी चरम सीमा में तीव्रता नही हो सकती।'[६] प्रसिद्ध अंग्रेजी साहित्यकार ई० एम० फार्स्टर ने कथा साहित्य के सन्दर्भ में उत्सुकता की वृत्ति पर विचार करते हुए बताया है कि यह मनुष्य की मस्तिष्कीय शक्तियों में प्रायः सबसे छोटी शक्ति है। सामान्य रूप से मनुष्य के दैनिक जीवन में भी हम देखते हैं कि जब कोई व्यक्ति किसी कार्य से आश्चर्य-चकित हो जाता है, तब प्रायः उसकी स्मरणशक्ति भी धीरे धीरे उथली होने लगती है और अन्त में निष्प्रयोजन हो जाती है। फार्स्टर बताता है कि कथानक में औत्सुक्य हमे एक अत्यन्त छोटी पगडंडी तक ले जाता है। वह हमें उपन्यास में किसी दूरस्थ सीमा तक नही ले जा सकता क्योंकि उसकी पहुंच केवल कहानी तक है। केवल घटनाओं की रोचकता के बल पर आगे बढने वाले कथानक को फार्स्टर ने अपेक्षाकृत निम्न कोटि का माना है, क्योंकि यह मनुष्य की उस मानसिक अवस्था का द्योतक है, जब उसकी तर्कक्षमता कम विकसित थी और वह घटनाओ मे निहित कार्य-कारण सम्बन्ध को खोज सकने लायक प्रबुद्ध नही हो सका था। 'किस्सा तोता मैना', 'शुक बहत्तरी', 'बैताल पच्चीसी' तथा 'सिंहासन बत्तीसी' जैसी कृतियों में घटनाओं के माध्यम से ही पाठक की उत्सुकता में वृद्धि करने की प्रवृत्ति मिलती है। प्रेमचन्द लिखित 'मंत्र', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पुरस्कार' तथा सुदर्शन लिखित 'न्याय मन्त्री' आदि कहानियों की कथावस्तु में सहज और स्वाभाविक रूप में औत्सुक्य की निहिति मिलती है।

शिल्पगत नवीनता—शिल्पगत नवीनता भी कहानी की कथावस्तु का एक विशेष गुण है। एक लेखक अपनी कहानी में जिस ढंग से कथावस्तु की आधारभूत घटनाओं को नियोजित करता है उस पर भी कलात्मक सफलता निर्भर करती है। कहानीकार स्वाभाविक रूप से जीवन की किन्ही परिस्थितियों की कल्पना करके उन्ही के अनुरूप

६. डा० रामकुमार वर्मा, 'साहित्य समालोचना', पृ० ७३।

घटनाओं का वर्णन करता है। ये परिस्थितियाँ अथवा घटनाएं विभिन्न क्रमों से कहानी में प्रस्तुत की जा सकती हैं तथा उन्हें कलात्मक रूप से शिल्पगत नवीनता के साथ भी निबद्ध किया जा सकता है। पूर्व भारतेन्दु तथा भारतेन्दु युगों में जो कथा-कृतियां उपलब्ध होती हैं उनमें कथावस्तु के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से कोई नवीनता नही मिलती। प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती युगों में कथावस्तुक्षेत्रीय नवीनता दृष्टिगत होती है। जिन कहानियों में कथावस्तु परम्परागत शिल्प रूपों में प्रस्तुत की जाती थी, उनमें प्राय: वर्णनात्मक शैली में तृतीय पुरुष के रूप में किसी पात्र के माध्यम से सारी कथा का विवरण दे दिया जाता था। आगे चलकर इस क्षेत्र में कहानीकारों का दृष्टि-कोण इतना परिष्कृत और परिपक्व हो गया कि कथावस्तु की शिल्पगत नवीनता पर सर्वाधिक बल देते हुए उन्होंने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियों का परिचय दिया। प्रेमचन्द युग से हिन्दी कहानी के क्षेत्र में शिल्पगत अभिनवता मिलने लगती है। प्रेमचन्द लिखित 'बड़े भाई साहब', 'मन्त्र' तथा 'शतरंज के खिलाड़ी', 'सुदर्शन' लिखित 'एक गरीब की आत्मकथा' तथा 'हार की जीत', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'देवदासी' तथा 'ममता', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'भक्त और भगवान' तथा विश्व-म्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'वोटर' आदि कहानियों में शिल्पगत नवीन सूत्रों की निहिति मिलती है। स्वातंत्र्योत्तर युगीन लेखकों में सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', उपेन्द्रनाथ 'अश्क', मोहन राकेश, उषा प्रियवदा, निर्मल वर्मा तथा कमलेश्वर आदि की कहानियाँ हिन्दी कहानी के क्षेत्र में शिल्पगत नवीनता की द्योतक हैं।

प्रभावात्मक एकता—कहानी की कथावस्तु में प्रभाव की एकता होनी भी आव-श्यक है। यह विशेषता कहानी की कथावस्तु के सुनियोजित प्रस्तुतीकरण से उत्पन्न की जा सकती है। यदि कथावस्तु में संगठित समस्त घटनाएँ भली प्रकार से पारस्परिक रूप में संबद्ध होंगी तो उनका प्रभाव संयुक्त और एकात्मक रूप से पड़ेगा। इसके विपरीत यदि उनमें पारस्परिक असंबद्धता का अवगुण विद्यमान होगा, तो वे इस दृष्टि से एक असफल रचना ही कही जायंगी, वस्तुत: कहानी अपने सीमित परिवेश के कारण किसी भी तत्व के विचार से कलात्मक शैथिल्य की उपेक्षा नहीं कर सकती। कहानी के विपरीत उपन्यास में यही घटनात्मक असंबद्धता उसकी प्रभावात्मक एकता में बाधक नहीं सिद्ध हो सकती, क्योंकि उसका कथानक एवं परिवेश व्यापकता और विस्तार रखता है। कहानी में यही अवगुण प्रभावहीनता का कारण बन जाता है। जिन कहानियों की कथावस्तु का आधार बहुसूत्रात्मक घटनाएँ होती हैं, उनमें इस

प्रकार दोष आ जाने की अपेक्षाकृत अधिक सम्भावनाएँ रहती है, क्योंकि उनमें केन्द्रीय घटना बहुधा प्रभावहीन भी हो जाती है। साथ ही जिन कहानियों की कथावस्तु की अन्तिम परिणति चरम सीमा के रूप मे नहीं नियोजित की जाती, वे भी इस दोष से युक्त हो जाती हैं। सफल कहानी मे कथावस्तु तथा अन्य तत्वों का सयोजित सन्तुलन होने से ही प्रभावात्मक एकता का गुण समाविष्ट होता है। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था', प्रेमचन्द लिखित 'रानी सारन्धा', 'सुदर्शन' लिखित 'हार की जीत', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पुरस्कार' तथा विश्वभरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'रक्षाबन्धन' आदि कहानियों की कथावस्तु प्रभावात्मक एकता के गुण से युक्त मिलती है।

कहानी का आरम्भ

कहानी का आरम्भ उसका महत्वपूर्ण अंश होता है। विभिन्न विषयों के अनुसार विविध लेखक कहानी का आरम्भ पृथक् पृथक् रूप से करते है। वास्तव में यह कहानी का वह अंश होता है, जो आकर्षक होने पर पाठक के मन में कहानी पढने की अदम्य इच्छा जाग्रत कर देता है। क्रमिक स्वरूप के अनुसार भी शीर्षक के उपरान्त उसका आरम्भिक भाग ही पाठक पर कहानी से सम्बन्धित प्राथमिक प्रभाव डालता है। जिस प्रकार से कहानी की अनेक श्रेणियाँ और असख्य विषय हो सकते हैं, उसी प्रकार से कहानी का आरम्भ भी अनेक प्रकार से किया जा सकता है। वास्तव में किसी कहानी का प्रारम्भ उसके समग्र स्वरूप का एक बहुत महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। सैद्धान्तिक रूप मे किसी कहानी का आरम्भ करने के लिए कोई स्थूल नियम-विधान नही है। इसके विपरीत कहानी को विषय, पात्र, वातावरण आदि की अनुकूलता का ध्यान रखते हुए अनेक प्रकार से आरम्भ किया जा सकता है। कुछ कहानियां कथावस्तु के वर्णन से, कुछ किसी पात्र की चारित्रिक विशेषताओं के वर्णन से, कुछ कथोपकथन से, कुछ वातावरण से तथा कुछ नीतिपरक उपदेशात्मक सूक्तियों अथवा वक्तव्य से आरम्भ की जाती है। एडगर एलनपो जैसे श्रेष्ठ कथाकारो ने कहानी के आरम्भिक भाग के सुनियोजन पर बल दिया है।[७] डा० सूर्यकान्त शास्त्री ने इस विषय में लिखा है कि 'जिस प्रकार ढोल के अग्रभाग पर प्रहार होते ही उसका सारा पोल मुखरित हो उठता है, उसी प्रकार कहानी की नोक पर आंख पड़ते ही उसकी समग्र देहयष्टि फड़फड़ा

७. एडगर एलनपो, 'दि शार्ट स्टोरी मस्ट हैव ए वैल निट बिगनिंग'।

उठनी चाहिए।"[८] सामान्य रूप से कहानी में कथावस्तु का आरम्भ किसी परिस्थिति विशेष के प्रस्तुतीकरण से होना चाहिए। वस्तुतः कथावस्तु का आरम्भिक भाग कहानी की भूमिका अथवा प्रस्तावना होती है। कथासूत्रों का समावेश और संघर्ष भी कथावस्तु की आधारभूत स्थिति की एक अनिवार्यता है। डा० गुलाबराय के विचार से 'कहानी के आरम्भ में अन्त का थोड़ा सा संकेत रहना वांछनीय रहता है, जिससे अन्त अप्रत्याशित होते हुए भी नितान्त आकस्मिक न लगे। यद्यपि कहानी की गति उपन्यास की सी वक्र नहीं होती तथापि एक-दो घुमाव उसकी रोचकता को बढ़ा देते हैं। जीवन का प्रवाह भी संघर्षमय है। वह भी भुजंगम गति से चलता है। कहानी उससे भिन्न नहीं हो सकती। कहानी में कई घटनाएं हो सकती हैं और होती हैं, किन्तु उनमें एकता और अन्विति आवश्यक होनी चाहिए। चरम सीमा का सम्बन्ध भी प्रायः मूल घटना से होता है।'[९] यहां पर विविध युगीन हिन्दी कहानी के आधार पर कहानी के प्रारम्भिक अंशो के विभिन्न रूप उद्धरण सहित प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जो इस क्षेत्र में प्रतिनिधि उदाहरण कहे जा सकते हैं।

चरित्रांकन द्वारा आरम्भ—हिन्दी कहानी में पात्रों के चरित्रांकन द्वारा भी कथावस्तु का आरम्भ करने की परम्परा मिलती है। इस कोटि की कहानियों में पाठक को कहानी के प्रधान पात्र की चारित्रिक विशेषताओ का परिचय कथावस्तु के आरम्भ मे ही मिल जाता है। चरित्रांकन द्वारा कहानी का आरम्भ चरित्रप्रधान कहानियों में विशेष रूप से मिलता है। इस प्रकार की कहानियां हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मुंशी प्रेमचन्द ने बड़ी संख्या में लिखी हैं। प्रेमचन्द की ही लिखी हुई 'कप्तान साहब' शीर्षक कहानी के आरम्भिक भाग का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—
'जगतसिंह का स्कूल जाना कुनैन खाने या मछली का तेल पीने से कम अप्रिय न था। वह सैलानी, आवारा, घुमक्कड़ युवक था। कभी अमरूद के बागों की ओर निकल जाता और अमरूदों के साथ माली की गालियाँ बड़े शौक से खाता। कभी दरिया की सैर करता और मल्लाहों की डोंगियों में बैठकर उस पार के देहातों में निकल जाता। गालियाँ खाने में उसे मजा आता था। गालियाँ खाने का कोई अवसर वह हाथ से न जाने देता। सवार के घोड़े के पीछे ताली बजाना, एक्कों को पीछे से पकड़ कर

८. डा० सूर्यकान्त शास्त्री, 'साहित्यमीमांसा', पृ० २३८।
९. डा० गुलाब राय, 'काव्य के रूप', पृ० २२०।

अपनी ओर खींचना, बूढ़ों की चाल की नकल करना, उसके मनोरंजन के विषय थे।"[१०]

कहानी में नियोजित विविध पात्रों के परिचय से भी कहानी की कथावस्तु को आरम्भ किया जाता है। आधुनिक कहानीकारों में श्री कमलेश्वर की एक रचना से इस प्रकार का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है--'उसकी मां दरियाँ बुनती थी और वह बेकार था। दरियां बुनने का भी कोई ऐसा बंधा हुआ सिलसिला नहीं था, जिसे काम कहा जा सके। कभी कोई अपनी जरूरत से बुनवा लेता और कभी बेजरूरत भी उसे काम देने की नीयत से दे देता, या बरसों का कोई गद्दा लिहाफ जब जवाब दे जाता, उपलमा और अस्तर फट जाता और बदरंग नामा भीतर से झांकने लगता, तो उसे काम में लाने का एक यही तरीका था कि उसे देवी की अम्मा को दे दिया जाय और वह महीने दो महीने में दरी बुनकर दे जाय। मेहनत मजूरी का दाम धीरे धीरे पटता रहता, क्योंकि कोई धंधा तो था नहीं कि इस हाथ ले उस हाथ दे। यही क्या कम था कि जरूरत पड़ने पर उसे कहीं न कहीं से पैसे मिल जाते।"[११]

वर्णन द्वारा आरम्भ—वर्णन के द्वारा भी कुछ कहानियाँ आरम्भ की जाती हैं। इस श्रेणी की रचनाओं में कहानीकार किसी दृश्य का वर्णन प्रस्तुत करता हुआ कहानी को आरम्भ करता है। ऐसी कहानी वर्णन की विश्वसनीयता के अनुपात में पाठक को प्रभावित करती है। कहानी आरम्भ करते ही पाठक के सामने कहानी की सारी पृष्ठभूमि और परिस्थिति चित्रबद्ध रूप में स्पष्ट हो जाती है। पं० शिवपूजन सहाय लिखित 'मुडमाल' शीर्षक कहानी का आरम्भ इसी प्रकार से हुआ है—'आज उदयपुर के चौक मे चारों ओर बड़ी चहल-पहल है। नवयुवकों में नवीन उत्साह उमड़ उठा है। मालूम होता है किसी ने यहाँ के कुओं में उमंग की भंग घोल दी है। नवयुवकों की मूंछों मे ऐंठ भरी हुई है। आंखों में ललाई छा गई है। सबकी पगड़ी पर देशानुराग की कलंगी लगी हुई है, हर तरफ से वीरता की ललकार सुन पड़ती है। बांके लड़ाके वीरों के कलेजे रणभेरी सुनकर चौगुने होते जा रहे हैं।....[१२]

१०. मुंशी प्रेमचंद, 'मानसरोवर', भाग ५, पृ० ३२४।

११. श्री कमलेश्वर, 'राजा निरबंसिया', पृ० १०।

१२. पं० शिवपूजन सहाय लिखित यह कहानी 'आर्य महिला' में प्रकाशित हुई थी, सन् १९१७।

प्रकृति वर्णन अथवा वातावरण चित्रण द्वारा भी कहानी का आरम्भ किया जाता है। आधुनिक कहानीकारों में से निर्मल वर्मा की एक रचना का उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'छज्जे पर भूरी, जलती रेत की परतें जम गयी हैं। हवा चलने पर अलसाये से धूलकण धूप में झिलमिल से नाचते रहते हैं। लड़ाई के दिनों में जो बैरक बनाये गये थे, वे अब उखाड़े जा रहे हैं। रेत और मलबे के ढूह ऐसे खड़े हैं, मानो कच्ची सड़क के माथे पर गूमड़े निकल आये हों। खिड़की से सब कुछ दीखता है। दिन और शाम के बीच कितने विचित्र रंगों की छायाएं टीलों पर फिसलती रहती हैं। दूर से निरन्तर सुनाई देता है पत्थर तोड़ने की मशीन का शोर, दैत्य की घुर्राहटों की तरह....घुर्र....घुर्र....घुर्र....।'[13]

घटना द्वारा आरम्भ--कुछ कहानियां किसी घटना के विवरण से आरम्भ की जाती हैं। ऐसी रचनाओं में लेखक कहानी के किसी पात्र अथवा अन्य तत्व विषयक किसी प्रकार का परिचय अथवा वातावरण आदि का चित्रण न प्रस्तुत करके पहले किसी घटना का सांकेतिक विवरण प्रस्तुत कर कहानी आरम्भ कर देता है। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द की 'आदर्श विरोध' शीर्षक कहानी का आरम्भ इसी प्रकार हुआ है—'महाशय दयाकृष्ण मेहता के पांव जमीन पर न पड़ते थे। उनकी वह आकांक्षा पूरी हो गयी थी जो उनके जीवन का मधुर स्वप्न था। उन्हें वह राज्याधिकार मिल गया था जो भारत-निवासियों के लिए जीवन-स्वर्ग है। वाइसराय ने उन्हें अपनी कार्य-कारिणी सभा का मेम्बर नियुक्त कर दिया था।'[14]

घटनात्मक क्रियाशीलता के साथ भी कुछ कहानियों का आरम्भ किया जाता है। इस कोटि की कहानियों मे आरम्भ में ही घटनाचक्र में गतिमयता लक्षित होने लगती है। अमृतलाल नागर की लिखी हुई '१४ एप्रिल' शीर्षक कहानी से इस प्रकार के आरम्भ का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है--'शाम के चार बज रहे थे। बम्बई निन्नानबे योग में समाधिस्थ थी। अचानक कान के पर्दों को बचाने की पड़ी।.... लोगों ने अपने दिलों मे दहला देने वाला एक गहरा धमाका महसूस किया। खुद को ठगने वाले इन्सान की आत्मा की तरह सहनशीलता की सीमा को लांघकर अत्याचारों के विरोध में बम्बई क्रान्ति कर उठी। जमीन, मकानात, दूकानें, महल, कोठियाँ,

१३. श्री निर्मल वर्मा, 'जलती झाड़ी', पृ० २२।
१४. मुंशी प्रेमचन्द, 'मानसरोवर', भाग ८, पृ० २२७।

झोपड़ियां, लक्ष्मीनारायण का मन्दिर, यहां तक कि लाट साहब की कोठी भी हिल उठी।"[१५]

वार्तालाप द्वारा आरम्भ—वार्तालाप द्वारा कहानी की कथावस्तु का आरम्भ करना प्रायः अधिक सामान्य रूप से व्यवहृत होता है। इस प्रकार की कहानियों में प्रमुख पात्रों के संवाद के द्वारा कहानी के आरम्भ में ही उसकी विषयवस्तु का सांकेतिक परिचय पाठक को मिल जाता है। कहानी के विषय के अनुसार ही कथोपकथन में भी वे ही विशेषताएँ निहित होती है और वह पाठक पर प्राथमिक प्रभाव डालता है। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान लिखित 'कदम्ब के फूल'[१६] शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है--'भौजी, लो मैं ले आया।'

'सच ? ले आये ? कहां मिले ?'

'अरे बड़ी मुश्किल से ला पाया, भौजी।'

'तो मजदूरी ले लेना।'

'क्या दोगी ?'

'तुम जो मांगो।'....

मुंशी प्रेमचन्द की लिखी हुई 'जादू'[१७] शीर्षक कहानी भी नीला और मीना के वार्तालाप द्वारा आरम्भ हुई है। इस कहानी में कथोपकथन के माध्यम से ही कथावस्तु का विकास किया गया है---'नीला---तुमने उसे पत्र क्यों लिखा ?'

मीना—'किसको ?'

'उसी को।'

'मैं नही समझी।'

'खूब समझती हो। जिस आदमी ने मेरा अपमान किया, गली गली मेरा नाम बेचता फिरा, उसे तुम मुंह लगाती हो, क्या यह उचित है।'

'तुम गलत कहती हो।'

'तुमने उसे खत नही लिखा ?'

'कभी नही।'

१५. श्री अमृतलाल नागर, 'एटम बम', पृ० ११।
१६. 'कथा कुंज', प्रथम भाग, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद, पृ० १०९।
१७. मुंशी प्रेमचंद, 'मानसरोवर', भाग २, पृ० ३१७।

'तो मेरी गलती थी, क्षमा करो। तुम मेरी बहन न होतीं, तो मैं तुमसे यह सवाल भी न पूछती।'

पत्र द्वारा आरम्भ—पत्र द्वारा भी कहानी की कथावस्तु का आरम्भ किया जाता है। जो कहानियाँ पत्र शैली में लिखी जाती हैं, उनमें तो प्रायः इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प ही नहीं होता। कुछ कहानियों के मध्य भाग में भी विभिन्न प्रकार का पत्र-व्यवहार दिया जाता है और कुछ कहानियों की कथावस्तु के आरम्भ में ही कोई पत्र प्रस्तुत किया जाता है। इस कोटि की कहानियों की प्रभावात्मक एकता में अपेक्षाकृत वृद्धि हो जाती है। जैनेन्द्र कुमार की लिखी हुई 'छः पत्र, दो राह' शीर्षक कहानी से पत्र द्वारा कथावस्तु के आरम्भ का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

'प्रिय बिम्मी! तुम्हारे पास से आने में मुझे शाम हो गयी थी। बहुत अच्छा लगा था और मन लौटकर किसी दुनिया के काम धाम के लिए बाकी नहीं बच गया था। मैंने कहा था कि मीटिंग है, लेकिन मीटिंग में मैं नहीं गया। सब तुच्छ लगता था और तुम लोगो की खुशी को देखकर जो खुशी मैं अपने मन में भरकर लाया था, उसे बखेरना नही चाहता था, इसलिए शाम को सब कार्यक्रम टालकर मैं चुपचाप पांव-पांव गांधी समाधि पर चला गया।....'[१८]

पत्र द्वारा कथावस्तु के आरम्भ का एक रूप जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'देवदासी' शीर्षक कहानी में भी मिलता है। इस कहानी में पत्र द्वारा कहानी की कथावस्तु को आरम्भ करने के पश्चात् उसका विकास भी पत्रोत्तर के ही द्वारा होता है। आरम्भ में कहानी के एक पात्र अशोक के द्वारा दूसरे पात्र रमेश को लिखकर ही विषय सूत्र उठाया गया है जिसमें वह अपनी मनःस्थिति को अभिव्यक्त करता है—

'प्रिय रमेश ! परदेस में किसी अपने से घर लौट आने का अनुरोध करना बड़ी सान्त्वना देता है, परन्तु अब तुम्हारा मुझे बुलाना एक अभिनय सा है। हां, मैं कटूक्ति करता हूँ, जानते हो क्यों ? मैं झगड़ना चाहता हूँ, क्योंकि संसार में अब मेरा कोई नहीं है, मैं उपेक्षित हूँ। सहसा अपने का सा स्वर सुनकर मन में क्षोभ होता है। अब मेरा घर लौट आना अनिश्चित है। मैंने....के हिन्दी प्रचार कार्यालय में नौकरी कर ली

१८. श्री जैनेन्द्र कुमार, 'जैनेन्द्र की कहानियाँ', दसवां भाग, पृ० ११०।

है। तुम तो जानते ही हो कि मेरे लिए प्रयाग और '...'बराबर हैं। अब अशोक विदेश में भूखा न रहेगा। मैं पुस्तक बेचता हूँ।"[१९]

कथावस्तु का मध्य

कहानी में कथावस्तु के विकासक्रम में आरम्भ के उपरान्त उसका मध्य भाग आता है। उसके अन्तर्गत उसके आरम्भ और अन्त को छोड़कर कहानी का शेष सारा भाग परिगणित किया जाता है।[२०] कथावस्तु के इस अंश मे कहानी के वर्ण्य विषय अथवा सूत्र का विकास होता है। यदि कोई कहानी घटनाप्रधान होती है, तो उसके मध्य भाग में घटनात्मक विवरण की प्रधानता होती है और यदि कहानी चरित्रप्रधान होती है तो उसके मध्य भाग में उसके पात्रों का चारित्रिक विवरण प्रस्तुत किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कथावस्तु का मध्यभाग ही कहानी का मूल आधार होता है, क्योंकि उसके आरम्भ में समस्या का प्रस्तुतीकरण तथा अन्त में समस्या का निदान प्रस्तुत किया जाता है। इसलिए केवल मध्य भाग ही कथावस्तु का ऐसा अंश होता है, जिसमें वास्तविक विषय सूत्र का विवेचन किया जाता है। कौतूहलप्रधान कहानी में कथावस्तु के मध्य भाग में भी लेखक पाठक.की उत्कंठा बनाये रखने के लिए उसमें चमत्कारिक तथा नाटकीय तत्वप्रधान विवरण देता है। एक कुशल कलाकार कहानी के मध्य भाग को विशेष रूप से प्रभावशाली बनाने की चेष्टा करता है, क्योंकि कथावस्तु का यही अंश उसकी विश्वसनीयता की सम्भावनाए उत्पन्न करने में समर्थ होता है।

मूल कथा-सूत्र का प्रसार—कहानी की कथावस्तु के मध्य भाग को वस्तुतः मूल कथासूत्र के प्रसार में सहायक होना चाहिए। कहानी के आरम्भ में ही लेखक जिस विषय को उठाता है, वह मध्य भाग में ही विकसित होकर अपनी चरम परिणति तक पहुंचता है। इसलिए मध्य भाग में मूल कथासूत्र के भावी विकास की पृष्ठभूमि निर्मित होनी चाहिए। कहानी के इस अंश में लेखक को कलात्मक ढंग से ऐसा वातावरण निर्मित करना चाहिए कि कथा को भावी का मार्ग मिले। इस प्रकार का एक सफल उदाहरण कमल जोशी की लिखी हुई 'कस्तूरी मृग' शीर्षक कहानी में मिलता

१९. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'आकाशदीप', पृ० ९२।
२०. डी० मैकेंजी, 'दि क्राफ्ट आफ दि शार्ट स्टोरी', पृ० २०।

है। कहानी के आरम्भ में प्रकाश की असामयिक मृत्यु से सम्बन्धित प्रभावशाली वातावरण निर्मित किये जाने के उपरान्त लेखक मध्य भाग में उसकी निर्मला के मानस पर प्रतिक्रिया वर्णित करता है, जो आगे चलकर स्मृतिपरक शैली में कथावस्तु को विकसित करती है—'तर्जनी के अग्र भाग से फर्श की धूल पर निर्मला ने लिखा 'प्रकाश ...!' ...जिस दिन प्रकाश से प्रथम परिचय हुआ था, उस दिन की याद है। उस मकान में आते ही दोपहर को प्रायः तीन चार बजे वह शान्ति से मिलने गयी थी। ऊपर की मंजिल के किरायेदार से मेल-मिलाप कर लेना अच्छा ही है। मुलाकात करने पर मालूम हुआ कि एकदम अपरिचित नहीं है। बातों ही बातों में प्रकाश का परिचय भी निकल आया। दीवार पर टंगी हुई एक तस्वीर भी निर्मला ने देखी। यह तस्वीर उसने अपनी ससुराल में भी देखी थी, फौरन याद आ गयी।'[21]

कथावस्तु के मध्य भाग मे मूल सूत्र का प्रसार बहुधा वर्तमान के चित्रण के साथ भविष्य के संकेत द्वारा भी किया जाता है। श्री भगवतीचरण वर्मा की कहानी 'पराजय अथवा मृत्यु' के मध्य भाग से इसी प्रकार का एक उदाहरण प्रस्तुत है—'एक के बाद एक दिन बीतते गये, वह युवक मुझे दिखलाई न दिया। धीरे धीरे मैं उसे भूलने लगी। पर एक महीने बाद ही उससे मुझे फिर मिलना पड़ा, दूसरी ही परिस्थिति में। उस दिन अपनी एक सहकारिणी के साथ मैं एक जगह आमन्त्रित थी। ग्यारह बजे रात को हम दोनों वहाँ से वापस लौटी। कोई सवारी न मिली, पर जहां हम आमन्त्रित थीं, हमारा विद्यालय वहाँ से दूर न था। बीच में एक पार्क था, उसी से जाना पड़ता था। रात सुहावनी थी। हम दोनों ने यह तै किया कि पैदल ही चला जाय, और हम दोनों पैदल ही चल पड़ी।'[22]

विकासगत सन्तुलन—कहानी की कथावस्तु के मध्य भाग की सर्वप्रथम विशेषता यह है कि वह प्रारम्भ और अन्त के बीच विकासगत सन्तुलन बनाये रखता है। इसलिए यदि उसमें एक दृष्टिकोण से असन्तुलन आ जायगा, तो कहानी का कथात्मक सौन्दर्य नष्ट हो जायगा। घटनाप्रधान एवं चरित्रप्रधान दोनों ही कोटियों की कहानियों में मध्य भाग के अपेक्षाकृत सन्तुलित होने की आवश्यकता है। कथावस्तु का मध्य भाग यदि सन्तुलित होता है तो वह प्रारम्भ के विषयसूत्र को सम्यक् प्रकार से विकास की ओर

२१. श्री कमल जोशी, 'ब्रह्म और माया', पृ० १४।
२२. श्री भगवतीचरण वर्मा, 'दो बांके', पृ० १०५।

अग्रसर करता हुआ उसकी चरम सीमा अथवा अन्तिम परिणति तक ले जाता है। मध्य भाग में विकासगत सन्तुलन का एक सफल उदाहरण प्रेमचन्द की लिखी हुई 'बड़े भाई साहब' शीर्षक कहानी में मिलता है। छोटा भाई पढ़ाई-लिखाई में सदैव बड़े भाई से आगे रहने पर उसके द्वारा प्रताडना पाता रहता है। इस पृष्ठभूमि में कथावस्तु के आरम्भ होने के बाद उसके भावी विकास का आधार रूप मध्य भाग है—'सालाना इम्तिहान हुआ। भाई साहब फ़ेल हो गये, मैं पास हो गया और दरजे में प्रथम आया। मेरे और उनके बीच केवल दो साल का अन्तर रह गया। जी में आया, भाई साहब को आड़े हाथ लूं. . .आपकी वह घोर तपस्या कहां गयी? मुझे देखिए, मज़े से खेलता भी रहा और दरजे में अव्वल भी हूं। लेकिन वह इतने दुखी और उदास थे कि मुझे उनसे दिली हमदर्दी हुई और उनके घाव पर नमक छिड़कने का विचार ही लज्जास्पद जान पड़ा। हां, अब मुझे अपने ऊपर कुछ अभिमान हुआ और आत्मा-भिमान भी बढ़ा।'[२३]

कुछ कहानियों में कथावस्तु के मध्य भाग में भी पत्र द्वारा विकासगत सन्तुलन मिलता है। ऐसी रचनाओं में कथा का आरम्भ होने के उपरान्त उनके विकास भाग में कथासूत्र का प्रसार करते हुए उसे चरम सीमा अथवा अन्त तक ले जाया जाता है। जयशकर 'प्रसाद' की कहानी 'देवदासी' में कथावस्तु के मध्य भाग में अशोक एक पत्र के द्वारा रमेश को अपने जीवन में उत्पन्न हो गयी परिस्थितियों से अवगत कराता है, जो भावी कथा की नियामक हैं—

'प्रिय रमेश!

तुम्हारा उलहना निस्सार है। मैं इस समय केवल पद्मा को समझ सकता हू। फिर अपने या तुम्हारे कुशल मंगल की चर्चा क्यों करूँ? तुम उसका रूप सौन्दर्य पूछते हो, उसका विवरण देने में असमर्थ हूं। हृदय में उपमाएं नाचकर चली जाती है, ठहरने नही पाती कि मै उन्हे लिपिबद्ध करूं। वह एक ज्योति है, जो अपनी महत्ता और आलोक मे अपना अवयव छिपाये रखती है। केवल तरल, नील, शुभ और करुण आंखें मेरी आंखों से मिल जाती है, मेरी आखों में श्यामा कादम्बिनी की शीतलता छा जाती है।. . . .'[२४]

२३. मुंशी प्रेमचंद, 'मानसरोवर', भाग १, पृ० ९१।
२४. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'आकाशदीप', पृ० ९८।

कहानी का अन्त

कहानी के आरम्भ और मध्य भागों के उपरांत उसकी कथावस्तु का अन्तिम भाग आता है। यह भाग कहानी के आरम्भ की ही भांति उसके मध्य भाग की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण होता है। कहानी के अन्तिम भाग को ही उसकी कथावस्तु के विकास की चरम सीमा कहा जाता है। कहानी में चरम सीमा तब आती है, जब पाठक में कथावस्तु विषयक उद्भावित कौतूहल भावना का शमन किया जाय। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि कहानी की कथावस्तु की अंतिम परिणति ही उसकी चरम सीमा है। सफल और श्रेष्ठ कहानी की कसौटी अनेक विद्वान् इसी चरम सीमा की सफलता और श्रेष्ठता को मानते हैं। श्री राय कृष्णदास के विचार से 'आधुनिक कहानी की सबसे बड़ी सफलता उसके अन्त में है। प्रारम्भ चाहे थोड़ा शिथिल और दूभर हो तो किसी प्रकार चल भी सकता है, किन्तु उसकी समाप्ति तो दुर्बल होनी ही न चाहिए, क्योंकि कलाकार उसे ठेठ अन्त तक तो पहुंचाता नहीं, केवल एक पराकाष्ठा तक पहुंचाकर छोड़ देता है। बस, वह पराकाष्ठा न बन पड़ी कि कहानी फेल हो गई।'[२५] ई० एम० एलब्राइट के विचार से कहानी की चरम सीमा के अवतरण के उपरान्त कहानी को आगे न बढ़ाकर वहीं समाप्त कर देना चाहिए।'[२६] डा० गुलाबराय का मत है कि 'कहानी का कथानक आरम्भ होकर प्रायः किसी न किसी प्रकार के संघर्ष द्वारा क्रमशः उत्थान को प्राप्त होता हुआ 'चरम' या तीव्रतम स्थिति को पहुंचता है, वहां पर कौतूहल क्रमशः अपनी चरम सीमा को पहुंच जाता है और कौतूहल का चमत्कारिक और कुछ कुछ अप्रत्याशित ढंग से अन्त हो जाता है। वहाँ पर आकर ऊँट एक निश्चित करवट से बैठ जाता है। इसके पश्चात् कहानी का परिणाम या अन्त आता है, जिसमें पूरे तथ्य का उद्घाटन हो जाता है।'[२७] श्री न० सी० फड़के के विचार से 'कथावस्तु का अन्तिम अंश कागज पर लिखा तो जाता है सबसे आखीर में, परन्तु वह लेखक के मन में तैयार रहना चाहिये सबसे पहले, क्योंकि वह अन्तिम प्रसंग या शीर्ष बिन्दु आता तो है आखीर में, परन्तु वास्तव में देखा जाय तो वही प्रसंग पहले की सारी ग्रन्थियों का कारण होता है। कार्य-कारणों की परम्परा को काल प्रवाह की उलटी दिशा में देखने

२५. श्री राय कृष्णदास, 'इक्कीस कहानियाँ', पृ० ७३।
२६. ई० एम० एलब्राइट, 'दि शार्ट स्टोरी', पृ० ८१।
२७. डा० गुलाबराय, 'काव्य के रूप', पृ० २२०।

की आदत हमें होती है और इसलिए जो 'पहले' घटित होता है, उसे हम 'बाद' में घटित होने का कारण समझते हैं, परन्तु प्रसंगों के कालानुक्रम को नजरअन्दाज करके उसकी ओर उलटी दिशा में भी देखा जा सकता है।"[२८] सैद्धान्तिक रूप से कहानी का अन्त कथावस्तु की चरमसीमा के उपरान्त होना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कहानी की चरम सीमा ही उसकी कथावस्तु की अन्तिम परिणति है, जिसके पश्चात् भावी विकास की सम्भावना नहीं रहती और तीव्रता के साथ उसकी परिसमाप्ति हो जाती है। कहानी की चरम सीमा कथासूत्रों के पारस्परिक संघर्ष की भी अन्तिम स्थिति है। सभी प्रकार की द्वंद्वात्मकता उसके पूर्व ही चित्रित हो चुकी होनी चाहिए। एक कुशल कहानीकार इसी क्रमबद्ध और सुनियोजित रूप में कहानी की कथावस्तु का आरम्भ, मध्य ,चरम सीमा और अन्त निर्दिष्ट करता है।

मर्मस्पर्शी समाप्ति—कहानी का अन्तिम भाग कभी-कभी अत्यन्त मर्मस्पर्शी बन जाता है। ऐसा अन्त पाठक के मानस पर विशेष रूप से प्रभाव डालता है। यदि कहानी के आरम्भ तथा मध्य भाग में कोई अनुभूत्यात्मक अंश होता है, तब ऐसा अन्त और भी प्रभावशाली बन जाता है। 'प्रसाद' जी की एक कहानी में से इस प्रकार की मर्मस्पर्शी समाप्ति का उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है—'गोधूली थी और वही उदास रमला झील। साजन थका हुआ बैठा था। आज उसके मन में, आखों में न जाने कहां का स्नेह उमड़ा पड़ता था। प्रशान्त रमला में एक चमकीला फूल हिलने लगा, साजन ने आंख उठाकर देखा—पहाड़ी की चोटी पर एक ता का रमला के उदास भाल पर सौभाग्य चिह्न सी चमक उठी थी। देखते देखते रमला का वक्ष नक्षत्रों के हार से सुशोभित हो उठा। साजन ने पुकारा—रानी।"[२९]

कथावस्तु की मर्मस्पर्शी समाप्ति का एक उदाहरण अमृतलाल नागर की लिखी हुई 'जय पराजय' शीर्षक कहानी से भी दिया जा सकता है। इस कहानी में देशभक्त शिवनाथ के जीवन की विडम्बनात्मक परिणति उपस्थित की गयी है, जो चार वर्षों के उपरान्त घर लौटकर आजादी की खुशी और बच्चे की मौत एक साथ देखकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है—'शिवनाथ की नजरें झुक गयी। किशोरी ने बच्चे के मुंह की तरफ देखा। बाल की एक लट बच्चे के मुंह पर मुड़ आई थी। किशोरी ने

२८. श्री न० सी० फड़के, 'प्रतिभा साधना', अनुवादक, श्रीपाद जोशी, पृ० १०८
२९. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'आकाशदीप', पृ० १८४।

उसे हटाने के लिए बच्चे के मुंह पर हाथ रखा। हाथ वहीं का वहीं रुक गया। किशोरी जोर से चीख मारकर अपने बच्चे की लाश से लिपट गई—'नन्हा . . .।'[३०]

अप्रत्याशित समाप्ति—कहानी की कथावस्तु की समाप्ति प्रायः चमत्कारिक ढंग से भी होती है। इस प्रकार के नाटकीय अन्त का पाठक के मन में विशिष्ट प्रभाव पड़ता है। कहानी की कथावस्तु का आरम्भ से पारायण करते हुए पाठक के हृदय में उसकी विकास गति के अनुसार विविध प्रकार की सम्भावनाएं उत्पन्न होती हैं। इन्हीं सम्भावनाओं के अनुरूप पाठक उस कहानी के अन्त की पूर्व कल्पना कर लेता है। कथा की चमत्कारिक समाप्ति पाठक की उस पूर्व कल्पना के अनुरूप नहीं होती, वरन् उसे सर्वथा अप्रत्याशित लगती है। इसलिए इस प्रकार के अन्त का पाठक पर विशेष चमत्कारपूर्ण प्रभाव पड़ता है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की लिखी हुई 'जल्लाद' शीर्षक कहानी का अन्त इसी प्रकार का है, जिसकी कथावस्तु की समाप्ति पर जब अलियार को फांसी देने के लिए सशस्त्र पुलिस, मजिस्ट्रेट, जेल सुपरिन्टेंडेंट और अन्य अधिकारी एकत्र होते हैं, तो उन्हें पता चलता है कि जल्लाद रामरूप हाजिर नहीं है। बहुत खोजने पर भी वह नहीं मिलता, फांसी का कार्यक्रम स्थगित हो जाता है। 'मगर उसी दिन दोपहर को कुछ लोगों ने रामरूप को शहर के बाहर, एक बरगद की डाल में, फांसी पर टंगे देखा। उसकी गरदन में वही रस्सी थी, जिसको कुछ घंटे पूर्व शहर के अनेक लोगों ने उसके हाथ में देखा था। उस समय भी उसकी आंखें खुली, भयानक और नीरस थीं। जीभ मुंह से कोई बारह अंगुल निकल आई थी, और उसका दानवी रूप ऐसा रोमांचकारी हो गया था कि बड़े बड़े हिम्मती तक उसकी ओर देखकर दहल उठते थे।'[३१]

कुछ कहानियों का अन्त नाटकीयता तथा चमत्कारिकतायुक्त होता है। मुंशी प्रेमचंद की लिखी हुई 'बेटी का धन' शीर्षक रचना से इस प्रकार का उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'चौधरी पर इस सहानुभूति का गहरा असर पड़ा। वह जोर जोर से रोने लगा। उसे अपने भावों की धन में कृष्ण भगवान की मोहिनी मूर्ति सामने विराजमान दिखाई दी। वही झगड़ू जो सारे गांव में बदनाम था, जिसकी उसने खुद कई बार हाकिमों से शिकायत की थी, आज साक्षात् देवता जान पड़ता था।

३०. अमृतलाल नागर, 'एटम बम', पृ० ८९।
३१. श्री पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', 'उग्र की श्रेष्ठ कहानियां', पृ० ११४।

रुंधे हुए कंठ से गद्‌गद् हो बोला—झगड़ू! तुमने इस समय मेरी बात, मेरी लाज, मेरा धर्म, कहां तक कहूं, मेरा सब कुछ रख लिया। मेरी डूबती नाव पार लगा दी। कृष्ण मुरारी तुम्हारे इस उपकार का फल देंगे और मैं तो तुम्हारा गुण जब तक जीऊंगा, गाता रहूंगा।"[32]

अनिश्चयात्मक अंत—कभी कभी कहानी का अन्तिम भाग अनिश्चयात्मक रूप में ही छोड़ दिया जाता है। विचारप्रधान कहानियों में इस प्रकार के उदाहरण अपेक्षाकृत अधिक मिलते हैं। कुछ कहानियां पूर्ण रूप से घटनात्मकता पर आधारित भी नही होती। इसलिए उनकी समाप्ति पर कोई निश्चित संकेत अपेक्षित भी नहीं होता। ऐसी कहानियों में प्रायः कथा के आरम्भ से लेकर अन्त तक अनिश्चयात्मकता का ही वातावरण चित्रित किया जाता है। वैसी स्थिति में कहानी को तात्विक पूर्णता प्रदान करने के लिए या तो कहानीकार एक निश्चित अन्त प्रस्तुत करता है और या उसे अनिश्चयात्मकता के साथ ही समाप्त कर देता है। जैनेन्द्र कुमार की लिखी हुई 'हत्या' शीर्षक कहानी का अन्त इसी प्रकार का उदाहरण है—'छः मास बाद मुझे मित्र का पत्र मिला। लिखा था, दो महीने हुए उनकी नौकरी छूट गयी। मैंने उसी कार्ड वाला पता भेजकर उन्हें लिखा, वह नौकरी चाहें तो उस पते से लिखने पर, मुझे विश्वास है, नौकरी मिल जायगी। मैं नहीं जानता, मित्र ने मेरी सलाह पर उक्त पत्र लिखा या नही, या नौकरी मिली या नहीं।"[33]

कथावस्तु के अनिश्चयात्मक अन्त का एक उदाहरण उषादेवी मित्रा की लिखी हुई 'चातक' शीर्षक कहानी से भी उद्धृत किया जा सकता है, जिसमें लेखिका ने एक भाव-प्रधान कल्पनात्मक कथा प्रस्तुत की है—'वह दो पैर आगे बढ़ी, किन्तु दूसरे पल वहीं पर बैठ गई। एक ओर मन्दिर के अणु परमाणु उसे चुम्बक की तरह खींच रहे थे, वर्षों की अदृश्य साथिन शिवलिंग के पीछे से उसे पुकार रही थी और दूसरी ओर उसका भक्त, उसका पुजारी उसकी प्रतिज्ञा में व्याकुल हो रहा था, अधीर बांह बढ़ाये खड़ा था।...दोनों की सन्धि में जकड़ी वह अचल सी बैठी रह गई। न जाने कौन सा प्रश्न उसके मन में था, कौन सी हार-जीत की धुन में वह लगी थी। और यह भी

३२. मुंशी प्रेमचन्द, 'प्रेम पूर्णिमा', पृ० ७३।

३३. श्री जैनेन्द्र कुमार, 'जैनेन्द्र की कहानियां', छठा भाग, पृ० २११।

कौन जाने. अन्त में उसके अन्तर की देवसेविका जीती या कुमार का पुरुष पुजारी।'[३४]

विषय की चरम परिणति—कहानी की कथावस्तु के अन्तिम अंश में उसके वर्ण्य विषय की चरम परिणति प्रस्तुत की जाती है। कहानी का आरम्भ जिस सूत्र से होता है वही अपने विकास की विविध अवस्थाओं से होता हुआ, उसके अन्तिम भाग तक पहुंचता है। जो कहानी कौतूहलप्रधान अथवा रहस्यात्मक विषयप्रधान होती है, उसकी कथावस्तु के अन्त मे भी सभी उत्कंठाओं का शमन होना चाहिए। अन्य विषयों की कहानियों में भी कथावस्तु का अन्तिम भाग कथा की समाप्ति का सूचक होना चाहिए। प्रेमचन्द की 'विस्मृति' शीर्षक कहानी का अन्त इसी प्रकार का है—'कुंवर साहब ने भी पेंशन ले ली, अब चित्रकूट में रहते हैं। दार्शनिक विचारों के पुरुष थे, जिस प्रेम की खोज थी, वह न मिला। एक बार कुछ आशा दिखाई दी थी, जो चौदह वर्ष एक विचार के रूप में स्थिर रही। एकाएक आशा की धुंधली झलक भी एक बार झिलमिलाते हुए दीपक की भांति हंसकर सदा के लिए अदृश्य हो गयी।'[३५]

कथावस्तु के अन्तिम भाग में विषय की चरम परिणति प्रस्तुत करने का एक उदाहरण विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की 'सहचर' शीर्षक कहानी से भी प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसमें ''शिकारी' नामक कुत्ते की अपने स्वामी की मृत्यु के साथ कथा की समाप्ति हुई है 'वह आदमी उधर गया। उधर शिकारी पेट के बल घिसट कर कामतासिंह की लाश की ओर जाने लगा। खड़ा हुआ व्यक्ति मन्त्र-मुग्ध की भाँति शिकारी की ओर ताक रहा था।. . .अब कामतासिंह की लाश शिकारी से एक गज की दूरी पर रह गयी थी। शिकारी शिथिल होकर निश्चेष्ट हो गया। कुछ क्षण तक वह पड़ा रहा। उस व्यक्ति ने समझा कि 'शिकारी' भी समाप्त हो गया। परन्तु सहसा शिकारी ने अपना अन्तिम बल लगाया। दो झटकों में वह घिसट कर कामता सिंह की लाश के निकट पहुंच गया। लाश के निकट पहुंचकर उसने लाश की छाती पर अपना मुंह रख दिया और इसी समय उसके प्राण पखेरू उड़ गये।'[३६]

३४. श्री उषादेवी मित्रा, 'मेघ मल्लार', पृ० ६३।

३५. मुंशी प्रेमचन्द, 'मानसरोवर', सातवां भाग, पृ० २५७।

३६. श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', 'रक्षाबन्धन', पृ० ३१।

कथावस्तु का महत्व

इस प्रकार से कथावस्तु का कहानी में एक मूल उपकरण के रूप में तो सर्वाधिक महत्व है ही, कहानी की रचना का आधार होने के कारण भी इसका विशिष्ट स्थान है। भारतीय तथा विदेशी विद्वानों ने विभिन्न दृष्टियों से कहानी के स्वरूप पर विचार करते हुए कथावस्तु को ही प्रधानता दी है। यों तो कहानी की रचना में उसके सभी तत्वों का योग होता है, परन्तु कथावस्तु के अभाव में उसकी सम्भावना नहीं होती। सामान्य रूप से कथावस्तु का आपेक्षिक महत्व इस तथ्य से निर्धारित होता है कि उसमें वर्णित जीवन खंड का कहानीकार को कितना प्रखर अनुभव है। आरम्भिक युगीन हिन्दी कहानी में कलात्मकता का अभाव होने का एक मुख्य कारण यह भी था कि उसकी कथावस्तु का क्षेत्र अत्यन्त सीमित था। केवल मनोरंजन के उद्देश्य से लिखी जाने वाली इन कहानियों में कथावस्तु का आधार केवल कल्पनाजन्य चमत्कारिक घटनाएं ही होती थीं। उनमें कहानीकार की यथार्थ दृष्टि का समावेश नहीं होता था। परन्तु परवर्ती कहानी में वैचारिक परिपक्वता आने का एक कारण कथावस्तु का क्षेत्रीय विस्तार भी है। अब कहानीकार अलौकिक, चमत्कारिक, काल्पनिक तथा नाटकीय तत्वों की सहायता से अपनी कहानी की कथावस्तु का निर्माण नहीं करता, वरन् ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, पौराणिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक विषयों का तात्विक आधार ग्रहण करके कथावस्तु का सूत्र चयन करता है। हिन्दी कहानी का विविध विकास युगीन इतिहास इस तथ्य का द्योतक है कि कहानी के स्वरूपगत परिष्कार का एक कारण कथावस्तु, क्षेत्रीयसन्तुलन भी है। इस दृष्टि से उसका क्षेत्रगत विस्तार भी कथावस्तु के ही महत्व का परिचायक कहा जा सकता है।

अध्याय ७

कहानी में चरित्र चित्रण

चरित्र चित्रण का स्वरूप

कहानी के प्रमुख तत्वों में कथावस्तु के उपरान्त पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण को ही स्थान दिया जाता है। एक कहानीकार अपनी रचना में जो कथावस्तु अथवा पात्र योजना प्रस्तुत करता है, उसका मूल आधार मानव जीवन के विविध पक्ष होते हैं। विभिन्न पात्रों की योजना करके कहानी लेखक विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्य के चरित्र की प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं का निदर्शन करता है। कहानी में चरित्र चित्रण का महत्व इस कारण से भी अपेक्षाकृत अधिक हो जाता है, क्योंकि अपनी रचना में नियोजित पात्रों के ही माध्यम से कहानीकार मानवता का बहुपक्षीय रूप प्रस्तुत करता है। वह यह संकेत भी प्रस्तुत करता है कि मनुष्य का चरित्र और व्यक्तित्व किस प्रकार से निर्मित और किन परिस्थितियों में प्रभावित और परिवर्तित होता है। मनुष्य के अंतःकरण और उसके बाह्य रूपात्मक कार्यकलाप में सामंजस्य और विभेदीकरण करने की दृष्टि से भी कहानीकार इसी तत्व का आश्रय लेता है।

व्यावहारिक दृष्टिकोण से किसी भी समाज में रहने वाला मनुष्य अपनी समकालीन परिस्थितियों और निकटवर्ती वातावरण से प्रभावित होता है। युगीन स्थितियां ही कभी कभी उसके संपूर्ण आचार व्यवहार और क्रिया कलाप को प्रभावित और नियंत्रित करती हैं। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि युग जीवन की पृष्ठभूमि में ही विविध क्षेत्रीय गुणों-अवगुणों की निर्मिति, विकास, परिवर्तन तथा ह्रास होता है। एक कहानीकार अपनी कथावस्तु में नियोजित घटनाओं के अनुकूल पात्रों की सृष्टि करके उनके चरित्र चित्रण के माध्यम से मनुष्य के चारित्रिक विकास की इस प्रक्रिया का परिचय देता है। उसके पात्र विभिन्न परिस्थितियों में अपने स्वभाव तथा व्यक्तित्व के अनुसार आचरण करके उसके अभीष्ट की पूर्ति करते हैं। यदि कोई

कहानीकार अपनी रचना में इस प्रकार के सशक्त और प्रभावशाली पात्रों की चारित्रिक विवृति नही कर पाता, तो उसकी रचना की सफलता संदिग्ध हो जाती है। इसके विपरीत यदि वह उन पात्रों का सम्यक् चित्रांकन करने में सफल हो जाता है, तो उसकी रचना पाठक को अवश्य प्रभावित करती है।

कहानी में पात्र योजना और चरित्र चित्रण के विषय में विविध विद्वानों ने अपने मत अभिव्यक्त किये हैं। डा० श्यामसुन्दरदास ने कहानी में चरित्र चित्रण का महत्व प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि 'यदि लेखक में शुद्ध तथा स्पष्ट अभिव्यक्ति करने की प्रवृत्ति है, यदि उसके लिए घटना का महत्व चरित्र के महत्व से न्यून है, यदि वह ऐसी संगठित रचनाएं करने में पटु है जिनमें एक भी वाक्य अनावश्यक या व्यर्थ नही, तो समझना चाहिए कि उक्त लेखक आख्यायिका के क्षेत्र में कार्य करने और यशस्वी होने के लिए ही उत्पन्न हुआ है।'[1] डा० गुलाब राय ने कहानी में चरित्र चित्रण तत्व के आनुपातिक महत्व का निदर्शन करते हुए बताया है कि 'आजकल कथानक को उतना महत्व नहीं दिया जाता, जितना कि चरित्र चित्रण और भावाभिव्यक्ति को। चरित्र चित्रण का सम्बन्ध पात्रों से है। कहानी में पात्रों की संख्या न्यूनातिन्यून होती है। कहानी में पात्रों के चरित्र का पूर्ण विकास क्रम नहीं दिखाया जाता, वरन् प्रायः बने बनाये चरित्र के ऐसे अंश पर प्रकाश डाला जाता है, जिसमें व्यक्ति का व्यक्तित्व झलक उठे।'[2] डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के विचार से 'यहां चरित्र के चित्रण के विषय मे मुख्यतः ध्यान देने की बात यह होती है कि चरित्र की विशेषताओ को क्रमशः घनीभूत और प्रभावमय बनाया गया है कि नही। चरित्र के विषय में कहानीकार का जो कथन हो उसे सब एक ही स्थल और समय मे नही कह देना चाहिए। चरित्र विकास की सारी दौड़ कहानी के कथानक में आद्यंत फैली रहनी चाहिए, अन्यथा कहानी का सौन्दर्यवाहक संतुलन बिगड़ जायगा। पात्र की मूल वृत्ति और उससे संबद्ध विषय, आनुषंगिक उतार चढ़ाव की बातें अत्यन्त क्षिप्र, पर क्रमागत रूप में उपस्थित की जानी चाहिए।'[3]

पाश्चात्य विचारको में एब्बट ने चरित्र की व्याख्या करते हुए लिखा है कि वस्तुतः चरित्र वही कुछ होता है, जो कि मनुष्य स्वयं होता

१. डा० श्यामसुन्दर दास, 'साहित्यालोचन', पृ० १९१-९२।
२. डा० गुलाब राय, 'काव्य के रूप', पृ० २२१।
३. डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, 'कहानी का रचना विधान', पृ० ९४।

है।[4] लाजोये एपी ने बताया है कि चरित्र वास्तव में मनुष्य की अन्तःप्रकृति होता है। उसकी सम्यक् व्याख्या करना इसलिए कठिन है, क्योंकि उसे सामान्यरूप से जाना नहीं जा सकता। विलियम आर्कर ने उसे बौद्धिक, भावुक तथा हताश आदतों का सम्मिश्रण बताया है। डा० रोबेक ने चरित्र की व्याख्या करते समय मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का आश्रय लिया है। उनकी यह धारणा है कि चरित्र एक प्रकार का अटूट रूप से जागरूकतापूर्ण मनोवैज्ञानिक सुझाव है और उसका आधार भिन्न सिद्धान्त है। उनके विचार से चरित्र की विशेषता मनुष्य की मूलभूत और नैसर्गिक उत्तेजनाओं का निग्रह नहीं है। वस्तुतः उसका आधार नीतिशास्त्रीय होता है।[5] मैक्स शान ने चरित्र की व्याख्या करते हुए इस मन्तव्य का प्रतिपादन किया है कि चरित्र वस्तुतः मनुष्य का वह आत्मत्व होता है, जो अनिवार्य रूप से सामाजिक माध्यम से विकासशील अथवा क्रियाशील रहता है।[6] स्काट मेरेडिथ के विचार से चरित्र चित्रण पात्रों की वैयक्तिक तथा विशिष्ट विशेषताओं के पारस्परिक वैभिन्न्य का स्पष्टीकरण करने वाली एक प्रणाली है।[7] एम० एल० राबिंसन के विचार से चरित्र चित्रण का यह आशय है कि किसी कथा के पात्रों का अंकन कुछ इस प्रकार की स्वाभाविकता के साथ किया जाय कि वे निर्जीव पुस्तक के पृष्ठों से परे मूर्त होकर जीवन्त वैयक्तिकता ग्रहण कर लें।[8]

कहानी में चरित्र चित्रण के तात्विक स्वरूप के विषय में उपर्युक्त मन्तव्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह आधुनिक कहानी का सर्वाधिक वैशिष्ट्यपूर्ण उपकरण है। कहानी में इसी तत्व के माध्यम से लेखक मानव चरित्र का विविध पक्षीय निरूपण करता है। हिन्दी कहानी में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के व्यावहारिक आरोपण के विकास के साथ इस तत्व के क्षेत्र में न केवल यथार्थता और विश्वसनीयता की वृद्धि हुई है, वरन् उसकी प्रभावात्मकता भी बढ़ गई है। आधुनिक कहानीकार अपनी

४. देखिए—'राइटर्स न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी आफ़ इंग्लिश लैंग्वेज', पृ० ४६१।

५. डा० रोबेक, 'करैक्टर ऐंड इनहिबीटीशन', पृ० ११८।

६. मैक्स शान, 'ह्यूमन नेचर इन दि मेकिंग', पृ० १५९।

७. स्काट मेरेडिथ, 'स्टफिंग दि हालो मैन : करैक्टराइजेशन', 'राइटिंग टु सेल', पृ० ६२।

८. एम० एल० राबिंसन, 'राइटिंग फ़ार यंग पीपुल', पृ० ११।

रचना में विविध पात्रों की योजना करके उनके माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों की विशेषताओं का परिचय देता है। कहानी में नियोजित पात्र सामान्य रूप से कल्पित होते हुए भी यथार्थ समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे अपनी आन्तरिक विशेषताओं तथा बाह्य गुणों से पाठक को कुछ इस रूप में प्रभावित करते हैं कि वह उनके अस्तित्व को विश्वसनीय मान लेता है। यही कहानी में चरित्र चित्रण की सफलता है।

कथावस्तु और चरित्र चित्रण का सन्तुलन

कहानी के सभी तत्वों में कथावस्तु और चरित्र चित्रण का ही सर्वाधिक महत्त्व है। सामान्य रूप से कहानी के अन्य तत्व इन्हीं दो प्रमुख तत्वों से अन्तःसम्बद्ध होकर इनके सहायक और पूरक के रूप में कार्य करते हैं। इस दृष्टिकोण से कहानी के सभी तत्व एक दूसरे पर आश्रित होते हैं और एक तत्व के विकास और सफलता का आधार दूसरा तत्व होता है। परन्तु कहानी के मूल और अनिवार्य तत्व कथावस्तु का प्रत्यक्ष सम्बन्ध पात्र योजना और चरित्र चित्रण से होता है। इसलिए कहानी की सफलता के लिए जहां एक ओर अन्य सभी तत्वों का सुनियोजन आवश्यक है, वहां दूसरी ओर कथावस्तु और चरित्र चित्रण का सन्तुलन भी उसमें अनिवार्य है। यदि कहानी के इन दोनों तत्वों की एक दूसरे के प्रति अनुकूलता नहीं होती तो कहानी असफल हो जाती है। इस दृष्टि से भी कहानी की कथावस्तु और पात्र योजना में एक प्रकार की अंतर्निर्भरता का सम्बन्ध होता है। ये दोनों ही कहानी के आधारभूत उपकरण हैं, जिनका असंतुलन कहानी की कलात्मक श्रेष्ठता को संदिग्ध बना देता है। यदि किसी कहानी की कथावस्तु अथवा घटना योजना से उसके पात्रों अथवा चरित्र योजना का विरोध होता है, तब भी कहानी एक असफल रचना बनकर रह जाती है। इसके अतिरिक्त घटनाओं में भी तब तक कलापूर्णता नहीं आती, जब तक उन्हीं के अनुरूप चरित्रांकन न हो। विभिन्न घटनाएं विविध परिस्थितियों में कहानी के पात्रों की चारित्रिक दृष्टि से प्रतिक्रियात्मक संभावनाओं का द्योतन करती हैं।

व्यावहारिक दृष्टिकोण से कहानी में कथावस्तु के समानान्तर ही चरित्र चित्रण का भी विकास होना चाहिए। आधुनिक हिन्दी कहानी के प्रथम विकास काल से ही कहानीकारों द्वारा इन्हीं दो तत्वों पर विशेष बल दिया गया है। इतना अवश्य है कि यदि एक ओर कुछ कहानीकारों ने कथावस्तु को प्राथमिकता दी है, तो दूसरी ओर कतिपय लेखकों के द्वारा चरित्र चित्रण को अधिक महत्व दिया गया है। परन्तु कहानी

के सम्यक् स्वरूप निर्धारण में इन दोनों ही तत्वों का महत्व प्रायः सभी लेखकों द्वारा स्वीकारा गया है। एक सफल कहानीकार इन दोनों उपकरणों में अन्तर्विरोध की स्थिति नहीं उत्पन्न होने देता। वह कहानी में कथावस्तु के भली प्रकार नियोजन के साथ साथ पात्रों का चरित्र चित्रण करते समय भी उनकी विशिष्ट मनःस्थितियों, सबलताओं तथा दुर्बलताओं का अंकन करता है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर इस तथ्य का उल्लेख करना भी असंगत न होगा कि आधुनिक कहानी में इन दोनों ही उपकरणों के क्षेत्र में सबसे अधिक प्रयोगात्मकता लक्षित होती है। आधुनिक कहानी पर मनोविज्ञान के गहन प्रभाव के कारण कथावस्तु तथा चरित्र चित्रण दोनों के ही क्षेत्र में व्यापक क्षेत्रीय सम्भावनाएँ सामने आयी हैं। आज का कहानीकार यदि एक ओर कथावस्तु के परम्परागत रूप में प्रस्तुतीकरण को श्रेयस्कर नहीं समझता, तो दूसरी ओर चरित्र चित्रण सम्बन्धी उदात्तपरक दृष्टिकोण के आधार पर तर्क-सम्मत और यथार्थपरक विश्लेषण की प्रणाली को स्वीकार करता है। इसलिए कहानी की सफलता के लिए कथावस्तु और चरित्र चित्रण में पारस्परिक सन्तुलन आवश्यक है।

चरित्रप्रधान कहानी

कहानी में पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण तत्व के आधार पर इसका एक भेद किया जाता है, जिसे चरित्र प्रधान कहानी कहते हैं। इस कोटि की कहानी में अन्य उपकरणों की तुलना में पात्र तत्व का प्राथमिक महत्व होता है। प्राचीन कथा साहित्य में घटनात्मक सूत्रों का बाहुल्य होने के कारण कथावस्तु की प्रधानता मिलती थी। इसीलिए उसके अन्तर्गत परिगणित की जाने वाली अधिकांश रचनाएं घटना-प्रधान कोटि की हैं। आगे चलकर जब आधुनिक हिन्दी कहानी का विकास हुआ, तब उसके आविर्भाव काल से ही उसमें पात्र योजना तथा चरित्र चित्रण तत्व पर विशेष बल दिया गया। मनोवैज्ञानिकता और बौद्धिकता के तत्वों से युक्त कहानियां भी चरित्रप्रधान श्रेणी में ही रखी जाती हैं। वर्तमान काल में घटनाप्रधान कहानी की तुलना में चरित्रप्रधान कहानी को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया जाता है। इन कहानियों में लेखक अपने पात्रों की विभिन्न मनःस्थितियों का चित्रांकन पुष्ट मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर करता है। इसीलिए इन कहानियों में घटनात्मकता का अभाव न होते हुए भी उनका महत्व कम हो जाता है। चरित्रप्रधान कहानी में घटनाओं की आयोजना इसी आधार भूमि पर की जाती है कि उनकी पृष्ठभूमि में

किसी पात्र के चरित्र की प्रतिक्रियात्मक संभावनाओं का निदर्शन किया जा सके। आधुनिक समाज की जटिल संरचना में जो विभिन्न वर्ग हैं, उन्हीं का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों की आयोजना करके कहानीकार उन वर्गों की मनोवृत्ति, भावनाओं तथा आर्थिक हितों का विश्लेषण करता है। ये पात्र अपने व्यक्तिपरक रूप में जहां एक ओर समाज की इकाई के रूप में अपनी वैयक्तिक विशेषताओं का परिचय देते हैं, वहां दूसरी ओर अपने वर्ग विशेष के प्रतिनिधि के रूप में उस वर्ग की सामान्य विशेषताओं का भी परिचय देते हैं। आधुनिक कहानी के कलात्मक विकास के साथ साथ चरित्र प्रधान रचनाओं की संख्या में भी वृद्धि हो रही है। पूर्वयुगीन कहानी में चमत्कारिक तत्वों के बाहुल्य के कारण इस तत्व का विकास न हो सका था, परन्तु आधुनिक युग में पात्र योजना को प्राथमिकता दी जाने के कारण चरित्रप्रधान कहानी के क्षेत्र में विशेष क्रियाशीलता लक्षित होती है। प्रेमचन्द लिखित 'बूढ़ी काकी', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पुरस्कार', 'सुदर्शन' लिखित 'हार की जीत', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'ताई', द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' लिखित 'प्यार के भूखे', विश्वम्भरनाथ जिज्जा लिखित 'विदीर्ण हृदय', ज्वालादत्त शर्मा लिखित 'अनाथ बालिका', पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी लिखित 'नंदिनी', विनोदशंकर व्यास लिखित 'पगली', होमवती देवी लिखित 'धरोहर' तथा कमलादेवी चौधरी लिखित 'पागल' आदि कहानियों का उल्लेख चरित्र प्रधान रचनाओं के अन्तर्गत किया जा सकता है।

चरित्र चित्रण का स्वरूपात्मक विकास

हिन्दी कहानी के इतिहास का अवलोकन करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि उसमें जहाँ एक ओर कथा तत्व की दृष्टि से निरन्तर ह्रास लक्षित होता है, वहाँ दूसरी ओर पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण के तत्व की दृष्टि से विकासशीलता मिलती है। कहानी के इन दो प्रमुख तत्वों के क्षेत्र में इस विकासगत अन्तर का मुख्य कारण यह है कि व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी कहानी का स्वरूप क्रमशः परिवर्तित होता गया है। प्राचीन और परम्परागत कहानी में कथावस्तु का प्राधान्य होता था, जबकि आधुनिक कहानी में पात्रों के चरित्रांकन पर विशेष बल दिया जाता है। चरित्र चित्रण तत्व के स्वरूपात्मक विकास के मूल में यह तथ्य भी कार्यशील रहा है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यदि हिन्दी कहानी में पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण तत्व के स्वरूपात्मक विकास पर विचार किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि इस क्षेत्र में

प्रथम विकास कालीन कहानीकारों का दृष्टिकोण मुख्यतः परम्परानुगामी और आदर्शवादी रहा है। भारतेन्दु युगीन कहानी साहित्य में अपवाद स्वरूप उपलब्ध कतिपय रचनाओं को छोड़कर शेष में नियोजित विभिन्न पात्रों के चारित्रिक विवेचन के माध्यम से किसी न किसी आदर्श की स्थापना करना कहानीकारों का लक्ष्य रहा है। इसकी पृष्ठभूमि में समकालीन सुधार-भावनाप्रधान तथा उपदेशात्मकता-प्रधान दृष्टिकोण विद्यमान है। सामाजिक कोटि की अधिकांश कहानियाँ इसी प्रकार की हैं। रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय', गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पति का पवित्र प्रेम' तथा बंगमहिला लिखित 'दुलाई वाली' आदि कहानियों में पात्रों के चरित्र चित्रण का आधार आदर्शात्मकता ही रही है। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' जैसी पूर्ण रूपेण कल्पना तत्वों पर आधारित कहानियों में भी इन्दुमती, राजकुमार, चन्द्रशेखर तथा छद्मवेशधारी राजा आदि के चरित्रांकन में भी यही दृष्टिकोण प्रधान रहा है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' तथा 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती' जैसी कहानियों में अवश्य यथार्थपरक आधारभूमि का संकेत मिलता है। मुख्यतः मनोरंजन के उद्देश्य से लिखी गयी कहानियों में केवल कल्पनात्मक पात्रों का ही चारित्रिक संयोजन है, जिसके फलस्वरूप उनका व्यक्तित्व सर्वथा प्रभावविहीन रह गया है। बंग महिला लिखित 'कुंभ में छोटी बहू' तथा फूलदेवी लिखित 'बड़े घर की बेटी' जैसी कहानियों में अवश्य वास्तविक समाज का विश्वसनीय स्वरूप प्रस्तुत करने वाले कुछ पात्र नियोजित हुए हैं, परन्तु उनका चित्रांकन मुख्यतः परम्परागत रूप में सामान्य परिचयात्मक विधि के माध्यम से ही हुआ है।

हिन्दी कहानी के द्वितीय विकास काल से पात्रों के चरित्रांकन में कलात्मकता का समावेश बढ़ने के साथ ही उनके वैविध्य का भी परिचय मिलता है। भारतेन्दु युग में काल्पनिक, सामाजिक और यथार्थपरक पृष्ठभूमि में ही चरित्र सृष्टि मिलती है, जबकि प्रेमचन्द युग में पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक वर्गों के पात्रों का भी नियोजन विविध कहानीकारों द्वारा किया गया। भारतेन्दु युगीन कहानी मे पौराणिक कोटि के पात्रों का अभाव मिलता है, परन्तु प्रेमचन्द युग में इस वर्ग के अनेक पात्रों की आयोजना हुई है। भारतेन्दु युग में पौराणिक सन्दर्भ में लिखी गयी सूर्यनारायण दीक्षित की 'चन्द्रहास का अद्‌भुत आख्यान' शीर्षक एक कहानी उपलब्ध होती है। परवर्ती युग में चतुरसेन शास्त्री ने 'चन्द्रहास', 'अभिमन्यु', 'उपमन्यु', 'पांच पांडव', 'प्रहलाद', 'गरुड जी', 'ध्रुव उत्तंक' तथा 'पितृभक्त

श्रवण' आदि कहानियों में पौराणिक वर्ग के पात्रों का नियोजन किया। जैनेन्द्रकुमार ने अपनी लिखी हुई 'बाहुबली', 'गुरु कात्यायन', 'भद्र बाहु' तथा 'देवी देवता' आदि कहानियों में इन्द्र, शची, ब्रह्मा, आदिनाथ, भरत, कामदेव, रति, नारद, शिव तथा पार्वती आदि पात्र-पात्रियों की सृष्टि की है।

प्रेमचन्द युग से ऐतिहासिक पात्रों की चरित्र सृष्टि अपेक्षाकृत पुष्ट आधार भूमि पर मिलती है। भारतेन्दु युग में केवल किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' जैसी कहानियों में अपवाद स्वरूप कुछ ऐतिहासिक पात्रों की ओर संकेत भर किया गया है। इस युग में प्रेमचन्द ने 'राजा हरदौल' और 'रानी सारन्धा' जैसी कहानियों में इतिहास प्रसिद्ध पात्रों का प्रभावाभिव्यंजक चित्रांकन प्रस्तुत किया। अब केवल इतिहास में उल्लिखित किसी पात्र को चित्रित कर देने के स्थान पर सम्यक् ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में सूक्ष्म विश्लेषण से युक्त, अन्तर्द्वन्द्व एवं जटिलता से भरी हुई चरित्र सृष्टि कहानीकार करने लगे, जिससे ऐतिहासिक पात्रों का स्वरूप जीवन्त होने के साथ साथ वह युग विशेष भी मूर्तिमान् हो उठता है। ऐतिहासिक तथा काल्पनिक तत्वों के सन्तुलित संयोजन के साथ इन कहानियों में चरित्र चित्रण की दृष्टिकोण-सूक्ष्मता तथा परिष्कृतता भी मिलती है। जयशंकर 'प्रसाद' की लिखी हुई 'तानसेन', 'जहांआरा', 'अशोक' तथा 'चित्तौड़ उद्धार' आदि कहानियों में नियोजित पात्र इन्ही विशेषताओं से युक्त हैं। चतुरसेन शास्त्री ने 'हठी हम्मीर', 'सिंहगढ़ विजय', 'टीपू सुल्तान' तथा 'हैदरअली' आदि कहानियों में इतिहास के यथार्थ तथा प्रामाणिक पात्रो का चित्रण किया है। उषादेवी मित्रा लिखित 'महान् की पूजा', यशपाल लिखित 'दास धर्म' तथा जैनेन्द्र कुमार लिखित 'रानी महामाया' आदि में भी ऐतिहासिक पात्रों का सफल चित्रांकन हुआ है।

भारतेन्दु युगीन हिन्दी कहानी में सांस्कृतिक कहानियों की रचनाओं का अभाव होने के कारण इस कोटि के पात्रों का नियोजन नही हुआ है। सांस्कृतिक पात्रों का चरित्रांकन अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ दृष्टिकोण की अपेक्षा रखता है। द्वितीय विकास काल में प्रेमचन्द लिखित 'शतरंज के खिलाड़ी', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पुरस्कार', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी' तथा डा० वृन्दावनलाल वर्मा लिखित 'खजुराहो की दो मूर्तिया' जैसी कहानियों मे जो चरित्र का चित्रण हुआ है, वह इस क्षेत्र में लेखकों के दृष्टिकोणगत परिष्कार और प्रौढता का सूचक है। प्रेमचन्द के परवर्ती काल में आनन्दप्रकाश जैन तथा यादवचन्द्र जैन आदि लेखकों ने

सांस्कृतिक कोटि के पात्रों के चरित्रांकन के क्षेत्र में नवीन सम्भावनाएं सामने रखीं। विश्वसनीय कथात्मक पृष्ठभूमि में इन लेखकों ने अतीत युगीन इतिहास के प्रामाणिक पात्रों का सांस्कृतिक संचेतना के प्रतीक के रूप में चित्रण प्रस्तुत किया है।

राजनीतिक कहानियों की रचना भी हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द युग से ही आरम्भ हुई। प्रेमचन्द की पूर्ववर्ती कहानी में किसी पात्र के माध्यम से न तो किसी राजनीतिक विचार दर्शन की अभिव्यक्ति का प्रयत्न लक्षित होता है और न उसमें नियोजित किसी पात्र का चरित्र चित्रण ही राजनीतिक पृष्ठभूमि में हुआ है। प्रेमचन्द काल में राजनीतिक क्रान्तियां और आन्दोलन अधिक सक्रिय रूप में होने के कारण जन साधारण की राजनीतिक चेतना जाग्रत हुई। हिंसा और अहिंसा के परस्पर विरोधी दर्शनों का प्रतिपादन करने वाले पात्रों के माध्यम से राजनीतिक वर्ग के चरित्र चित्रण का स्वरूप इस काल में परिपक्व हुआ। विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दृष्टि से निरूपण होने के साथ साथ विभिन्न पात्रों का तर्क कुतर्क तथा वाद विवाद भी इसमें सहायक हुआ। राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, डा० रांगेय राघव तथा भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि कहानीकारों की कृतियों में राजनीतिक पात्रों के चरित्रांकन का तात्विक विकास इस युग में दृष्टिगत होता है।

आधुनिक युग में मनोविज्ञान के क्षेत्र में होने वाली महत्वपूर्ण उपलब्धियों का व्यापक प्रभाव काहनी साहित्य पर पड़ने के कारण चरित्र चित्रण के स्वरूपात्मक विकास की नवीन सम्भावनाएँ सामने आयीं। हिन्दी कहानी में पात्रों के चरित्र चित्रण के लिए मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का आश्रय सर्वप्रथम प्रेमचन्द युगीन कहानीकारों ने लिया था। इस युग में स्वयं प्रेमचन्द ने अपनी विविध विषयक कहानियों में इस दृष्टिकोण का परिचय दिया। प्रेमचन्द ने यह अनुभव किया था कि उनके समय में कहानीकार से पाठक की आशाएँ बढ़ गयी हैं। कोरी उपदेशात्मकता अथवा चमत्कार सृष्टि से मनोरंजन करने वाली कहानी की अब आवश्यकता नहीं रही। अब कहानी का पाठक उससे मानसिक तृप्ति की भी अपेक्षा करता है। इस युग में कहानी जीवन के इतनी निकट आ गयी थी कि अब उसमें कल्पनात्मक घटना नियोजन के स्थान पर अनुभूति ही आधारभूत रूप में स्थान पाने लगी थी। कहानी के स्वरूपगत इस परिवर्तन के कारण ही चरित्रांकन की कला का भी विकास हुआ। अब कहानी में अनावश्यक विस्तार की उपेक्षा करके लेखक सूक्ष्म चरित्र चित्रण पर अधिक गौरव देने लगा।

प्रेमचन्द लिखित 'नमक का दरोगा', 'बड़े घर की बेटी', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'कफ़न' तथा 'मंत्र' आदि कहानियों में चरित्रांकन की सूक्ष्मता विशेष रूप से द्रष्टव्य है। इस युग के अन्य कहानीकारों में जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'दासी', 'आकाशदीप', 'पुरस्कार' तथा 'मधुआ', चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'ताई', 'रक्षाबन्धन' तथा 'अशिक्षित का हृदय', 'सुदर्शन' लिखित 'हार की जीत', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी' तथा राय कृष्णदास लिखित 'अंतःपुर का आरम्भ' आदि कहानियों में मनोवैज्ञानिक आधार-भूमि पर पात्रों के चरित्रांकन के सफल प्रयत्न हुए हैं। इसी युग में पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने अपनी अनेक कहानियों मे विशुद्ध यथार्थपरक दृष्टिकोण से पात्रों का चरित्रांकन करते हुए मानव चरित्र की विविध क्षेत्रीय प्रति-क्रियात्मक संभावनाओं का निदर्शन किया।

प्रेमचन्दोत्तर काल की हिन्दी कहानी में पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण तत्व का जो विकास मिलता है, उसका आधार मनोवैज्ञानिक तथा बौद्धिक तत्व भी रहे हैं। पूर्ववर्ती युग में मनोवैज्ञानिक चित्रांकन का आरम्भ किया जा चुका था। उसके क्षेत्र में इस काल में विशेष रूप से विकासशीलता लक्षित होती है। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपनी कहानियों में पात्रों का चरित्र चित्रण करते समय उनकी मनोवैज्ञानिक और बौद्धिक चेतना का भी सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया। 'वे दूसरे', 'कैसेंड्रा का अभिशाप', 'रोज़', 'सांप' तथा 'कोठरी की बात' आदि कहानियों में जिन पात्रों की चारित्रिक आयोजना 'अज्ञेय' ने की है, उनमें सूक्ष्म अनुभूत्यात्मकता की प्रभावशाली अभिव्यंजना मिलती है। इलाचन्द्र जोशी ने भी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की व्यावहारिक परिणति का निदर्शन करते हुए अपनी कहानियों में पात्रों का चरित्र विश्लेषण किया है। 'रोगी', 'डायरी के नीरस पृष्ठ', 'परित्यक्ता', 'दुष्कर्मी' तथा 'प्रेतात्मा' जैसी कहानियों में जोशीजी ने चरित्र विश्लेषण के आधारभूत रूप में पात्रों की अन्तर्मुखी वृत्तियों का प्रस्तुतीकरण किया है। मनोवैज्ञानिक पुट से युक्त राजनीतिक बौद्धिक दर्शन की पृष्ठभूमि में पात्रों का चरित्रांकन करने वाले उत्तर प्रेमचन्द कालीन लेखकों में यशपाल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यशपाल की लिखी हुई 'कर्मफल', 'तुमने क्यो कहा था, मैं सुन्दर हूँ', 'अभिशाप', 'फूल की चोरी', 'आदमी का बच्चा', 'कुत्ता' तथा 'चार आने' आदि कहानियों में चित्रित पात्रों की योजना में उनकी सामाजिक यथार्थवादी चेतना भी उद्भूत मिलती है। पात्र योजना तथा चरित्र

चित्रण की परम्परागत शैली का प्रयोग करने वाले इस युग के कहानीकारों में भगवती प्रसाद वाजपेयी, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, उषादेवी मित्रा, राय कृष्णदास, डा० वृन्दावनलाल वर्मा, शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, सियारामशरण गुप्त तथा विनोदशंकर व्यास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्वातंत्र्योत्तर युग में पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण के क्षेत्र में सांकेतिक, विश्लेषणात्मक तथा संवादात्मक विधियों का बहुलता से प्रयोग मिलता है। वर्तमान कहानीकार अपनी रचनाओं में चित्रित पात्रों के माध्यम से उस वर्ग की विविध क्षेत्रीय चेतना को भी अभिव्यक्त करता है, जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं। इस युग में लिखी गयी अधिकांश कहानियों के पात्र वैयक्तिक तथा सामाजिक चेतना से अनुप्राणित मिलते है। अनेक कहानीकारों की रचनाओं में अभिनयात्मक शैली का परिपक्व रूप मिलता है, क्योंकि वे यह अनुभव करते हैं कि पात्रों का चरित्र विकास स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में होना चाहिए। साथ ही वर्तमान कहानी में नवीनता के प्रति बढ़ते हुए आग्रह के कारण पात्रों के चरित्रांकन की सांकेतिक विधि का विकास हुआ है। आज का कहानीकार समाज में होने वाले विविध क्षेत्रीय परिवर्तनों के प्रति इतनी जागरूकता रखता है कि विभिन्न पात्रों के चरित्रांकन के माध्यम से उनके प्रति तीव्र प्रतिक्रियात्मकता का परिचय देता है। साथ ही कलात्मक दृष्टिकोण की परिपक्वता के कारण वह विरागात्मक भाव से तटस्थ रूप में यथार्थपरक पात्रों का विश्वसनीय चित्रांकन करता है। मनुष्य की समस्त विकृतियों, कुंठाओं, हीनताओं, सबलताओं का विभिन्न परिस्थितियों में चित्रण करते हुए वह अपने पात्रों के व्यक्तित्व को वास्तविकता प्रदान करता है। बौद्धिक चेतना के विकास ने भी चरित्र चित्रण के क्षेत्र में सम्यक् स्वरूप की सम्भावनाएँ उत्पन्न की हैं। आधुनिक युग को यान्त्रिकता ने मानव स्वभाव में विशद परिवर्तन कर दिया है।[१] मानवतावाद के मूल्य आज का कहानीकार सर्वथा नवीन दृष्टिकोण से युग की अनुरूपता को ध्यान में रखता हुआ विवेचित करता है। कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, फणीश्वरनाथ 'रेणु',[१] कमल जोशी, निर्मल वर्मा, उषा

१. प्रेमचंद की 'कफ़न' कहानी में मानवीय संवेदनाओं पर यांत्रिक जीवन की विजय दिखायी गयी है, जिसमें निम्न वर्ग के पात्रों की कुंठा, अदम्य लालसा और निषेध उन्हें मात्र एक यांत्रिक उपकरण बनाकर छोड़ देते हैं। बुधिया की मत्यु पर माधव और घीसू उसके कफ़न के पैसों की ताड़ी पीना अधिक औचित्यपूर्ण समझते हैं।

प्रियंवदा, नरेश मेहता, मन्नू भंडारी तथा रमेश बक्षी आदि कहानीकारों की रचनाओं में पात्रगत वैविध्य का आधार उपर्युक्त तत्व ही रहे हैं।

चरित्र चित्रण के गुण

सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी के प्रमुख तत्वों में कथावस्तु के उपरान्त चरित्र चित्रण का ही स्थान है। इसलिए कहानी के सभी उपकरणों में पात्र योजना का द्वितीयक महत्व होता है। पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसमें कतिपय गुणों का समावेश हो। इनके कारण इस तत्व की व्यावहारिक सफलता की सम्भावनाओं में वृद्धि हो जाती है। यदि चरित्र चित्रण में इनका अभाव होता है, तो वह न केवल कलात्मक बन पाता वरन् प्रभावात्मकता की दृष्टि से भी असफल रहता है। साथ ही पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण के क्षेत्र में हिन्दी कहानी के विविध विकास युगों में विभिन्न प्रकार की शैलियों और विधियों का प्रयोग होता रहा है। सैद्धान्तिक विचार से यदि एक ओर चरित्र चित्रण की ये शैलियां कहानी की कलात्मकता का आधार होती हैं, तो व्यावहारिक दृष्टिकोण से दूसरी ओर युगीन प्रवृत्तियों की ओर भी संकेत करती हैं। चरित्र चित्रण का आधुनिक स्वरूप इन अधुनातन विधियों पर आधारित होने के कारण युगानुकूलता का भी द्योतन करता है। इसके अतिरिक्त कहानी के अन्य सभी तत्वों से भी पात्रयोजना अथवा चरित्र चित्रण का संबंध प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से न्यूनाधिक रूप मे रहता है। इसलिए भी चरित्र चित्रण में सम्यक्ता के लिए कुछ गुणों की निहिति आवश्यक होती है। एक कहानी लेखको को चाहिए कि वह अपनी रचना में पात्र योजना और चरित्र सृष्टि करते समय कल्पनात्मकता से अवश्य काम ले, परन्तु उनका स्वरूप अस्वाभाविक अथवा अव्यावहारिक नहीं होना चाहिए। उनमें मानवीयता होनी चाहिए। उनके कार्य कलाप, आचार व्यवहार, क्रिया कलाप तथा प्रतिक्रियात्मकता में भी स्वाभाविकता अपेक्षित है। वस्तुतः मानव जीवन और उसकी विविध क्षेत्रीय सम्भावनाएँ इतनी विशाल और व्यापक हैं कि विभिन्न मनुष्यों की सुख-दुख विषयक धारणाएँ पृथक् होती हैं। व्यक्ति का भावात्मक और बौद्धिक विकास भी इन्ही पर निर्भर करता है। यथार्थ जीवन का प्रत्यक्ष संघर्ष मनुष्य की सबलता और निर्बलता के द्योतक अनेक पक्षों को स्पष्ट करता है। परन्तु इनका चित्रण भी स्वाभाविक और विश्वसनीय रूप से होने पर ही पात्रों में सजीवता प्रतीत होती है। यहाँ पर चरित्र चित्रण की कुछ विशेषताओं

का उल्लेख किया जा रहा है, जिनमें कथात्मक अनुकूलता, व्यावहारिक स्वाभाविकता, चारित्रिक सजीवता, आधारिक यथार्थता, भावनात्मक सहृदयता, रचनात्मक मौलिकता अन्तर्द्वन्द्वात्मकता, बौद्धिकता तथा कलापूर्णता आदि प्रमुख हैं।

कथात्मक अनुकूलता—कहानी में चरित्र चित्रण का सर्वप्रथम गुण पात्रों की कथात्मक अनुकूलता है। कहानी में लेखक जिस युग की कथा और जिस प्रकार के वातावरण की सृष्टि करता है, पात्रों की भी आयोजना उसी युग और वातावरण के अनुसार होनी चाहिए। यदि कहानी की कथावस्तु और पात्र योजना में इस दृष्टिकोण से प्रतिकूलता होती है तो एक प्रकार की विरोधाभास की सी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि तब कथावस्तु और पात्रों दोनों का झुकाव परस्पर विरोधी दिशाओं में होता है। इसका व्यावहारिक परिणाम यह होता है कि कहानी की कथावस्तु तो नीरस हो ही जाती है, साथ ही चरित्रांकन की दृष्टि से भी उसमें प्रभावहीनता आ जाती है। किसी कहानी की कथावस्तु जिस युग की किसी ऐतिहासिक घटना अथवा सूत्र पर आधारित होती है, तो उसके पात्रों की योजना भी इतिहास के उसी युग की पृष्ठभूमि पर होनी चाहिए, तथा उनकी चारित्रिक विशेषताएं भी उसी युग के अनुरूप होनी चाहिए। उदाहरण के लिए आचार्य चतुरसेन शास्त्री की लिखी हुई 'आचार्य उपगुप्त' शीर्षक कहानी का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है। इस कहानी की कथावस्तु अशोक कालीन इतिहास से सम्बन्धित है। इसमें श्रेष्ठिवर धनगुप्त, आचार्य उपगुप्त, आचार्य तिष्य, सम्राट, महारानी तथा महानायक आदि जिन पात्र-पात्रियों की आयोजना की गयी है, वे युगीन विशेषताओं के अनुरूप ही चित्रित किये गये हैं। उनकी प्रतिक्रियाएँ तथा आचार व्यवहार भी युगीन परिस्थितियों का परिचायक है। प्रेमचन्द लिखित 'रानी सारन्धा' तथा जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'ममता' आदि कहानियों की चरित्र योजना भी कथातत्व के अनुकूल होने के कारण प्रभावशाली बन पड़ी है।

मौलिकता—कहानी में चरित्र चित्रण तत्व की एक विशेषता पात्रों की मौलिकता भी है। यह एक ऐसा गुण है, जिसके अभाव में अन्य अनेक विशेषताओं से युक्त पात्र भी सर्वथा प्रभावहीन होकर पिष्टपेषण मात्र प्रतीत होते हैं। इसलिए कहानी के पात्रों के रूप में लेखक को ऐसे चरित्रों की सृष्टि करनी चाहिए, जो अपने संपूर्ण व्यक्तित्व के साथ पाठक को मौलिक प्रतीत हों। कहानी के पात्रों में मौलिकता की निहिति लेखक से सामान्यतः अधिक प्रौढ़ता और कलात्मकता की अपेक्षा रखती है। इसका कारण

यह है कि प्राय: सभी कहानीकार अपनी रचनाओं के लिए युग और समाज के ही आधार पर पात्रों का चयन करते हैं तथा बहुधा ये पात्र आधारभूत एकात्मकता के कारण एक दूसरे से पर्याप्त साम्य रखने वाले भी होते हैं। ऐतिहासिक कहानियों के पात्रों में यह दोष अधिकांश रूप से विद्यमान मिलता है। जिन इतिहासप्रसिद्ध पात्रों को अनेक कहानियों में समान रूप से चित्रित किया गया है, उनमें प्राय: एक दूसरे की अनुकृति अधिक मिलती है। बहुधा सामाजिक कहानियों में भी समान समस्याओं पर एक सी प्रतिक्रिया वाले पात्र भी मौलिक नहीं लगते। इस दृष्टिकोण से जयशंकर 'प्रसाद' की ऐतिहासिक कहानी 'ममता' में हुमायूं जैसे पात्रों का चरित्र मौलिकता युक्त है तथा अन्य स्थलों पर चित्रित हुमायूं के व्यक्तित्व से भिन्न है। प्रेमचन्द की कहानी 'बड़े घर की बेटी' में चित्रित आनन्दी का चरित्र भी रचनात्मक मौलिकता से युक्त है।

स्वाभाविकता—कहानी मे पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण का दूसरा गुण पात्रों की व्यावहारिक स्वाभाविकता है। यह चरित्र चित्रण का एक विशिष्ट गुण है, क्योंकि इसके अभाव में पात्रों का व्यवहार कृत्रिम और नाटकीय प्रतीत होने लगता है। सामान्य रूप से यदि कहानी के पात्रों के व्यवहार में स्वाभाविकता होती है, तो पाठक के हृदय में उनके प्रति संवेदना और सहानुभूति उपजती है, और वह उनके सुख दुख से प्रभावित भी होता है। इसके विपरीत अस्वाभाविकता से युक्त पात्र पाठक को सर्वथा कल्पित प्रतीत होते हैं और वह उनके व्यक्तित्व से अप्रभावित रहता है। सैद्धान्तिक रूप से सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कहानियो के पात्रों में यह गुण नैसर्गिक रूप से विद्यमान मिलता है। 'शतरंज के खिलाड़ी', 'नमक का दरोगा' तथा 'मन्त्र' जैसी कहानियों के पात्र जिस प्रकार से विभिन्न परिस्थितियों में अपने चरित्र की प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं का द्योतन करते हैं, उसमें पाठक को कहीं भी कृत्रिमता नहीं आभासित होती और इसलिए वे विशेष रूप से प्रभावपूर्ण प्रतीत होते है।

सजीवता—कहानी में चरित्र चित्रण का तीसरा गुण पात्रों की चारित्रिक सप्राणता अथवा सजीवता है। पात्रों के चरित्र में यह गुण उनके व्यक्तित्व की प्रभावयुक्तता के फलस्वरूप समाविष्ट होता है। यदि किसी कहानी के पात्रों में कथात्मक अनुकूलता तथा व्यावहारिक स्वाभाविकता मिलती है, तो उनमें सप्राणता भी सम्भाव्य होती है। इसका कारण यह है कि पात्रों के चरित्र में यह गुण उनके संपूर्ण व्यक्तित्व के आधार पर ही समाविष्ट होता है और पाठक के हृदय पर उसका प्रभाव तभी संयुक्त रूप में पड़ता है। यदि किसी कहानी के पात्र विभिन्न परिस्थितियों में स्वाभाविक

प्रतिक्रियात्मकता का परिचय देते हैं और उनका व्यवहार उनके समग्र व्यक्तित्व के अनुरूप होता है, तभी वे पाठक को सप्राण प्रतीत होते हैं। पूर्ण रूप से काल्पनिक कोटि की घटनाप्रधान कहानियों के पात्रों में इस गुण की सम्भावनाएँ अपेक्षाकृत कम होती हैं। एक प्रतिभाशाली कथाकार अपनी चरित्र चित्रण की उत्कृष्ट कला के माध्यम से उन पात्रों को भी सजीव बना देता है, जिनका आधार काल्पनिकता ही होती है। वस्तुतः पात्रों के चरित्र चित्रण के इस गुण का सम्बन्ध कहानीकार के जीवनानुभव की गहनता से है। नाटकीय और चमत्कारिक तत्वों से युक्त घटना-प्रधान कहानियाँ पाठक की उत्सुकता वृत्ति का पोषण भले ही करने में सफल हो जायं, परन्तु उनके पात्र पाठक को व्यावहारिक दृष्टि से विश्वसनीय और सजीव नहीं प्रतीत होते। इसीलिए उन पात्रों के व्यक्तित्व का कोई प्रभाव पाठक पर नहीं पड़ता। 'सुदर्शन' की लिखी हुई 'हार की जीत' शीर्षक कहानी में बाबा भारती तथा डाकू खड्गसिंह जैसे पात्र अपने व्यक्तित्व की प्रभावात्मकता के कारण ही सजीव बन पड़े हैं। जयशंकर 'प्रसाद' की 'पुरस्कार' शीर्षक कहानी में मधूलिका और अरुण के चरित्र भी इसी गुण के कारण प्रभावपूर्ण बन सके हैं।

यथार्थता——कहानी में चरित्र चित्रण तत्व की चौथी विशेषता पात्रों की आधारिक यथार्थता है। इसके अनुसार कहानी के पात्र आधारभूत रूप से यथार्थ जीवन के ही प्रतिनिधि होने चाहिए। यथार्थता और कल्पनात्मकता का प्रश्न कहानी की कथावस्तु के सन्दर्भ में जितना जटिल है, उतना ही कहानी के पात्रों के सन्दर्भ में भी। जिस प्रकार से एक कहानीकार अपनी रचना के लिए कथावस्तु का चयन जीवन के किसी क्षेत्र विशेष से करता है, उसी प्रकार से उसके पात्र भी समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रायः ऐतिहासिक कहानियाँ भी किसी न किसी रूप में युगीन सामाजिक सन्दर्भ में भी महत्व रखती हैं। इसलिए यदि कहानी में नियोजित पात्रों का आधार यथार्थपरक है, तो पाठक उनके व्यक्तित्व से अवश्य प्रभावित होता है। इसके विपरीत यदि ये पात्र विशुद्ध कल्पना की उपज होते हैं, तो पाठक को वे सर्वथा प्रभावविहीन प्रतीत होते हैं, भले ही उनके माध्यम से कहानी लेखक कितने भी महत्व-पूर्ण आदर्श का प्रतिपादन क्यों न करे। कहानीकार की चरित्र चित्रण की कलात्मक प्रौढ़ता भी कभी कभी पात्रों की यथार्थता की सम्भावनाएँ उत्पन्न करने में सफल होती है, चाहे उनकी आधारभूमि यथार्थपरक न भी हो। वह कल्पित पात्रों को भी अपनी चरित्रांकन की मनोविश्लेषणात्मक शैली के माध्यम से यथार्थ स्वरूप प्रदान कर सकता

है। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की लिखी हुई प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' का प्रधान पात्र लहनासिंह चरित्रांकन की पटुता के कारण ही सर्वथा यथार्थ प्रतीत होता है। प्रेमचन्द की कहानी 'कफन' में घीसू आदि के चरित्र भी आधारभूत यथार्थता के द्योतक हैं।

सहृदयता—कहानी में चरित्र चित्रण तत्व की एक विशेषता पात्रों की भावनात्मक सहृदयता भी है। एक कहानी में लेखक जिन पात्रों की आयोजना करता है, वे अधिकांशतः मानवीय चरित्र होते हैं। यदि किसी कहानी में मानवेतर कोटि के पात्रों की भी सृष्टि होती है, तब भी वे मानवीय सन्दर्भ में अर्थपूर्ण होते हैं। इस दृष्टिकोण से कहानी के पात्रों में मानवीयता तथा सहृदयता के गुण आवश्यक रूप से विद्यमान होने चाहिए। वस्तुतः कहानी में विभिन्न पात्रों की आयोजना इसी उद्देश्य से की जाती है कि उनके माध्यम से विविध परिस्थितियों में मानवीय चरित्र की विविध क्षेत्रीय प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं का निदर्शन हो सके। इसीलिए कहानीकार अपनी रचना में जिन पात्रों की आयोजना करता है, वे मानवीय सुख-दुख और संवेदना, सहानुभूति के कारण सहृदय प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी सहृदय पात्र अधिक स्वाभाविक और प्रभावयुक्त आभासित होते हैं। प्रेमचन्द की लिखी हुई प्रसिद्ध ऐतिहासिक कहानी 'रानी सारन्धा' में जब रानी पति के इच्छानुसार उसका अन्त कर देती है, तो कठोर स्वभाव वाले बादशाही सिपाहियों तक का हृदय परिवर्तन हो जाता है। 'सुदर्शन' की 'हार की जीत' शीर्षक कहानी में डाकू खड्गसिंह के चरित्र के इसी गुण का परिचय तब मिलता है, जब वह बाबा भारती के लोकोपकारक चरित्र की महानता से अवगत होता है।

अन्तर्द्वन्द्वात्मकता—कहानी में चित्रित पात्रों के चरित्र में अन्तर्द्वन्द्वात्मकता भी होनी चाहिए। यह विशेषता उन कहानियों के पात्रों में विशेष रूप से विद्यमान मिलती है, जिनका आधार कोई विशिष्ट नैतिक अथवा सामाजिक समस्या होती है। इसके विपरीत घटनाप्रधान कहानियों के पात्रों में इस गुण का पूर्ण रूप से अभाव होता है। घटना-प्रधान कहानियों में कथावस्तु की प्रधानता होने के कारण नाटकीय एवं चमत्कारिक सूत्र बहुलता से समाविष्ट रहते हैं। इन कहानियों में पात्रों की आयोजना का आधार भी प्रायः ये ही तत्व रहते हैं। इसलिए इस कोटि की रचनाओं में नियोजित पात्रों के चरित्र में अन्तर्द्वन्द्वात्मकता का समावेश नहीं होता। आधुनिक युग में जो समस्याप्रधान कहानियां लिखी जाती हैं, उनमें चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्वात्मकता विशेष रूप से मिलती है। इस कोटि की कहानियों में विभिन्न क्षेत्रीय यथार्थपरक परिस्थितियों

की पृष्ठभूमि में लेखक विविध सामाजिक वर्गों के पात्रों की अवतारणा करके उनके अन्तर्द्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करता है। यह अन्तर्द्वन्द्व किसी पात्र की चारित्रिक विशेषताओं के सम्यक् परिचय की दृष्टि से भी महत्व रखता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द युग से चरित्रप्रधान कहानियों की रचना अधिक होने के कारण चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व के असंख्य उदाहरण मिलते हैं। स्वयं प्रेमचन्द की ही अनेक रचनाओं में विभिन्न वर्गीय पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। उनकी लिखी हुई 'दो कब्रें' शीर्षक कहानी में सुलोचना का चरित्र भी इसका एक उदाहरण है। रामेन्द्र के द्वारा अपमानित, तिरस्कृत और उपेक्षित होने पर सुलोचना को बिजली का सा धक्का लगता है और वह स्तब्ध रह जाती है। इस समय उसके मन में भीषण संघर्ष होता है। उसकी भावनाओं में अनेक उफान उठते हैं। पहले उसे रमेन्द्र के कठोर शब्दों पर आश्चर्य होता है। फिर वह अपनी विवशता और दीनता पर रोती है। उसे अपने ऊपर ग्लानि होती है। अपनी प्यारी बच्ची उसे इस समय अपमान की मूर्तिमान् वेदना मालूम होती है और अन्ततः वह अपने आपको बलिदान कर देने का निश्चय कर लेती है। प्रेमचन्द की अन्य भी अनेक कहानियां इस कोटि में रखी जा सकती हैं, जिनमें 'नमक का दरोगा', 'मन्त्र' तथा 'प्रेरणा' आदि के नाम उल्लिखित किये जा सकते हैं।

बौद्धिकता—आधुनिक कहानी में चरित्र चित्रण की दृष्टि से पात्रों में बौद्धिकता का समावेश भी सामान्य रूप से मिलता है। चरित्र चित्रण की यह विशेषता उन कहानियों में विशेष रूप से विद्यमान मिलती है, जो विचारप्रधान होती हैं। भारतेन्दु के परवर्ती युग से हिन्दी कहानी के क्षेत्र में विभिन्न वैचारिक दर्शनों का सैद्धान्तिक आरोपण बहुलता से होने लगा है। इस कारण कहानी के पात्र भी प्रायः बौद्धिकता-प्रधान रूप में चित्रित होने लगे हैं। व्यावहारिक दृष्टिकोण से इस कोटि की कहानियां आधुनिक युगीन आवश्यकता हैं। पूर्व युगीन कथा साहित्य केवल मनोरंजन के उद्देश्य से लिखा जाता था इसलिए उसकी कथावस्तु तथा पात्रयोजना आदि में रोचकता, उत्सुकता, नाटकीयता तथा चमत्कारिकता आदि पर ही बल दिया जाता था। परन्तु आधुनिक कहानी पाठक की बौद्धिक क्षुधा की भी परितृप्ति करती है। एक पाठक आज की कहानी से बौद्धिक स्तरीयता की भी अपेक्षा रखता है। फलतः कहानीकार का दायित्व बढ़ जाता है और वह अपनी कहानी में नियोजित पात्रों के चरित्र चित्रण के माध्यम से ऐसे जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है, जो उसके जीवन दर्शन के अभि-

व्यक्तीकरण के साथ ही उसके बौद्धिक स्तर के भी परिचायक होते हैं। आधुनिक युगीन हिन्दी कहानीकारों में बौद्धिकताप्रधान रचनाएं प्रस्तुत करनेवालों में जैनेन्द्र कुमार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जैनेन्द्र कुमार की विचारात्मक कहानियों के अधिकांश पात्र इसी प्रवत्ति के द्योतक हैं। उनकी लिखी हुई 'मुक्त प्रयोग' शीर्षक कहानी का पात्र शेलेन अथवा शैलेन्द्र बौद्धिक वर्ग के पात्रों का ही प्रतिनिधित्व करता है। कहानी के आरम्भ में शेलेन एक जलपानगृह में बैठा हुआ सिगरेट के धुएं के गुच्छों में अपने 'लिबरेटेड माइंड' को पहचानता है। फिर वह कुछ कड़वाहट के साथ पिछली शाम की घटनाओं की याद करता है, जो उसमें कुढ़न और कड़वाहट पैदा करती है। फिर वह सात वर्ष पहले का वह समय स्मरण करता है, जब वह कालेज में प्राध्यापक बना था और विवाहित हुआ था। दो वर्ष के भीतर उसका पत्नी से बिलगाव हुआ और नौकरी भी छोड़ दी गई। एक और नौकरी और विवाह के पहले और बाद वह सिद्धा-न्ततः प्रयोगमुक्त जीवन आरम्भ करता है। फिर उसका परिचय प्रमिला से होता है जिसे वह विलक्षण कहता है। दोनों प्रेम और विवाह आदि सम्बन्धो पर बौद्धिक दृष्टि-कोण से परामर्श करते है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से इस कोटि के पात्र कही कहीं पर अयथार्थ से प्रतीत होते हैं, परन्तु प्रायः आधुनिक बौद्धिक चिन्तन का स्वरूपात्मक बोध उनके विचारों से अवश्य हो जाता है।

कलापूर्णता—कहानी के चरित्र चित्रण तत्व के अन्तर्गत एक विशेषता पात्रों की कलापूर्णता भी है। कहानी एक साहित्यिक विधा है और इस रूप में इसके माध्यम से लेखक अपनी कलात्मक प्रतिभा का परिचय प्रस्तुत करता है। जिस प्रकार से कथा-वस्तुक्षेत्रीय कलात्मकता कहानी की सफलता का आधार होती है, उसी प्रकार से पात्रो के सफल चरित्र चित्रण में भी इस गुण की अपेक्षा होती है। नाटकीय एवं चमत्का-रिक तत्वो से युक्त घटनाप्रधान कहानी में आयोजित पात्रों के चरित्र में इस विशेषता की सम्भावनाएं अपेक्षाकृत कम हो जाती है। इसके विपरीत यथार्थपरक आधारभूमि पर लिखी गयी सामाजिक कोटि की कहानियों के पात्र कलात्मक चित्रांकन से युक्त होते हैं। इस सन्दर्भ में यहां पर इस तथ्य का उल्लेख करना असंगत न होगा कि यह आवश्यक नही है कि घटनाप्रधान कहानी की तुलना में चरित्रप्रधान कहानीपात्रों का चरित्र चित्रण अधिक कलात्मक हो। वास्तव में यह कहानीकार की चित्रांकन क्षमता और प्रतिभा पर निर्भर करता है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री, जैनेन्द्र कुमार, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल तथा सच्चिदानन्द

हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' आदि की अनेक कहानियों में नियोजित पात्रों का चरित्र चित्रण कलात्मक परिपूर्णता से युक्त मिलता है। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि आदर्श अथवा उदात्त का अन्यतम उदाहरण प्रस्तुत करने वाले सात्विक पात्रों का ही कलात्मक दृष्टि से सफल होना आवश्यक नहीं है। प्रेमचन्द की 'क़फ़न' कहानी में घीसू आदि पात्र कोई ऊंचा आदर्श उपस्थित नहीं करते, परन्तु पाठक उनके कलात्मक चित्रांकन से प्रभावित हो जाता है।

इस प्रकार से कहानी के पात्रों के चरित्र चित्रण की दृष्टि से ऊपर उल्लिखित किये गये गुणों का विशेष महत्व होता है, क्योंकि इनके समावेश से चरित्र चित्रण की सफलता की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। यदि कहानी के पात्र कथा के अनुकूल होते हैं, तो उनका विकास समानान्तर रूप से होता है। व्यावहारिक दृष्टि से स्वाभाविक होने पर पात्र पाठकों को कृत्रिम नहीं प्रतीत होते। चारित्रिक सप्राणता के गुण से युक्त होने पर वे जीवन्त रूप में पाठक को प्रभावित करते हैं। यदि पात्रों की योजना आधारभूत दृष्टि से यथार्थपरक होती है, तो वे यथार्थ जीवन और समाज के वास्तविक प्रतिनिधि प्रतीत होते हैं। भावनात्मक सहृदयता के गुण से युक्त पात्र पाठक की संवेदना और सहानुभूति प्राप्त करने में सफल होते हैं। इसके साथ ही कहानी के पात्रों में रचनात्मक मौलिकता का गुण भी समाविष्ट होना चाहिए, इससे उनकी आयोजना अधिक प्रभावपूर्ण आभासित होती है। अन्तर्द्वन्द्वात्मकता, बौद्धिकता तथा कलात्मकता आदि के गुणों से युक्त पात्र कहानी को न केवल चरित्र चित्रण तत्व की दृष्टि से सफल बना देते हैं, वरन् उसे स्वरूपगत समग्रता भी प्रदान करते हैं।

पात्रों का वर्गीकरण

साहित्य की अन्य विधाओं की भांति ही कहानी का विषय भी मानव जीवन है। एक कहानीकार अपनी कहानी में जिन पात्रों की आयोजना करता है, वे समाज के स्वतंत्र वर्गों का विविधात्मक रूप में पृथक् पृथक् प्रतिनिधित्व करते हैं। इस रूप में ये पात्र अपने अपने वर्गों का दृष्टिकोण और विचारधारा प्रस्तुत करते हैं, जो प्रायः परस्पर विरोधी भी होती है। इस कोटि के पात्र सामान्य रूप से वैयक्तिकता की तुलना में वर्गगत चारित्रिक विशेषताएं ही रखते हैं। वे जिस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसी के अनुसार उनका स्वरूप निर्धारण होता है। इसके अतिरिक्त एक दूसरी कोटि के पात्र होते हैं जो वर्गगत भिन्नता के होते हुए भी वैचारिकता की दृष्टि से समानता रखते हैं। पात्रों का यह भेद उनकी एक स्वतंत्र श्रेणी कर देता है, जिसके अन्तर्गत

बौद्धिक वर्ग के पात्र आते हैं। व्यावहारिक दृष्टिकोण से विविध विकासकालीन हिन्दी कहानी के क्षेत्र में महाजन, सेठ साहूकार, राजा महाराज, धर्म सुधारक, धर्म प्रचारक, समाज सुधारक, राजनीतिक नेता, साधु असाधु, चोर डाकू, सैनिक, पुलिस अधिकारी, वकील, डाक्टर, श्रमिक, कृषक, क्लर्क, प्रोफेसर, विद्यार्थी, विद्वान्, मूर्ख, वेश्या, सती, ढोंगी, पेटू, जज, हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, मैनेजर, दीवान, भिखारी, राजकुमार, जिप्सी, औरत, मर्द, कवि, लेखक, पंडित, मौलवी, मंत्री, राजदरबारी आदि के रूप में समग्र समाज की इकाइयों का संयोजन कर पात्र योजना हुई है। यहां पर प्रमुख पात्र, सहायक पात्र, खल पात्र, आदर्शवादी पात्र, यथार्थवादी पात्र, ऐतिहासिक पात्र, राजनैतिक पात्र, सामाजिक पात्र, पौराणिक पात्र तथा बौद्धिक पात्र आदि के रूप में इनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रमुख पात्र—प्रत्येक कहानी में एक न एक प्रमुख पात्र अथवा पात्री का चित्रांकन अवश्य किया जाता है। यह कहानी में सर्वाधिक महत्त्व रखता है। इस पात्र की विशेषता यह होती है कि वह संपूर्ण कहानी का आधारभूत चरित्र होता है। उसी में कहानी का मूल अभिप्राय केन्द्रित होता है और वही कहानी की गति का स्रोत भी होता है। इस पात्र के चरित्र को प्रभावपूर्ण एवं अपेक्षाकृत जीवन्त बनाने के लिए कहानीकार को कुछ सहायक पात्रों की भी सृष्टि करनी पड़ती है, जो इसके पूरक होते हैं। यद्यपि व्यावहारिक दृष्टिकोण से एक कहानी में नियोजित पात्रों की संख्या अधिक नहीं होनी चाहिए, परन्तु प्रमुख पात्र के चरित्र को प्रभावात्मक बनाने के लिए कुछ सहायक पात्रों की सृष्टि आवश्यक हो जाती है। कहानी लेखक अनेक पात्रों से युक्त कहानी में भी प्रधानतः अपना ध्यान नायक पर ही केन्द्रित रखता है। अन्य पात्रों की तुलना में वह इसी प्रधान पात्र के चरित्रांकन पर विशेष बल देता है। वह इस पात्र के चरित्र को विशेष रूप से उभारकर स्पष्ट करने के लिए विभिन्न जटिल परिस्थितियों की आयोजना करता है। इस रूप में वह प्रमुख पात्र की चारित्रिक विशेषताओं और प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्म दृष्टि से चित्रण करने का अवसर निकाल लेता है जिससे इन पात्रों के व्यक्तित्व का समग्र रूपात्मक प्रभाव पाठक के हृदय पर पड़ सके। परन्तु ऐसा करते समय उसे इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि इस घटना-नियोजन के फलस्वरूप प्रमुख पात्र का चरित्र पुष्ट ही हो, अशक्त न बन सके। कभी कभी वैचारिक कोटि की कहानी में लेखक प्रमुख पात्र को किसी उदात्तपरक विचारधारा के आदर्श अथवा प्रतीक के रूप में भी प्रस्तुत करता है। ऐसी स्थिति में कहानी के आरम्भ से लेकर अन्त तक

उसके चारित्रिक विकास में एक प्रकार की गतिशीलता होनी आवश्यक है। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' में नायक लहनासिंह का चरित्र इसी विशेषता से युक्त है। कुछ कहानियों में एक के स्थान पर दो प्रमुख पात्र होते हैं और दोनों का ही चरित्र कहानी का महत्वपूर्ण आधार होता है। प्रेमचन्द की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' में मीर साहब और मिर्जा साहब तथा जयशंकर 'प्रसाद' की कहानी 'पुरस्कार' में अरुण तथा मधूलिका के चरित्र समान रूप से महत्व रखते हैं।

सहायक पात्र—एक प्रमुख पात्र अथवा पात्री के अतिरिक्त कहानी में कतिपय सहायक पात्रों अथवा पात्रियों की भी सृष्टि की जाती है। इन सहायक पात्रों का द्वितीयक महत्व होता है। इनकी चारित्रिक योजना का उद्देश्य मूल कथासूत्र का विकास करना होता है। साथ ही ये मुख्य पात्र के चरित्र के पूरक भी होते हैं। इस दृष्टि से इनका कार्य ऐसी परिस्थितियों को उत्पन्न करना होता है, जिनमें मुख्य पात्र का चारित्रिक विकास सम्भाव्य हो। व्यावहारिक दृष्टि से कहानी में सहायक पात्रों की संख्या सीमित ही होनी चाहिए, क्योंकि इनकी बहुलता होने से प्रधान पात्र का चरित्रांकन भली प्रकार नहीं हो पाता। यदि सहायक पात्र कम संख्या में होते हैं, तो कथावस्तु में नियोजित घटना व्यापारों के सन्दर्भ में वे एक केन्द्रीय प्रभाव की सृष्टि में सहायक सिद्ध होते हैं। कुछ कहानियों में सहायक चरित्र भी विशेष महत्व के होते हैं, विशेष रूप से यदि उनके माध्यम से विशिष्ट कथा सूत्रों का नियमन कराया जाता हो। इसके अतिरिक्त एक श्रेष्ठ और प्रतिभा सम्पन्न कलाकार अपनी सूक्ष्म दृष्टि से सहायक पात्रों का चरित्रांकन भी प्रभावशाली ढंग से करके उन्हें सजीव बना देता है। उदाहरण के लिए यहां प्रेम-चन्द लिखित 'विश्वास' कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। इस कहानी में लेखक ने मिस जोशी तथा आप्टे के साथ साथ मिस्टर जौहरी का चरित्रांकन कलापूर्ण ढंग से किया है। इसी प्रकार से 'मंत्र' शीर्षक कहानी में प्रेमचन्द ने बूढ़े भगत तथा डाक्टर चड्ढा के साथ ही कैलास तथा मृणालिनी आदि के चरित्रों को भी सजीव बना दिया है। इस दृष्टि से कहानी में सहायक पात्रों की आयोजना भी विशेष महत्व रखती है।

पुरुष पात्र—कथा साहित्य के क्षेत्र में परम्परागत दृष्टिकोण के अनुसार कहानी का नायक कोई पुरुष पात्र ही होना चाहिए। अन्य रचनात्मक साहित्यिक विधाओं में भी प्रायः नायक के रूप में किसी पुरुष पात्र की ही चारित्रिक आयोजना की जाती है। यदि किसी कहानी में नायक और नायिका दोनों की अवतारणा समान महत्व से युक्त होती है, तो भी उनमें आपेक्षिक प्रधानता पुरुष पात्र को ही दी जाती है। पूर्व

युगीन समाज में पुरुष का स्थान नारी की तुलना में श्रेष्ठतर समझे जाने के कारण ही इस धारणा का विकास होता रहा है। पुरुष पात्र की प्रधानता के ही अनुसार अनेक कहानियों का शीर्षक नायकों के नाम पर रखा जाता है। प्रेमचन्द लिखित 'मैकू', 'सुजान भगत' तथा 'नेउर' आदि कहानियां इसका उदाहरण हैं। इस कोटि की कहानियों में यद्यपि अन्य पात्र-पात्रियों की भी चारित्रिक योजना की जाती है, परन्तु प्रधानता नायक की ही होती है और उसी का व्यक्तित्व कहानी की कथा के केन्द्र में विद्यमान रहता है। कुछ कहानियों में पुरुष पात्रों की योजना नारी पात्रों के ही समान स्तर पर नायक-नायिका के रूप में की जाती है। इस कोटि की रचनाओं में जैनेन्द्रकुमार लिखित 'महामहिम' शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। इस कहानी में लेखक ने महामहिम और उनकी सेक्रेटरी उषा दोनों का ही समान स्तर पर चित्रांकन किया है। इनके अतिरिक्त कहानी में पुरुष पात्रों की योजना एक तीसरे रूप में भी मिलती है। इसके अन्तर्गत सहायक पात्रों के रूप में चित्रित पुरुष पात्र आते हैं। इस वर्ग के पात्रों का उदाहरण आचार्य चतुरसेन शास्त्री लिखित 'रूठी रानी' में मिलता है। इस कहानी में चित्रित रावल लूनकरण तथा राव मालदेव आदि पुरुष पात्र इसी कोटि के अन्तर्गत उल्लिखित किये जा सकते हैं।

स्त्री पात्र—पूर्ववर्ती युगों में स्त्री पात्र-प्रधान कहानियां प्रायः नहीं मिलती हैं। आधुनिक काल में नारी के समान अधिकारों की मांग और नारी-समाज में चेतना के जागरण के साथ ही कहानियों में नारी का चित्रण भी प्रमुख पात्री के रूप में किया जाने लगा।[१०] स्त्री पात्रो की योजना कहानी में या तो सहायक चरित्रों के रूप में की जाती है और या पुरुषों के समान महत्व वाले चरित्रों में। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द की लिखी हुई 'मन्त्र' शीर्षक कहानी में मृणालिनी का चरित्र इसी कोटि का है। जिन कहानियों में पुरुषों के समान महत्व वाले चरित्रों के रूप में नारी पात्रों की योजना की जाती है, उनमें उसका स्थान प्रधान पात्र के समान ही प्रधान पात्री के रूप में होता है। इस कोटि की एक कहानी जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पुरस्कार' भी निर्दिष्ट की जा सकती है। इस कहानी में कृषक बाला मधूलिका के चरित्र का महत्व राजकुमार अरुण के चरित्र के समान ही है। इनके अतिरिक्त स्त्री पात्रों की योजना कहानी की नायिका

१०. जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'पत्नी' में भारतीय कुलवधू की विवशता, पीड़ा और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति मिलती है।

के रूप में भी होती है। जयशंकर 'प्रसाद' की लिखी हुई 'ममता' शीर्षक कहानी इसका उदाहरण है। इसमें नायिका ममता का महत्व कहानी के अन्य सभी पात्रों से बढ़कर है। स्त्री पात्रों की प्रधानता के आधार पर ही नायिका के नाम पर बहुत सी कहानियों के शीर्षक भी रखे जाते हैं। प्रेमचन्द की लिखी हुई 'लैला', 'रानी सारन्धा', 'मिस पद्मा', 'शांति' तथा 'सुहागी' आदि कहानियों का उल्लेख इसी श्रेणी के अन्तर्गत किया जा सकता है।

खल पात्र—प्राचीन कथा साहित्य में खल नायक अथवा खल पात्रों की भी चारित्रिक योजना प्रायः अनिवार्य रूप से की जाती थी। आधुनिक साहित्य में खल नायकों अथवा खल पात्रों की आयोजना तो मिलती है, परन्तु उसका स्वरूप प्राचीन खल चरित्रों से विभिन्नता रखता है। इस स्वरूपगत वैभिन्न्य का मुख्य कारण यह है कि नीति अनीति, सत् असत्, पाप पुण्य तथा धर्म अधर्म आदि से सम्बन्धित आधुनिक धारणाएं अपेक्षाकृत जटिलता युक्त हैं। प्राचीन साहित्य में खल नायक अथवा खल पात्र सामान्य रूप से अनीति, असत्, पाप और अधर्म का मूर्तिमान् प्रतीक होता था, जबकि नायक को एक सत्पात्र के रूप में चित्रित किया जाता था। यही नहीं, सांकेतिक रूप में नायक की विजय और खल नायक की पराजय वास्तव में उन मूल्यों की जय-पराजय होती थी, जिनके वे प्रतीक होते थे। आधुनिक कहानी साहित्य में मनोवैज्ञानिक तत्वों के समावेश और यथार्थपरक दृष्टिकोण के समावेश के फलस्वरूप सत् और असत् सम्बन्धी धारणाओं का रूढ़ रूप अधिक व्यावहारिक न बना रह सका। यही नहीं, सत् की पोषक आदर्शवादी एवं उदात्तपरक धारणाएं भी पुरानी पड़ने लगीं, क्योंकि ये अधिकांशतः कल्पना पर ही आधारित होती थीं। आधुनिक मनोविज्ञान ने व्यक्ति की बुराई के मूल कारणों का वैज्ञानिक विश्लेषण करके उनका निराकरण सम्भव बनाया है। क्योंकि उसके अनुसार बुरा या विकृत स्वभाव एक प्रकार का मानसिक रोग होता है।[11] इसीलिए इनके द्वारा जन्मी बुराइयां रूढ़ रूप में खल नायक का स्वरूप नहीं व्यक्त करती हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक कहानीकार इन बुराइयों का निराकरण करके प्रायः इस

११. चरित्र को उत्कृष्ट और आदर्श बनाने के लिए यह जरूरी नहीं कि वह निर्दोष हो—महान् से महान् पुरुषों में भी कुछ न कुछ कमजोरियां होती हैं। चरित्र को सजीव बनाने के लिए उसकी कमजोरियों का दिग्दर्शन कराने से कोई हानि नहीं होती, बल्कि यही कमजोरियां उस चरित्र को मनुष्य बना देती हैं।—प्रेमचंद

कोटि के पात्रों का हृदय परिवर्तन भी चित्रित करता है। प्रेमचन्द की लिखी हुई 'मन्त्र' शीर्षक कहानी के अन्तिम भाग में डाक्टर चड्ढा का पश्चात्ताप तथा 'सुदर्शन' की लिखी हुई 'हार की जीत' शीर्षक कहानी में डाकू खड्गसिंह का घोड़ा लौटा जाना इसी प्रकार के हृदय परिवर्तन के उदाहरण हैं, जिनमें खल कोटि के हृदयहीन पात्र अन्ततः सहृदय बन जाते हैं।

आदर्शवादी पात्र—प्राचीन कथा साहित्य में आदर्शपरक उदात्तवादी दृष्टिकोण के प्रतीक के रूप में प्रायः काल्पनिक कोटि के पात्रों की सृष्टि अपेक्षाकृत अधिक मिलती थी। इन पात्रों के माध्यम से लेखक या तो अपना सुधारपरक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता था और या किसी सात्विक आदर्श की स्थापना करता था।[१२] हिन्दी कहानी के आविर्भाव काल से लेकर वर्तमान युग तक इस कोटि के पात्रों का चित्रण अनेक कहानीकारों द्वारा किया जाता रहा है। भारतेन्दु युग में रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' शीर्षक कहानी इसी प्रकार के पवित्र प्रेम के आदर्श को उपस्थित करती है। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी में भी इसी प्रकार का आदर्श कथा नायक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचन्द युग में भी आदर्शवादी पात्रों की सृष्टि बड़ी संख्या में हुई। स्वयं प्रेमचन्द की लिखी हुई अनेक कहानियों के नायक इसी कोटि के हैं। इस दृष्टि से प्रेमचन्द की 'मन्त्र' कहानी का पात्र बूढ़ा भगत, 'बड़े घर की बेटी' कहानी की पात्री आनन्दी तथा 'नमक का दरोगा' कहानी का पात्र मुंशी बंशीधर आदि उल्लिखित किये जा सकते हैं। प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती काल में जयशंकर 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' तथा भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि की कहानियो में आदर्शवादी कोटि के पात्रों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है।

यथार्थवादी पात्र—हिन्दी कहानी के क्षेत्र में यथार्थवादी पात्रों की सृष्टि मुख्यतः प्रेमचन्द युग से आरम्भ हुई। स्वयं प्रेमचन्द की अनेक कहानियों में यथार्थवादी पात्रों की योजना प्रभावशाली रूप में मिलती है। 'कफन' में घीसू, 'सवा सेर गेहूं' में शंकर तथा 'नेउर' शीर्षक कहानी मे नेउर आदि पात्र इस दृष्टि से विशेष सफल बन पड़े हैं।

१२. सशक्त वातावरण की पृष्ठभूमि में उदात्तपरक चारित्रिक आदर्श का प्रस्तुतीकरण करने की दृष्टि से उन्नीसवीं शताब्दी के अमरीकन कथाकार हरमैन मेल्विले की कहानी 'इजराएल पाटर' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

ये पात्र कटु यथार्थ की पृष्ठभूमि में वास्तविक जीवन का विश्वसनीय रूप प्रस्तुत करते हैं। प्रेमचन्द के काल से ही हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवादी विचारधारा का व्यापक रूप से प्रचार आरम्भ हो गया। इस विचारान्दोलन का प्रभाव कहानी पर भी पड़ा। यह दृष्टिकोण मुख्यतः सामाजिक यथार्थ और वैज्ञानिक यथातथ्यता पर विशेष बल देता है।[13] प्रेमचन्द के अतिरिक्त आधुनिक युग के अन्य अनेक कहानीकारों ने यथार्थवादी पात्रों की सृष्टि की है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' लिखित कहानियों में 'सुकुल की बीबी' की कुंवर, 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' की सुपर्णा, 'ज्योतिर्मयी' की ज्योतिर्मयी, 'श्यामा' का बंकिम तथा 'चतुरी चमार' का चतुरी आदि इसी कोटि के पात्र हैं। चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', यशपाल तथा मन्मथनाथ गुप्त आदि लेखकों ने अपनी रचनाओं मे यथार्थवादी पात्रों की चारित्रिक सृष्टि को प्रधानता दी है।

व्यक्तिवादी पात्र—हिन्दी कहानी के क्षेत्र में बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक से व्यक्तिवादी पात्रो की चारित्रिक सृष्टि आरम्भ हो गयी थी। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस काल में प्रगतिवादी विचारधारा के विरुद्ध एक प्रकार की प्रतिक्रिया सी लक्षित होती है। इसके अनुसार व्यक्ति के स्वतंत्र व्यक्तित्व की साहित्य में पुनःस्थापना पर बल दिया जाने लगा। इस युग से अनेक ऐसे कहानीकार सामने आते हैं, जो सामाजिक यथार्थ की तुलना में वैयक्तिक यथार्थ पर अधिक बल देते हैं। इस वर्ग के कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में व्यक्तिप्रधान पात्रों की सृष्टि करके इस क्षेत्र में नयी विविधता की सम्भावनाएं भी उत्पन्न कीं। इन कहानीकारों का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत पूर्वाग्रहमुक्त था। यद्यपि इस कोटि के पात्रों के विषय में इस विचारधारा के विरोधियों द्वारा असामाजिकता और विकृतता का आरोप लगाया जाता है परन्तु इतना स्पष्ट है कि पात्र योजना और चरित्र चित्रण के क्षेत्र में इस दृष्टिकोण के माध्यम से विकास की नवीन दिशाएं सामने आयीं। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में जिन कहानीकारों ने व्यक्तिवादी श्रेणी के पात्रों की सृष्टि की है, उनमें जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' तथा उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लिखित किये जा सकते हैं।

१३. उन्नीसवीं शताब्दी के समर्थ कथाकार पम्यालोवस्की ने समकालीन जीवन का यथार्थपरक चित्रण अपनी कहानियों में किया है, जिसमें शोषण और क्रूरता के अतिशयोक्तिरहित चित्र हैं। ये कहानियां 'समकालीन' में सन् १८६१ में छपी थीं।

मनोवैज्ञानिक पात्र--प्रेमचन्द और उनके परवर्ती युग में हिन्दी कहानी के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक पात्रों की रचना सर्वाधिक हुई है। इसका मुख्य कारण आधुनिक कहानी पर मनोवैज्ञानिक कोटि के पात्रों का चरित्रांकन उनके मानसिक गठन और विकास के विश्लेषण पर आधारित होता है। पात्रों की इसी श्रेणी के अन्तर्गत उन चरित्रों का भी उल्लेख किया जा सकता है, जो असंतुलित और अस्वस्थ मनोवृत्ति के द्योतक होते हैं। ये किसी न किसी मानसिक विकृति से भी ग्रस्त होते हैं। इसके अतिरिक्त पात्रों की चारित्रिक परिवर्तनशीलता मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन का एक महत्व-पूर्ण सूत्र है। यह परिवर्तनशीलता न केवल मनोवैज्ञानिकता और चरित्र विकास की दृष्टि से विशेषता रखती है, वरन् यह कथावस्तु का भी परिवर्तन स्थल निर्धारित करती है। वस्तुतः मानवीय चरित्र की प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाएं इतनी विविधतात्मक होती हैं कि किसी पात्र विशेष की आकस्मिक चारित्रिक परिवर्तनशीलता पाठक को अस्वा-भाविक नही लगती। इसके विपरीत इससे कहानी के चमत्कारिक और नाटकीय प्रभाव में भी एक प्रकार की विश्वसनीयता आ जाती है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में मनोविश्लेषण को प्रमुख आधार बनाकर कहानी रचना करने वालों में इलाचंद्र जोशी का नाम प्रमुख रूप से उल्लिखित किया जा सकता है। व्यक्ति के अहम् और कुंठा-भावना का चित्रण उनकी कहानियों में अपेक्षाकृत सूक्ष्मतर रूप में उपलब्ध होता है। यह हिन्दी कहानी के लिए इस अर्थ मे भी एक नवीनता थी कि अभी तक केवल मनो-विज्ञान का सामान्य रूप से तात्विक सम वेश कहानी में किया जाता था, सूक्ष्म मनो-विश्लेषण की प्रवृत्ति पूर्व-युगीन कहानी साहित्य में नही थी। इलाचन्द्र जोशी के अति-रिक्त जैनेन्द्र कुमार ने भी मानव स्वभाव की विकृत एवं अप्रत्याशित विकृतियों के चित्रण में मनोविश्लेषण का आधार ग्रहण किया। उन्होंने अपने दृष्टिकोण को एक दार्शनिक आध्यात्मिक पृष्ठभूमि भी दी, जो उनकी रचनाओं की आदर्शवादी परिणति की द्योतक है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पात्र नियोजन करते वाले अन्य कहानीकारों में सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', भगवती चरण वर्मा, यशपाल, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा निर्मल वर्मा आदि के नाम उल्लिखित किये जा सकते है।

सामाजिक पात्र—इस श्रेणी के पात्रो की संख्या हिन्दी कहानी के क्षेत्र में सर्वाधिक है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रथम विकास युग से ही सामाजिक कोटि के पात्र हिन्दी कहानीकारों ने प्रमुखता से प्रस्तुत किये। सामाजिक पात्रों की चारित्रिक आयोजना

का मूल आधार समाज की संरचना का कोई न कोई पक्ष रहता है। इसीलिए इन पात्रों का महत्व किसी न किसी सामाजिक दृष्टिकोण से उद्देश्य विशेष के अनुरूप होता है। भारतेन्दु युग से लेकर आज तक की हिन्दी कहानी में सामाजिकता की ही प्रवृत्ति मुख्य रही है। आधुनिक युग में समाज के विभिन्न वर्गों में जो चेतना जाग्रत हुई तथा उसके फलस्वरूप जो आन्दोलन हुए, उन्होंने सामाजिक विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारतेन्दु युग में स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती' में सर्वप्रथम सामाजिक तत्वों की निहिति मिलती है। इसी युग में गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पंडित और पंडितानी', पार्वतीनन्दन लिखित 'एक के दो दो ', बंग महिला लिखित 'कुंभ में छोटी बहू' तथा फूलदेवी लिखित 'बड़े घर की बेटी' आदि में भी सामाजिक पात्रों का आरम्भिक स्वरूप स्पष्ट होता है। इस युग की कहानियों में चित्रित सामाजिक पात्र समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व अवश्य करते हैं, परन्तु उनके माध्यम से किसी विचार दर्शन अथवा सामाजिक मूल्य की स्थापना का प्रयत्न नहीं लक्षित होता है। प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती युगों में चरित्रांकित सामाजिक पात्र अपेक्षाकृत प्रभावशाली व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। इन युगों में इस कोटि के पात्रों की चारित्रिक सृष्टि के माध्यम से लेखकों ने सामाजिक यथार्थ के विभिन्न रूपों का उद्घाटन किया है।[१४] नागरिक और ग्रामीण समाज के प्रायः सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व इस युग के सामाजिक पात्रों द्वारा किया गया है। प्रेमचन्द लिखित 'अलग्योझा', 'पूस की रात', 'कफ़न', 'मंत्र', 'बड़े घर की बेटी' तथा 'नमक का दरोगा', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'चतुरी चमार', 'दो दाने', 'ज्योतिर्मयी' तथा 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी', उपेन्द्र नाथ 'अश्क' लिखित 'डालिये', 'खिलौने' तथा 'कहानी लेखिका और झेलम के सात पुल' एवं सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'छाया', 'द्रोही', 'रोज़' तथा 'गृह त्याग' आदि कहानियों में इस कोटि के पात्रों का प्रभावपूर्ण चित्रांकन हुआ है।

राजनीतिक पात्र--हिन्दी कहानी में राजनैतिक तत्वों का समावेश प्रायः द्वितीय विकास काल से लक्षित होता है। इस काल के अन्तर्गत प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के मध्य का समय रखा जा सकता है। इस अवधि में हमारे देश में अनेक विचार-

१४. 'अज्ञेय' की 'रोज़' कहानी में आधुनिक मध्यवर्गीय समाज में रूढ़िग्रस्त नारी के मशीनी जीवन की प्राणहीनता की व्यंजना है।

धाराओं द्वारा प्रेरित विभिन्न राजनीतिक आन्दोलन हुए। अनेक राजनीतिक मतवादों का समर्थन करने वाले पात्रों की चारित्रिक आयोजना इस काल में लिखी गयी कहानियों में मिलती है। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् देश के विभाजन से उत्पन्न हुई परिस्थितियों तथा अन्य राजनीतिक समस्याओं पर आधारित तत्वों का समावेश कहानी में बहुलता से किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व मुख्यत: भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा महात्मा गांधी की विचारधारा इन तत्वों का आधार रही, परन्तु बाद मे अनेक राजनीतिक दर्शनों ने भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों की राजनीतिक चेतना के जागरण का आवाहन किया। हिन्दी कहानी में महात्मा गाधी की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र मुख्यत: सत्याग्रह तथा अहिंसा आदि के सिद्धान्त आदर्श रूप में प्रस्तुत करते है। इसके अतिरिक्त साम्यवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों का नियोजन भी अनेक कहानीकारों द्वारा किया गया है। इस विचारान्दोलन के अनुसार समाजवादी व्यवस्था ही वास्तविक रूप में उपादेय हो सकती है। यह व्यवस्था महात्मा गाधी द्वारा प्रतिपादित धर्म, नीति, सत्य, सदाचार, सेवा, त्याग, संयम तथा अनुशासन आदि के उदात्तपरक आदर्शों का अवलम्बन ही अनुमोदित करती है। प्रेमचन्द की लिखी हुई 'सुजान भगत', 'पंच परमेश्वर' तथा 'मंत्र' आदि कहानियों के पात्र गांधीवादी सिद्धान्तों के ही पोषक है। समाजवादी विचारधारा का पोषण करने वाले राजनीतिक कोटि के पात्रों की चारित्रिक आयोजना यशपाल तथा मन्मथनाथ गुप्त आदि की कहानियों में भी मिलती है।

प्रतीकात्मक पात्र—आधुनिक कहानी के क्षेत्र में ऐसे पात्रों की भी सृष्टि विभिन्न लेखको द्वारा की गयी है, जिनका प्रतीकात्मक महत्व होता है। इस प्रकार की चरित्र-योजना प्राय: दार्शनिक तथा वैचारिक कोटि की कहानियों में अधिक होती है। प्रतीकात्मक वर्ग के पात्र कहानी में प्रमुख अथवा सहायक श्रेणी के हो सकते है। जो कहानियां प्राचीन पौराणिक सन्दर्भों पर आधारित होती है, उनमें भी प्राय: इस प्रकार की चरित्र-योजना मिलती है। हिन्दी कहानी के इतिहास में तृतीय विकास काल के अनेक लेखकों ने प्रतीकात्मक पात्रों से युक्त रचनाएं प्रस्तुत की हैं। इस कोटि की कहानियों में जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'करुणा की विजय' तथा 'पत्थर की पुकार', 'सुदर्शन' लिखित 'एथेंस का सत्यार्थी' तथा 'कमल की बेटी', राय कृष्णदास लिखित 'कला और कृत्रिमता' तथा 'वसंत का स्वप्न', भगवती प्रसाद वाजपेयी लिखित 'खाली बोतल', उषादेवी मित्रा लिखित 'प्रथम छाया' तथा 'कलाकार', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन

'अज्ञेय' लिखित 'पठार का धीरज' तथा 'पुरुष का भाग्य' तथा जैनेन्द्र कुमार लिखित 'तत्सत्' तथा 'दो चिड़ियां' आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

ऐतिहासिक पात्र—इतिहास के विविध युगीन कथासूत्रों पर आधारित कहानियों में जिन पात्रों की योजना होती है, वे ऐतिहासिक कोटि के पात्र होते हैं। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रथम विकास काल के अन्तर्गत इस प्रकार की रचनाओं का अभाव मिलता है। प्रेमचन्द युग से ऐतिहासिक कहानियों की रचना अधिकता से हुई। इस विषय की कहानियों में जिन पात्रों की चारित्रिक योजना की जाती है, उसका आधार ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक तथ्यों के साथ साथ कल्पनात्मक तत्व भी होते हैं। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक कहानियों में कभी कभी एक अथवा दो प्रमुख पात्र ही इतिहास सम्मत होते हैं, शेष लेखक की अपनी कल्पना द्वारा सृष्ट होते हैं हिन्दी में जो ऐतिहासिक कहानियां लिखी गयी हैं, उनका कथात्मक आधार प्रायः भारतीय इतिहास के ही विभिन्न युग रहे हैं। प्रेमचन्द लिखित 'राजा हरदौल' तथा 'रानी सारन्धा', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'जहांआरा' तथा 'अशोक', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'जैसलमेर की राजकुमारी' तथा 'टीपू सुलतान', उषा देवी मित्रा लिखित 'महान् की पूजा' तथा 'चम्मच भर आंसू', यशपाल लिखित 'दास धर्म' तथा 'सत्य की पूजा' तथा जैनेन्द्र कुमार लिखित 'रानी महामाया' तथा 'जनार्दन की रानी' आदि कहानियों में ऐतिहासिक पात्रों की प्रभावाभिव्यंजक सृष्टि मिलती है।

पौराणिक पात्र—हिन्दी कहानी के क्षेत्र में अनेक लेखकों ने पौराणिक कथा वस्तु पर आधारित तथा पौराणिक पात्रों से युक्त रचनाएं प्रस्तुत की हैं। इन कहानियों में या तो पौराणिक आख्यानों के अनुसार कथा और चरित्र रचना मिलती है और या उनके आधार पर किसी आधुनिक सन्दर्भ में। आधुनिक हिन्दी कहानी के आविर्भाव की पूर्ववर्ती संस्कृत तथा अन्य कथा परम्पराओं के प्रभावस्वरूप भी इस कोटि की रचनाएं प्रस्तुत की गयी हैं। विभिन्न धर्मग्रन्थों में उपलब्ध संस्कृत कथाओं के ही मूल भाव को लेकर भी आधुनिक युग में अनेक हिन्दी कहानियां प्रस्तुत की गयी हैं। शंभूदयाल सक्सेना लिखित 'वेदों की कहानियां' तथा रामनिरंजन पांडेय लिखित' 'महाभारत की कहानिया' आदि इसी वर्ग की रचनाएं हैं। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'गंगा, गंगदत्त और गांगी' जैसी कहानियों में महाराज शान्तनु तथा गंगा आदि की चरित्र सृष्टि आधुनिक सन्दर्भ में की गयी है। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने 'कैसेंड्रा का अभिशाप' जैसी रचनाओं में पौराणिक कथात्मक पृष्ठभूमि में

मेरिया, कार्मेन, सेबेस्टियन तथा मिगेल आदि आधुनिक चरित्र प्रस्तुत किये हैं। जैनेन्द्र कुमार की अनेक कहानियों में भी पौराणिक पात्रों की सृष्टि मिलती है। जैनेन्द्र की लिखी हुई 'देवी देवता' शीर्षक कहानी में इन्द्र तथा ब्रह्मा, 'बाहुबली' में आदिनाथ, भरत, बाहुबली, ब्राह्मी तथा सुन्दरी, 'ऊर्ध्वबाहु' में इन्द्र, सौधर्म तथा कामदेव, 'भद्र-बाहु' में नारद, रति तथा शची, 'गुरु कात्यायन' में शिव, पार्वती तथा कात्यायन, 'नारद का अर्घ्य' में नारद, शिव तथा पार्वती एवं 'अनबन' में श्रुति तथा बुद्धि आदि पात्रों की चारित्रिक योजना पौराणिक आधार पर ही हुई है।

बौद्धिक पात्र—हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में आधुनिक युग में जो कहानी रचना हुई है, उसमें चित्रित पात्रों का एक वर्ग बौद्धिक कोटि का भी है। इस श्रेणी के पात्रों की योजना बौद्धिक, दार्शनिक, प्रतीकात्मक तथा वैचारिक कोटि की कहानियों में अपेक्षाकृत अधिक हुई है। पत्रकार, सम्पादक, वैज्ञानिक, चिकित्सक, शिक्षक तथा राजनीतिक नेताओं आदि के रूप में बौद्धिक पात्र विभिन्न कहानीकारों द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। आधुनिक युग में अनेक प्रकार की विभिन्न क्षेत्रीय चिन्तन धाराओं के प्रभावस्वरूप कहानी साहित्य में वैचारिक तत्वों का समावेश हुआ है। प्रेमचन्द युगीन कहानी से इस प्रकार की रचनाओं का आरम्भ मिलता है। प्रेमचन्द की कुछ कहानियों के पात्र विभिन्न राजनीतिक दर्शनों की व्यावहारिक परिणति के प्रतीक हैं। जयशंकर प्रसाद की कहानियों में भी वैचारिक तत्वों का दार्शनिक स्वरूप इस कोटि के पात्रों के माध्यम से व्यक्त हुआ है। सियारामशरण गुप्त, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' तथा उषादेवी मित्रा आदि की भी अनेक कहानियों में इस कोटि के पात्रों की सृष्टि हुई है। इस दृष्टि से जैनेन्द्र कुमार का नाम प्रतिनिधि कहानीकार के रूप में उल्लिखित किया जा सकता है। जैनेन्द्र की लिखी हुई 'खेल', 'दो चिड़ियां', 'देवी देवता', 'तत्सत्', 'चिड़िया की बच्ची', 'वह बेचारा' तथा 'महामहिम' आदि कहानियों मे इस वर्ग के पात्रों की आयोजना मिलती है, जो वैचारिकता की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

इस प्रकार से हिन्दी कहानी के क्षेत्र में मानव जीवन और मानव समाज के प्रायः सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र नियोजित हुए हैं। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी में पात्रों की संख्या अधिक नही होनी चाहिए। एक या दो प्रमुख पात्र अथवा सहायक पात्र ही यदि कहानी में मनोवैज्ञानिक प्रभावपूर्णता के साथ चित्रित किये जायं, तो भी कहानी एक हृदयस्पर्शी रचना बन सकती है। अधिक पात्रों की योजना कहानी

की सफलता की सम्भावनाओं को सीमित कर देती है। वैसी दशा में सम्यक् चारित्रिक विकास के लिए अपेक्षित घटनाओं का नियोजन नहीं हो पाता। कहानी में यथासम्भव प्रमुख पात्र के ही जीवन की किसी एक महत्वपूर्ण घटना का चित्रण प्रभावशाली रूप में होना चाहिए। एक से अधिक पात्रों के जीवन का विविध पक्षीय और व्यापक स्तरीय चित्रांकन कहानी के लघु परिवेश में सम्भव नहीं होता। यदि कहानी में एक प्रधान पात्र के अतिरिक्त अन्य सहायक पात्रों की सृष्टि करना आवश्यक ही हो, तो उसका उद्देश्य भी प्रधान पात्र का ही चारित्रिक विकास होना चाहिए।

चरित्र चित्रण की विधियाँ

हिन्दी कहानी में पात्रों के चरित्र चित्रण की अनेक विधियों का प्रचलन है। सामान्य रूप से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष विधियों से ही कहानी के पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण किया जाता है। हिन्दी कहानी के इतिहास के प्रथम विकास युग में प्रायः इन्हीं दो प्रणालियों का व्यवहार मिलता है। परन्तु आगे चलकर ज्यों ज्यों हिन्दी कहानी का कलात्मक स्वरूप विकसित होता गया, त्यों त्यों अपेक्षाकृत सूक्ष्मतर दृष्टिकोण से चरित्रांकन की अधुनातन विधियों का भी प्रयोग बढ़ता गया। भारतेन्दु युग में अधिकांश कहानीकारों द्वारा पात्रों के चरित्र चित्रण की परिचयात्मक तथा विश्लेषणात्मक विधियों का ही प्रयोग मिलता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती', कार्तिक प्रसाद खत्री लिखित 'दामोदर राव की आत्म-कहानी', महेन्द्रलाल गर्ग लिखित 'पेट की आत्मकहानी' तथा शालिगराम लिखित 'एक ज्योतिषी की आत्मकथा' जैसी कहानियों में प्रत्यक्ष शैली का प्रयोग हुआ है। प्रेमचन्द युग से चरित्र चित्रण की मनोवैज्ञानिक शैली का भी आधुनिक रूप में प्रयोग हुआ है। उत्तर प्रेमचन्द काल तथा स्वातंत्र्योत्तर युग में इस विधि के क्षेत्र में अनेक नवीन सम्भावनाएँ सामने आयी। प्रेमचन्द लिखित 'शांति', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पुरस्कार', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'रोज़' तथा भगवतीचरण वर्मा लिखित 'प्रायश्चित्त' आदि कहानियों में इसी विधि का समावेश हुआ है। स्वातंत्र्योत्तर युग में पात्रों के चरित्र चित्रण की संकेतात्मक विधि का आविर्भाव हुआ। जैनेन्द्र कुमार लिखित 'महामहिम', मोहन राकेश लिखित 'आदमी और दीवार', उषा प्रियंवदा लिखित 'जिंदगी और गुलाब के फूल', नरेश मेहता लिखित 'तथापि' तथा निर्मल वर्मा लिखित

'तीसरा गवाह' आदि में इसी शैली के माध्यम से चरित्रांकन हुआ है। यहाँ पर विविध विकास युगीन हिन्दी कहानी में पात्रों के चरित्र चित्रण के लिए प्रयुक्त प्रमुख विधियों की संक्षिप्त परिचयात्मक व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है।

अभिनयात्मक विधि—कहानी के पात्रों की यह विधि प्रत्यक्ष प्रणाली के अन्तर्गत उल्लिखित की जाती है। प्रभावाभिव्यंजकता की दृष्टि से इस विधि का अपेक्षाकृत अधिक महत्व होता है। इस विधि की विशेषता यह होती है कि अन्य सामान्य विधियों की भांति इसमें कहानीकार अपनी रचना में नियोजित किसी पात्र के विषय में स्वयं कुछ नही कहता, बल्कि विभिन्न पात्र स्वयं अपने विषय में कहते हैं। इस रूप में चरित्र चित्रण की प्रत्यक्ष प्रणाली होने के कारण इसमें नाटकीयता एवं चमत्कारिकता की सम्भावनाएँ स्वभावतः अधिक होती है। इसका मुख्य कारण यह होता है कि इस दृष्टि से इसमें और नाटक में बहुत समानता मिलती है। इसीलिए अभिनयात्मक विधि का प्रयोग उन कहानियों में अपेक्षाकृत बहुलता से मिलता है, जिनमें सारी कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण प्रथम पुरुष के रूप में आत्मकथा, पत्र अथवा डायरी के रूप में किया जाता है। भगवतीचरण वर्मा लिखित 'काश कि मैं कह सकता' शीर्षक कहानी में यह शैली सफलता से प्रयुक्त हुई है—'काश कि मैं कह सकता! लेकिन नहीं, यह सम्भव ही नही। कौन कह सकता है और कौन कह सकेगा? इन रहस्यों को सुलझाने का एक अविकल विफल प्रयत्न अनादि काल से होता रहा है और अनन्त काल तक होता रहेगा, पर एक भयानक उलझन से भरी हुई जिन्दगी को लेकर आने वाले और अन्त में जिन्दगी की उलझनों को दूसरों के कंधों पर और भी विकृत रूप करके डालकर चले जाने वाले मनुष्य के अधिकार के बाहर की बात है कि वह रहस्यों को सुलझा सके। पर फिर भी इन रहस्यों के प्रति उदासीन हो सकना भी तो मेरी ताकत में नहीं है। यह जानते हुए कि पत्थर पर सर पटकने से सर ही फूटता है, पत्थर नहीं, मैं पत्थर पर सर पटक रहा हूँ।'[१५]

अभिनयात्मक विधि द्वारा चरित्रांकन का एक उदाहरण इलाचन्द्र जोशी लिखित 'मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ' शीर्षक कहानी से यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें कथानायक की मनःस्थिति का परिचय प्रथम पुरुष में दिया गया है—'निर्मल आकाश के दिन भी कभी मेरे चिरांधकारमय कमरे में प्रकाश नहीं होता, तिस पर यह बदली और

१५. श्री भगवतीचरण वर्मा, 'दो बांके', पृ० ३१।

उस पर भी नैनीताल का कुहरा। यह मौसम मेरी मानसिक परिस्थिति के अनुकूल है। विकल मोहाच्छन्न होकर घोर तामसिक छाया के आश्रय में दिन और रात अपनी चारपाई पर पड़ा पड़ा मैं किन कुज्झटिकाच्छन्न स्वप्नों में निमग्न रहता हूँ।'[१६]

स्वगत कथनात्मक विधि—चरित्र चित्रण की अभिनयात्मक विधि के ही अन्तर्गत उसके इस रूप का भी उल्लेख किया जा सकता है। नाट्य साहित्य के क्षेत्र में जिस प्रकार से इस विधि का प्रयोग मिलता है, लगभग उसी प्रकार से कहानी रचना के क्षेत्र में भी इसका व्यवहार किया जाता है। इसीलिए इसमें नाटकीयता की सम्भावनाएं अधिक रहती हैं। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'छाया' शीर्षक कहानी में इसी पद्धति का प्रयोग हुआ है। इस कहानी का नायक जेल का वार्डर स्वयं अपनी ओर से आत्मचरित प्रस्तुत करता है—'बाईस साल से मैं जेल में वार्डरी करता हूँ, लेकिन ऐसी बात कभी नहीं देखी थी। और वार्डरों की तरह मैंने भी सब बद-माशियाँ की हैं, कैदियों को सिगरेट, तम्बाकू, सुलफा, गुड़, सब कुछ लाकर देता हूँ, चिट्ठी भी अन्दर बाहर पहुँचा देता हूँ। मशक्कत में भी गड़बड कर देता हूँ। नब्ज देखकर कैदियों की हर तरह से मदद करता हूँ। लेकिन पैसा लेकर। बिना पैसा गाठे कभी किसी को एक बीड़ी तक नही दी। लेकिन उसकी आंखों में, आवाज में, कुछ जादू था...मैं उसका सब काम बिना कुछ लिये कर देता था...और काम भी छोटा मोटा नही, दफ्तर से चिट्ठियाँ तक चुरा लाता था....।'[१७]

स्वगत कथनात्मक विधि का एक उदाहरण यहाँ चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की लिखी हुई 'कबूतर' शीर्षक कहानी से प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें कथानायक कहानी के आरम्भ में एक अतीत घटना के माध्यम से अपनी भावानुभूति व्यक्त करता है—'हां, मैने नरक देखा है। वह भी थोड़े समय के लिए नही, पूरे २७ दिनों के लिए...चार सप्ताह से सिर्फ एक दिन कम। एक बियाबान चट्टानी प्रदेश में हम लोग शत्रु से अचानक घिर गये थे। मै अपनी टकड़ी का असिस्टेंट कमाडर था। शत्रु से मोरचा लेते लेते हम लोग सफलतापूर्वक आगे बढ़ रहे थे। बड़ी बड़ी चट्टानों, टेढ़े मेढ़े नालों और पहाड़ी खड्डों की बदौलत इस सुनसान इलाके में बड़े टैंकों को ले जाना सम्भव

१६. श्री इलाचन्द्र जोशी, 'मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ', पृ० २।
१७. श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', 'कोठरी की बात', पृ० ९।

नहीं था। ऊपर हमारे हवाई जहाज थे और नीचे ब्रेन गनें हाथ में लिये हमारे सिपाही। वह भी प्रायः पैदल। फिर भी हम लोग सफलतापूर्वक आगे बढ़ रहे थे।"[१८]

आत्मकथात्मक विधि—पात्रों के चरित्र चित्रण की अभिनयात्मक विधि के ही अन्तर्गत उसके इस रूप का भी उल्लेख किया जा सकता है। यह विधि स्वगत कथनात्मक विधि से थोड़ा साम्य रखती है। यह विधि भी प्रायः उन कहानियों में बहुलता से मिलती है, जो पत्र अथवा डायरी के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं। व्यावहारिक दृष्टिकोण से स्वगत-कथनात्मक विधि से इसमें यह अन्तर होता है कि स्वगत-कथनात्मक विधि में आत्मचरित प्रस्तुत करने वाले पात्र के अतिरिक्त अन्य भी पात्र कहानी में हो सकते हैं, जिनका चरित्रांकन अन्य विधियों के ही माध्यम से सम्भव होता है, जबकि आत्मकथात्मक विधि के द्वारा आत्मविश्लेषण प्रस्तुत करने वाला पात्र कहानी की संपूर्ण कथा का प्रस्तुतीकरण स्वयं अपनी ओर से प्रथम पुरुष के रूप में करता है। चंडीप्रसाद 'हृदयेश' लिखित 'मौन व्रत' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—'मैं दिन भर यही सोचता रहता कि कब संध्याकाल होगा, कब उस सुषमा चंद्र का उदय होगा. . .वह वासंती मलयानिल प्रवाहित होगा. . वह सुधा धारा पतित होगी ? दिवस का प्रत्येक क्षण मुझे एक युग के समान प्रतीत होता। किन्तु हाय ! सायंकाल का वह एक निमेष. . .अंधकारमय जीवन की वह एक क्षणिक रश्मि. . .कितनी जल्दी समाप्त हो जाती थी। वह चिराभिलषित ज्योति, वह मायामयी मरीचिका, वह सौंदर्यमयी विद्युद्वल्ली, हाय ! कितनी जल्दी अंतर्हित हो जाती थी। वह मनोहर संयोग, वह पुण्य अवसर, वह शुभ मुहूर्त, हाय ! कितनी जल्दी, ऐंद्रजालिक कला की भांति किसी अज्ञेय वस्तु में विलीन हो जाता था।"[१९]

आत्मकथात्मक विधि का एक उदाहरण भगवतीचरण वर्मा लिखित 'राख और चिनगारी' शीर्षक कहानी से भी उद्धृत किया जा सकता है, जिस में मुख्य पात्री स्वयं आरम्भ से अन्त तक आत्म विश्लेषण करती हुई सारी कथा का प्रस्तुतीकरण करती है—'रमेश ! मैं घर की बड़ी गरीब हूँ। मैं दफ्तर में काम इसलिए नहीं करती कि काम करने का शौक है, मैं काम इसलिए करती हूँ कि काम करने के लिए मैं मजबूर

१८. श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार , 'तीन दिन', पृ० १३७।
१९. श्री चंडीप्रसाद 'हृदयेश' , 'नन्दन निकुंज', पृ० ११२।

हूँ। लोग आश्चर्य करते हैं कि मैं इतनी एकान्तप्रिय क्यों हूँ, मैं बनाव सिंगार क्यों नहीं करती, मैं सभा सोसाइटियों में क्यों नहीं सम्मिलित होती, मैं खेल तमाशे क्यों नहीं देखती। इस सबका एक मात्र कारण है मेरी गरीबी। और यहाँ तुम पूछ सकते हो कि अगर मैं इतनी गरीब हूँ, तो मैंने विश्वविद्यालय की शिक्षा कैसे प्राप्त की?'[20]

विश्लेषणात्मक विधि—कहानी में नियोजित पात्रों के चरित्र चित्रण की सर्वाधिक प्रचलित विधि विश्लेषणात्मक है। हिन्दी कहानी के आविर्भाव काल से लेकर वर्तमान युग तक में लिखी गयी अधिकांश कहानियों में चरित्रांकन की इसी शैली का प्रयोग मिलता है। इस शैली के माध्यम से लेखक अपनी कहानी में आयोजित पात्रों के स्वभाव, चरित्र, आचार, विचार, व्यवहार तथा मान्यताओं आदि का प्रस्तुतीकरण समग्र रूप में प्रस्तुत करता है। इस दृष्टि से इस शैली की सर्वप्रमुख विशेषता यह होती है कि इसके द्वारा पात्रों की संपूर्ण चारित्रिक विशेषताएँ उभर कर स्पष्ट रूप से प्रकाश में आ जाती हैं। इसका कारण यह है कि इस शैली का प्रयोग करने में कहानी लेखक को अन्य सभी शैलियों की तुलना में अधिक सुविधा और स्वतंत्रता रहती है। प्रेमचन्द की लिखी हुई 'अहिंसा परमो धर्मः' शीर्षक कहानी में जामिद नामक पात्र का चरित्र चित्रण इसी शैली में हुआ है—'दुनिया मे कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जो किसी के नौकर न होते हुए, सबके नौकर होते हैं, जिन्हें कुछ अपना खास काम न होने पर भी सिर उठाने की फुरसत नहीं होती। जामिद इसी श्रेणी के मनुष्यों में था। बिल्कुल बेफिक्र, न किसी से दोस्ती, न किसी से दुश्मनी। जो जरा हंसकर बोला, उसका बेदाम का गुलाम हो गया। बेकाम का काम करने में उसे मजा आता था। गाँव में कोई बीमार पड़े, वह रोगी की सेवा सुश्रूषा के लिए हाजिर है। कहिए, तो आधी रात को हकीम के घर चला जाय, किसी जड़ी बूटी की तलाश में मंजिलों की खाक छान आये। मुमकिन न था कि किसी गरीब पर अत्याचार होते देखे और चुप रह जाय।'[21]

विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग जयशंकर 'प्रसाद' की लिखी हुई 'चूड़ी वाली' शीर्षक कहानी में भी सफलतापूर्वक हुआ है। इस रचना में लेखक ने एक छद्मवेश धारण करने वाली चूड़ीवाली का चित्रांकन किया है। वह नगर की एक प्रसिद्ध नर्तकी की कन्या थी। यद्यपि वह रूपवती थी और धन वैभव के मध्य रहती थी, परन्तु उसे अपने

२० श्री भगवतीचरण वर्मा, 'राख और चिनगारी', पृ० ४-५।

२१. मुंशी प्रेमचंद, 'मानसरोवर', भाग ५, पृ० ८६।

हृदय में एक अभाव इसलिए खटकता था, क्योंकि उसकी मनोवृत्ति उसके व्यवसाय के प्रतिकूल थी। 'कुलवधू बनने की अभिलाषा हृदय में और दाम्पत्य सुख का स्वर्गीय स्वप्न उसकी आंखों में समाया था। स्वच्छंद प्रणय का व्यापार उसे अरुचिकर हो गया। परन्तु समाज उससे हिंस्र पशु के समान सशंक था। उससे आश्रय मिलना असम्भव जानकर विलासिनी ने छल के द्वारा वही सुख लेना चाहा, यह उसकी सरल आवश्यकता थी, क्योंकि अपने व्यवसाय में उसका प्रेम क्रय करने के लिए बहुत से लोग आते थे, पर विलासिनी अपना हृदय खोलकर किसी से प्रेम न कर सकती थी।'[२२]

विवरणात्मक विधि—चरित्र चित्रण की विवरणात्मक विधि का प्रयोग भी हिन्दी कहानी के विविध विकास युगों में होता रहा है। यह पात्रों के चरित्र चित्रण की विश्लेषणात्मक विधि से साम्य रखती है। उससे इसमें मुख्य अन्तर यह होता है कि इसके अन्तर्गत पात्र के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों, उसकी वेश भूषा, साज सज्जा, वर्ण, बुद्धि, विवेक, आकृति, प्रकृति और वार्तालाप के ढंग आदि का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इस विधि से पात्र का समग्र चरित्र अपनी बहुरूपी विशेषताओं के साथ उभर कर स्पष्ट हो जाता है। यशपाल की लिखी हुई 'अपनी चीज' शीर्षक कहानी से इस चरित्रांकन विधि का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है— 'कलाकार की सजीव कल्पना जैसे बालो के क्षीण कटि, लम्बे छरहरे शरीर, स्निग्ध, गंदुमी रंग, भावपूर्ण विशाल नेत्र, आजानु दीर्घ केशों और पल्लव ओष्ठों से स्फूर्ति की किरणें बिखरती रहती और मेजर का मन-चकोर उनकी सुषमा से तृप्त बना रहता। यह असीम तृप्ति मेजर के मन में एक मधुर तृष्णा जगाये रहती।'[२३]

विवरणात्मक विधि से पात्रों के चरित्र चित्रण का एक उदाहरण यहां अमृतराय की लिखी हुई 'फिर सुबह हुई' शीर्षक कहानी से प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें कथा-नायिका के स्वभाव, आकृति और प्रवृत्ति का अंकन है—'लंबा कद, लंबी सी नाक, कुछ लंबा सा चेहरा, नीली आखें, आंखों पर काले, हड्डी के फ्रेम का चश्मा, भूरे बाल, उभरी हुई गाल की हड्डियाँ, उम्र चालीस के आसपास, बाल कुछ कुछ पके हुए—यह एडवर्ड्स अस्पताल की डाक्टर मिस सिमसन हैं। उनके बारे में यह मशहूर है कि उनका मिजाज बड़ा रूखा है, मिजाज रूखा है या नहीं, कहना मुश्किल है, लेकिन

२२. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'आकाशदीप', पृ० १३४।
२३. श्री यशपाल : 'ज्ञानदान', पृ० १५२।

यह जरूर है कि काम के मामले में किसी किस्म की लापरवाही या ढीलापन उन्हें मंजूर नहीं।'[२४]

इस विधि के माध्यम से कभी कभी पात्रों का चरित्रांकन करते हुए उनकी वर्तमान मनःस्थिति के परिचय के साथ साथ अतीत की घटनाओं के फलस्वरूप पात्रों के स्वभाव में होने वाले परिवर्तन का भी संकेत दिया जाता है। यमुनादत्त वैष्णव लिखित 'सांवली' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—'वह लड़की थी, पढती थी, बहुत होशियार थी। परीक्षाओं के प्रशंसापत्र उसके पास हैं, पर अब उसमें न वह गर्व रह गया है और न वह पढ़ने की उमंग। लडाई के तमगों की भांति प्रमाणपत्र किसी कोने में पड़े हैं। और सविता एक पराजित क्षीणकाय योद्धा की भांति कभी उनकी ओर देख भर लेती है।'[२५]

परिचयात्मक विधि—कहानी के पात्रों का चरित्रांकन करने की परिचयात्मक विधि सरलता और सहजता के कारण विशिष्टता रखती है। इस विधि के अनुसार लेखक अपनी कहानी में नियोजित पात्रों का परिचय स्वाभाविकता के साथ प्रस्तुत करता है, जो उनके बाह्य व्यक्तित्व का सूचक होता है। 'सुदर्शन' की लिखी हुई 'अठन्नी का चोर' शीर्षक कहानी में रसीला नामक पात्र का चित्रण लेखक ने इसी शैली में किया है—'रसीला बाबू जगतराम सिंह इंजीनियर के यहाँ नौकर था। दस रुपया वेतन था। गांव में उसके बुड्ढे पिता और जवान स्त्री के अतिरिक्त एक लड़की और दो लड़के थे। इन सबका भार उसी के कंधों पर था। रसीला को जो तनख्वाह मिलती, वह सारी घर को भेज दिया करता।....रसीला अनपढ़ था। उसे सभ्य समाज का पानी न लगा था। वह रीति और नीति के गूढ़ रहस्य न समझता था। परन्तु वह मूर्ख न था।'[२६]

चरित्र चित्रण की परिचयात्मक विधि का एक अन्य रूप भी मिलता है। इसमें उभयात्मक रूप में एक साथ दो पात्रों का चरित्रांकन उनके चरित्र के सामान्य परिचय के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। प्रेमचन्द की लिखी हुई 'पंच परमेश्वर' शीर्षक कहानी से परिचयात्मक विधि के इस रूप का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

२४. श्री अमृत राय, 'कस्बे का एक दिन', पृ० १०३।
२५. श्री यमुनादत्त वैष्णव, 'अस्थि पंजर', पृ० १७५।
२६. श्री सुदर्शन, 'सुदर्शन सुमन', पृ० १४९-५०।

'जुम्मन शेख तथा अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। साझे में खेती होती थी। कुछ लेन देन में साझा था। एक को दूसरे पर विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गये थे, तब अपना घर अलगू को सौंप गये थे, और अलगू जब कभी बाहर जाते तब अपना घर जुम्मन पर छोड़ देते थे। उनमें न खान पान का व्यवहार था, न धर्म का नाता। केवल विचार मिलते थे। मित्रता का मूल मंत्र भी यही है।'[२७]

मनोवैज्ञानिक विधि—प्रेमचन्द और उनके परवर्ती युग में जो कहानियाँ लिखी गयी हैं, उनमें पात्रों के चरित्र चित्रण की मनोवैज्ञानिक विधि का व्यवहार अन्य विधियों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। आधुनिक युगीन कथा साहित्य पर मनोवैज्ञानिक क्षेत्रीय सैद्धान्तिक प्रभाव की वृद्धि के साथ ही इस प्रणाली का प्रयोग भी बढ़ा है। यह विधि चारित्रिक सूक्ष्मता के साथ ही उसकी सम्यक्ता की सम्भावनाएँ भी उत्पन्न करने के कारण अधिकता से व्यवहृत की जाती है। इसीलिए चरित्र चित्रण की अन्य सभी विधियों की अपेक्षा इसकी भावी सम्भावनाओं का क्षेत्र अधिक प्रशस्त आभासित होता है। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'अछूते फूल' शीर्षक कहानी से चरित्रांकन की इस विधि का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—'अस्पताल के दुर्घटना वार्ड के बाहर के बरामदे में मीरा बैठी है। उसे वैसे ही बैठे हुए लगभग पौन घंटा हो गया है। बेंच पर बिल्कुल सीधी बैठी है। मुख पर जरा भी मलिनता नही है, किसी तरह की गति नही है, वह आँख भी मलिनता से नहीं झपकाती है, लेकिन इतने काल का वह निश्चल तनाव ही प्रकट करता है कि उसने भीतर कैसी अशांति भर रखी है।'[२८]

मनोवैज्ञानिक विधि के सफल प्रयोग की दृष्टि से जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'प्रणय चिह्न' शीर्षक कहानी का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें कथानायक की मनःस्थिति का भावमय अंकन हुआ है—'क्या अब वे दिन लौट आयेंगे ? वे आशाभरी सन्ध्याएँ, वह उत्साह भरा हृदय, जो किसी के संकेत पर शरीर से अलग होकर उछलने को प्रस्तुत हो जाता था ! क्या हो गया ? . . . जहाँ तक दृष्टि दौड़ती है, जंगलों की हरियाली। उनसे कुछ बोलने की इच्छा होती है, उत्तर पाने की उत्कंठा होती है। वे हिलकर रह जाते है, उजली धूप जलजलाती हुई नाचती निकल जाती

२७. मुंशी प्रेमचंद , 'मानसरोवर', भाग ७, पृ० १५२।
२८. श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' , 'परम्परा', पृ० १२३।

है। नक्षत्र चुपचाप देखते रहते हैं, चांदनी मुसकिरा कर घूंघट खींच लेती है। कोई बोलने वाला नहीं। मेरे साथ दो बातें कर लेने की जैसे सबने शपथ ले ली है।'[२९]

संवादात्मक विधि—चरित्र चित्रण की इस विधि का आधार कहानी का एक उपकरण संवाद अथवा कथोपकथन तत्व होता है। इस चरित्रांकन विधि की विशेषता यह होती है कि इसके माध्यम से पात्र के व्यक्तित्व में विशेष प्रभावाभिव्यंजकता आ जाती है। साथ ही, स्वाभाविकता की दृष्टि से भी वे सफल बन पाते हैं। अन्य पुरुष के रूप में प्रयुक्त विधियों अथवा स्वयं लेखक द्वारा प्रस्तुत चरित्र सम्बन्धी विवरण की तुलना में संवाद के माध्यम से चरित्र चित्रण अधिक सूक्ष्म रूप में सम्भव हो जाता है। व्यक्ति की सूक्ष्म मानसिक प्रतिक्रियाएँ, आचार विचार, संकल्प विकल्प, तर्क क्षमता, भावनाएँ तथा सवेदनाएं आदि इस विधि के माध्यम से अधिक कुशलता से अभिव्यक्त हो सकती हैं। जयशंकर 'प्रसाद' की लिखी हुई 'प्रणय चिह्न' शीर्षक कहानी में इसी विधि के माध्यम से दो पात्रों की मन:स्थिति का चित्रण किया गया है।

'तुम कहां जाओगे?' उसने पूछा।

'संसार से घबराकर एकान्त में जा रहा हूं।'

'और मैं एकान्त से घबराकर संसार में जाना चाहता हूं।'

'क्या एकान्त में कुछ सुख नही मिला?'

'सब सुख था—एक दुख, पर वह बड़ा भयानक दुख था। अपने सुख को मैं किसी से प्रकट नहीं कर सकता था, इससे बड़ा कष्ट था।'

'मैं उस दुख का अनुभव करूंगा।'

'प्रार्थना करता हूँ, उसमें न पड़ो।'

'तब क्या करूं?'

'लौट चलो, हम लोग बातें करते हुए जीवन बिता देंगे।'

'नहीं, तुम अपनी बातों में विष उगलोगे।'

'अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा।'[३०]

संवादात्मक विधि का एक उदाहरण 'सुदर्शन' लिखित 'संन्यासी' शीर्षक कहानी से यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जो पात्रों की चारित्रिक अभिव्यंजना और स्वभाव

२९. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'आकाशदीप', पृ० १५३।

३०. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'आकाशदीप', पृ० १५५।

परिवर्तन की दृष्टि से महत्व रखता है—'भोलानाथ की स्त्री के नेत्र भर आये। भोलानाथ बोले, 'जो मिठाई बची है, वह जेब में डाल ले।'

सुखदयाल ने तृषित नेत्रों से मिठाई की ओर देखा और उत्तर दिया, 'न।'

'क्यों ?'

'ताई मारेगी और मिठाई छीन लेगी।'

'पहले भी कभी मारा है ?'

'हां, मारा है।'

'कितनी बार मारा है ?'

'कई बार मारा है।'

'किस तरह मारा है ?'

'चिमटे से मारा है।'

भोलानाथ के हृदय पर जैसे किसी ने हथौड़ा मार दिया। उन्होंने ठंडी सांस भरी और चुप हो गये।'[३१]

संकेतात्मक विधि—कहानी में पात्रों के चरित्र चित्रण की संकेतात्मक विधि इस क्षेत्र मे अपेक्षाकृत नवीनता की द्योतक है। इस विधि के अनुसार विभिन्न पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन केवल सांकेतिक रूप में किया जाता है। इस दृष्टि से यह विधि चरित्र चित्रण की विश्लेषणात्मक तथा विवरणात्मक आदि प्रणालियों से सर्वथा भिन्न होती है, जिनका आधार विस्तृत वर्णन होते हैं। कभी कभी सांकेतिक चरित्रांकन विस्तृत चरित्रचित्रण से अधिक प्रभावशाली और अर्थाभिव्यंजक सिद्ध होते है। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की लिखी हुई 'मंसो' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—'और एक विस्मय में महेश सोचता है, मंसो ने इतनी गहरी अनुभूति, इतनी सर्वग्राही विदग्धता कहां पाई जो उसकी चितवन में व्यक्त हो रही है ? उसमें इतनी संवेदना, इतनी सहानुभूति, इतना विस्तीर्ण और संपूर्ण भावैक्य है, महेश के साथ. . . .महेश को ऐसा लगता है, उसका अस्तित्व ही मिट गया है, वह मंसो के भाव-ससार का एक अंश हो गया है, मंसो के किसी स्वप्न का एक परदा—उस मंसो के जो स्वयं आज तक उसके स्वप्न का एक परदा थी। उसकी अनुभूति, उसकी चेतना, उसका अस्तित्व मात्र, मानो कुचल

३१. श्री सुदर्शन , 'सुदर्शन सुधा', पृ० २०१।

कर उसमें से निष्कासित कर लिया जाता है, और वह अंसो से एक संपूर्ण एकान्त, आत्यन्तिक एकत्व प्राप्त कर लेता है, कैवल्य. . .।"[32]

चरित्र चित्रण की इस विधि के माध्यम से कभी कभी किसी कहानी के दो पात्रों का पारस्परिक दृष्टि से चारित्रिक विपर्यय भी इंगित किया जाता है, जो उनके चरित्रांकन के वैशिष्ट्य के साथ ही भावी कथा का संकेत भी प्रस्तुत करता है। 'सुदर्शन' की लिखी हुई 'प्रणय रात्रि' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण यहां दिया जा रहा है—'पटना में एक स्त्री रहती थी, उसका नाम वासव था। . . .वह सुन्दरी थी। उसके शरीर में वसन्त की बहार, मोहनी और सुगन्ध थी। . . .वह युवती थी। उसके यौवन में बढ़ते हुए चन्द्रमा का विकास और माधुर्य और काव्य था। . . .वह धनवती थी। उसके सन्दूकों में बहुमूल्य वस्त्र, मनोहर आभूषण और सोने की मोहरें थीं। . . . परन्तु उसके पास कुछ भी न था—वह वेश्या थी। . . .उसी नगर के बाहर एक नवयुवक साधु रहता था। उसका नाम उपगुप्त था। . . .उसके पास अपना मकान न था। उसके पास अपने वस्त्र न थे। उसके पास रुपया पैसा न था। . . .परन्तु उसके पास आंखों की मुस्कान, चित्त की स्थिरता और शांति की नीद थी। . . .वासव धर्म को पाप की पृथ्वी पर पछाड़ती थी, उपगुप्त अधर्म के अभागे पुत्रों की शोचनीय अवस्था पर अपनी सुन्दर आंखों के पवित्र आंसू बहाता था। और दोनों को एक दूसरे का पता न था।"[33]

इस प्रकार से कहानी में पात्रों के चरित्र चित्रण की प्रमुख, प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष विधियों में अभिनयात्मक विधि, स्वगतकथनात्मक विधि, आत्मकथात्मक विधि, विश्लेषणात्मक विधि, विवरणात्मक विधि, परिचयात्मक विधि, मनोवैज्ञानिक विधि, संवादात्मक विधि तथा संकेतात्मक विधि का यहां पर उल्लेख करते हुए उनका स्वरूप स्पष्ट किया गया है। ये विधियां हिन्दी कहानी के इतिहास के विभिन्न युगों में आविर्भूत और विकसित हुई हैं। इनमें से कुछ विधियों में नाटकीय तथा चमत्कारिक तत्वों की सम्भावना अधिक रहती है। इनमें प्रायः पात्रों द्वारा स्वयं ही आत्मविश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। इसीलिए इनमें प्रथम पुरुष के रूप में संपूर्ण संवाद नियोजित रहते हैं। अभिनयात्मक विधि, स्वगतकथनात्मक विधि तथा आत्मकथात्मक विधि

३२. श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', 'परम्परा', पृ० ९०।
३३. श्री सुदर्शन, 'सुदर्शन सुधा', पृ० १०२।

आदि इसी श्रेणी में उल्लेखनीय हैं। पात्रों के चरित्र चित्रण की अन्य विधियां प्रायः अप्रत्यक्ष विधियों की कोटि में परिगणित की जाती हैं। इनमें से अधिकांश का आविर्भाव हिन्दी कहानी के प्रथम विकास काल में ही मिलता है। लगभग एक शताब्दी के मध्य ये विधियां अपने विकास की विभिन्न अवस्थाओं से होकर वर्तमान प्रौढ़ता को प्राप्त हुई हैं। मनोवैज्ञानिक तथा संकेतात्मक विधियों का विशेष रूप से व्यवहार उत्तर प्रेमचन्द काल में किया गया। ये इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत नवीनतर सम्भावनाओं की द्योतक है।

कहानी में चरित्र चित्रण का महत्व

चरित्र चित्रण कहानी का एक महत्वपूर्ण तत्व है। इसी तत्व के अन्तर्गत कहानी के पात्रों की भावात्मक, बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं की अभिव्यंजना होती है। सैद्धान्तिक रूप में जहाँ पर यह तत्व एक कहानी की कलात्मक उत्कृष्टता का द्योतक होता है, वहाँ व्यावहारिक दृष्टि से यह कहानी के उद्देश्य और उदात्तीकृत आदर्श का प्रस्तुतीकरण भी करता है। कहानी मे पात्र योजना के सन्दर्भ में एक बात यह सबसे अधिक ध्यान में रखने योग्य है कि उसमें यथासम्भव किसी एक पात्र के ही जीवन की किसी घटना विशेष की कलात्मक अभिव्यंजना होनी चाहिए। एक उपन्यास की भांति उसमें अनेक पात्र-पात्रियों के जीवन का विविध पक्षीय और व्यापक स्तरीय चित्रण संभाव्य नही होता। परन्तु इस कथन का यह आशय नही है कि उपन्यास अथवा अन्य किसी विधा की तुलना में उसमें चरित्र चित्रण का महत्व कम है। वस्तुतः कहानी में भी किसी अन्य गम्भीर साहित्यिक विधा की भांति मानव जीवन का समग्र रूपात्मक चित्रण होता है। इस दृष्टि से पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण में यथार्थता का समावेश उसकी कलात्मक सफलता का आधार होता है। परन्तु पात्रों की योजना कितने भी यथार्थात्मक आधार पर की जाय, कहानी में चित्रित पात्रों तथा व्यावहारिक जीवन में मिलने वाले व्यक्तियों का पारस्परिक अन्तर स्पष्ट होता है। इस दृष्टिकोण से कहानी में नियोजित पात्रों के चरित्र चित्रण की सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण यह होता है कि वे व्यावहारिक जीवन को जीने वाले वास्तविक मनुष्यों की भांति ही एक विश्वसनीय पार्थिव सत्ता का भ्रम उत्पन्न करें और पाठक को उनके भौतिक अस्तित्व की अनुभूति हो सके। इस रूप में चरित्र चित्रण न केवल कहानी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है, वरन् एक ऐसा उपकरण भी है, जिसके क्षेत्र

में विकास की सम्भावनाएं कहानी के अन्य सभी तत्वों की अपेक्षा अधिक हैं। वास्तव में मानव चरित्र की प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं का निदर्शन चाहे जितने व्यापक आधार पर किया जाय, उसके क्षेत्र में नयी दिशाएं सदैव विद्यमान रहती हैं। मानव चरित्र की रहस्यमयता और जटिलता अनन्त है। उसकी गूढ़ता और अस्पष्टता की विवृति की जितनी भी चेष्टाएं की जायंगी, उसकी दुर्बोधता उतनी ही बढ़ती जायगी। इस रूप में मानव चरित्र का कोई भी अध्ययन अपूर्ण, अस्पष्ट और एकांगी ही होता है। सिद्धान्ततः मनुष्य की स्वाभाविक अस्थिरता उसकी जन्मजात प्रवृत्ति है। सुख और दुख की बोधक भावनाएं केवल मनुष्य के स्वभाव तथा वृत्ति का ही सामयिक प्रतिरूप होती हैं। इस दृष्टि से कभी भी किसी मनुष्य की एक दूसरे के प्रति जानकारी संपूर्ण और अन्तिम नहीं हो सकती और उसमें नवीन सूत्रों के समावेश के लिए सदैव स्थान रहता है। मानव चरित्र की इन विषमताओं और सम्भावनाओं को देखते हुए कहानीकार के लिए पात्रों का चरित्रांकन एक जटिल कार्य व्यापार और गम्भीर दायित्व है। वह अपनी रचना में प्रस्तुत पात्रों का नियामक और स्रष्टा होता है। वह अपनी चरित्र चित्रण की कलात्मक परिपक्वता के कारण ही इन पात्रों को विभिन्न परिस्थितियों में डालकर उनकी चारित्रिक विवृति करता है। इसलिए कहानी में पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण का महत्व मानव जीवन के सम्यक् परिचय की दृष्टि से भी विशिष्ट होता है।

अध्याय ८

कहानी में कथोपकथन

कथोपकथन का स्वरूप

कथोपकथन अथवा संवाद योजना कहानी का चौथा मूल उपकरण है। सैद्धान्तिक दृष्टि से तो कहानी के प्राय: सभी तत्व परस्पर सम्बद्ध होते है, परन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से कथोपकथन का सम्बन्ध पात्रों से अधिक घनिष्ठ होता है। कहानी में नियोजित पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप के लिए ही इस तत्व का समावेश कहानी में किया जाता है। पात्रों तथा कहानी के अन्य तत्वों की भांति ही कथोपकथन के क्षेत्र में भी पर्याप्त विविधता मिलती है। कहानी में कथोपकथन के माध्यम से घटनाओं में गतिशीलता आती है। डा० श्यामसुन्दर दास ने कहानी में संवाद तत्व का महत्व निर्दिष्ट करते हुए लिखा है कि 'कथनोपकथन का आख्यायिका के लिए बहुत बड़ा महत्व है।...कथनोपकथन के द्वारा—यदि वह अत्यन्त मार्मिक तथा वास्तविक हो तो एक अनोखा चमत्कार उत्पन्न किया जा सकता है और पाठक स्वत: उससे अपना निष्कर्ष निकाल लेता है।...आधुनिक कथनोपकथन, जिसका प्रयोग नाटक तथा आख्यायिका में किया जाता है, अत्यन्त मार्मिक मनोवैज्ञानिक वस्तु है। इसका उपयोग उत्तम कोटि के कलाकार करते और उसमें बौद्धिक उत्कर्ष की पराकाष्ठा दिखा देते है। उनके हाथों में पड़कर कथनोपकथन श्रेष्ठ ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति की प्रणाली बन जाता है।'[1] डा० गुलाबराय ने कथोपकथन के स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए बताया है कि 'कथोपकथन या वार्तालाप द्वारा ही हम पात्रों के हृदयगत भावों को जान सकते हैं। यदि वार्तालाप पात्रों के चरित्र के अनुकूल न हो, तो हम उन के चरित्र का मूल्याकन करने में भूल कर जायंगे। कहानीकार 'घर के मौतबिर नाई' की भांति विश्वासपात्र अवश्य है किन्तु मार्मिक स्थलों पर पात्रों के वार्तालाप को ज्यों का त्यों

१. डा० श्यामसुन्दर दास, 'साहित्यालोचन', पृ० १९०।

उपस्थित कर देने में हमको दूसरे आदमी द्वारा बताई हुई बात की अपेक्षा परिस्थिति का ठीक अंदाज लग जाता है। कहानी में कथोपकथन का तिहरा काम रहता है। उसके द्वारा पात्रों के चरित्र का परिचय ही नहीं मिलता, वरन् उसके सहारे कथानक भी अग्रसर होता है और एक जी उबाने वाले प्रबन्ध कथन के भीतर आवश्यक सजीवता उत्पन्न हो जाती है।'[२] कथोपकथन की व्याख्या करते हुए डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने विभिन्न साहित्य रूपों में उसकी अनिवार्यता बताई है। उनके विचार से 'यदि देश, काल और संस्कृति विशेष का कोई प्राणी किसी से भी किसी प्रकार की बातचीत करता है, तो उसकी बातचीत की प्रांजलता और विदग्धता, शब्द और वाक्य के प्रयोग, भाषा और पदावली से हमें प्रत्यक्ष मालूम होता है कि व्यक्ति किस कोटि, वर्ग, देश और काल का है। संवाद से अन्य सभी तत्वों का सीधा सम्बन्ध होता है। संवाद जहां एक ओर कथा के प्रसार का मुख्य साधन होता है, वहीं चारित्र्योद्‌घाटन का भी, साथ ही देश-काल का भी पर्याप्त बोध करा देता है।'[३] आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के मतानुसार 'कथोपकथन कहानी का छोटा, स्वाभाविक और प्रभविष्णु अंश होता है। उसका प्रत्येक शब्द सार्थक और सोद्देश्य होना चाहिए। बड़े संवादों के लिए कहानी में स्थान नहीं होता। कहानी के कथोपकथन ऐसे न होने चाहिए जो स्वतंत्र रूप से पाठक का ध्यान आकृष्ट कर उसे विलमाते चलें या कथा के प्रवाह में किसी प्रकार का विक्षेप डालें।'[४] इस प्रकार से यह स्पष्ट हो जाता है कि कथोपकथन कहानी का एक उपयोगी और अनिवार्य तत्व है, जो उसके अन्य तत्वों के विकास में भी योग देता है।

कथोपकथन-प्रधान कहानी

कहानी में कथोपकथन अथवा संवाद योजना तत्व की प्रधानता के होने पर उसे एक पृथक् भेद के अन्तर्गत रखा जाता है, जिसे कथोपकथन-प्रधान कहानी कहते हैं। इस प्रकार की कहानी में नाटकीयता अधिक होती है, क्योंकि कथोपकथन तत्व का

२. डा० गुलाब राय, 'काव्य के रूप', पृ० २२३।

३. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, 'कहानी का रचना विधान', पृ० १२१।

४. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, 'हिंदी कहानियाँ', पृ० १४।

सम्बन्ध आधारभूत रूप से कथात्मक माध्यमों की तुलना में नाट्य रूपों से अपेक्षाकृत अधिक है। यद्यपि कहानी और नाटक में मुख्य अन्तर यह है कि शास्त्रीय दृष्टिकोण से कहानी को श्रव्य काव्य में और नाटक को दृश्य काव्य में परिगणित किया जाता है। कहानी में वर्णनात्मक तत्व प्रधान होता है, जबकि नाटक में उसका पूर्ण रूप से अभाव होता है। कहानी में मार्मिक और भावनात्मक प्रसंगों को वर्णन के तथा नाटक में उन्हें अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। कथोपकथन तथा वर्णन द्वारा कहानी में चरित्र चित्रण होता है। यही कार्य नाटक में कथोपकथन तथा अभिनय के माध्यम से संपन्न होता है। इन दोनों में ही प्राय: प्रत्यक्ष चरित्रांकन की विधि ही अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली सिद्ध होती है। पाश्चात्य विचारकों में ई० एम० अलब्राइट ने भी कहानी और नाटक का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए इस मन्तव्य का प्रतिपादन किया है कि एक कहानीकार एक नाटककार की भांति ही संक्षिप्त रूप में, परन्तु संपूर्ण प्रभावात्मकता के साथ अपनी अभीष्ट स्थिति तथा उसकी पृष्ठभूमि में चरित्रांकन करते हुए चरम सीमा तक पहुंचता है। उसने इस तथ्य की ओर भी संकेत किया है कि आधुनिक कहानी कला के विकास का आधार नाटक ही है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में नाटकीय कथोपकथन के विशेष रूप से समावेश का कारण भी इसकी पृष्ठभूमि ही है। कथोपकथन-प्रधान कहानी में कथावस्तु के साथ पात्रों के चरित्र का भी विकास होता चलता है। यद्यपि कहानी के पात्रो में कभी कभी अलौकिक अथवा देव कोटि के चरित्रों के साथ साथ पशु-पक्षियो और यहां तक कि जड़ पदार्थों की भी सृष्टि की जाती है, परन्तु अन्तत: कहानी का आधार प्राय: सदैव ही मनुष्य और उसका जीवन होता है। मानवेतर श्रेणी के पात्र भी मूलत: मनुष्य और उसके जीवन के विविध सन्दर्भों में ही निरूपित होते हैं। इसलिए प्राय: सभी कथोपकथन मानवीय सन्दर्भ में होने के कारण भी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में नाटकीयता का सूचन करते है। कथोपकथन-प्रधान कहानी के उदाहरण स्वरूप यहा प्रेमचन्द लिखित 'जादू'[५] शीर्षक कहानी का उल्लेख किया जा सकता है, जिसमें कथावस्तु का आरम्भ, विकास और अन्त कथोपकथन के माध्यम से हुआ और उसी के माध्यम से चरित्र चित्रण आदि तत्वों का भी विकास हुआ है।

५. देखिए—मुंशी प्रेमचन्द, 'मानसरोवर' भाग २, पृ० ३२।

कथोपकथन का स्वरूपात्मक विकास

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रथम विकास काल के अन्तर्गत कथोपकथन अथवा संवाद योजना का जो रूप मिलता है, उसमें कलात्मक परिपक्वता का अभाव है। इस युग में लिखी गयी कहानियों में कथावस्तु के विकास के हेतु वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग किया गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि चरित्र चित्रण तथा कथोपकथन जैसे तत्वों को इनमें समुचित विकास का आधार नहीं मिल सका है। घटनाओं के प्रस्तुतीकरण के लिए भी भारतेन्दु युगीन कहानीकारों ने प्रायः वर्णनात्मकता का ही आश्रय लिया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक अद्‌भुत, अपूर्व स्वप्न', राधाचरण गोस्वामी लिखित 'यमपुर की यात्रा', केशवप्रसाद सिंह लिखित 'आपत्तियों का पहाड़' तथा गंगाप्रसाद अग्निहोत्री लिखित 'सच्चाई का शिखर' आदि रचनाओं में कल्पनात्मक तत्वों के बाहुल्य के कारण कथा वैचित्र्य पर ही अधिक ध्यान दिया गया है। चरित्र चित्रण तथा कथोपकथन आदि तत्वों की उपेक्षा हुई है। इस युग में लिखी गई सामाजिक कहानियों में संवाद योजना मिलती है, परन्तु उसमें लेखकों के आदर्शवाद के प्रति वैचारिक आग्रह की प्रधानता है। इस कोटि की कहानियों में रामचंद्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय', गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पति का पवित्र प्रेम', बंग महिला लिखित 'दुलाई वाली' तथा फूलदेवी लिखित 'बड़े घर की बेटी' आदि हैं। इन कहानियों के कथोपकथन यथार्थपरक न होने के कारण अधिकांशतः प्रभाव विहीन हो गये हैं। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इंदुमती' जैसी कल्पनाप्रधान ऐतिहासिक कहानियों में भी कथोपकथन का आधार कल्पनात्मक तत्व हैं। इनमें भी आदर्शवादी विचारधारा के प्रबल आग्रह के कारण विश्वसनीयता के गुण का अभाव है। एक कल्पनापरक प्रेम कथा होने के कारण इसके संवादों में भावनात्मकता की भी प्रधानता मिलती है।

द्वितीय विकास कालीन हिन्दी कहानी के क्षेत्र में कथोपकथन का सम्यक् रूप से विकास लक्षित होता है। इस युग में हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार प्रेमचन्द के आविर्भाव के साथ कहानी साहित्य के क्षेत्र में अनेक नवीन प्रवृत्तियां विकसित हुई। यथार्थवादी कहानी के क्षेत्र में इस काल के अन्तर्गत कथोपकथन तत्व का विकास सर्वथा नवीन रूप में हुआ। साथ ही कहानी में विषय-वस्तुगत क्षेत्र विस्तार के कारण पात्र योजना भी प्रशस्त स्तर पर हुई। इस काल की कहानी में ग्रामीण एवं नागरिक समाज के सभी वर्गों का समान रूप से प्रतिनिधित्व होने के कारण उनके संवादों में भी वैभिन्न्य लक्षित

होता है। इस युग में प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद', चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा जैनेन्द्र कुमार आदि लेखकों ने अपनी कहानियों में जहां एक ओर परम्परागत रूप से मान्य आदर्शवादी विचारधारा को प्रश्रय दिया है, वहां दूसरी ओर सामाजिक यथार्थ के भी विभिन्न रूपों को उद्घाटित किया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि इन लेखकों द्वारा नियोजित कथोपकथन भावात्मक, स्वाभाविक, मार्मिक तथा सोद्देश्य हैं। मानव जीवन की विविध क्षेत्रीय विडम्बनात्मक परिस्थितियों के, पात्रों के अन्तर और वार्तालाप पर पड़ने वाले विविध प्रभावों का संकेत भी इन लेखकों की कहानियों में उपलब्ध होता है। इस युग की सामाजिक कहानियों में जहां एक ओर पूर्व युगीन प्रभाव के फलस्वरूप कुरीति निवारण की सुधारपरक भावना मिलती है, वहां दूसरी ओर ऐतिहासिक कहानियो में आदर्शवादी दृष्टिकोण की प्रधानता है। इस दृष्टि से इन दोनों वर्गों की कहानियों मे संवाद योजना भी यथार्थ और आदर्श से प्रभावित है। इनमे से प्रथम कोटि में प्रेमचंद लिखित 'कफ़न', 'बड़े घर की बेटी', 'नेउर' तथा 'सवा सेर गेहूँ', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'मधुआ', सूर्यकान्त त्रिपाठी लिखित 'देवी', चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'रक्षा बन्धन' तथा चतुरसेन शास्त्री लिखित 'विधवा आश्रम' आदि रचनाएं तथा द्वितीय कोटि में प्रेमचन्द लिखित 'रानी सारंधा', 'राजा हरदौल' तथा 'मर्यादा की वेदी', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पुरस्कार', 'ममता' तथा 'सलीम', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' एवं जैनेन्द्र कुमार लिखित 'जयसन्धि' आदि रचनाएं उल्लिखित की जा सकती है।

उत्तर प्रेमचन्द काल मे मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के नवीन कथा रूपों के विकास के समानान्तर ही कथोपकथन का भी अभिनव स्वरूप दृष्टिगत होता है। मनोवैज्ञानिक कोटि की कहानियो मे जो वार्तालाप नियोजित मिलता है, उसमें स्वाभाविकता का गुण विशेष रूप से समाविष्ट हुआ है। जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', यशपाल तथा उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आदि लेखको की कहानियों में विविध वर्गीय पात्रों के माध्यम से मनोवैज्ञानिक कथोपकथन प्रस्तुत किये गए है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी तथा डा० वृन्दावनलाल वर्मा जैसे कहानीकारों ने इस युग में पूर्ववर्ती कथा परम्परा का अनुगमन किया। फलतः इनकी कहानियो में आदर्शात्मक वार्तालाप ही मिलता है। यशपाल तथा उपेन्द्रनाथ

'अश्क' ने यथार्थपरक कहानियां अधिक लिखीं। सामाजिक यथार्थ के जिन रूपों का उद्घाटन इन लेखकों की रचनाओं में हुआ है, उसका आधार समाज के विभिन्न वर्ग हैं। यथार्थ के प्रबल आग्रह के कारण इन कहानियों में चित्रित सभी वर्गों के पात्रों द्वारा बोले जाने वाले संवादों में एकरूपता मिलती है। इस प्रकार के कथोपकथन प्रायः बोलचाल की सामान्य भाषा में ही उपलब्ध होते हैं, यद्यपि उनके बोलने वाले पात्र शिक्षित, संस्कृत तथा अभिजात वर्गों के भी होते हैं, जिनके कथोपकथन अपेक्षाकृत दुरूह और परिनिष्ठित स्वरूप वाले होते हैं। डा० वृन्दावनलाल वर्मा जैसे लेखकों ने इस युग में बुन्देलखंड के प्रदेश से सम्बन्धित रचनाएं प्रस्तुत कीं, जिनमें नियोजित पात्रों के संवाद स्थानीय विशेषताओं से युक्त हैं। 'सुदर्शन', शिवपूजन सहाय, सियाराम शरण गुप्त, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह आदि लेखकों ने नैतिक, सामाजिक समस्याओं का निरूपण करने वाली आदर्शपरक कहानियां लिखीं, जिनके संवादों में यथार्थपरक रचनाओं से भिन्न तत्व निहित मिलते हैं। भगवतीचरण वर्मा, जी० पी० श्रीवास्तव तथा देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' आदि कहानीकारों की रचनाओं में व्यंग्यात्मकता तथा नाटकीयता मिलती है। राय कृष्णदास तथा कमलाकान्त वर्मा आदि की लिखी हुई कहानियों की संवाद योजना में सांकेतिकता तथा सोद्देश्यता मिलती है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में लिखी गयी हिन्दी कहानी में पूर्व युगीन प्रवृत्तियों का तो प्रसार हुआ ही, कतिपय नवीन प्रवृत्तियों का आविर्भाव भी हुआ। बौद्धिकता की प्रवृत्ति भी इनमें से एक है, जिससे युक्त रचनाएं इस युग के अनेक कहानीकारों ने प्रस्तुत कीं। इस कोटि की रचनाओं में जो संवाद योजना मिलती है, वह तथ्यपरक है। उसमें मनोवैज्ञानिकता, सोद्देश्यता तथा वैचारिकता का समावेश मिलता है। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार तथा मन्मथनाथ गुप्त आदि की कहानियों के कथोपकथन इसी कोटि के हैं। अमृतलाल नागर की कहानियों में सामाजिक यथार्थ को आधार बनाकर व्यंग्यात्मक वार्तालाप नियोजित हुए हैं। सत्यजीवन वर्मा 'भारतीय', विष्णु प्रभाकर तथा अमरकान्त की रचनाओं में प्रायः परंपरागत प्रभाव से युक्त आदर्शपरक संवाद योजना दृष्टिगत होती है। डा० धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, उषा प्रियंवदा, राजेन्द्र यादव, रमेश बक्षी, कमलेश्वर तथा मन्नू भंडारी आदि की कहानियों में कथावस्तु तथा चरित्र चित्रण आदि तत्वों के समान ही कथोपकथन के क्षेत्र में भी नवीनता मिलती

है। इन लेखकों की कहानियों में बौद्धिक एवं सांकेतिक संवाद अपेक्षाकृत अधिक मिलते हैं। फणीश्वर नाथ 'रेणु' की कहानियों में आंचलिक चित्रण की प्रधानता के कारण स्थानीयता अधिक मिलती है। इन कहानियों के संवादों में ग्राम्य हृदय की निश्छल अनुभूतियां चित्रित हुई हैं। आधुनिक जीवन में बढ़ती हुई यांत्रिकता के प्रभाव-स्वरूप होने वाले परिवर्तन की पृष्ठभूमि में भी ऊपर उल्लिखित किये गये कहानीकारों ने मानवीय दृष्टिकोणप्रधान कहानियां लिखी हैं, जिनके कथोपकथन वैयक्तिकता तथा वैचारिकता से परिपूर्ण हैं। वर्तमान कहानी में कथोपकथन इसीलिए अपेक्षाकृत अधिक दुरूह और विश्लेषणपरक होते जा रहे हैं।

कथोपकथन के उद्देश्य

कहानी में संवाद योजना अथवा कथोपकथन का समावेश कई उद्देश्यों से किया जाता है। एक कहानी में कथोपकथन का समावेश कथावस्तु के विकास अथवा घटनात्मक नियोजन के लिए भी किया जा सकता है और उसके माध्यम से पात्रों की चारित्रिक व्याख्या भी की जा सकती है। साथ ही एक कहानी लेखक अपनी रचना में कथोपकथन की योजना अभीष्ट देश, काल अथवा वातावरण को विश्वसनीय बनाने के लिए भी कर सकता है तथा उसके द्वारा अपने मन्तव्य अथवा उद्देश्य को भी अभि-व्यंजित कर सकता है। कथावस्तु के विकास के लिए कथोपकथन की योजना करने से कहानीकार को एक सुविधा यह रहती है कि उसे अनावश्यक विस्तार नहीं देना पड़ता है। जो घटना वर्णनात्मक प्रसंग द्वारा विस्तृत रूप से चित्रित की जाती है, वही कथोप-कथन के माध्यम से संक्षेप में व्यंजित हो सकती है। इसी प्रकार से परिचयात्मक रूप से पात्रों का चित्रांकन करने की तुलना मे कथोपकथन के माध्यम से पात्रों का चरित्र चित्रण अधिक सम्यक्ता से सम्भव होता है। देश, काल अथवा वातावरण का बोध भी पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप द्वारा पाठक को कराया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कथोपकथन के द्वारा कहानी में निहित लेखक के उद्देश्य का स्पष्टीकरण भी होता है। यहां पर कहानी में आयोजित कथोपकथन अथवा संवाद के प्रमुख उद्देश्यों की संक्षेप में सोदाहरण व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है।

कथावस्तु का विकास करना—कथोपकथन अथवा संवाद योजना का एक उद्देश्य कहानी की कथावस्तु का विकास करना भी है। इस दृष्टि से कथोपकथन के ही माध्यम से एक कहानीकार अपनी रचना में वर्णित घटनाओं अथवा दृश्यों में सजीवता लाता है। जहां कहानी की कथावस्तु को घटनाओं के माध्यम से विकसित करना सम्भव

नहीं रह जाता, वहां लेखक कहानी के पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप से कथा के भावी विकास की किसी विशेष स्थिति में उसे अनावश्यक विस्तार से बचाने के लिए उसकी सांकेतिक व्यंजना भी कर सकता है। कभी कभी कथोपकथन कथावस्तु का विस्तार करने के साथ साथ उसे विविधता, रोचकता और स्वाभाविकता भी प्रदान करता है। भगवतीचरण वर्मा लिखित 'वह फिर नहीं आई' शीर्षक कहानी में इस प्रकार के कथोपकथन का उपयुक्त उदाहरण उपलब्ध होता है। जीवनराम द्वारा बीस हजार रुपया बैंक से निकाल लिये जाने पर ज्ञानचन्द्र पुलिस में रिपोर्ट कर देता है। फिर ज्ञानचन्द्र और श्यामला के निम्नलिखित वार्तालाप के उपरान्त श्यामला उसे अपनी अतीत गाथा सुनाती है और तब कथावस्तु का भावी विकास होता है —

'आपका रुपया...वह है कहां उसके पास? ज्ञानचन्द्रजी, मेरे ऊपर रहम कीजिए, अगर जीवनराम को कुछ हो गया, तो मैं जिन्दा न रहूँगी।'

मैंने एक व्यंग्य भरी मुस्कुराहट के साथ कहा, 'श्यामला, मेरे रुपयों को जालसाजी से निकालने में तुम लोगों ने मेरे ऊपर कब रहम किया?'

'वह मजबूर हो गया था ज्ञानचन्द्रजी, उसने जो कुछ किया वह अपनी मरजी के खिलाफ़।'

'अपनी मरजी के खिलाफ़! क्यों एक और झूठ बोल रही हो?'

'मैं जानती हूँ कि आपको मेरी बात पर यकीन न होगा, लेकिन मैं आपसे सौगन्ध से कहती हूँ और सौगन्ध भी अपने जीवनराम की! आप मेरी बात सुन लीजिए।'[६]

कथोपकथन के द्वारा कथावस्तु के विकास का एक अन्य उदाहरण विष्णु प्रभाकर की लिखी 'दीप जले ये घर घर' शीर्षक कहानी से यहां प्रस्तुत किया जा रहा है। उसमें बच्चे मुंशीजी से वार्तालाप करके उन्हें पिछली घटना से अवगत कराते हैं और तब आगामी घटना का सूत्र नियोजित होता है—

'...उसे सुनते ही हम उछल पड़े और छोटे मुन्ने ने तो एकदम रोना शुरू कर दिया। मुंशीजी ने सब कुछ देखा, मुन्ने को गोदी में उठा लिया और बोले, परदीप! क्या है यह सब? अंधेरा क्यों है?'

मैंने कहा—'ताऊजी! अब की दिवाली नहीं मनी।'

'क्यों रे!'

६. श्री भगवतीचरण वर्मा ' 'आग और चिनगारी', पृ० ३२।

सरला बोल उठी—'दादी ने मना कर दिया, ताऊजी।'

'मना कर दिया! आखिर हुआ क्या?'[७]

पात्रों की चारित्रिक व्याख्या करना—कहानी में नियोजित पात्रों की चारित्रिक व्याख्या करना भी कथोपकथन का एक उद्देश्य है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, कहानी के अन्य सभी तत्वों से सम्बद्ध रहते हुए कथोपकथन का पात्रों से विशेष सम्बन्ध होता है। कहानी में पात्रों के माध्यम से जो विचार व्यक्त किये जाते हैं, वे भी वार्तालाप के द्वारा ही प्रस्तुत होते हैं। इसके साथ ही कथोपकथन के द्वारा पात्रों का अस्तित्व यथार्थपरक प्रतीत होता है, क्योंकि कहानी में आयोजित विभिन्न परिस्थितियों में उन पात्रों की प्रतिक्रियाएं पाठक की संवेदना और सहानुभूति को आकृष्ट करती है। इस दृष्टि से कथोपकथन पात्रों की चारित्रिक विवृत्ति के साथ ही साथ उनके विकास की आधारभूमि भी तैयार करते हैं। जो कहानियां अभिनयात्मक, संवादात्मक तथा आत्मकथात्मक शैलियों में लिखी जाती हैं, उनमें तो कथोपकथन का दायित्व और महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। इस कोटि की रचनाओं में कथोपकथन के ही माध्यम से कहानी के अन्य तत्व विकास की अवस्थाओं को प्राप्त होते हैं, तथा उसमें आयोजित पात्रों की बाह्य और आन्तरिक विशेषताओं का निरूपण होता है। चतुरसेन शास्त्री लिखित 'प्रबुद्ध' शीर्षक कहानी मे गोपा और कुमार की चारित्रिक व्याख्या मिलती है—

'गोपा कुमार की मुखमुद्रा और भावभंगी से डर गयी। उसने त्रस्त स्वर में कहा—'आर्यपुत्र, क्या सोच रहे हैं?'

'प्रिये! कोई गूढ वस्तु कहीं छिपी है?'

'इस राजसम्पदा से, अधिकार सत्ता से भी अधिक?'

'हां।'

'इस यौवन, सौन्दर्य और आनन्द से भी अधिक?'

'हां।'

'आपकी इस चिर किंकरी से भी अधिक?'

'ओह, गोपा प्रिये, ठहरो! वह गूढ़ वस्तु हमें प्राप्त करनी चाहिए।'

'और वह है कहां?'

७. श्री विष्णु प्रभाकर, 'रहमान का बेटा', पृ० ३१।

'मैं उसे ढूंढूंगा, वह मनुष्य मात्र के दुख को दूर करने की तालिका होगी।' उसके होंठ फड़कने लगे और नेत्र उन्मीलित हो गये।'[८]

कथोपकथन के माध्यम से पात्रों की चारित्रिक व्याख्या का एक उदाहरण यहां जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'बैरागी' शीर्षक कहानी से भी प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें सामान्य वार्तालाप के द्वारा पात्रों का चरित्र निरूपण हुआ है—

'स्त्री ने पूछा—'जब तुमने अपना सोने का संसार पैरों से ठुकरा दिया, पुत्रमुख दर्शन का सुख, माता का अंक, यश-विभव, सब छोड़ दिया, तब इस तुच्छ भूमिखंड पर इतनी ममता क्यों ? इतना परिश्रम, इतना यत्न किस लिए ?'

'केवल तुम्हारे जैसे अतिथियों की सेवा के लिए। जब कोई आश्रयहीन महलों से ठुकरा दिया जाता है, तब उसे ऐसे ही आश्रय स्थान अपने अंक में विश्राम देते हैं। मेरा परिश्रम सफल हो जाता है, जब कोई कोमल शय्या पर सोने वाला प्राणी इस मुलायम मिट्टी पर थोड़ी देर विश्राम करके सुखी हो जाता है।'

'कब तक तुम ऐसा किया करोगे ?'

'अनन्त काल तक प्राणियों की सेवा का सौभाग्य मुझे मिले।'

'तुम्हारा आश्रय कितने दिनों के लिए है ?'

'जब तक उसे दूसरा आश्रय न मिले।'

'मुझे इस जीवन में कहीं आश्रय नहीं, और न मिलने की संभावना है।'[९]

देश-काल का बोध कराना—कहानी में संवाद योजना अथवा कथोपकथन की सहायता से लेखक अपने इच्छित वातावरण का चित्रण करके उसका बोध पाठकों को करा सकता है। ऐसा करने से देश, काल अथवा वातावरण के परिचय के लिए लेखक को वर्णनात्मकता का आश्रय नहीं लेना पड़ता। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार लिखित 'वापसी' शीर्षक कहानी में इसी प्रकार से वातावरण का बोध कराया गया है— 'वासिली एकाएक बहुत गम्भीर हो गया। सिपाही की पूरी चेतना जाग्रत हो गयी। अपने पर पूरा नियन्त्रण रखकर उसने अपनी रोती हुई पत्नी के कन्धे पर हाथ रखा और कहा, 'अन्ना, धीरज धरो और मुझे बताओ कि आखिर यह हुआ क्या है ?'

अन्ना फिर भी चुप रही पर बूढ़े सोवर ने कहना शुरू किया, 'जर्मन कमान्डर ने

८. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, 'बाहर भीतर', पृ० ५३।
९. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'आकाशदीप', पृ० १२०।

तुम्हारे मकान को अड्डा बना लिया, तो अन्ना और बच्चे बाग की उन कोठरियों के पिछले हिस्से के एक गढ़े में छिपकर रहने लगे। गांव के सब लोगों ने कोशिश की कि जर्मनों को यह पता न लगे कि अन्ना का पति फौजी अफ़सर है। जिस तकलीफ से अन्ना और उसके बच्चों को ये दिन काटने पड़े. . .।"[१०]

कथोपकथन के माध्यम से देश-काल के बोध का एक उदाहरण आनन्दप्रकाश जैन लिखित 'महावत खां' शीर्षक कहानी से यहाँ उद्धृत किया जा रहा है, जिसमें पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप से ऐतिहासिक युग तथा परिस्थितियों का संकेत मिलता है–

'खैर खबर. . .हूं।' महावत खां ने विवशता से छत की ओर ताका। 'तुमने दूसरे सवाल का जवाब नहीं दिया।'

'क्या करोगे पूछकर ?' जोगेन्द्रनाथ बोले। 'लोग कहते हैं कि जब पाप का घड़ा भर जाता है तो फूटता ही है—इतिहास की गति भी यही बताती है। बेचारे शेरशाह के सामने जब तक पूरी तसबीर खीचकर न रख दी गयी, तब तक उसे इन सात समुंदर पार से आने वाले गोरे व्यापारियों से हो सकने वाले नुकसान का पता ही न चला। कुछ दिनों में जहाँगीर शराब में सब कुछ भूल जायगा। नूरजहाँ की नाजुक उंगलियाँ उसे थपकी देकर सुला देंगी। अच्छा है, लोगों को अपनी अपनी भलाई के लिए कुछ करने धरने की आजादी होगी। इसीलिए कहता हूँ कि तुम्हारे सोचने का ढंग गलत है—जहाँगीरी हुकूमत का नहीं, मुझे मुगलिया सल्तनत का पतन नजदीक नजर आ रहा है।"[११]

लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करना—कथोपकथन अथवा संवाद योजना के द्वारा कहानी में लेखक के उद्देश्य का स्पष्टीकरण भी होता है। बहुधा कहानी में विविध स्थलों पर लेखक अपने अभीष्ट को प्रत्यक्ष रूप में पाठकों को सम्बोधित करके नहीं कहना चाहता है, और उसे कहानी में आयोजित किसी पात्र के माध्यम से कहलाना चाहता है। ऐसी स्थिति में पात्रों का वार्तालाप लेखक के उद्देश्य को भी सफलता-पूर्वक व्यक्त कर देता है। प्रेमचन्द की लिखी हुई 'शांति' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें कथा की समस्या और वार्तालाप के माध्यम से संकेत दिया गया है।

१०. श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, 'वापसी', पृ० १५।
११. श्री विश्वनाथ, 'जलते प्रश्न', पृ० ५९।

'मैंने करुण स्वर में पूछा—'क्या तुम बीमार थीं, गोपा ?'

गोपा ने आंसू पीकर कहा—'नहीं तो, मुझे तो कभी सिर दर्द भी नहीं हुआ।'

'तो तुम्हारी यह क्या दशा है ? बिल्कुल बूढ़ी हो गयी हो।'

'तो अब जवानी लेकर करना ही क्या है ? मेरी उम्र भी तो पैंतीस के ऊपर हो गयी ?'

'पैंतीस की उम्र तो बहुत नहीं होती।'

'हाँ, उनके लिए जो बहुत दिन जीना चाहते हैं। मैं तो चाहती हूँ, जितनी जल्द हो सके, जीवन का अंत हो जाय। बस मुन्नी के ब्याह की चिंता है। इससे छुट्टी पाऊँ, मुझे जिंदगी की परवाह न रहेगी।'[१२]

कथोपकथन के माध्यम से लेखक के उद्देश्य के स्पष्टीकरण का एक उदाहरण जैनेन्द्र कुमार लिखित 'जय सन्धि' शीर्षक कहानी में भी उपलब्ध होता है, जिसमें वसन्ततिलका और यशोविजय के वार्तालाप के द्वारा लेखक भावी घटनाओं की संभाव्यता इंगित करता है—

'वसन्त—'सच बताओ, क्या यह सच है कि यशस्तिलका अपने पति को युद्ध के लिए उभार रही है ?'

यशोविजय—'सुनता तो हूँ, पर जासूस मन तक तो नहीं पहुंच सकते।'

वसंत—'तब क्या बहन यही न समझेगी कि मैं तुम्हारे पक्ष में जयवीर को झुकाने आयी हूँ ?'

यशोविजय—'मेरे पक्ष में ? भविष्य के पक्ष में कहो, वसन्त, तो इसमें अन्यथा क्या है ?'

वसन्त—'बहन क्या चाहती है ? हममें किसी का घर बर्बाद देखना चाहती है ?'

यशोविजय—(गम्भीर भाव से) 'हाँ, शायद अपना ही घर बर्बाद देखना चाहती है।'[१३]

इस प्रकार से कहानी में नियोजित कथोपकथन विविध तत्वों के विकास में सहायक होने के कारण बहु-उद्देश्यीय होता है। कथोपकथन की सफलता के लिए कहानी में उसकी योजना संतुलित रूप में होनी आवश्यक है, ऐसा न होने से कहानी का आकर्षण

१२. मुंशी प्रेमचंद, 'मानसरोवर', भाग १, पृ० १०१।

१३. श्री जैनेन्द्र कुमार, 'जैनेन्द्र की कहानियाँ', भाग १, पृ० १४१-४२।

नष्ट हो जाता है तथा उसमें घटना व्यापार ही प्रधान रह जाता है। प्रथम विकास युगीन हिन्दी कहानी में कथोपकथन की योजना नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने के लिए भी की जाती थी। इसलिए उसमें प्रथम पुरुष के रूप में अभिनयात्मक शैली का प्रयोग अधिकता से होता था। परवर्ती काल में कहानी के कलात्मक स्वरूप के विकास के साथ साथ कथोपकथन में भी स्वरूपगत परिष्कार हुआ तथा उसकी आयोजना अपेक्षाकृत गम्भीर उद्देश्य से की जाने लगी।

कथोपकथन के भेद

कहानी के विविध भेदात्मक स्वरूप के कारण कथोपकथन के भी अनेक भेद मिलते हैं। एक विशिष्ट विषय की कहानी में कथावस्तु के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में पृथक् पृथक् प्रकार के कथोपकथन नियोजित किये जाते है। उदाहरण के लिए भावात्मक कथोपकथन की आयोजना वहां की जाती है, जहां कहानी मे पात्रों के चरित्रांकन को प्रभावपूर्ण बनाने की आवश्यकता होती है और विविध परिस्थितियों मे पात्रों की अनुभूत्यात्मक गतिशीलता स्पष्ट करनी होती है। इसी प्रकार से साकेतिक कथोपकथन की आवश्यकता तब होती है, जब कहानी के पात्र किसी परिस्थिति मे अपने अभीष्ट मन्तव्य को विस्तार से व्यक्त नही कर सकते हैं। नाटकीय कथोपकथन प्राय: आत्मकथात्मक शैली मे लिखी गयी कहानियो मे विशेष रूप से मिलते है। व्यंग्यात्मक कथोपकथनों की आयोजना हास्यप्रधान कहानी में अधिकता से मिलती है। मनोवैज्ञानिक कथोपकथन पाठको के सूक्ष्म चित्राकन में अपेक्षित होते हैं। उद्देश्यपूर्ण कथोपकथन कहानी को नीरस और प्रभावहीन होने से बचाते हैं। यहां पर कहानी में नियोजित कथोपकथन के कतिपय प्रमुख भेदों की सोदाहरण व्याख्या संक्षेप में प्रस्तुत की जा रही है।

भावात्मक कथोपकथन——इस प्रकार के कथोपकथन में भावात्मकता के गुण का समावेश पात्रों के चरित्रांकन को प्रभावपूर्ण बनाने की दृष्टि से आवश्यक होता है। विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों मे पात्रों का अनुभूत्यात्मक प्रवाह विशेष रूप से गतिशील हो उठता है। इसलिए ऐसे अवसरों पर उनके वार्तालाप में स्वाभाविक रूप से भावात्मकता निहित होती है। चंडीप्रसाद 'हृदयेश' लिखित 'नंदन निकुंज' शीर्षक कहानी से भावात्मक कथोपकथन का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—
'शैलेंद्र हार गये। सरला जीती। सरला बोली——'शैलेंद्र, तुम्हारे बिना संसार असार है।'

शैलेंद्र ने कहा—'हां, ठीक; क्योंकि संसार के सार को कौन देखे।' इस बार सरर हारी, शैलेंद्र जीते। किन्तु शैलेंद्र, क्या सरला के सरल हास्य से भी जीत सकते हो

अब शैलेंद्र खुले। सरला का कर-कमल हाथ में लेकर बोले—'सरले, सर तुम्हें नहीं मालूम, तुम्हारे बिना इस हृदय की क्या दशा रहती है।'

सरला बोली—'जानती हूं, अग्नि प्रज्वलित रहती है।'

शैलेंद्र बोले—'क्या इसमें कभी प्रेम की कादंबिनी न बरसेगी?'

सरला बोली—'शैलेंद्र उन्मत्त न होओ। तुम जानते हो, इस प्रेम का पथ ब कठिन है।'

शैलेंद्र संभल कर बोले—'किन्तु अप्राप्य तो नही।'

सरला बोली—'नहीं, किन्तु प्राप्य है, केवल मरण के उपरांत।'"[१४]

भावात्मक कथोपकथन का एक उदाहरण विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' की लिख हुई 'विधवा की होली' शीर्षक कहानी से यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें शीतल प्रसाद के हृदय परिवर्तन के उपरान्त उसका विधवा श्यामा से वार्तालाप हुआ है— 'स्वस्थ होने के कई दिन पश्चात् एक दिन शीतलाप्रसाद श्यामा के पास पहुंचा। श्याम ने उसे देखते ही पूछा—'क्यों, क्या फिर होली खेलने की इच्छा है?' शीतलाप्रसा ने श्यामा के सामने घुटने टेक दिये और कहा—'भगिनी, तुम्हारे रंग ने मेरे हृदय व सारी कलिमा धो दी, मेरा हृदय शुद्ध हो गया। मैंने सच्ची होली तुम्हारे साथ खेली ऐसी होली क्या अब कभी खेलने को मिलेगी? तुम्हारे ऐसा रंग कहां मिलेगा। कल् षित आत्माओं के लिए ऐसे ही रंग की आवश्यकता है। उस रंग ने वस्त्र ही नहीं, हृद को भी रंग दिया।'

श्यामा—'शीतलाप्रसाद, वह हिन्दू विधवा का रंग था। हिन्दू विधवाएं उस से रंग खेलती हैं।'"[१५]

सांकेतिक कथोपकथन- -कहानी में सांकेतिक कथोपकथन का भी आयोजन विषया नुसार किया जाता है। कहीं कहीं पर परिस्थिति के अनुरूप कोई पात्र अपनी बात पूर तौर से स्पष्ट न कहकर केवल उसका संकेत भर कर देता है। यह गुण भी कथोपकथ को प्रभावपूर्ण बनाता है। इस प्रकार का एक उदाहरण यहां इलाचन्द्र जोशी लिखि

१४. श्री चंडीप्रसाद 'हृदयेश', 'नन्दन निकुंज', पृ० ३०।
१५. श्री विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', 'चोटा बेटा', पृ० ३२।

'मेरा जीवन चक्र' शीर्षक कहानी से प्रस्तुत किया जा रहा है—'इसी सिलसिले में एक मिनिस्टर महोदय से मेरी जान पहचान हो गयी। मैंने उनसे प्रार्थना की कि कहीं मेरे रोजगार का ठिकाना लगा दें। वह बोले—'गवर्नमेंट सर्विस करने का इरादा है?'

'साहस नहीं होता।'

'तब मैं किस प्रकार आपकी सहायता कर सकता हूं?'

'यदि किसी स्टेट में....'

वह मुस्कराये, क्यों मुस्कराये, कह नहीं सकता। फिर बोले—'अच्छा, कभी मौका हुआ तो देखूंगा।'"[१६]

सांकेतिक कथोपकथन का एक उदाहरण अमृतलाल नागर लिखित 'हकीम रमजान अली' शीर्षक हास्यप्रधान रचना से यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें पहलवान और मियां रमजानी का नवाब साहब से मिलने के पूर्व का वार्तालाप है—

'कहो भाई पहलवान क्या हो रहा है?'

'आओ जी, जरा बीड़ी पी रहा था उस्ताद, लो भाई तुम भी एक दो कश।'

'अमा नही जी, बाहर नवाब साहब बैठे हैं, तुम्हें बुलाया है।'

'अमां कौन से नवाब साहब? अपने वाले?'

'हां हां यार और कौन।' मियां रमजानी ने उत्तर दिया। पहलवान लुन्गी संभालते हुए उठ खड़े हुए और कहा—'अमां इनसे कुछ एेंठा जाये।'

'नहीं यार अभी नहीं, किसी वक्त मौके से। मगर देखो उस्ताद जरा हमारी इज्जत...'

'अमां तुम इससे निसाखातिर रहो। मैं सब कुछ देख लूंगा।'"[१७]

नाटकीय कथोपकथन—कथोपकथन का एक भेद नाटकीयता प्रधान भी होता है। पीछे इस तथ्य की ओर संकेत किया जा चुका है कि आत्मकथात्मक पद्धति में प्रस्तुत वार्तालाप विशेष रूप से प्रभाव की सृष्टि कर सकता है। नाटकीयता का गुण प्रायः इसी कोटि की रचनाओं में विशेष रूप से समाविष्ट मिलता है। परन्तु अन्य प्रकार की कहानियों में भी कही कहीं यह गुण सफलतापूर्वक निहित मिलता है। उदाहरण के लिए यहां सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'गृह त्याग' शीर्षक

१६. श्री इलाचन्द्र जोशी, 'दीवाली और होली', पृ० ६२।
१७. श्री अमृतलाल नागर, 'नवाबी मनसद', पृ० ६२।

कहानी से कनक और गंगाधर के वार्तालाप का एक अंश प्रस्तुत किया जा रहा है—

'कहां जाओगे?'

'पता नहीं।'

'क्या करोगे?'

'पता नहीं।'

'फिर वापस आओगे?'

'पता नहीं।'[१८]

नाटकीय प्रधान कथोपकथन का एक उदाहरण यशपाल लिखित 'मक्रील' शीर्षक कहानी से यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें एक बिडम्बनात्मक परिणति के पूर्व का वार्तालाप है—'कवि ने गद्गद् स्वर से कहा—'ओ हो! आपने अपनी बात रख ली, परन्तु इस सर्दी में, कुसमय में, शायद उसके न रखने में ही अधिक बुद्धिमानी होती। व्यर्थ कष्ट क्यों कीजिएगा? आप विश्राम कीजिए।'

युवती ने सिर झुकाकर उत्तर दिया—'मेरा अहोभाग्य है, आपका सत्संग कर रही हूं।'

कंटकित स्वर से कवि ने कहा—'सो कुछ नहीं, सो कुछ नहीं।'

पुल के समीप पहुंचकर कवि बोला—'आपकी बड़ी कृपा है कि आप मेरा साथ दे रही हैं।...संसार में साथी बड़ी चीज है' ...मक्रील की ओर संकेत कर—'यह देखिए, इसका कोई साथी नहीं। इसीलिए हाहाकार कर साथी की खोज में दौड़ती चली जा रही है।'[१९]

व्यंग्यात्मक कथोपकथन—कथोपकथन का एक भेद व्यंग्यात्मकताप्रधान रूप में भी उपलब्ध होता है। इस प्रकार के कथोपकथन के समावेश से कहानी में सजीवता और विश्वसनीयता आ जाती है। सामान्य रूप से इस गुण की निहिति उन कहानियों के संवादों में विशेष रूप से मिलती है, जो हास्यप्रधान होती हैं। परन्तु अन्य विषयों की कहानियों में भी प्रसंगानुसार इस गुण का समावेश सफलतापूर्वक मिलता है। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द लिखित 'शतरंज के खिलाड़ी' शीर्षक कहानी का एक अंश यहां प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें मिरजा साहब और मीर साहब का वार्तालाप कटु

१८. श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', 'कोठरी की बात', पृ० ९८।
१९. श्री यशपाल, 'पिंजड़े की उड़ान', पृ० ७।

व्यंग्यात्मकता से युक्त है--'तकरार बढ़ने लगी। दोनों अपनी अपनी टेक पर खड़े थे। न यह दबता था न वह। अप्रासंगिक बातें होने लगीं। मिरजा---'बोले किसी ने खानदान में शतरंज खेली होती तब तो इसके कायदे जानते! वे तो हमेशा घास छीला करते थे, आप शतरंज क्या खेलिएगा? रियासत और ही चीज है! जागीर मिल जाने से ही कोई रईस नही हो जाता!'

मीर...'क्या? घास आपके अब्बाजान छीलते होंगे। यहां तो पीढ़ियों से शतरंज खेलते चले आ रहे हैं।'

मिरजा—'अजी, जाइए भी, गाजीउद्दीन हैदर के यहां बावरची का काम करते-करते उम्र गुजर गयी, आज रईस बनने चले हैं। रईस बनना कुछ दिल्लगी नहीं है।'

मीर—'क्यों अपने बुजुर्गों के मुंह में कालिख लगाते हो—वे ही बावरची का काम करते होंगे। यहां तो हमेशा बादशाह के दस्तरख्वान पर खाना खाते चले आये हैं।'[२०]

व्यंग्यात्मक कथोपकथन का एक उदाहरण मन्मथनाथ गुप्त लिखित 'राजनीति' शीर्षक कहानी से भी यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें विश्व युद्ध की विभीषिका की पूर्व कल्पना में मग्न ठेकेदार सेठजी अपने बड़े मुनीम से जर्मनी-जापान की पराजय की खबर सुनकर वार्तालाप कर रहे हैं—'सेठजी बोले—'मुनीमजी, अब तो सब परड़ा हो गया। क्या क्या सोचा था...'

मुनीमजी तो हाँ में हाँ मिलाने मे अभ्यस्त थे ही। बोले---'हाँ, पर अभी तो खबर पक्की नही हुई।'

सेठजी भरे बैठे तो थे ही, एकाएक तैश खाकर बोले---'अजी, जापान साला क्या खाक लड़ेगा? भात खाने वाला....'

मुनीमजी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि सबेरे तक कुछ और कह रहे थे, अब यह क्या हो गया। पर वे भी बड़े घुटे थे। फौरन बोले---'सेठजी, मैंने तो पहले ही कहा था...।'

सेठजी बोले---'तुम क्या कहोगे? मैं तो सब कुछ जानता था, पर जानकर भी अनजान बनता था, सोचता था कि अपने एशिया का ही देश है, इसलिए हम सबको उसकी भलाई की बात ही सोचनी चाहिए। अपने को क्या है। कोऊ नृप होय हमें

२०. मुंशी प्रेमचंद, 'मानसरोवर', भाग ३, पृ० २८०।

का हानी, चेरी छोड़ न होऊं रानी। यहाँ तो हमेशा एड़ी चोटी का पसीना एक करते थे, तब कहीं रोटी मिलती थी, सो अब भी मिलेगी ही।'[21]

मनोवैज्ञानिक कथोपकथन—आधुनिक युगीन कहानी पर मनोविज्ञान के व्यापक प्रभाव के कारण कथोपकथन का एक भेद मनोवैज्ञानिकता को आधार बनाकर भी विकसित हुआ है। इस विशेषता से युक्त कथोपकथन पात्रों को चारित्रिक सम्यक्ता प्रदान करता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र कुमार, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी आदि की रचनाओं में मनोवैज्ञानिक संवादों की योजना विशेष रूप से सफल कही जा सकती है। जैनेन्द्र कुमार की लिखी हुई 'साधु का हठ' शीर्षक कहानी से इस प्रकार के कथोपकथन का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—'साधु ने जरा मुस्करा दिया, 'हाँ, मैं तुम्हारे लिए दुआ मांगूंगा और माफी मांगूंगा। मैं दुनिया के लिए यह माँगता हूँ।' और उसी मुस्कराहट के साथ पूछा, 'कोई बाल बच्चा है?'

पत्नी ने पति की ओर देखा और पति ने पत्नी की ओर। फिर झट दोनों धरती की ओर देखने लगे।...पत्नी ने फिर दबी जबान से कहा, 'बाबा, इसके लिए भी दुआ माँगना। बरसों से हमारी साध है। तुम्हारी दुआ लग जायगी, तो जस मानेंगे।'

साधु ने कहा, 'वह सब कुछ होगा। उससे मांगे जाओ। मन, बुद्धि और देह से जितने तुम समर्थ होगे, जितने के अधिकारी होगे और जितना तुम्हारे लिए उचित और हितकर होगा, और जितनी तुम्हारी प्रार्थना में शक्ति होगी, उतना ही वरदान तुमको उससे मिलेगा। भरोसा रखो, वह सब कुछ देगा।'[22]

मनोवैज्ञानिकता के गुण से युक्त कथोपकथन का एक उदाहरण यहाँ इलाचन्द्र जोशी की लिखी हुई 'क्रान्तिकारिणी महिला' शीर्षक कहानी से प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें कथानायक का रहस्यमयी महिला से वार्तालाप दिखाया गया है—'अचानक वह बोल उठी—'आप टकटकी बाँधे मेरी ओर क्यों देख रहे हैं? आप क्या यह भी नहीं जानते कि किसी स्त्री को इस प्रकार घूरना शिष्टाचार के विरुद्ध है?' उसके होठों पर व्यंग्य की कुटिल हंसी झलक रही थी। घूरना शिष्टाचार के विरुद्ध है?

मैंने घबराकर कहा—'नहीं, नहीं, मेरा इरादा वैसा नहीं था...।'

२१. श्री मन्मथनाथ गुप्त, 'दूर की कौड़ी', पृ० २-३।

२२. श्री जैनेन्द्र कुमार, 'जैनेन्द्र की कहानियाँ', भाग ६, पृ० २७

'कैसा नहीं था ? आप बड़े भोले हैं।' वह अधिक देर तक हंसी को दबा न सकने के कारण जोर से खिलखिला पड़ी। लज्जा से मेरा मुंह लाल हो आया। पर मैंने तत्काल अपने को संभाल कर इस व्यंग्य का बदला लेने के लिए कहा—'माफ कीजिए बहन जी, पर एक बात मैं आपसे कहना चाहता हूँ। वह यह कि आप साधारण स्त्री नहीं हैं।'

'साधारण स्त्री नहीं हैं !' इस बार उसने वास्तव में आश्चर्य का भाव प्रकट किया। मैं उठ खड़ा हुआ। बोला—'इस समय देर हो रही है, जाता हूँ, पर आज की रात मुझे सदा याद रहेगी, और आपको भी मैं कभी नहीं भूलूंगा।'[२३]

उद्देश्यपूर्ण कथोपकथन—कहानी में नियोजित कथोपकथन अथवा संवाद योजना सोद्देश्य होनी चाहिए। उद्देश्यहीन वार्तालाप कहानी में नीरसता उत्पन्न करते हैं। कथावस्तु के विकास, पात्रों के चरित्र चित्रण, देश काल के परिचय तथा लेखक के उद्देश्य के स्पष्टीकरण में से कोई न कोई कथोपकथन के माध्यम से अवश्य सिद्ध होना चाहिए। जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'समुद्र सन्तरण' शीर्षक कहानी में स्वामी और सेवक का निम्नलिखित वार्तालाप इस दृष्टि से सोद्देश्य कहा जा सकता है—'श्रीमन्, विलम्ब हुआ। बहुत से निमंत्रित लोग आ रहे हैं। महाराज ने आपको स्मरण किया है।'

'मेरा यहां पर कुछ खो गया है, उसे ढूंढ लूंगा, तब लौटूंगा।'

'श्रीमन्, रात्रि समीप है।'

'कुछ चिन्ता नहीं, अभी चन्द्रोदय होगा।'

'हम लोगों को क्या आज्ञा है ?'

'जाओ।'[२४]

चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' में भी लहनासिंह और बोधासिंह की यह बातचीत गम्भीर उद्देश्य से परिपूर्ण है—'पानी पीकर बोला—'कंपकंपी छूट रही है। रोम रोम में तार दौड़ रहे है। दांत बज रहे हैं।'

'अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।'

'और तुम ?'

२३. इलाचन्द्र जोशी, 'दीवाली और होली', पृ० १९१।
२४. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'आकाशदीप', पृ० ११४।

'मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गरमी लगती है, पसीना आ रहा है।'

'ना, मैं नहीं पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिए...'

'हाँ, याद आयी। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सवेरे ही आयी है। विलायत से मेमें बुन बुनकर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करे।' यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

'सच कहते हो?'

'और नहीं झूठ?' यों कहकर नहीं-नहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहन कर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।'[२५]

इस प्रकार से, कथोपकथन के कुछ भेदों का यहाँ उल्लेख किया गया है, जिनका व्यवहार सामान्य रूप से हिन्दी कहानी के क्षेत्र में दृष्टिगत होता है। ये भेद कथोपकथन के विविधात्मक स्वरूप के द्योतक होने के साथ साथ तत्वगत परिपक्वता के भी परिचायक होते हैं। एक कहानीकार अपनी रचना में कथावस्तु, घटनात्मकता, पात्र योजना, वातावरण तथा उद्देश्य आदि के औचित्य को ध्यान में रखते हुए कथोपकथन के इन रूपो का व्यवहार करके उसे प्रभावपूर्ण बना सकता है। कथोपकथन के भावात्मक, सांकेतिक, नाटकीय, व्यंग्यात्मक, मनोवैज्ञानिक तथा उद्देश्यपूर्ण रूप कहानी कला के क्षेत्र में इस तत्व की आनुपातिक परिष्कृतता के भी परिचायक होते हैं।

कथोपकथन के गुण

कहानी में कथोपकथन अथवा वार्तालाप के माध्यम से महत्वपूर्ण उद्देश्यों का प्रतिपादन होता है। इसलिए इस तत्व का सम्यक् रूप से समावेश कहानी की कलात्मकता में वृद्धि करता है। परन्तु ऐसा तभी सम्भव होता है, जब कथोपकथन कतिपय विशेषताओं से युक्त हो। सामान्य रूप से ये विशेषताएँ कथोपकथन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्ध रखती हैं और उसे स्वरूपगत परिपूर्णता प्रदान करती हैं। कहानी की आकारगत सीमा के कारण उसमें नियोजित कथोपकथन संक्षिप्त होने चाहिए। स्वाभाविक कथोपकथन कथावस्तु को विश्वसनीय बनाते हैं। कथोपकथन को कथावस्तु के प्रसंग विशेष के उपयुक्त होना चाहिए। कहानी के पात्रों के अनुकूल

२५. श्री सुधाकर पांडेय, 'विशिष्ट कहानियाँ', पृ० ५६।

संवाद चारित्रिक प्रभावपूर्णता की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। प्रसंग एवं परिस्थिति के अनुसार विगत और आगत कथासूत्रों से उनकी सम्बद्धता भी आवश्यक है। अनुभूत्यात्मक व्यंजना की दृष्टि से कथोपकथन को भावात्मक भी होना चाहिए। आधुनिक युगीन कहानी में मनोवैज्ञानिकता भी कथोपकथन का एक अनिवार्य गुण माना जाता है। मार्मिक कथोपकथन कथावस्तु तथा पात्रयोजना दोनों को ही प्रभावात्मक बना देते हैं। कहानी की पृष्ठभूमि, कथावस्तु तथा चरित्रांकन को सजीवता प्रदान करने में व्यंग्यात्मक कथोपकथन सहायक होते हैं। सांकेतिकता की विशेषता से युक्त कथोपकथन कलात्मक परिष्कृति के परिचायक होते हैं। नाटकीयता कथोपकथन की आधारभूत विशेषता है, साथ ही उद्देश्यपूर्ण कथोपकथन कहानी को नीरस होने से बचाते है। कथोपकथन की इन्हीं प्रमुख विशेषताओं की संक्षिप्त व्याख्या यहाँ पृथक् पृथक् रूप से प्रस्तुत की जा रही है।

संक्षिप्तता—कथोपकथन की एक विशेषता उसकी संक्षिप्तता भी है। कहानी की आकारगत सीमा को दृष्टि में रखते हुए भी संक्षिप्त संवादों की योजना औचित्यपूर्ण होती है। कहानी के लघु परिवेश में भी यदि उसके पात्र कई कई पृष्ठों के नीरस भाषण देंगे, तो उसका तत्वगत सन्तुलन नष्ट हो जायगा। इसके अतिरिक्त लम्बे संवाद कहानी की प्रभावात्मकता को भी कम कर देते हैं, क्योंकि उनकी आयोजना से पाठक का ध्यान मुख्य कथासूत्र से विकेन्द्रित हो जाता है। संक्षिप्त कथोपकथन कथा के भावी अंश के प्रति पाठक की रुचि बनाये रखने में भी सफल होते हैं। प्रेमचन्द की लिखी हुई 'मंत्र' शीर्षक कहानी में डाक्टर चड्ढा के इकलौते पुत्र के साँप द्वारा डस लिये जाने पर नैराश्यपूर्ण वातावरण में उनसे बूढ़े भगत का निम्नलिखित वार्तालाप इस विशेषता से युक्त है—'भगत ने कहा—सुन चुका हूँ बाबूजी, इसीलिए आया हूँ। भैया कहाँ है? जरा मुझे दिखा दीजिए। भगवान् बड़ा कारसाज है, मुरदे को भी जिला सकता है। कौन जाने, अब भी उसे दया आ जाय।'

चड्ढा ने व्यथित स्वर से कहा—'चलो, देख लो, मगर तीन चार घंटे हो गये। जो कुछ होना था, हो चुका। बहुतेरे झाड़ने फूंकने वाले देख देखकर चले गये।'

डाक्टर साहब को आशा तो क्या होती। हाँ, बूढ़े पर दया आ गयी। अंदर ले गये। भगत ने लाश को एक मिनट तक देखा। तब मुस्कराकर बोला—'अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, बाबूजी। वह नारायन चाहेंगे, तो आध घंटे में भैया उठ बैठेंगे।

आप नाहक दिल छोटा कर रहे हैं। जरा कहारों से कहिये, पानी तो भरें।'[२६]

संक्षिप्त कथोपकथन का एक अन्य उदाहरण यहाँ जैनेन्द्र कुमार लिखित 'विच्छेद' शीर्षक कहानी से प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें उपाध्यायजी और सविता का वार्तालाप है—'...सोचते हुए से उपाध्यायजी बोले, 'केशव में कुछ दोष है ?'

सविता नीचे देखती चुप ही रही, बोली नहीं।

'लज्जा न करना, बेटा ! सब उपाय हो सकता है।'

सविता ने अब ऊपर देखा। स्थिर वाणी में कहा, 'आप परिवार के हितैषी हैं, पूज्य हैं, पर पत्नी के धर्म में पति का विचार नहीं है, धर्म का ही विचार है। धर्म परिवार से ऊपर होता है। माफ करें, साथ रहना न होगा।...मैं जा सकती हूँ।'[२७]

स्वाभाविकता—कथोपकथन का एक गुण उसकी स्वाभाविकता भी है। जिस पात्र के द्वारा जहाँ जो बात कहलायी जा रही है, वह सर्वथा स्वाभाविक होनी चाहिए। ऐसा होने पर ही वार्तालाप यथार्थपरक और विश्वसनीय प्रतीत होगा। इसके विपरीत यदि कहीं पर पाठकों के पारस्परिक कथोपकथन में कृत्रिमता अथवा अस्वाभाविकता लक्षित होगी, तो वह स्थल कहानी को प्रभावहीन बना देगा। विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'सुसाहस' शीर्षक कहानी में राधाचरण से कटुतापूर्ण बातचीत होने के उपरान्त माता-पिता के वार्तालाप का यह अंश इसी विशेषता से युक्त है—'राधाचरण ने इस पर कुछ न कहा—मन ही मन कुढ़कर वहाँ से चला गया। राधाचरण के चले जाने के पश्चात् उसकी माता बोली, 'कहने दो, इसकी बातों का बुरा न मानो। इसे अभी संसार का ज्ञान नहीं है।'

'ज्ञान क्या, यह अंग्रेजी शिक्षा का दोष है। इस शिक्षा से आदमी का दिमाग बिगड़ जाता है। घर में चाहे भूनी भांग न हो, पर दिमाग राजाओं जैसे हो जाते हैं। साधारण बातें तो इन्हें पसन्द ही नहीं आतीं।'

'तुम्हें उसकी पसन्दगी से क्या लेना है—अपने काम से काम है।'[२८]

२६. मुंशी प्रेमचंद, 'मानसरोवर', भाग ५, पृ० ३०६-७।
२७. श्री जैनेन्द्र कुमार, 'जैनेन्द्र की कहानियाँ', भाग १०, पृ० ४७।
२८. श्री विश्वम्भरनाथ कौशिक, 'कौशिकजी की इक्कीस कहानियाँ', पृ० ९१।

कथोपकथन अथवा संवाद योजना में स्वाभाविकता के समावेश का एक उदाहरण यहाँ सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की लिखी हुई 'इन्दु की बेटी' शीर्षक कहानी से प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें एक स्टेशन पर दो पात्रों में निम्नलिखित वार्तालाप होता है—'बाबूजी, कैसे आना हुआ ?'

'यों ही।'

'ठहरिएगा ?'

'नहीं। अगली गाड़ी कब जाती है ?'

'कल सबेरे। उसमें जाइएगा ?'

'हाँ।'

'इस वक्त बाहर जाइएगा ?'

'नहीं।'

'लेकिन यहाँ तो वेटिंग रूम नहीं है।'

'यहीं बेंच पर बैठा रहूँगा ?'[२९]

उपयुक्तता—कथोपकथन अथवा संवाद योजना का एक गुण उसकी उपयुक्तता है। इस गुण से युक्त कथोपकथन जहाँ एक ओर कहानी के किसी स्थल विशेष पर चमत्कारिकता की सृष्टि कर सकता है, तो दूसरी ओर इस गुण से रहित कथोपकथन कथावस्तु के विकास की स्वाभाविक गति में अवरोध भी उत्पन्न कर सकता है। इसलिए कथोपकथन का घटनात्मकता तथा परिस्थिति के उपयुक्त होना आवश्यक है। कमल जोशी लिखित 'ब्रह्म और माया' शीर्षक कहानी में गाँव से आये हुए महेश का रामानन्द से उसके भोजन के समय यह वार्तालाप इस विशेषता से युक्त है—'हर इन्सान को अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए।' रामानन्द ने फिर कहा—'स्वावलम्बन ही सुख की कुंजी है। कोशिश करो न, यदि तुम्हें यहाँ कोई नौकरी मिल जाय।'

महेश की आँखों में उत्तेजना की ऐसी चमक दिखाई दी कि जवाब देने में उसकी आवाज काँप गयी—'इतने बड़े शहर में मैं कहाँ जाऊँ और क्या करूँ ? सिवाय आप के मैं यहाँ किसी को जानता पहचानता तक नहीं। आप ही मेरे लिए कोई छोटा मोटा काम खोज दीजिए न ?'[३०]

२९. श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', 'परम्परा', पृ० ५९।
३०. श्री कमल जोशी, 'ब्रह्म और माया', पृ० ८०।

उपयुक्तता के गुण से युक्त कथोपकथन का एक उदाहरण यहाँ जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'चूड़ीवाली' शीर्षक कहानी से प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें अवसर के उपयुक्त वार्तालाप है—'अभी तो पहना गई हो।'

'बहूजी, बड़ी अच्छी चूड़ियाँ हैं। सीधे बम्बई से पारसल मंगाया है। सरकार का हुक्म है, इसलिये नई चूड़ियाँ आते ही चली आती हूँ।'

'तो जाओ सरकार को ही पहनाओ, मैं नहीं पहनती।'

'बहूजी! जरा देख तो लीजिये।' कहती मुसकराती हुई ढीठ चूड़ीवाली अपना बक्स खोलने लगी। वह २५ वर्ष की एक गोरी छरहरी स्त्री थी। उसकी कलाई सचमुच चूड़ी पहनाने के लिए ढली थी। पान से लाल पतले पतले ओठ दो तीन वक्रताओं में अपना रहस्य छिपाये हुए थे। उन्हें देखने का मन करता, देखने पर उन सलोने अधरों से कुछ बोलवाने का जी चाहता। बोलने पर हंसने की इच्छा होती और उस हंसी में शैशव का अल्हड़पन, यौवन की तरावट और प्रौढ़ा की सी गंभीरता बिजली के समान लड़ जाती।"[31]

अनुकूलता—कहानी में नियोजित सफल कथोपकथन की एक विशेषता उसकी अनुकूलता भी है। कथोपकथन की आयोजना कहानी में पात्रों के माध्यम से की जाती है। इसलिए उनके द्वारा जो संवाद कहलाये जायं, वे उनके स्वभाव और व्यक्तित्व के अनुकूल होने चाहिए। जो कथोपकथन इस गुण से युक्त होते हैं, वे पात्रों के व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाते हैं। इसके विपरीत इस गुण से रहित संवाद अर्थहीन प्रलाप मात्र प्रतीत होते हैं। चतुरसेन शास्त्री लिखित 'अम्बपालिका' शीर्षक कहानी से इस गुण से युक्त उदाहरण के रूप में लिच्छिवियों और अम्बपाली का कथोपकथन यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'उसने उत्तर दिया, 'मेरे प्रभु! मैंने तथागत और उनके शिष्य वर्ग को भोजन का निमन्त्रण दिया है और वह उन्होंने स्वीकार किया है।'

उन्होंने कहा—'हे अम्बपाली! हमसे एक लाख स्वर्णमुद्रा ले और यह भोजन हमें कराने दे।'

'मेरे प्रभु, यह सम्भव ही नहीं है।'

'तब सौ ग्राम ले और यह निमन्त्रण हमें बेच दे।'

३१. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'आकाशदीप', पृ० १३२।

'नहीं स्वामी। कदापि नहीं।'

'आधा राज्य ले और यह निमन्त्रण हमें दे दे।'

'मेरे प्रभु ! आप एक तुच्छ भूखंड के स्वामी हैं, पर यदि सतत भूमंडल के चक्रवर्ती भी होते और अपना समस्त साम्राज्य भी मुझे देते तो भी मैं ऐसी कीर्ति की जेवनार को नहीं बेच सकती थी।'[३२]

अनुकूलता के गुण से युक्त कथोपकथन का एक उदाहरण पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' लिखित 'उसकी मां' शीर्षक कहानी से यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें एक पुलिस अधिकारी द्वारा एक जांच के सन्दर्भ में कहानी के नायक से वार्तालाप हो रहा है—'उन्होंने पाकेट से डायरी निकाली, डायरी में एक तसवीर. . . 'देखिए इसे, जरा बताइए तो, आप पहचानते हैं इसको ?'

'हां पहचानता तो हूं', जरा सहमते हुए मैंने बताया।

'इसके बारे में मुझे आपसे कुछ पूछना है।'

'पूछिए।'

'इसका नाम क्या है ?'

'लाल ! मैं इसी नाम से बचपन ही से इसे पुकारता आ रहा हूं। मगर यह पुकारने का नाम है। एक नाम कोई और, सो मुझे स्मरण नहीं।'

'कहां रहता है यह ?' सुपरिंटेंडेंट ने पुलिस वाली धूर्त दृष्टि से मेरी ओर देखकर पूछा।

'मेरे बंगले के ठीक सामने एक दो-मंजिला, कच्चा पक्का घर है, उसी में वह रहता है। वह है और उसकी बूढ़ी मां।'[३३]

सम्बद्धता—कहानी में नियोजित कथोपकथन का एक गुण उसकी सम्बद्धता भी है। जैसा कि पीछे उल्लेख किया जा चुका है, कहानी में कथोपकथन के समावेश का एक उद्देश्य कथावस्तु के भावी विकास की सम्भावनाएं उत्पन्न करना है। इस दृष्टि से उसे कहानी के पिछले और आगे आने वाले सूत्र से सम्बद्ध होना चाहिए। साथ ही कहानी के पात्रों एवं उनकी पृष्ठभूमि में व्यक्त परिस्थितियों से भी उसे सम्बद्ध होना चाहिए। सुभद्राकुमारी चौहान की लिखी हुई 'कदम्ब के फूल' शीर्षक कहानी के निम्नलिखित

३२. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, 'धरती और आसमान', पृ० ५४।
३३. श्री पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', 'उग्र की श्रेष्ठ कहानियाँ', पृ० १०।

कथोपकथन में यह विशेषता समाविष्ट मिलती है—'....मां को उदास देखकर वे मां के पास जाकर बैठ गए, प्यार से मां के गले में बाहें डाल दीं, पूछा—'क्यों मां! आज उदास क्यों है? क्या कुछ तबियत खराब है?'

'नहीं, अच्छी है।'

'कुछ तो हुआ है मां। आज तू उदास है।'

अब मांजी से न रहा गया, फूट फूटकर रोने लगीं, बोलीं—'कुछ नहीं, मैं आदमी औरत में लड़ाई नहीं लगवाना चाहती। बस इतना ही कहती हूँ कि अब मैं इस घर में न रह सकूगी, मेरे लिए अलग एक झोपड़ी बनवा दे, वहीं पड़ी रहूँगी। जी में आवे तो खरच देना, नही तो मांगकर खा लूगी।'

'क्यों मां! क्या कुछ झगड़ा हुआ है? सच सच कहना।'[34]

इस प्रकार के कथोपकथन का एक उदाहरण रामचन्द्र तिवारी लिखित 'रक्षिका' शीर्षक कहानी से यहां प्रस्तुत किया जा रहा है जो कथावस्तु के विगत और आगत का सूचक है—'सरला के नयनों मे आंसू थे। पर वह दृढ थी, गंभीर थी। बोली—'आप चिन्ता क्यों करते है? विश्राम कीजिए।'

'मैंने तुम्हारे प्रति अन्याय किया है।'

'पर आपने तो वही किया है जो पुरुष को करना चाहिए था। और इस समय तो मुझे प्रत्यक्ष दीख रहा है कि हमारा यह अप्रत्याशित मिलन आपके इस अकेले पुण्य कार्य के प्रताप से हुआ है। आप चिंतित न हों।'[35]

मार्मिकता—मार्मिकता कहानी के कथोपकथन का एक ऐसा गुण है, जो कहानी की कथावस्तु और पात्र योजना दोनों को ही विशेष रूप से प्रभावपूर्ण बना देता है। मार्मिकता से कथोपकथन करुणोत्पादक भी बन जाते हैं। प्रेमचन्द की लिखी हुई 'रानी सारन्धा' शीर्षक कहानी में शत्रु सैनिकों से घिरे राजा चम्पतराय और रानी सारन्धा का वार्तालाप अत्यन्त मार्मिक है। राजा रानी से अन्तिम याचना करते हैं कि 'अपनी तलवार मेरी छाती में चुभा दो, जिससे शत्रु मुझे अपमानित करते हुए बेड़ियां पहना कर दिल्ली की गलियों में न घुमा सकें।' रानी यह सुनकर हतप्रभ रह जाती है। परन्तु राजा के शरीर का शत्रु द्वारा स्पर्श होने से पहले ही वह कठोर निर्णय

३४. देखिए 'कथाकुंज', भाग १, पृ० ११३, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद।

३५. श्री विनोदशंकर व्यास, 'मधुकरी', खंड ५, पृ० २५।

करके, दामिनी की भांति लपककर अपनी तलवार राजा के हृदय में चुभा देती है। बादशाही सिपाही सारंध्रा का यह साहस और धैर्य देखकर दंग रह जाते हैं। तब सरदार आगे बढ़कर कहता है—'रानी साहिबा, खुदा गवाह है, हम सब आपके गुलाम हैं। आपका जो हुक्म हो, उसे ब सरो चश्म बजा लायेंगे।'

सारंध्रा ने कहा—'अगर हमारे पुत्रों में से कोई जीवित हो, तो ये दोनों लाशें उसे सौंप देना।'

यह कहकर उसने वही तलवार अपने हृदय में चुभा ली। जब वह अचेत होकर धरती पर गिरी, तो उसका सिर राजा चम्पतराय की छाती पर था।"[३६]

मार्मिक कथोपकथन का एक उदाहरण चतुरसेन शास्त्री लिखित 'पत्थर में अंकुर' शीर्षक कहानी से यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें काल-कोठरी में बेड़ी-हथकड़ी में जकड़ा बल्लू छोटी बालिका से वार्तालाप करता है—'बल्लू ने कहा—'लड़की, कल इस समय वे मुझे फांसी पर लटका देंगे, मैं मर जाऊंगा। समझी?' वह फिर एक बार जोर से हंसा। बालिका घबराकर उसकी ओर देखने लगी। उसने देखा, बल्लू की आंखों से झरझर आंसू टपक रहे हैं। पर वह अपने होठों की हँसी को गायब नहीं कर पाता। बालिका ने कहा—'पिता, पिता, मैं ऐसा न होने दूंगी। वे कौन है? नहीं, तुमने कुछ भी नहीं किया है। चलो, अब ऐसा काम न करना, हम लोग घर चल कर खेत बोएंगे। तुमने कहा था न?'

'कहा था बेटी।' बल्लू ने सिर हिलाया। उसने फिर हंसने की चेष्टा की, पर हंस न सका। वह अबकी बार फूट फूटकर रो उठा। वह बारंबार बालिका के हाथ चूमने और 'बेटी-बेटी' पुकारने लगा। इसके बाद उन्मत्त की भांति उसने कहा—'मैंने तेरे माता-पिता और भाई को मारा, तुझे कितना कष्ट दिया। ओफ, नन्हीं बच्ची, तूने माता की भांति मेरा पालन किया, मेरे अत्याचार सहे, तू दया और प्रेम की देवी धन्य है।'—इतना कहकर उसने बारंबार बालिका के हाथ चूमे और उन्हें आंसुओं से भिगो दिया।"[३७]

इस प्रकार से कहानी में नियोजित 'कथोपकथन अथवा संवाद योजना के स्वरूप को कलात्मक बनाने के लिए उसमें कतिपय विशेषताओं की निहिति आवश्यक है।

३६. मुंशी प्रेमचंद, 'मानसरोवर', भाग ६, पृ० ६२।
३७. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, 'धरती और आसमान', पृ० १०२-३।

जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कथोपकथन का सम्बन्ध प्रायः कहानी के अन्य सभी तत्वों से होते हुए भी व्यावहारिक दृष्टिकोण से कथावस्तु तथा चरित्र चित्रण से विशेष घनिष्ठ होता है। संक्षिप्त कथोपकथन कहानी में तात्विक सन्तुलन की दृष्टि से उपयोगी होता है। स्वाभाविकता के गुण का सम्बन्ध पात्रों के चरित्रांकन से है। उपयुक्तता के गुण वाला कथोपकथन कहानी के स्थल विशेष को प्रभावशाली बना सकता है। कथोपकथन के कथा तथा पात्रों के अनुकूल होने पर भी कहानी की प्रभावात्मकता में वृद्धि होती है। पूर्वापर क्रम से सम्बद्ध कथोपकथन कहानी की कथा-सूत्रात्मक संगठनात्मकता को शिथिल नहीं होने देता। मार्मिकता के गुण से युक्त कथोपकथन कहानी को सजीव बना देता है। इस रूप में इन गुणों का समावेश कहानी के कथोपकथन को तत्वगत सम्यक्ता प्रदान करता है।

कथोपकथन का महत्व

कहानी के विविध उपकरणों में से कथावस्तु तथा पात्र योजना तत्वों में पारस्परिक सन्तुलन की दृष्टि से कथोपकथन का विशेष महत्व होता है। देश, काल अथवा वाता-वरण एवं उद्देश्य तत्व की सफल संयोजना में भी कथोपकथन का योग होता है। विभिन्न गुणों से युक्त कथोपकथन संपूर्ण कहानी को प्रभावात्मकता प्रदान कर सकता है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, कथोपकथन मूल रूप से एक नाटकीय तत्व है। इस दृष्टि से इसका शास्त्रीय आधार नाट्य सिद्धान्त ही माने जा सकते हैं। नाटकों के साथ ही आधुनिक युग में एकांकी, रेडियो एकांकी तथा अन्य नाट्य रूपों के माध्यम से इसका विभिन्न रूपात्मक विकास लक्षित होता है। परन्तु नाट्य रूपों में प्रायः अभिनय के माध्यम से ही अनेक संकेत प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जबकि कहानी आदि कथात्मक माध्यमों में वर्णनात्मकता अथवा कथोपकथन के माध्यम से ही ऐसा सम्भव हो पाता है। आरम्भिक युगीन हिन्दी कहानी में जो कथोपकथन मिलते हैं, उनका आधार नाटकीयता तथा भावात्मकता आदि ही हैं, जिनका महत्व नाट्य साहित्य के सन्दर्भ में अपेक्षाकृत अधिक है। द्वितीय विकास कालीन हिन्दी कहानी में यथार्थपरक तत्वों के अधिकता से समावेश के उपरान्त कथोपकथन तत्व के क्षेत्र में विकासशीलता लक्षित होती है। यथार्थवादी कहानियों में सामान्य व्यवहार की भाषा में जो वार्तालाप नियोजन हुआ है, वह ऐतिहासिक कहानियों से सर्वथा भिन्न है। इसी कारण जयशंकर 'प्रसाद' की रचनाओं में जैसे परिष्कृत संवाद साधारण वर्ग के पात्र बोलते हैं, वैसे

यशपाल की यथार्थपरक रचनाओं में अपेक्षाकृत प्रबुद्ध और उच्च वर्ग के पात्र भी कभी नहीं बोलते। उत्तर प्रेमचन्द काल में कथोपकथन के क्षेत्र में नवीन विकासशीलता लक्षित होती है, जिसके फलस्वरूप उसमें न केवल बौद्धिकता, सांकेतिकता, मनो-वैज्ञानिकता तथा सोद्देश्यता आदि के गुण समाविष्ट मिलते हैं, वरन् उसका आपेक्षिक महत्व भी द्योतित होता है।

अध्याय ९

कहानी की भाषा

भाषा का स्वरूप

कहानी का पांचवां मूल उपकरण भाषा है। सामान्य रूप से भाषा ही भावाभिव्यंजना का माध्यम है। एक कहानी में लेखक के अभीष्ट भाव के व्यक्तीकरण के लिए भाषा का उपयुक्त होना आवश्यक है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, कहानी एक हल्की साहित्यिक विधा है। इसलिए कहानी की भाषा का दुरूह होना उसकी भावात्मक प्रवाहशीलता में बाधा उत्पन्न कर देता है। सरल, सहज, मुहावरों और कहावतों से युक्त भाषा कहानी को व्यावहारिक विश्वसनीयता प्रदान करती है। क्लिष्ट भाषा न केवल कहानी को नीरस बना देती है, बल्कि उससे कहानी की प्रभावात्मकता भी नष्ट हो जाती है। निरर्थक शब्द योजना, अकलात्मक शब्दाडम्बर, दुरूह वाक्य-जाल आदि भी कहानी को भाषा तत्व की दृष्टि से हीन बना देते हैं। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार मुंशी प्रेमचन्द ने भाषा के विषय में विचार करते हुए बताया है कि 'भाषा साधन है, साध्य नही, अब हमारी भाषा ने वह रूप प्राप्त कर लिया है कि हम भाषा में आगे बढ़कर भाव की ओर ध्यान दें और इस पर विचार करें कि जिस उद्देश्य से यह निर्माण कार्य आरम्भ किया गया था, वह क्योंकर पूरा हो। वही भाषा, जिसमें आरम्भ में 'बागोबहार' और 'बेताल पचीसी' की रचना ही सबसे बड़ी साहित्य सेवा थी, अब इस योग्य हो गयी है कि उसमें शास्त्र और विज्ञानके प्रश्नों की भी विवेचना की जा सके।'[1] इससे स्पष्ट है कि हिन्दी कहानी में भाषा के क्षेत्र में निरंतर विकासशीलता लक्षित होती है। प्रथम विकास युगीन कहानी में कथावस्तु के अन्य तत्वों की तुलना में विशेष महत्व के कारण यह तत्व अवश्य कुछ उपेक्षित रहा, परन्तु परवर्ती कहानी में इसको सम्यक् महत्व प्रदान किया गया। आगे चलकर कहानीकारों को

१. मुंशी प्रेमचन्द, 'साहित्य का उद्देश्य', पृ० २।

भाषा के व्यावहारिक तथा व्यापक अर्थ का बोध हुआ और तब उन्होंने इसके क्षेत्र में अपेक्षाकृत सजगता का परिचय दिया। इसके अतिरिक्त कहानी में भाषा तत्व का इसलिए भी विशेष महत्व है क्योंकि कहानी का मूल विषय मानव जीवन का चित्रण करता है, और भाषा भी मूलतः मानव समाज की ही एक रचना है। कहानी में जीवन और समाज के विशद चित्रण का आधार पात्र योजना है, जिसकी भावाभिव्यक्ति का आधार भी भाषा ही है।

भाषा का व्याकरणिक पक्ष—व्याकरणिक दृष्टिकोण से भाषा की शुद्धता पर विशेष बल दिया जाता है। बहुधा उत्कृष्ट कोटि के कहानीकार भाषा का व्याकरण-सम्मत प्रयोग नही करते और ऐसी भाषा का व्यवहार करते हैं जो उनके द्वारा सर्जित नवीन शब्द योजना से युक्त होती है। यह शब्द योजना जहां एक ओर उन लेखकों की इस क्षेत्र विशेष में रचनात्मक सामर्थ्य की द्योतक होती है, वहां दूसरी ओर शास्त्रीय नियमों के अनुकूल नही होती। ऐसी स्थिति में भाषा के सैद्धान्तिक स्वरूप और उसकी व्यावहारिक योजना में प्रायः विरोध भी लक्षित होता है। व्याकरण सम्मत भाषा के प्रयोग पर बल देने वाले विचारक इस प्रकार की भाषा की आलोचना करते हैं, क्योंकि उनके विचार से शास्त्रीय नियमों के अनुसार और व्याकरण सम्मत भाषा का प्रयोग श्रेष्ठ साहित्य का प्राथमिक लक्षण है। इसके विपरीत उच्च कोटि के सर्जनात्मक लेखक स्वयं को इस नियम का अपवाद मानते हैं। कभी कभी स्थानीय प्रयोगों का परिचय देने के आग्रह विशेष के कारण भी प्रायः व्याकरणिक दृष्टि से अमान्य भाषा का प्रयोग हो जाता है।

भाषा का सैद्धान्तिक पक्ष--सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी की भाषा में सम्यक् सन्तुलन होना आवश्यक है। इस रूप मे सफल भाषा वही कही जायगी, जो कहानी की आधारभूत कथावस्तु, पात्र योजना, शैली तथा वातावरण आदि के अनुरूप हो। एक कथात्मक माध्यम होने के कारण कहानी की भाषा में सरलता और स्वाभाविकता होनी चाहिए, अन्यथा वह कृत्रिम प्रतीत होगी। जिस प्रदेश को आधार बनाकर कहानी की कथावस्तु का संयोजन किया जाय, उसमें प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से भी भाषा मे प्रवाहशीलता और सजीवता आती है। कहानी में छोटे वाक्य, सरल शब्द एवं संक्षिप्त वर्णन होने चाहिए। पात्रों और प्रसंगों के अनुसार भाषा के स्वरूप मे भी परिवर्तन होने से उसकी स्वाभाविकता में वृद्धि हो जाती है।

भाषागत व्यावहारिक समस्याएँ--व्यावहारिक दृष्टिकोण से कहानी के क्षेत्र

में भाषागत कतिपय व्यावहारिक समस्याएँ विद्यमान हैं। वस्तुतः भाषा मनुष्य की मनोभावनाओं की अभिव्यंजना का एक मानसिक साधन है। कहानी में आयोजित पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने के साथ साथ कहानी में अन्य तत्वों के प्रस्तुतीकरण के लिए भी भाषा ही एकमात्र माध्यम है, क्योंकि कहानी में अभिनयात्मक माध्यमों की भांति संकेत अथवा प्रदर्शन के द्वारा भावाभिव्यंजना सम्भव नहीं है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से एक कहानीकार से यह अपेक्षा की जाती है कि वह व्याकरण शास्त्र की दृष्टि से शुद्ध और निर्दोष भाषा का प्रयोग करेगा। व्यावहारिक दृष्टिकोण से उसके सामने तब कठिनाई उपस्थित हो जाती है जब वह किसी पात्र की चारित्रिक विवृति के सन्दर्भ मे अपेक्षाकृत भिन्न भाषा का प्रयोग करता है। यह भाषा नियम तथा प्रयोग की दृष्टि से प्रायः अशुद्ध भी होती है। इसके अतिरिक्त भाषा प्रयोग के क्षेत्र में व्यावहारिक दृष्टिकोण से एक अन्य कठिनाई तब उपस्थित होती है, जब कहानीकार एक ही रचना में विविध वर्गीय, विभिन्न भाषा-भाषी पात्रों का नियोजन करता है। तब भी भाषा की एकरूपात्मकता के निर्वाह में बाधा आती है। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा पौराणिक विषय वस्तु पर आधारित कहानियों में भी विविध तत्वों के क्षेत्र में भाषा की दृष्टि से व्यावहारिक समस्या उपस्थित रहती है। हिन्दी में प्रेमचन्द ही सम्भवतः एकमात्र ऐसे कहानी लेखक कहे जा सकते हैं, जिन्होंने कथा-वस्तु तथा पात्र योजना के बहुरूपी होते हुए भी भाषा के क्षेत्र में सफल संयोजना का परिचय दिया है।

भाषा का स्वरूपात्मक विकास

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में भाषा तत्व के स्वरूपात्मक विकास का विश्लेषण करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि आरम्भिक युगीन कहानी में भाषा तत्व का यथार्थ महत्व लेखकों द्वारा नहीं समझा गया। इसीलिए इस काल की कहानी में भाषा तत्व की उपेक्षा मिलती है। इस युग के कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह एक प्रकार की मिश्रित भाषा है, जिसकी शब्द योजना में सन्तुलन का अभाव है। भाषा क्षेत्रीय अप्रौढ और अविकसित स्थिति भी इस असन्तुलन का एक कारण है। इसके अतिरिक्त इस युग में भाषा का समुचित विकास इसलिए भी नहीं हो सका कि कहानी लेखकों ने केवल कथावस्तु को ही अपनी रचनाओं में केन्द्रीय महत्व का उपकरण मान्य किया। खड़ी बोली के सम्यक् रूप निर्धारण तथा स्थिरीकरण के उपरान्त इस काल में भाषा तत्व के विकास की सम्भावनाएँ सामने आयीं।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी में यदि मध्ययुगीन 'किस्सों' की भाषा पर विचार किया जाय, तो यह ज्ञात होगा कि इनमें प्रायः अरबी, फारसी तथा उर्दू की शब्दावली अधिक मिलती है। उदाहरण के लिए यहां 'किस्सा गुल बकावली' की भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसकी रचना शेख इज्जतुल्लाह बंगाली ने ११२४ हिजरी में मूलतः फारसी भाषा में की थी और जिसका हिन्दी अनुवाद लार्ड वेलेजली के शासन काल में हुआ था—'चुनांचः इस नहीफ़ ने बमूजिब इर्शाद फ़ैज बुनियाद के मुवाफ़िक़ साहब फलातून फिननत शिकोह आली हशमत फलक इश्तवाह मारक्विस वलजली नौव्वाब गवर्नर जनरल बहादुर दाम इकबालहू के अहद में हिन्दी में तरजुमा किया और नाम इसका 'मजहब इश्क' रखा हरएक सगुन रस और नुक्तः दां सुबह नफ़स से यह उम्मेद है कि जहां कही मैदान इबारत में नशेब फ़राज देखें जहाँ इसलाह की क़लम से हमवार करदें और इस हैच मदा को अपनी नवाजिश से ममनून फरमावें।'[2]

'किस्सा गुलबकावली' के अतिरिक्त हिन्दी में 'किस्सा शारूम', 'किस्सा सौदागर बच्चा', 'किस्सा तोता मैना', 'किस्सा गुलाब केवड़ा', 'किस्सा चम्पा चमेली' तथा 'किस्सा चहारदरवेश' आदि रचनाएं भी पूर्व युगीन कथा साहित्य में लोकप्रिय रही हैं। इनमें से 'किस्सा चहारदरवेश' रुग्ण सुलतान को स्वास्थ्य लाभ कराने के उद्देश्य से मूल फारसी में अमीर खुसरो देहलवी ने लिखा था। इसका उर्दू अनुवाद जान गिलक्राइस्ट के आदेश से सन् १८०१ में मीर अमल दिल्ली वाले ने किया, तथा सन् १८४७ ई० में लक्ष्मीनारायण पंडित ने इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया। इसकी भाषा में भी अरबी, फ़ारसी तथा उर्दू के शब्दों की अधिकता है, जो हिन्दी भाषा के समकालीन स्वरूप का बोध कराती है—'. . .एक उन आज़ादों में बोला कि ऐ यारान।हम दर्द और रफ़ीकान जहां गर्द हम चारों सूरतें आसमान की गर्दिश से और दिन रात के इनक़लाब से दरबदर खाक बसर एक मुद्दत फिरें अलहम्द लिल्ला कि तालअ की मदद और किस्मत यावरी से आज इस मकान पर बाहम मुलाकात हुई और कल का हाल कुछ मालूम नहीं कि क्या पेश आवें एक गुमट रहें या जुदा हो जावें रात बड़ी पहाड़ हो जाती है अभी से पड़ पड़ रहना खूब नहीं इससे यह बहतर है कि अपनी अपनी

२. दे० शेख इज्जतउल्लाह बंगाली द्वारा रचित 'किस्सा गुल बकावली' का गदाधर प्रसाद बुकसेलर, काशी द्वारा प्रकाशित अनुवाद, पृ० ५।

कर गुज़रान जो इस दुनियां में जिस पर बीती हो बयानले कि झूठ इसमें कौड़ी भर न हो बयान करें तो बातों में रात कट जाय जब थोड़ी सी शब बाकी रहे तब लोट पोट रहेंगे सबों ने कहा या हादी जो कुछ इरशाद होता है हमने क़बूल किया पहले आप ही अपना हाल जो गुज़रा शुरू कीजिये तो हम भी मुस्तफ़ीद होवें।"[3]

उन्नीसवीं शताब्दी में प्रयुक्त हिन्दी भाषा के कथात्मक स्वरूप का परिचय 'बेताल पच्चीसी' नामक कृति से भी मिलता है। इसमें पच्चीस कहानियां संगृहीत हैं, जिनकी जादू और तिलस्मी कथावस्तु अलौकिक तत्वों से परिपूर्ण है। यह ग्रन्थ चूंकि मूल फ़ारसी आदि के स्थान पर मूल संस्कृत से अनूदित किया गया था, अतः इसकी भाषा उपर्युक्त कथा-ग्रन्थों की भाषा से भिन्न है। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है—'धारा नगर नामक एक शहर वहां का राजा गंधर्वसेन, उसकी चार रानियां थी। उनके छै बेटे थे एक में एक पंडित और जोरावर था। कज़ाकार बअद चन्द रोज़ के वह राजा मर गया और उसकी जगह बड़ा बेटा शेख नाम राजा हुआ। फिर कितने दिनों के पीछे उसका छोटा भाई विक्रम बड़े भाई को मार कर आप राजा हुआ और बखूबी राज करने लगा!"[4]

उन्नीसवीं शताब्दी में ठेठ हिन्दी भाषा में लिखी गयी प्रसिद्ध रचना इंशाअल्ला खां लिखित 'रानी केतकी की कहानी' है। इसमें लेखक ने भाषा तत्व की आयोजना के क्षेत्र में विशेष सजगता दिखायी है और यथासम्भव अन्य भाषाओं के शब्द प्रयोग की उपेक्षा की है। इस कहानी की भाषा का एक उदाहरण इस प्रकार है—'इस बात पर पानी डाल दो नहीं तो पछताओगी और अपना किया पाओगी। मुझसे कुछ न हो सकेगा। तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती तो मेरे मुंह से जीते-जी न निकलती, पर यह बात मेरे पेट में नहीं पच सकती। तुम अभी अल्हड़ हो, तुमने अभी कुछ देखा नहीं! जो ऐसी बात पर सचमुच ढलाव देखूंगी तो तुम्हारे बाप से कहकर वह भभूत जो वह मुआ निगोड़ा भूत, मुछंदर का पूत अवधूत दे गया है, हाथ मुरवाकर छिनवा लूंगी।"[5]

३. दे० 'किस्सा चहारदरवेश' का हिन्दी अनुवाद।

४. दे० 'बैताल पच्चीसी', प्र० रामनारायणलाल, इलाहाबाद, पृ० १।

५. इंशाअल्ला खां, 'रानी केतकी की कहानी', प्र० नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

पूर्व भारतेन्दु युग में लल्लूलाल ने जिन कथात्मक रचनाओं का संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किया है, उनमें अधिकांशतः ब्रज भाषा का बाहुल्य मिलता है। सन् १८६९ में उन्होंने संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हितोपदेश' के आधार पर 'राजनीति' शीर्षक पुस्तक का प्रणयन हिन्दी में किया था। इसमें उपदेशप्रधान नीतिपरक कथाएं हैं, जिनमें कौतूहल, रोमांच और कल्पना तत्वों की प्रधानता है। इसके भाषा रूप का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'काहू समय श्री नारायण पंडित ने नीति शास्त्रनिते कथानिका संग्रह करि संस्कृत में एक ग्रन्थ बनाय वाको नाम हितोपदेश धर्यो सो अब श्रीयुत महाराजाधिराज परम सुजान सब गुणवान भगवान कृपानिधान मारविक्स बलिस्ली गवर्नर जनरल महाबली के राज में औ श्री महाराज गुणवान अति जानाजान गिलक्रस्त प्रतापी की आज्ञा सों सम्वत् १८५९ में श्री लल्लूलाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अबदीच आगरे वारे ने वाको आशय ले ब्रजभाषा करि नाम राजनीति राख्यो।'[६]

भारतेन्दु युगीन हिन्दी कहानी में अधिकांश लेखकों द्वारा खड़ी बोली का व्यवहार अधिकता से हुआ है। इस युग में भी यद्यपि संस्कृत, उर्दू तथा अंग्रेजी के शब्दों का यत्र तत्र प्रयोग विभिन्न रचनाओं में मिलता है, परन्तु यह भाषा के रूपगत वैविध्य का द्योतक है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी रचनाओं मे व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया है। इस युग के अन्य लेखकों में राधाचरण गोस्वामी, किशोरीलाल गोस्वामी, रामचंद्र शुक्ल तथा केशवप्रसाद सिंह आदि ने जो भाषा व्यवहृत की है, उसमें संस्कृत के शब्दों की अधिकता है। गिरिजादत्त वाजपेयी, यशोदानन्दन अखौरी, सूर्यनारायण दीक्षित, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, लक्ष्मीधर वाजपेयी तथा सत्यदेव आदि कहानी लेखकों ने भी अपनी भाषा में संस्कृत के शब्दों को बहुलता पूर्वक स्थान दिया है। महेन्द्रलाल गर्ग, कुंदनलाल शाह तथा रुद्रदत्त भट्ट आदि ने भाषा की संस्कृत निष्ठता पर विशेष बल न देते हुए भी इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा है कि उसमें अरबी, फारसी तथा उर्दू के अधिक शब्द न आयें। भारतेन्दु युग में लिखी गयी हिन्दी कहानी का खड़ी बोली-प्रधान भाषारूप निर्मित और स्थिर करने का श्रेय इन्हीं कहानीकारों को है।

प्रेमचन्द युग से हिन्दी कहानी के क्षेत्र में भाषा तत्व का सम्यक् विकास हुआ। इस काल में स्वयं मुंशी प्रेमचन्द की भाषा में सर्वाधिक क्षेत्रीय विस्तार मिलता है।

६. लल्लूलाल, 'राजनीति', प्र० नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, पृ० १।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय देने के पूर्व प्रेमचन्द उर्दू के क्षेत्र में साहित्य लेखन करते थे। फलतः उनकी रचनाओं में उर्दू शब्दावली-प्रधान हिन्दी का प्रौढ़ और परिमार्जित स्वरूप उपलब्ध होता है। प्रेमचन्द ने उर्दू भाषी पात्रों द्वारा इस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है, वहां तो यह सर्वथा स्वाभाविक लगती ही है, अन्य सन्दर्भों में भी यह सरलता और व्यावहारिकता युक्त प्रतीत होती है। पात्रों के अनुकूल होने के साथ साथ प्रेमचन्द की भाषा ग्राम्य विशेषताओं से युक्त है। प्रेमचन्द साहित्य में एक बड़ी संख्या ग्रामीण कथात्मक वातावरण प्रधान कहानियों की है। इनमें स्थानीय प्रयोगों, लोकोक्तियों तथा मुहावरों आदि का बहुलता से समावेश मिलता है। कथा के मार्मिक स्थलों पर प्रेमचन्द की भाषा काव्यमयी हो जाती है। पात्रों की विविध मनःस्थितियों का परिचय देने में प्रेमचन्द ने भावात्मक भाषा का प्रयोग किया है। ईसाई पात्रों द्वारा तथा अन्य सुशिक्षित वर्ग के चरित्रों द्वारा प्रेमचन्द ने अंग्रेजी शब्दावलीप्रधान हिन्दी का प्रयोग किया है। अनुभूति-प्रधान चित्रों की अभिव्यंजना करने के लिए प्रेमचन्द ने संस्कृतप्रधान भाषा का प्रयोग किया है, जो कही कही पर थोड़ी क्लिष्ट अवश्य हो गयी है, परन्तु तत्वगत समृद्धि और प्रभावात्मकता की दृष्टि से अपने उत्कृष्ट स्वरूप का बोध कराने में समर्थ है।

इस युग के अन्य कहानीकारों की भाषा में भी पर्याप्त वैविध्य लक्षित होता है। प्रेमचन्द की भांति ही इस काल के अनेक कहानीकार उर्दू अथवा पंजाबी, सिंधी आदि भाषाओं के क्षेत्र से हिन्दी में आने के कारण अपने साथ प्रादेशिक भाषाओं की विशेषताएं लाये थे। इन कहानीकारों ने जिस भाषा का प्रयोग किया, वह कही तो विशुद्ध खड़ी बोली है और कही पर प्रसंग अथवा पात्रों के अनुसार क्षेत्रीय विशेषताओं से युक्त रूप में मिलती है। सैद्धान्तिक दृष्टि से यद्यपि एक कहानीकार से भाषा सम्बन्धी शास्त्रीय नियमों के निर्वाह की आशा की जाती है, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से उसे इस क्षेत्र में पर्याप्त स्वतंत्रता भी रहती है। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', जयशंकर 'प्रसाद', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा जैनेन्द्र कुमार आदि कहानी लेखकों की भाषा में संस्कृत, उर्दू तथा अंग्रेजी आदि के यत्र तत्र शब्द प्रयोग के साथ प्रादेशिक भाषाओं की विशेषताए भी निहित हैं।

प्रेमचन्दोत्तर कालीन कहानी में पूर्व युगीन सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के साथ ही बौद्धिक प्रवृत्ति का भी समावेश हो जाने के

कारण भाषा के क्षेत्र में भी नवीन सम्भावनाएं जनमीं। इस युग के जिन लेखकों ने प्रेमचन्द की आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा का अनुगमन किया, उनकी रचनाओं में भाषा का सामान्य व्यवहार अथवा बोलचाल वाला रूप ही उपलब्ध होता है। संस्कृतनिष्ठ भाषा के भी अनेक उदाहरण उनकी रचनाओं में उपलब्ध होते हैं। अंग्रेजी तथा उर्दू की शब्दावली का इनकी भाषा में आधिक्य नहीं है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी, 'सुदर्शन', राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, उषादेवी मित्रा, शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा सियाराम शरण गुप्त आदि लेखक इसी वर्ग के हैं। प्रादेशिक विशेषताओं तथा स्थानीय प्रयोगों के वैशिष्ट्य युक्त भाषा का व्यवहार करने वाले कहानीकारों में डा० वृन्दावनलाल वर्मा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा चन्द्रगुप्त विद्यालंकार आदि प्रमुख हैं। भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' आदि की कहानियों में प्रबुद्ध भाषा का प्रयोग मिलता है, जो परिष्कार युक्त है। राय कृष्णदास तथा कमलाकान्त वर्मा ने अपनी कहानियों में मुख्यतः संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है, जो विषय की प्रतीकात्मकता के कारण औचित्यपूर्ण कही जा सकती है।

स्वातंत्र्योत्तर युग में लिखी गयी हिन्दी कहानी में भाषा-क्षेत्रीय प्रयोगात्मकता की बहुलता के कारण उसके अनेक रूप उपलब्ध होते हैं। सामान्य व्यवहार की भाषा के अति सरल रूपों की गहन परिणति इस काल की कहानियों की एक उल्लेखनीय विशेषता है। इस युग में पूर्ववर्ती काल की सभी प्रवृत्तियों का सम्यक् विकास हुआ। आधुनिक जीवन में बढ़ती हुई यांत्रिकता तथा ह्रासोन्मुख मानवीयता का विविध रूपी अंकन स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों ने किया। अमृतलाल नागर तथा राधाकृष्ण जैसे लेखकों ने व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग अपनी कहानियों मे किया है। रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी', सत्यजीवन वर्मा 'भारतीय' तथा विष्णु प्रभाकर आदि कहानीकारों ने प्रायः परम्परागत भाषारूप का ही प्रयोग किया है, जिसमें आदर्शपरक भावनाओं का निरूपण है। अमृत राय, बलवन्त सिंह तथा मोहन राकेश की कहानियां यथार्थात्मक हैं, जिनमें बोलचाल की व्यावहारिक भाषा प्रयुक्त हुई है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' आदि कहानीकारों ने अपनी आंचलिक कहानियों में ग्राम्य भाषा का प्रयोग किया है, जो स्थानीय विशेषताओं से युक्त है। इस प्रकार से इस युग के कहानी साहित्य में भाषा के परम्परागत तथा नवीन स्वरूप उपलब्ध होते हैं जो इस तत्व के क्षेत्र में विकासशीलता के द्योतक हैं।

भाषा के गुण

कहानी एक गद्य साहित्यिक माध्यम है। इसलिए इसकी भाषा में सैद्धान्तिक रूप से उन गुणों के समावेश पर बल नहीं दिया जाता, जिन पर पद्यात्मक माध्यमों में दिया जाता है। परन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से कहानी की भाषा में भी प्रवाहात्मकता, भावात्मकता, आलंकारिकता तथा चित्रात्मकता आदि गुण विद्यमान मिलते हैं। काव्य की भांति ही कहानी मे भी विभिन्न प्रसंगों के अनुसार कोमल अनुभूतियों, मधुर भावनाओं एवं विशुद्ध सौंदर्य के मानवीय तथा प्रकृति-चित्र भाषाबद्ध किये जाते हैं। इसीलिए कहानी की भाषा में भी ये विशेषताएँ समाविष्ट हो जाती हैं। यहां पर कहानी की भाषा की इन्ही विशेषताओं की संक्षिप्त परिचयात्मक व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है, जिसमें प्रवाहात्मकता, आलंकारिकता, चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता, व्यंग्यात्मकता, नाटकीयता तथा भावात्मकता प्रमुख हैं।

प्रवाहात्मकता—कहानी की भाषा का एक गुण उसकी प्रवाहात्मकता भी है। यह गुण उन कहानियों मे अपेक्षाकृत अधिक मिलता है, जो वर्णनात्मक शैली में लिखी जाती हैं। किसी प्रसंग, घटना अथवा दृश्य के वर्णन में भी भाषागत यह विशेषता दृष्टिगत होती है। अमृतलाल नागर लिखित 'बम्बई फाक्स, शीर्षक कहानी से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें नागरिक भाषा का स्थानीय और वैयक्तिक विशेषताओं से युक्त प्रवाहात्मक रूप प्रयुक्त हुआ है—'हम गये भैयो, भौत दिनों की बात है। मैं जानू कोई चालीस बरसें तो हो गई होंगी।... हाँ, मेरा यार चौबे जी भी साथ था। चले साब घर से। तो जो जाके टिकट लीना है भैयो, कि ऐसी भीड़ें, ऐसी भीड़े, कि रेल का डिब्बा ही न खुले। मैंने कही चौबे जी, यार यह तो मामला खुसकैट है। बम्बई तक का सफर, कैसे चलोगे? भइयो रे, चौबे जी तो, अरे कुछ पूछो मती, मेरा सेर गेंडे की तरह से लपका। बिन्ने कही, अरे क्या खुसकैंटी मचा रक्खी है। देख बे डब्बा का डब्बा न साफ कर दूं, तो मेरा नाम नहीं।'[७]

प्रवाहात्मकता के गुण से युक्त भाषा का एक उदाहरण सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'भक्त और भगवान' शीर्षक कहानी से भी यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें प्रकृति के रूप का प्रवाहमयी भाषा में अंकन हुआ है—'आकाश की नीली लता

७. श्री अमृतलाल नागर, 'सेठ बांकेमल', पृ० १।

में सूर्य, चंद्र और ताराओं के फूल हाथ जोड़े खिले हुए एक अज्ञात शक्ति के समीर से हिल रहे हैं, पृथ्वी की लता पर आवर्तों के फूल हाथ जोड़े आकाश को नमस्कार कर रहे हैं, आशीर्वाद की शुभ हिमधारा उन पर प्रवाहित है, समुद्रों की फैली लताओं में आवर्तों के फूल खिले हुए अज्ञात किसी पर चढ़ रहे है, डाल डाल की बांहें अज्ञात की ओर पुष्प बढ़ाये हुए हैं। तृण तृण पूजा के रूप और रूपक हैं।....'[८]

आलंकारिकता--भाषा का एक गुण आलंकारिकता भी है। इस गुण से युक्त भाषा का प्रयोग भारतेन्दु युग से ही मिलता है। वर्तमान युगीन कहानियों में यह भाषा-रूप अधिकता से नही मिलता है। भाषातत्वगत विकास की दृष्टि से भी यह परम्परागत दृष्टिकोण का परिचायक है। चंडीप्रसाद 'हृदयेश' लिखित 'प्रणय परिपाटी' शीर्षक कहानी से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'कुसुम में कंटक, कलाधर में कलंक, हीरक में हलाहल, विद्युत् में दम्भ, मंदाकिनी में मकर, इसी प्रकार संसार की समस्त सौन्दर्यमयी वस्तुओं में विपरीत तत्व का सम्मिश्रण होता है। प्रजापति और कवि की सृष्टि मे इस प्रकार के अनंत उदाहरणों की कमी नही। उदाहरण क्यों? यदि विचारपूर्वक सूक्ष्म दृष्टि से देखें, तो इस महान् नियम का परिचय हमें प्रत्येक वस्तु में परिलक्षित होगा।'[९]

चित्रात्मकता—सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी की भाषा का एक गुण उसकी चित्रात्मकता भी है। यह गुण प्रायः प्राकृतिक दृश्यों अथवा अनुभूत्यात्मक प्रसंगों के सन्दर्भ में विशेष रूप से भाषा में समाविष्ट होता है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार लिखित 'गुलाब' शीर्षक कहानी से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण यहा प्रस्तुत किया जा रहा है—'श्रीनगर से जो सडक शाही चश्मे की तरफ गई है, वह टेढ़ी मेढ़ी होकर एक सुन्दर पहाडी के दामन में इस तरह लेटी हुई है, जैसे महादेव की जटा में साप लिपटा हुआ हो। सड़क के आसपास ज्यादा आबादी नही है। सिर्फ चिनार और सफेदे के घने वृक्षों की छाया में कही कही कश्मीरी किसानों के पांच-पाच, सात-सात लकड़ी के दुमंजिले मकान है। सड़क रात के समय बिल्कुल सुनसान पड़ी रहती है। दिन में मौके-बे-मौके भोंपो-भोंपो करती हुई मोटर या लारी तेजी से इस सड़क पर से निकल जाती है। किसी किसी समय लकड़ी के भारी पहियों की सुस्त चुरमुराहट के साथ

८. श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', 'देवी', पृ० २६।
९. श्री चंडीप्रसाद 'हृदयेश', 'नन्दन निकुंज', पृ० ४८।

मस्त और बेफिक्र आवाज में गाते हुए गाड़ीवानों की आवाज भी इस मार्ग के सन्नाटे को भंग करती है।"[10]

चित्रात्मक भाषा का एक अन्य उदाहरण सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'मंसो' शीर्षक कहानी से यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जो संध्याकालीन वातावरण का सफल रेखांकन करता है—'सांझ घिरती आ रही थी। पर्वत श्रृंगों से घिरे हुए उस बड़े प्याले में, जिसमें पहाड़ी झरना बहता था, अन्धकार भर गया था और बढ़ रहा था। केवल ऊंची चोटियों पर कहीं कहीं एक रक्तिम सा प्रकाश था, जो शीघ्र उस बढ़ते हुए सजीव अन्धकार में घुलता सा जा रहा था। प्रकृति मानो थक कर सोने की तैयारी कर रही थी, केवल उसकी सांस की तरह चीड़ों में वायु की सरसर ध्वनि अनवरत होती जा रही थी।"[11]

प्रतीकात्मकता—कहानी की भाषा का एक गुण उसकी प्रतीकात्मकता भी है। यह गुण स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानी की भाषा में अपेक्षाकृत अधिकता से समाविष्ट हुआ है। इस काल में कहानी के क्षेत्र में बौद्धिकता की प्रवृत्ति के विकास के साथ ही उसकी भाषा में प्रतीकात्मकता की भी निहिति मिलती है। डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'संस्कारों की दूरी' शीर्षक कहानी से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है-—'मुझे अपनी आंखों के सामने एक मटमैला बिन्दु चमकता लगता है। एक छोटा सा गोल धब्बा, धीरे धीरे टिमटिमाता। ऐसा मालूम होता है कि दूर दूर चमकता हुआ, रह रहकर वह क्रमशः निकट आने लगता है, पास, बहुत पास। मैं उससे टकरा जाता हूँ, उसमें खो जाता हूँ..."[12]

व्यंग्यात्मकता—कहानी की भाषा का एक गुण उसकी व्यंग्यात्मकता भी है। यह गुण प्रायः उन कहानियों की भाषा में मिलता है जो हास्य-व्यंग्य प्रधान होती हैं। इस प्रकार की भाषा भारतेन्दु युग से ही उपलब्ध होती है, यद्यपि इसका सम्यक् विकास प्रेमचन्द युग में हुआ है। मुंशी प्रेमचन्द लिखित 'आंसुओं की होली' शीर्षक कहानी से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'नामों को बिगाड़ने की प्रथा न जाने कब चली और कहां शुरू हुई। पंडितजी का नाम तो

१०. श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, 'तीन दिन', पृ० ४४।
११. श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', 'परम्परा', पृ० ४२।
१२. दे० 'लहर', मार्च १९६५, पृ० ५७।

श्रीविलास था, पर मित्र लोग सिलबिल कहा करते थे। नामों का असर चरित्र पर कुछ न कुछ पड़ जाता है। बेचारे सिलबिल सचमुच ही सिलबिल थे। दफ्तर जा रहे है, मगर पायजामे का इजारबंद नीचे लटक रहा है, सिर पर फेल्ट कैप है, मगर लम्बी सी चुटिया पीछे झांक रही है। अचकन तो बहुत सुन्दर है, कपड़ा फ़ैशनेबल, सिलाई अच्छी, मगर जरा नीची हो गयी है। न जाने उन्हें व्यवहारों सेक्या चिढ़ थी।'[१३]

व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग उन कहानियों में भी मिलता है, जिनमें आधुनिक युगीन किसी सामाजिक समस्या को उठाया जाता है। उदाहरण के लिए सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' शीर्षक कहानी से एक उद्धरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें हास्य की उद्‌भावना के स्थान पर यथार्थ के प्रति कटु व्यंग्य भावना की प्रधानता है—'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी श्रीमान् पं० गजानन्द शास्त्री की धर्मपत्नी हैं। श्रीमान् शास्त्री जी ने आपके साथ यह चौथी शादी की है, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी के पिता को षोडशी कन्या के लिए पैंतालीस साल का वर बुरा नही लगा, धर्म की रक्षा के लिए। वैद्य का पेशा अख्तियार किये शास्त्री जी ने युवती पत्नी के आने के साथ शास्त्रिणी का साइनबोर्ड टांगा, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी उतनी ही उम्र में गहन पातिव्रत्य पर अविराम लेखनी चालन कर चली, धर्म की रक्षा के लिए।'[१४]

नाटकीयता—कहानी की भाषा का एक गुण उसकी नाटकीयता भी है। इस प्रकार की भाषा भी हिन्दी कहानी के सभी विकास युगों में मिलती है। आधुनिक युग मे मनोविज्ञान तथा दर्शन आदि का आधार ग्रहण करके जो कहानियां लिखी गयी हैं, उनमें भी इसी प्रकार की भाषा दृष्टिगत होती है। उदाहरण के लिए यहां जैनेन्द्र कुमार लिखित 'प्रण परिणाम' शीर्षक कहानी का एक अंश प्रस्तुत किया जा रहा है, जो ऐसी भाषा का प्रतिनिधि रूप कहा जा सकता है—'यह क्या? नहीं, यह नही हो सकता। पर तार सामने है। अखबार में भी खबर है, मदन ने रेल के नीचे आकर जान दे दी।...जी मानना नही चाहता। इनकार करना चाहता है उसको जिसे विधाता कहते हैं, विधान कहते हैं। पर विद्रोह भीतर कितना ही हो, बाहर की

१३. मुंशी प्रेमचन्द, 'मानसरोवर', भाग ५, पृ० १६६।
१४. श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', 'देवी', पृ० ९६।

घटना अघट हो नहीं पाती और बस यही है कि मान लिया जाय कि मोहन नहीं रहा, नहीं है, नहीं होगा।"[15]

भावात्मकता—कहानी की भाषा का एक गुण उसकी भावात्मकता भी है। इस गुण से युक्त भाषा का प्रयोग करुणाजनक प्रसंगों के सन्दर्भ में अपेक्षाकृत अधिक मिलता है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी लिखित 'सूखी लकड़ी' शीर्षक कहानी से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है —'गंगा तट पर कुछ झोपड़े हैं। बांस-टट्टरों के इनके दरवाजे, बहुत कम ऊंची, मिट्टी की दीवारों पर, साधारण से दालान की छतें और कहीं कहीं छप्पर, पावस में जब पानी चढ़ आता है, तब ये झोपड़े दो ही चार दिनों में उजड़ जाते हैं। इनके अन्तर से नावें चलने लगती हैं। छप्पर और टट्टर तो उठा लिये जाते है किन्तु छतें और दीवारें ? वे जल धारा की अनुगामिनी बनती हैं, उसमें आत्मसात् हो जाती हैं। फलत: जहां मनुष्य और उसकी कामना हंसती खेलती है वहां बात की बात में अनन्त जल प्लावन देख पड़ता है। उसमें नाना प्रकार के जलजन्तु लहराने लगते है। कार्तिकी पूर्णिमा के बाद उसी जाह्नवी कूल पर वे झोपड़े फिर से बस जाते हैं। मालूम नही, कितने दिन से, यही क्रम चला आ रहा है।"[16]

प्रेमचन्द की लिखी हुई 'कामना तरु' शीर्षक कहानी से भावात्मक भाषा का एक अन्य उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जो इस भाषा रूप का अपेक्षाकृत प्रतिनिधि उद्धरण कहा जा सकता है—'आह ! एक युग बीत गया, शोक और नैराश्य ने उठती जवानी को कुचल दिया। न आँखों में ज्योति रही, न पैरों में शक्ति, जीवन क्या था एक दुखदायी स्वप्न था। उस सघन अंधकार में उसे कुछ न सूझता था। बस, जीवन का आधार एक अभिलाषा थी, एक सुखद स्वप्न, जो न जाने उसने जीवन में कब देखा था। वही नदी का किनारा, वही वृक्षों की कुंज, वही चंदा का छोटा सा घर।'[17]

इस प्रकार से उपर्युक्त गुणों के समावेश से कहानी की भाषा कलात्मक और परिष्कृत हो जाती है। प्रवाहात्मक भाषा कहानी को विश्वसनीयता प्रदान करती है। आलंकारिकता से युक्त होने पर उसके सौन्दर्य की वृद्धि हो जाती है। चित्रात्मक

१५. श्री जैनेन्द्र कुमार, 'जैनेन्द्र की कहानियाँ', भाग ९, पृ० ३१।
१६. श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, 'पुष्करिणी', पृ० २१५-१६।
१७. मुंशी प्रेमचन्द, 'मानसरोवर', भाग ५, पृ० ६५।

भाषा में प्रस्तुत कथाप्रसंग अनुभूत्यात्मक दृष्टि से विशेष सफल बन पड़ते हैं। प्रतीकात्मक भाषा कहानी के अपेक्षाकृत समुन्नत स्वरूप की द्योतक होती है। हास्य-व्यंग्य-प्रधान कहानियों में भाषागत व्यंग्यात्मकता औचित्यपूर्ण होती है। नाटकीयता के गुण से युक्त भाषा जहाँ एक ओर कहानी के परम्परागत स्वरूप की परिचायक होती है, वहाँ दूसरी ओर उसका समावेश आधुनिक युग में दार्शनिक-आध्यात्मिक विषयों पर लिखी गयी कहानियों में भी किया जाता है। भावात्मक भाषा कथात्मक पृष्ठभूमि में चरित्र विकास की दृष्टि से उपयोगी होती है।

कहानी की भाषा के विविध रूप

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में विभिन्न विकास युगों के अन्तर्गत भाषा के स्वरूप का पर्यवेक्षण करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि उसमें पर्याप्त वैविध्य है। भाषा के अनेक रूपों का प्रयोग कहानीकारों द्वारा किया गया है, जो भाषाक्षेत्रीय विस्तार का भी द्योतक है। विभिन्न ऐतिहासिक युगों में पृथक् पृथक् भाषा बोलने वाली जातियों द्वारा हमारे देश पर शासन होने के फलस्वरूप उनकी शब्दावली का बाहुल्य हिन्दी में होना स्वाभाविक है। उर्दू, फारसी, अरबी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी तथा पुर्तगाली आदि भाषाओं के शब्दों का हिन्दी में प्रयोग होने का मुख्य कारण उपर्युक्त ही है। इसी प्रकार से भारत की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में शब्द समन्वय होता रहा है। मुंशी प्रेमचन्द ने हिन्दी भाषा के इस मिश्रित स्वरूप पर विचार करते हुए हिन्दी-प्रचार सभा, मद्रास के चौथे वार्षिक अधिवेशन में सभापति पद से दिये गये अपने भाषण में कहा था कि 'इसे हिन्दी कहिए, हिन्दुस्तानी कहिए, उर्दू कहिए—चीज एक है। नाम से हमारी कोई बहस नहीं। जीवित देश की तरह भाषा बराबर बनती रहती है। शुद्ध हिन्दी तो निरर्थक शब्द है। भारत शुद्ध हिंदू होता तो उसकी भाषा भी शुद्ध हिंदी होती। यहाँ तो हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, फारसी, अफ़गानी सभी जातियाँ मौजूद है। हमारी भाषा व्यापक रहेगी।....बेशक हमें ऐसे ग्रामीण शब्दों को दूर रखना होगा, जो किसी इलाके में बोले जाते हैं। हमारा आदर्श यह होना चाहिए कि हमारी भाषा अधिक से अधिक आदमी समझ सकें और सभी का कर्तव्य है कि हम राष्ट्र भाषा को इसी तरह सर्वांगपूर्ण बनायें, जैसे अन्य राष्ट्रों की सबल

१८. मुंशी प्रेमचन्द, 'कुछ विचार', पृ० ११९-२०।

भाषाएं हैं। हमें राष्ट्र भाषा का कोश बढ़ाते रहना चाहिए। वे संस्कृत, अरबी और फारसी के शब्द, जिन्हें देखकर आज हम भयभीत हो रहे हैं, जब अभ्यास में आ जायंगे तो उनका हौवापन जाता रहेगा। भाषा विस्तार की यह क्रिया धीरे धीरे होगी।'[१८] प्रेमचन्द ने तो यहाँ तक कहा था कि भारत की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का एक प्रतिनिधि संगठन होना चाहिए, जो राष्ट्र भाषा का सम्यक् स्वरूप निर्धारण कर सके, क्योंकि तभी इसका समुचित विकास हो सकेगा। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में उपलब्ध भाषा के विविध रूपों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

व्यावहारिक भाषा—हिन्दी कहानी के क्षेत्र में उपलब्ध भाषा का एक रूप व्यावहारिक भी है। सामान्यतः साहित्यिक भाषा व्यावहारिक रूप से कुछ क्लिष्ट, कृत्रिम और अस्वाभाविक सी होती है, परन्तु विविध प्रसंगों और पात्रों के अनुसार सजग शब्दावली के चयन से बोलचाल के प्रयोग में सामान्य भाषा का प्रयोग भी किया जा सकता है। इस प्रकार की भाषा की विशेषता यह होती है कि इसमें सरल और स्वाभाविक शब्द प्रयोग होता है। जयशंकर 'प्रसाद' की लिखी हुई 'दुखिया' शीर्षक कहानी से ऐसी भाषा का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—'पहाड़ी देहात, जंगल के किनारे के गाव और बरसात का समय, वह भी उषाकाल। बड़ा ही मनोरम दृश्य था। रात की वर्षा से आम के वृक्ष तराबोर थे। अभी पत्तों पर से पानी ढुलक रहा था। प्रभात के स्पष्ट होने पर भी धुंधले प्रकाश में सड़क के किनारे आम के वृक्ष के नीचे एक बालिका कुछ देख रही थी। 'टप' से शब्द हुआ, बालिका उछल पड़ी, गिरा हुआ आम उठाकर अंचल में रख लिया।'[१९]

वर्तमान युग की बौद्धिक प्रवृत्ति के कहानीकारों ने भी अपनी रचनाओं में व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया है। इन लेखकों ने मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में इस भाषा रूप को प्रयुक्त करते हुए उसे अधिकाधिक सामान्य बनाने की चेष्टा की है। जैनेन्द्र कुमार की लिखी हुई 'पूर्ववृत्त' शीर्षक कहानी से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—'अदालत में आज बड़ी भीड़ है। अखबारों में इनकी खूब चर्चा है। मामला यह है कि प्रशान्त का कहना है कि शान्ति उसकी विवाहिता है। और शान्ति का दावा है कि यह सब उसके पिता से पैसा ऐंठने का उपाय है। उसने

१९. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'प्रतिध्वनि', पृ० ६३।

अखबार में यह छपाकर कि मेरा उससे विवाह हुआ है, मुझे बदनाम करने की कोशिश की है।...दावा शान्ति की ओर से है। प्रशान्त के साथ दूसरा अभियुक्त अखबार का सम्पादक है, जिसने यह खबर छापी है।'[२०]

संस्कृतप्रधान भाषा—प्रथम विकास काल से ही हिन्दी कहानी के क्षेत्र में संस्कृत-प्रधान भाषा का प्रयोग भी मिलता है। इस प्रकार की भाषा मुख्यतः भावात्मक स्थलों पर प्रयुक्त होती है। प्रकृति के विभिन्न रूपो के चित्रांकन में भी इसका प्रयोग यत्र तत्र मिलता है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'न्याय' शीर्षक कहानी से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—'अभी उषा की रोशनी लाल साड़ी प्रत्यक्ष हो रही है—भास्कर मुख अपर प्रान्त की ओर है, केवल केशों की सघन व्योम नीलिमा इधर से स्पष्ट। मुख का मृदु स्पर्श प्रकाश, लघुतम तूलि जैसे, पर दिगन्त शोभा से उतरकर तन्द्रा से अलस जीवों को जगा रहा है। खिली अमलतास की हेमांगी शाखाएँ तरुणी बालिकाओ सी स्वागत के लिए सजकर खड़ी हैं। पवन पुनः पुनः उषा का दर्शन शुभ मधुर सन्देश दे रहा है। निविड़ नीड़ाश्रय से विहंग प्रभाती गा रहे हैं।'[२१]

उर्दू प्रधान भाषा—हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रयुक्त भाषा का एक रूप उर्दू भी है। यह भाषा प्रेमचन्द युग से अधिक प्रयोग में लायी गयी है। सामान्य रूप से कहानी में आयोजित मुसलमान अथवा उर्दू भाषी पात्रों के माध्यम से ही इस प्रकार की भाषा का प्रयोग मिलता है। प्रेमचन्द तथा उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जैसे अनेक हिन्दी कहानीकार हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण करने के पूर्व उर्दू में साहित्य लेखन करते थे। इन लेखको की कहानियो में इस भाषा रूप का सफल प्रयोग मिलता है। प्रेमचन्द लिखित 'अमावस्या की रात्रि' शीर्षक कहानी से इसका एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'नाजरीन, आप जानते हैं मैं कौन हूँ? आपका जर्द चेहरा तने लागर, आपका जरा सी मेहनत में बेदम हो जाना, आपका लज्जाले दुनियाँ से महरूम रहना, आपकी खाना तरीकी—यह सब इस सवाल का नफी में जवाब देते है। सुनिए मैं कौन हूँ। मैं वह शख्स हूँ, जिसने इमराज इन्सानी को पर्दे दुनियाँ से गायब कर देने का बीड़ा उठाया है, जिसने इश्तिहार बाज, जौफरोश, गन्दुमनुमा बने हुए हकीमों

२०. श्री जैनेन्द्रकुमार, 'जैनेन्द्र की कहानियाँ', भाग ४, पृ० १२७।
२१. श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', 'चतुरी चमार', पृ० २६।

को बेख और बुन से खोदकर दुनियां को पाक कर देने का अज्म बिलजज्म कर लिया है।'[२२]

उर्दूप्रधान भाषा का एक रूप व्यंग्यात्मक कोटि की कहानियों में भी मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानीकार अमृतलाल नागर लिखित 'कालेज के लड़के' शीर्षक रचना से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण यह प्रस्तुत किया जा रहा है--'सारे खल्क में छान मारिये, पर इन कालिज के लौंडों सा शरीफ जात इन्सान या हैवान कोई भी दूसरा इस दुनिया के परदे पर और न मिलेगा। न इन्हें यह खयाल कि हम किससे बातें कर रहे है, किससे किस तरह पेश आना चाहिए। भई, सच तो यह है कि बुजुर्गों ने सच ही कहा है कि यह उनका कसूर नही, अंगरेजी तालीम का ही असर है जो आज वह इस किस्म की बेहूदा हरकत करते हैं कि खुद नवाब साहब का ही मजाक उड़ाना शुरू कर दिया और वह भी खास उनके मंह पर ही।'[२३]

लोक भाषा--हिन्दी कहानी के इतिहास में प्रेमचन्द युग से लोक भाषा का प्रयोग भी बहुलता से मिलता है। लोक भाषा के अन्तर्गत भाषा का वह रूप मिलता है, जिसका आधार ग्राम्य शब्दावली है। इस भाषा का प्रयोग ग्रामीण कथावस्तु और पात्रों के माध्यम से किया जाता है। उत्तर प्रेमचंद काल में आंचलिक कहानियों में भी इस भाषा का प्रयोग हुआ है। इस भाषा में स्थानीय विशेषताएँ भी समाविष्ट रहती है। कमलादेवी चौधरी लिखित 'भिखमंगे की बिटिया' शीर्षक कहानी से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है--'एक दायं रोटी को बहिनी हमहूँ का बनाय केर खवावो।'

'रोटी तो मैया, हियां मालकिन बनावे न देहै। मैया तुमका आम खवाउव।'

'...हियन आम कहाँ पइहौ, बहिनी।'

'मइया, मंडी से चुराय लाउव। हम बहुत दायं लाइन हन'![२४]

लोक भाषा का एक अन्य उदाहरणह यहां शिवसहाय चतुर्वेदी लिखित 'बुन्देलखंड की ग्राम्य कहानियां' में संगृहीत 'सोना बेटी' शीर्षक कहानी से भी उद्धृत किया जा रहा है, जिसमें सामान्य भाषा में ही ग्राम्य प्रभाव लक्षित होता है। लोक भाषा का यह

२२. मुंशी प्रेमचन्द, 'मानसरोवर', भाग ६, पृ० २१२।
२३. श्री अमृतलाल नागर, 'नवाब मसनद', पृ० ९७।
२४. सुश्री कमलादेवी चौधरी, 'उन्माद', पृ० ६९।

रूप ऊपर प्रस्तुत किये गये, स्थानीय विशेषता से युक्त भाषारूप से पर्याप्त भिन्नता रखता है—'बहुत दिनों की बात है। किसी गाँव में एक जमीदार रहते थे। बड़े आदमी थे। धन दौलत, हाथी घोड़ा, बेटा बेटी सभी कुछ था। उनकी बड़ी लड़की बहुत ही सुन्दर थी। देखने में गुलाब कैसा फूल, चम्पा कैसा रंग, नचने में कनेर कैसी डार, सोने कैसे घुंघराले केश, सुकुमारता में नैनू (मक्खन) कैसा लौंदा, बढ़ने में दोज कैसा चन्दा, तेज में होली कैसी झांक, मिठास में मिश्री कैसी डली, बोली में कोकल जैसी कूक, चंचलता में बिजली कैसी चमक, गंगा कैसी धार, गुणों में केवड़े कैसी महक और अपने निश्चय में पत्थर कैसी चट्टान।'[२५]

क्लिष्ट भाषा—प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती काल में हिन्दी कहानी में प्रयुक्त भाषा का एक रूप क्लिष्टता एवं दुरूहता लिये हुए भी मिलता है। दार्शनिक और रहस्यात्मक कोटि की कहानियों में उसका समावेश अपेक्षाकृत अधिकता से हुआ है। जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'प्रलय' शीर्षक कहानी से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण यहा प्रस्तुत किया जा रहा है—'चैतनिक पदार्थों का ज्वारभाटा है। परमाणुओं से ग्रथित प्राकृत नियन्त्रण शैली का एक बिन्दु। अपना अस्तित्व बचाए रखने की आशा मे मनोहर कल्पना कर लेता है। विदेह होकर विश्वात्म भाव की प्रत्याशा, इसी क्षुद्र अवयव में अन्तर्निहित अन्तःकरण यन्त्र का चमत्कार साहस है, जो स्वयं नश्वर उपादानों को साधन बनाकर अविनाशी होने का स्वप्न देखता है। देखो, इसी सारे जगत के लय की लीला मे तुम्हें इतना मोह हो गया।'[२६]

क्लिष्ट अथवा दुरूह भाषा का एक अन्य रूप उन कहानियों में भी उपलब्ध होता है, जो किसी वैज्ञानिक अथवा तकनीकी विषय को आधार बनाकर लिखी जाती हैं। यमुनादत्त वैष्णव लिखित 'अस्थि पंजर' शीर्षक वैज्ञानिक कहानी से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'वह सोच रहा था—यदि इस बार भी न निकला तो वह जाकर चैडविक से कह देगा कि रुथेनम ऐसा पदार्थ है कि उसका रेखाचित्र नही निकल सकता। उसने फिर विद्युत का चापकिरण (इलैक्ट्रिक आर्क) जलाया। रूथेनम की उस छोटी सी नली को उसके सम्मुख रखा और चारों

२५. श्री शिवसहाय चतुर्वेदी, 'बुन्देलखंड की ग्राम्य कहानियाँ', पृ० १८३।
२६. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'प्रतिध्वनि', पृ० ७६।

और प्रकाशछिद्र बन्द करके धीरे से फोटोग्राम के प्लेट को उस नली के सम्मुख चित्र खींचने वाले उस (स्पेट्रोग्राफ) यंत्र में लगाया। तीन घंटे वह इसी प्रकार अन्धकार में रहा।'[२७]

समन्वित भाषा—विविध विकास युगीन हिन्दी कहानी के क्षेत्र में भाषा का जो स्वरूप प्रमुख रूप से दृष्टिगत होता है, उसे समन्वित भाषा कहा जा सकता है। व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी कहानी के प्रत्येक विकास काल में भाषागत नवीनता अवश्य मिलती है, परन्तु उसका प्रतिनिधि स्वरूप समन्वयात्मक ही है। हिन्दी के अधिकांश कहानीकारों ने इसी भाषा का प्रयोग किया है। 'सुदर्शन' लिखित 'फरऊन का प्रेम' शीर्षक कहानी से इस प्रकार की भाषा का उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'दोपहर का समय था। सौ दरवाजों के पुराने मिस्री शहर खीवा पर सूरज की गर्मी के कारण बेहोशी और बेसुधी सी छाई हुई थी, बाजारों में, गलियों में और आबादी से बाहर श्मशान का सा सन्नाटा छाया हुआ था। कोई आवाज सुनाई न देती थी। कोई शक्ल दिखाई न देती थी और यह वह समय था जब इस रंग रूप और भोग विलास की संगीतमय नगरी पर किसी ने मौत का जादू कर दिया था।...मगर इस हत्यारी गर्मी में भी तलखत फ़रकत अमनस का अर्थमंत्री शाही खजाने के नये भवन में इधर से उधर और उधर से इधर फिर रहा था और हबशी गुलामों को काम जल्दी समाप्त करने के तगादे दे रहा था।'[२८]

समन्वित भाषा का उपर्युक्त उदाहरण प्रेमचन्द युगीन कहानी से उद्धृत किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानी में यह भाषा रूप यथार्थवाद आदि की प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि में विकसित हुआ है। अमृतराय लिखित 'व्यथा का सरगम' शीर्षक कहानी से इस भाषा रूप का एक अन्य उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, संस्कृत आदि के शब्द प्रयुक्त हुए हैं—'आज अमावस की रात है। गहरी। काली। नीरव। निस्तब्ध। केवल दूर पर कुत्तों के भूंकने की आवाज और कुछ गीदड़ों की। मनुष्य की आवाज तो गाने की एकाध कड़ी के रूप में कभी कभी सुनाई पड़ जाती है, किसी रिक्शेवाले के किसी रोमांटिक फिल्मी गाने की एक कड़ी। वर्ना सन्नाटा। पास के ही किसी घर से शहनाई का व्यथाकुल स्वर आ रहा है।

२७. श्री यमुनादत्त वैष्णव, 'दो रेखाएं', पृ० ५९।
२८. श्री 'सुदर्शन', 'चार कहानियाँ', पृ० १७१।

शहनाई भी अजब बाजा है, जो सुख दुख दोनों में समान रूप से आदमी का साथ देता है। . . . .[२९]

इस प्रकार से, हिन्दी कहानी के क्षेत्र में लगभग एक शताब्दी के विकास काल में भाषा तत्व गत पर्याप्त वैविध्य लक्षित होता है। व्यावहारिक भाषा का प्रयोग प्राय: सभी युगों में कहानीकारों द्वारा किया गया है। संस्कृतप्रधान भाषा में लिखी गयी कहानियों की संख्या अपेक्षाकृत कम है, परन्तु विषय और प्रसंग के अनुसार इसका प्रयोग यत्र तत्र अवश्य मिलता है। उर्दूप्रधान भाषा प्रथम विकास कालीन कहानी में नही मिलती है, परन्तु प्रेमचंद और उनके परवर्ती काल में इसका विशेष व्यवहार हुआ है। लोक भाषा का प्रयोग प्राय· ग्रामीण वातावरणप्रधान अथवा आंचलिक कोटि की कहानियों में अधिक हुआ है। क्लिष्ट अथवा दुरूह भाषा वैज्ञानिक अथवा तकनीकी विषयों पर आधारित कहानियों में मिलती है। भाषा का सर्वाधिक प्रचलित रूप वह है, जिसमें विभिन्न भाषाओं की शब्दावलियों का समन्वय मिलता है। इसी का व्यवहार हिन्दी कहानी के क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक हुआ है।

कहानी में भाषा का महत्व

कहानी के विविध मूल उपकरणों में भाषा तत्व के क्षेत्र में जो वैविध्य मिलता है तथा विभिन्न कालों में इसका जो विकास हुआ है, वह इसके आनुपातिक महत्व का द्योतक है। वर्तमान युग के पूर्व भाषा तत्व की गम्भीरता का उतना अधिक आभास लोगों को नही था और इसीलिए इसके प्रति न्यूनाधिक उदासीनता भी लक्षित होती है। आज का कहानीकार भाषा के प्रयोग में भी उतना ही सजग रहता है, जितना कि कथावस्तु तथा पात्र योजना आदि तत्वों के संयोजन में। भाषा के क्षेत्र में दृष्टिगत होने वाली प्रयोगशीलता का मूल कारण भी एक गंभीर तत्व के रूप में उसकी स्वीकृति है। दार्शनिक एवं प्रतीकवादी कहानियों के विकास के साथ भाषा के अपेक्षाकृत भिन्न रूप सामने आये। वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों पर लिखी गयी कहानियों में भी भाषागत नवीनता द्रष्टव्य है। आधुनिक कहानी पर मनोविज्ञान के बढते हुए प्रभाव ने जहां एक ओर कहानी के अन्य तत्वों के क्षेत्र में नवीन सम्भावनाएँ प्रस्तुत की है, वहां दूसरी ओर भाषा तत्व के विकास को भी नवीन दिशा प्रदान की है। उत्तर

२९. श्री अमृतराय, 'कस्बे का एक दिन', पृ० ८६।

भारतेन्दु काल से लेकर वर्तमान युग तक के भाषा तात्विक विकास में मनोविज्ञान का विशेष योगदान रहा है। भारतेन्दु युगीन कहानी में विषयगत सीमाओं के कारण उर्दू-प्रधान तथा क्लिष्ट भाषा आदि रूप नहीं मिलते हैं। परन्तु इसके उपरान्त कहानी के विषय क्षेत्र में व्यापक रूप से विस्तार होने के कारण भाषा के रूपों में भी परिवर्तन-शीलता लक्षित होती है। प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती युग के यथार्थवादी कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में कृत्रिम भाषा को छोड़कर सामान्य व्यवहार की भाषा का स्वाभाविक रूप में प्रयोग किया है। स्वातंत्र्योत्तर कालीन कहानी में आंचलिक वर्ग की रचनाओं में लोक भाषा अथवा ग्रामीण भाषा का सफल प्रयोग हुआ है। स्थानीय प्रभावों से युक्त यह भाषा तत्वगत विशेषताओं को सजीव रूप में उभारती है। बौद्धिक कहानियों में नागरिक भाषा का प्रौढ और परिष्कृत स्वरूप उपलब्ध होता है। कहानी में प्रयुक्त भाषा के ये सभी रूप एक विशिष्ट उपकरण के रूप में भाषा तत्व को मान्य करते हैं।

अध्याय १०

कहानी की शैली

शैली का स्वरूप

कहानी का छठा मूल उपकरण शैली है। वर्तमान हिन्दी कहानी में इस तत्व को विशिष्ट महत्व प्रदान किया जाता है, यद्यपि पूर्ववर्ती कहानी में इसकी उपेक्षा हुई है। आरम्भिक कालीन हिन्दी कहानी में प्राय: परम्परागत रूप में वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग हुआ है, जिसमें कथा का प्रस्तुतीकरण तृतीय पुरुष के रूप में किया जाता है। इस कथन के अपवाद के रूप में केवल कुछ ही कहानियां ऐसी उपलब्ध होती है, जो प्रथम पुरुष के रूप में आत्मकथात्मक शैली में लिखी गयी हैं। प्राचीन भारतीय कथा साहित्य के अन्तर्गत 'पंचतंत्र' तथा 'हितोपदेश' में जो शैलीगत जटिल रूपात्मकता मिलती है, उसका प्रभाव हिन्दी कहानी की तुलना में हिन्दी उपन्यास पर अधिक पड़ा। भारतेन्दु युग में वर्णनात्मक तथा आत्मकथात्मक शैलियों के अतिरिक्त अन्य शैलियों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। प्रेमचन्द काल से पत्र शैली तथा उसके उपरान्त डायरी शैली आदि का प्रयोग हुआ। इस दृष्टिकोण से शैली तत्व के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रयोग स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में ही मिलते है।

सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से यदि कहानी की विभिन्न शैलियों के स्वरूप पर विचार किया जाय, तो इस तथ्य की अवगति होगी कि शैलीगत अभिनवता कहानी के प्रभाव की वृद्धि की दृष्टि से उपयोगी होती है। सामान्य रूप से कहानी की कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण किसी भी शैली में किया जा सकता है। सभी शैलियों की अपनी पृथक् सीमाएँ व विशेषताएँ हैं, जो कहानी में अभिव्यंजित होती हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी कहानी में किसी ऐतिहासिक घटना का विवरण प्रस्तुत करना लेखक को अभीष्ट है, तो वह उसे अनेक शैलियों में कर सकता है। इसके लिए सबसे अधिक सामान्य शैली वर्णनात्मक होगी। परन्तु यदि कहानीकार उसी घटना को किसी पात्र की

आत्मकथा, पत्र, डायरी अथवा संस्मरण के रूप में प्रस्तुत करेगा, तो उसकी रचना में विशेष रूप से कलात्मकता और प्रभावात्मकता आ जायगी। हिंदी कहानी में जो शैलियाँ आरम्भ से वर्तमान काल तक विकसित होती रही हैं, वे एक ओर अपने सैद्धान्तिक स्वरूप की परिपक्वता का द्योतन करती हैं तथा दूसरी ओर उनसे कहानी के कलात्मक परिष्कार का भी परिचय मिलता है।

कहानी की शैली का विवेचन करते हुए डा० गुलाबराय ने उसके समग्र स्वरूप को स्पष्ट किया है। उनके विचार से 'शैली का सम्बन्ध कहानी के किसी एक तत्व से नहीं वरन् सब तत्वों से है और उसकी अच्छाई या बुराई का प्रभाव पूरी कहानी पर पड़ता है। कला की प्रेषणीयता अर्थात् दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति शैली पर ही निर्भर करती है। किसी बात के कहने या लिखने के विशेष प्रकार को शैली कहते हैं। इसका सम्बन्ध केवल शब्दों से ही नहीं है, वरन् विचार और भावों से भी है।'[1] श्री गिरिधारी लाल शर्मा गर्ग के विचार से 'रचना के मानी भाव, तत्व और विषय एवं उसे अभिव्यक्त करने का ढंग ही तो है। यानी इनका सम्मिश्रण ही रचना है। जहां उत्कृष्ट शैली का अभाव है वहां तत्व और भावों के रहते हुए भी रचना का अंग अपूर्ण रहता है, और जहां केवल शब्द योजना, पद विन्यास, प्रसंग गर्भत्व आदि का अच्छा निर्वाह है, लेकिन भाव और तत्व की कमी है, तो भी कहानी निर्जीव ही रह जाती है। कहने का तात्पर्य यह कि रचना से शैली और भाव, विषय दोनों ही का बोध होता है।'[2] पाश्चात्य विचारक एस० ओ० फाउलेन ने बताया है कि कहानी का शिल्प विधान उसकी घटनात्मक संरचना का आधार होता है।[3] इस प्रकार के उद्धरणों से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि कहानी की शैली सम्बन्धी परम्परागत सिद्धान्तों की सीमाओं से आगे वर्तमान कहानी अपने अभिनव शिल्प रूपों के क्षेत्र में प्रयोगात्मकता की प्रवृत्ति से युक्त मिलती है। वर्तमान कहानी में सामान्य वर्णनात्मक शैली से पृथक् अनुभूति, संवेदना अथवा समस्या के अनुरूप वैविध्यपूर्ण शैली का प्रयोग होता है, जो इस क्षेत्र में रचनात्मकता का द्योतक है।

१. डा० गुलाब राय, 'काव्य के रूप', पृ० २२५।

२. श्री गिरिधारीलाल शर्मा गर्ग, 'कहानी एक कला', पृ० ९३।

३. श्री एस० ओ० फाउलेन, 'दि शार्ट स्टोरी', भूमिका, पृ० १२।

शैलीप्रधान कहानी

सामान्य रूप से शैलीप्रधान कहानी उस रचना को कहा जाता है, जिसमें अन्य तत्वों की तुलना में शैली को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। प्रेमचंदोत्तर काल से कहानी में शैली का तात्विक विकास हुआ है और इसकी महत्ता में भी वृद्धि हुई है। वर्तमान कहानी में शैली को न केवल प्रमुखता दी जाती है, वरन् इसे ही कहानी की सफलता का आधारभूत तत्व स्वीकार किया जाता है। कहानी के विषयक्षेत्रीय वैविध्य और विस्तार के फलस्वरूप उसके शिल्प रूपों में वैभिन्य मिलता है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी के शिल्प रूप का चुनाव उसकी विषय वस्तु के अनुसार किया जाता है। किसी ऐसी घटना प्रधान कहानी की तुलना में उस कहानी का शिल्प अनिवार्य रूप से भिन्न होगा, जो किसी अनुभूति अथवा संवेदना पर आधारित होगी। आधुनिक कहानी के शैली तत्व के क्षेत्र में मनोविश्लेषण का भी व्यापक प्रभाव पड़ा है। मानवीय चेतना के विभिन्न स्तरों के विश्लेषण की दृष्टि से सामान्य रूप में परम्परागत कथा शैलियां अनुपयुक्त प्रतीत होती हैं। इसलिए नवीन शिल्प रूपों के आविर्भाव और विकास मे इस प्रकार की विचारधाराओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

जिस कहानी मे सामान्य वर्णनात्मक अथवा विवरणात्मक शैली का प्रयोग परम्परागत रूप मे किया गया हो और कथावस्तु, पात्र योजना, भाषा, वातावरण, उद्देश्य आदि तत्वो मे से किसी एक के सम्यक् निरूपण का प्रयत्न हो, उसे शैलीप्रधान कहानी नही कहेंगे। इसके विपरीत यदि किसी कहानी में शैली तत्व को प्रमुखता देते हुए उसके किसी एक अथवा अनेक रूपों का सफल नियोजन हो, उसे शैलीप्रधान कहानी कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द की लिखी हुई 'कफ़न', 'मन्त्र', 'शतरंज के खिलाड़ी' तथा 'बड़े घर की बेटी' आदि कहानियां अत्यन्त सफल रचनाएं हैं। परन्तु इन्हें शैली प्रधान कहानियों के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता है। प्रेमचन्द की लिखी हुई शैली प्रधान कहानियों में 'मोटेराम की डायरी' तथा 'दो सखियां' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रेमचन्द के परवर्ती काल मे भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र कुमार, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' तथा उपेन्द्र नाथ 'अश्क' आदि लेखकों ने शैली प्रधान कहानियों की रचना करने के साथ साथ शैली तत्व के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग भी किये हैं।

शैली का ऐतिहासिक विकास

हिन्दी कहानी के इतिहास में प्रथम विकास काल से ही प्राय: वर्णनात्मक शैली का प्रयोग बहुलता से मिलता है। इसके पूर्व इंशाअल्ला खां लिखित 'उदयभान चरित' अथवा 'रानी केतकी की कहानी' में भी इसी शैली का व्यवहार हुआ है। प्राचीन नीतिपरक कथा साहित्य के प्रभावस्वरूप हिन्दी में जो कथा साहित्य लिखा गया, उसमें अवश्य लोककथात्मक शैली का प्रयोग मिलता है। परन्तु यह प्रभाव हिन्दी कहानी की अपेक्षा हिन्दी उपन्यास पर अधिकता से दृष्टिगत होता है।

वर्णनात्मक शैली का प्रयोग भारतेन्दु युग के अधिकांश कहानीकारों की रचनाओं में किया गया है। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती', रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय', गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पति का पवित्र प्रेम', पार्वतीनन्दन लिखित 'प्रेम का फुव्वारा', बंग महिला लिखित 'दुलाई वाली' तथा गंगाप्रसाद अग्निहोत्री लिखित 'सच्चाई का शिखर' आदि कहानियों में वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग हुआ है।

भारतेन्दु युग में यद्यपि आधुनिक कहानी का प्रारम्भिक स्वरूप ही आविर्भूत हुआ था, परन्तु शैली तत्व की दृष्टि से उस युग में भी पर्याप्त विविधता मिलती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की लिखी 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती' में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग पहली बार किया गया है। इसी शैली में लिखी गयी इस युग की अन्य रचनाओं में कार्तिकप्रसाद खत्री लिखित 'दामोदर राव की आत्मकहानी,' महेन्द्रलाल गर्ग लिखित 'पेट की आत्मकहानी', वेंकटेशनारायण लिखित 'एक अशर्फी की आत्मकहानी' तथा शालिगराम लिखित 'एक ज्योतिषी की आत्मकथा' आदि उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु काल में लिखी गयी कहानियों में स्वप्न शैली का भी प्रयोग किया गया है। इस युग के पूर्व राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' की लिखी हुई एक कथात्मक रचना 'राजा भोज का सपना' में इसी शैली का प्रयोग किया गया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की लिखी हुई 'एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' शीर्षक कहानी की रचना भी इसी शैली में हुई है। इस काल में ही केशवप्रसाद सिंह द्वारा 'आपत्तियों का पहाड़' शीर्षक कहानी में भी स्वप्न शैली का ही प्रयोग किया गया है।

प्रेमचन्द युग में पूर्व काल में उपलब्ध सभी कहानी शैलियों के समुचित विकास के साथ कतिपय नवीन शैलियों का भी आविर्भाव हुआ। स्वयं प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में इन दोनों वर्गों की शैलियों का प्रयोग किया। उनकी लिखी हुई अधिकांश कहानियाँ

में वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग हुआ है। 'आत्माराम', 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दरोगा', 'रानी सारंधा', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'कफ़न' तथा 'मंत्र' आदि उनकी प्रसिद्ध कहानियां इसी शैली में लिखी हुई हैं। भारतेन्दु युग में आविर्भूत आत्मकथात्मक शैली में प्रेमचन्द ने 'बड़े भाई साहब', 'यह मेरी मातृभूमि है', 'बौड़म', 'शाप' तथा 'शांति' आदि कहानियों की रचना की है। इनके अतिरिक्त डायरी शैली का प्रयोग प्रेमचन्द की लिखी हुई 'पंडित मोटेराम की डायरी' नामक कहानी में हुआ है। पत्र शैली में भी लिखी गयी एक कहानी प्रेमचन्द ने प्रस्तुत की है जिसका शीर्षक 'दो सखियां' है। 'जादू' शीर्षक कहानी में प्रेमचन्द ने संवादात्मक शैली का प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त मनोविश्लेषणात्मक तथा नाटकीय आदि शैलियों का भी आंशिक रूप से समावेश प्रेमचन्द की कहानियों में हुआ है।

द्वितीय विकासकालीन अन्य कहानीकारों में शैलीगत विशिष्टता की दृष्टि से चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी उल्लेखनीय है। सामान्य रूप से यह कहानी वर्णनात्मक शैली में लिखी गयी है, परन्तु आंशिक रूप से इसमें स्मृतिपरक शैली का भी सफलता के साथ समावेश हुआ है। विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' की अधिकांश कहानियां वर्णनात्मक शैली में लिखी गयी है, जिनमें मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण भी निहित है। जयशंकर 'प्रसाद' ने भी तृतीय पुरुष के रूप में ही अपनी कहानियों की रचना की है, यद्यपि उनमें विविध स्थलों पर मनोवैज्ञानिक शैली का भी प्रभावशाली रूप में संयोजन हुआ है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने वर्णनात्मक तथा मनोविश्लेषणात्मक शैलियों का प्रयोग अपने कहानी साहित्य में किया है। व्यंग्यात्मक शैली का समावेश भी उसमें विभिन्न स्थलों पर प्रसंग के अनुसार हुआ है। जैनेन्द्र कुमार की कहानियों की शैली में वर्णनात्मक, मनोविश्लेषणात्मक आदि रूपों के साथ व्यंग्यात्मकता तथा प्रतीकात्मकता आदि विशेषताएं भी मिलती हैं।

प्रेमचन्दोत्तर युगीन हिन्दी कहानी में पूर्ववर्ती शैलियों का कलात्मक रूप विकसित हुआ। इस काल में भगवतीप्रसाद बाजपेयी ने प्रायः वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग अपनी अधिकांश कहानियों में किया है, जिसमें कहीं कहीं आंशिक रूप से मनोवैज्ञानिकता का समावेश भी हुआ है। 'सुदर्शन' की कहानियां भी तृतीय पुरुष के रूप में लिखी गयी हैं और उनमें शैलीगत परम्परानुगामिता स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह तथा उषादेवी मित्रा की कहानियों में मनोविज्ञान से प्रभावित वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। भगवतीचरण वर्मा ने मनोविश्लेषण

शैलीप्रधान कहानियों की रचना की है। इसमें विविध प्रसंगों के अनुरूप व्यंग्यात्मक, भावात्मक तथा स्मृतिपरक शैलियों का भी समावेश मिलता है। 'दो बांके' तथा 'प्रायश्चित्त' जैसी कहानियों में व्यंग्यात्मकता का प्रखर रूप मिलता है। 'वह फिर नहीं आई' में मनोवैज्ञानिक और स्मृतिपरक शैलियां भी प्रयुक्त हुई हैं। इलाचन्द्र जोशी की कहानियों में प्रधान रूप से मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। 'डायरी के नीरस पृष्ठ' जैसी रचनाओं में उन्होंने डायरी शैली का व्यवहार भी किया है। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की कहानियों में बौद्धिक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में कहानी लेखन की प्रायः सभी शैलियों का प्रयोग मिलता है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा यशपाल की कहानियों में यथार्थवादी आधार पर प्रधानतः वर्णनात्मक और मनोवैज्ञानिक शैलियों का प्रयोग हुआ है। कमलाकांत वर्मा तथा राय कृष्णदास की कहानी शैली में प्रतीकात्मकता का भी समावेश मिलता है। डा० वृन्दावन लाल वर्मा, शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, सियारामशरण गुप्त, मोहनलाल महतो 'वियोगी', श्रीमती होमवती देवी, विनोदशंकर व्यास, गोविन्द वल्लभ पन्त, वाचस्पति पाठक, कमलादेवी चौधरी, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' तथा विश्वम्भरनाथ जिज्जा आदि की कहानियों में मुख्यतः वर्णनात्मक शैली के साथ वैज्ञानिकता, प्रतीकात्मकता, मनोवैज्ञानिकता तथा व्यंग्यात्मकता आदि तत्वों का समावेश भी मिलता है।

स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानी में शैली क्षेत्रीय प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक मिलते हैं। इस काल में कहानी लेखन की प्रायः सभी शैलियों का व्यवहार लेखकों द्वारा हुआ है। अमृतलाल नागर ने हास्य व्यंग्य प्रधान कहानी के क्षेत्र में शैलीगत नवीन प्रयोग किये हैं। अनेक कथासूत्रों को संग्रथित करके कुछ केन्द्रीभूत पात्रों को आधार बनाकर इनकी कहानियों में लोककथात्मक शैली की भांति उन्हें अन्तःसम्बद्ध किया गया है। रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' ने अपनी कहानियों में मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है। अमृत राय, बलवन्त सिंह, विष्णु प्रभाकर तथा नरेश मेहता की रचनाओं में बौद्धिकता, प्रतीकात्मकता, मनोवैज्ञानिकता एवं व्यंग्यात्मकता से युक्त शैली का व्यवहार हुआ है। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर तथा निर्मल वर्मा की कहानियां प्रसंगानुसार संवादात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, नाटकीय तथा व्यंग्यात्मक हो गयी हैं। उषा प्रियंवदा तथा मन्नू भंडारी की कहानियों में प्रतीकात्मकता तथा व्यंग्यात्मकता भी निहित है। फणीश्वर नाथ 'रेणु' के कहानी संग्रह 'ठुमरी' की रचनाएं लोककथात्मक तथा आंचलिक शैलियों का उदाहरण कही जा सकती हैं।

कमल जोशी, अमरकान्त तथा सोमा वीरा की कहानियों में डायरी, पत्रात्मक, आत्म-कथात्मक तथा मनोविश्लेषणात्मक शैलियों का प्रयोग विविध स्थलों पर प्रसंगानुसार किया गया है। कहानी की शैली के ये रूप अपने तात्विक विकास के साथ साथ प्रयोगात्मकता की प्रवृत्ति के भी परिचायक हैं।

शैली के गुण

कहानी में शैली तत्व के समुचित नियोजन के लिए उसमें कतिपय गुणों का समावेश आवश्यक होता है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से कहानी की शैली यदि आकर्षक और कलात्मक होती है, तो उसकी सफलता की सम्भावनाओं में वृद्धि हो जाती है, भले ही उसके अन्य तत्वों का आनुपातिक समावेश और संतुलन न हो। भावाभिव्यंजना के चमत्कारिक प्रस्तुतीकरण के रूप में ही शैली का महत्व है। यह कहानी का एक ऐसा तत्व है, जो उसके अन्य सभी तत्वों में पारस्परिक संतुलन और सामंजस्य स्थापित करता है। यदि कहानी के अन्य तत्व न्यूनाधिक रूप में शिथिल होते हैं, तो भी कलापूर्ण शैली कहानी को निर्दोष बना सकती है। कथावस्तु, पात्र, संवाद, भाषा, वातावरण तथा उद्देश्य आदि तत्व चाहे जितने कलायुक्त हों, परन्तु जब तक कहानी की शैली कलात्मक नहीं होगी, तब तक कहानी प्रभावहीन बनी रहेगी। सामान्य रूप से कहानी की शैली में आलंकारिकता, प्रतीकात्मकता, रोचकता, भावात्मकता, आंचलिकता तथा व्यंग्यात्मकता आदि गुणों का समावेश रचना को कलात्मक परिपूर्णता प्रदान करता है। शैली के इन गुणों की संक्षिप्त परिचयात्मक व्याख्या यहां सोदाहरण प्रस्तुत की जा रही है।

आलंकारिकता—कहानी की शैली का एक गुण उसकी आलंकारिकता भी है। यह गुण प्रायः भावात्मक और काव्यात्मक शैलीप्रधान कहानियों में निहित रहता है।[४] इस गुण के समावेश से कहानी के कलात्मक सौन्दर्य में अभिवृद्धि हो जाती है। परन्तु यह गुण शैली के अपेक्षाकृत परम्परागत स्वरूप का परिचायक होता है। आधुनिक कहानियों की शैली में इसका समावेश बहुलता से नहीं मिलता है। चंडीप्रसाद 'हृदयेश'

४. उन्नीसवीं शताब्दी के रूसी कथाकार मेखायल यूरेविच लेरमेन्तोव की कहानियां विशेषतः भाषा शैली की चुस्ती, आलंकारिकता और प्रभावात्मकता की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण मानी गयी हैं।

लिखित 'प्रणय परिपाटी' शीर्षक कहानी से आलंकारिकता के गुण से युक्त शैली का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'कवि की कमनीय सृष्टि में कुसुम कलेवर कामिनी के कटाक्ष कठिन कृपाण को परास्त करते हैं, प्रजापति की सृष्टि में सुमन मंडित मालती मंडप में भीषण मणिधर का निवास होता है। प्रेम की मुग्ध बनाने वाली मंदाकिनी में कवि की प्रज्ञा मुग्ध होकर डूब जाती है, अनंत तरंगमयी कल्लोलिनी के भयानक प्रवाह में प्रजापति की अनंत प्रजा, रोमांचकारी चीत्कार करती हुई, रसातल गामिनी होती है।'[५]

प्रतीकात्मकता—कहानी की शैली का एक गुण उसकी प्रतीकात्मकता भी है। यह गुण प्रायः बौद्धिकता प्रधान कहानियों की शैली में मिलता है। इसका समावेश प्रायः सांकेतिक प्रसंगों में अधिकता से होता है। आधुनिक कहानी साहित्य के क्षेत्र में प्रतीकात्मकता की विशेषता से युक्त शैली का प्रयोग स्वातंत्र्योत्तर युगीन रचनाओं में बहुलता से हुआ है। इस गुण से युक्त शैली के सफल प्रयोग की दृष्टि से जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'करुणा की विजय', 'पत्थर की पुकार', 'कला', 'वैरागी', 'प्रलय' तथा 'ज्योतिष्मती', 'सुदर्शन' लिखित 'एथेन्स का सत्यार्थी' तथा 'कमल की बेटी', राय कृष्णदास लिखित 'कला और कृत्रिमता' तथा 'बसंत का स्वप्न', भगवती प्रसाद वाजपेयी लिखित 'खाली बोतल', सियारामशरण गुप्त लिखित 'मानुषी', 'त्याग' तथा 'कोटर और कुटीर', यशपाल लिखित 'परलोक', उषादेवी मित्रा लिखित 'प्रथम छाया', 'कलाकार' और 'बुलबुल' तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'शत्रु', 'सांप', 'आदम की डायरी', 'अमर वल्लरी', 'चिड़ियाघर', 'पुरुष का भाग्य', 'कोठरी की बात' तथा 'पठार का धीरज' आदि कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। इस गुण से युक्त शैली का एक उदाहरण यहां डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'शून्य की पूर्ति' शीर्षक कहानी से प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें मृत्यु की छाया में भयात्मक रूप से जीवन के अन्तिम पलों को गिनता हुआ नायक सहसा एक छोटी बच्ची का दुख देखकर सारे भ्रमों को तोड़ देता है—'सुनयना का उदास, सूखा हुआ चेहरा मेरी आंखों के सामने नाचता है। विधि की अकारण क्रूर दृष्टि केवल मुझ पर ही नहीं है।... अब कोई तमन्ना नहीं है। अरसे के संघर्ष ने थका दिया है। अब प्रतीक्षा ही शेष है,

५. श्री चंडीप्रसाद 'हृदयेश', 'नन्दन निकुंज', पृ० ४९।

अनवरत प्रतीक्षा, डाक्टरों का मुंह झूठी आशा से जोहने की अब इच्छा नहीं, दवाओं की शीशियां भुलावा हैं, सफेद कपड़ों में मुस्कुराती नर्सें मौत की लम्बी बांहों सी लगती हैं।. . .पहाड़ी नाले की आवाज अब धीरे धीरे साफ होती जा रही है, पत्थरों से टकराती लड़खड़ाती सी चलती पानी की पतली धार, आसपास शाम के शून्य का सन्नाटापन निहारती हुई।'[६]

प्रवाहात्मकता—कहानी की शैली का एक गुण उसकी प्रवाहात्मकता भी है। इस गुण से युक्त शैली नीरस नही होने पाती एवं उसकी सजीवता बनी रहती है।[७] इस प्रकार की शैली का प्रयोग प्रायः सभी विषयों की कहानियों में हो सकता है। हिन्दी कहानी के विकास के आरम्भिक युग से ही प्रवाहात्मक शैली दृष्टिगत होती है। उत्तर प्रेमचन्द काल में लिखी गयी कहानियो की शैली में इसका समावेश अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। यह गुण शैली के तत्वगत परिष्कार का भी द्योतन करता है। भगवतीचरण वर्मा लिखित 'दो बांके' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'शायद ही कोई ऐसा अभागा हो जिसने लखनऊ का नाम न सुना हो, और युक्त प्रान्त में ही नहीं, बल्कि सारे हिन्दुस्तान में, और मैं तो यहां तक कहने को तैयार हूं कि सारी दुनिया में लखनऊ की शोहरत है। लखनऊ के सफेदा आम, लखनऊ के खरबूजे, लखनऊ की रेवड़ियां, ये सब ऐसी चीजें है, जिन्हें लखनऊ से लौटते समय लोग सौगात की तौर पर साथ ले आया करते हैं, लेकिन कुछ ऐसी भी चीजें है, जो साथ नहीं ले जाई जा सकतीं, और उनमे लखनऊ की जिन्दादिली और लखनऊ की नफासत विशेष रूप से आती है।'[८]

रोचकता—कहानी की शैली का एक गुण उसकी रोचकता होता है। यह गुण न केवल शैली को सफल बनाने में सहायक होता है, वरन् उसकी सामान्य हीनताओं का

६. डा० प्रतापनारायण टंडन, 'शून्य की पूर्ति', पृ० १७-१८।

७. उन्नीसवीं शताब्दी के अमरीकी कहानीकार जेम्स फ़ेनिमोर कूपर की कहानियाँ शैलीगत प्रवाहात्मकता के गुणों से युक्त हैं। नैसर्गिक रूप से यह गुण कूपर की कहानियों में कुछ इस कलात्मक रूप में समाविष्ट रहता है कि पाठक की उत्कंठा सदैव जीवंत बनी रहती है।

८. श्री भगवतीचरण वर्मा, 'दो बांके', पृ० ११०।

बोध भी दूर कर देता है।[९] इसका समावेश प्रायः उन कहानियों में अधिक होता है, जो हास्य व्यंग्य प्रधान होती हैं।[१०] अन्य विषयों की कहानियों में भी प्रसंगानुसार इसकी निहिति मिलती है। रोचकता के गुण से युक्त शैली का एक उदाहरण यहां भगवती चरण वर्मा लिखित 'लाला तिकड़मीलाल' शीर्षक कहानी से प्रस्तुत किया जा रहा है---'तिकड़म पुरस्कार' में टेवजी ने भी अपनी 'टेव शतक' रचना भेज दी। उधर हिन्दी संसार में धूम मची हुई थी कि देखें 'तिकड़म पुरस्कार' इस बार किसको मिलता है और इधर 'टेव शतक' पर यह विवाद उठ खड़ा हुआ था कि हिन्दी में 'टेव' बड़े हैं या 'देव'। कुछ लोगों ने टेवजी का विरोध किया। इन विरोधियों में वे थे, जिन्हें टेवजी ने कभी कुछ नहीं दिया था, और टेवजी ने कमर कस ली कि तिकड़म पुरस्कार लेकर ही छोड़ेंगे।'[११]

भावात्मकता---कहानी की शैली का एक गुण उसकी भावात्मकता भी है। इस गुण के समावेश से कहानी की शैली में विश्वसनीयता आ जाती है और चरित्रांकन भी सजीव हो जाता है। कहानी की शैली में यह गुण स्थल विशेष पर विभिन्न पात्रों की मनःस्थिति के अनुरूप समाविष्ट होता है। अनुभूतिपरक कहानियों में इसकी निहिति अपेक्षाकृत अधिक मिलती है। भाव प्रधान कहानियों की शैली में भी यह गुण स्वाभाविक रूप से समाविष्ट मिलता है। प्रेमचन्द लिखित 'आत्माराम', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पुरस्कार', कमलादेवी चौधरी लिखित 'यात्रा', 'चित्रकार', 'दिग्विजय', 'मातृहीना', 'रूपा' तथा 'कर्कशा' एवं विनोदशंकर व्यास लिखित 'कहानी लेखक', 'उत्कंठा', 'कल्पनाओं का राजा', 'चित्रकार', 'अभिनेता', 'कलाकारों की समस्या', 'खोज', 'रहस्य' तथा 'घृणा का देवता' आदि कहानियां इस गुण से युक्त शैली के प्रयोग की दृष्टि से उल्लेखनीय है। प्रेमचंद लिखित 'आत्मसंगीत' शीर्षक कहानी से इस प्रकार

९. सोलहवीं शताब्दी के लगभग उपलब्ध 'पीटर और फेवरोन्या की कहानी' रोचकता की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। उसका नायक क्यू रोम का राजकुमार और नायिका एक निर्धन रूसी किसान बाला है।

१०. बीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध पाश्चात्य कथाकार सर आर्थर क्विलर काउच की लिखी हुई 'डेड मेंस राक', 'पाइजन आइलेंड' तथा 'दि स्प्लेंडिड स्पर' आदि कहानियां शैलीगत रोचकता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

११. श्री भगवतीचरण वर्मा, 'दो बांके', पृ० ८५।

का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'मनोरमा ने व्याकुल होकर कहा—आह ! तू फिर अपने मुंह से क्यों कुछ नहीं मांगता ? अहा ! कितना विरागजनक राग है, कितना विह्वल करने वाला। मैं अब तनिक भी धीरज नहीं धर सकती। पानी उतार में जाने के लिए जितना व्याकुल होता है, श्वास हवा के लिए जितना विकल होता है, गंध उड़ जाने के लिए जितनी उतावली होती है, मैं उस स्वर्गीय संगीत के लिए उतनी व्याकुल हूं। उस संगीत में कोयल की सी मस्ती है, पपीहे की सी वेदना है, श्यामा की सी विह्वलता है, इसमें झरनों का सा जोर है, और आंधी का सा बल।'[१२]

व्यंग्यात्मकता—कहानी की शैली का एक गुण उसकी व्यंग्यात्मकता भी है। यह विशेषता प्रायः हास्य व्यंग्य वाली कहानियों की शैली में अपेक्षाकृत अधिक मिलती है।[१३] इसके समावेश से कहानी की शैली अधिक सजीव हो जाती है।[१४] हिन्दी कहानी के प्रायः सभी विकास युगों में शैली तत्व के अन्तर्गत इस विशेषता की निहिति मिलती है। प्रेमचंद तथा उनकी परवर्ती कहानी में विविध प्रकार की समस्याप्रधान कहानियों की शैली में भी व्यंग्यात्मकता मिलती है। इस गुण से युक्त शैली के सफल प्रयोग की दृष्टि से प्रेमचन्द लिखित 'बड़े भाई साहब' तथा 'शतरंज के खिलाड़ी', कमलादेवी चौधरी लिखित 'पिकनिक' तथा 'कंडूबा', यशपाल लिखित 'समाज सेवा', 'भावुक', 'कानून' तथा 'चार आने', भगवतीचरण वर्मा लिखित 'प्रायश्चित' तथा 'दो बांके', राधाकृष्ण लिखित 'लैला की शादी', 'राजाराम', 'आदमी आदमी' तथा 'मनुष्य और पशु', अन्नपूर्णानन्द लिखित 'मेरी हजामत' तथा 'कल की बात' एवं हरिशंकर शर्मा लिखित 'किराये का टट्टू', 'गर्दभ गान' तथा 'कापरिस्तान पर हमला' आदि कहानियां उल्लिखित की जा सकती हैं। यहां पर विश्वभरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'मूंछ' शीर्षक

१२. मुंशी प्रेमचंद, 'मानसरोवर', भाग ५, पृ०। २४२-४३

१३. उन्नीसवीं शताब्दी के रूसी कथाकार इवान अल्येक्सेयेविच ने अपनी प्रसिद्ध कहानी 'डाक्टर क्रुपोव' में समकालीन जीवन पर कटु व्यंग्य किया है। इस कहानी में डाक्टर कहता है कि इस संसार में जो व्यक्ति सामान्य माने जाते हैं, वे अपने व्यावहारिक कार्य कलाप में पागलों से भी गये गुजरे हैं।

१४. उन्नीसवीं शताब्दी के अमरीकन कहानीकार एडगर एलन पो ने रहस्य, रोमांच आदि विषयों के साथ साथ हास्य व्यंग्य शैलीप्रधान कहानियां भी लिखी हैं। 'दि स्पेक्टेकिल्स' तथा 'दि मैन दु वाज यूज्ड अप' इसी कोटि की कहानियां हैं।

कहानी से व्यंग्यात्मकता के गुण से युक्त शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—'ठाकुर विश्वनाथ सिंह उन लोगों में से थे, जिनकी यह धारणा थी कि पुराने रीति रिवाज, आचार-विचार सब उत्तम और निर्दोष हैं, और आधुनिक सभ्यता यदि पूर्णांश में नहीं, तो अधिकांश दोषपूर्ण है। जिन बातों के वह बहुत ही भक्त थे, उनमें कदाचित् मूंछ ही प्रमुख थी। पुरुषों के लिए मूंछ को वह उतना ही आवश्यक समझते थे जितना कि बैल के लिए सींग।'[१५]

आंचलिकता—कहानी लेखन की शैली का एक गुण आंचलिकता भी है। यह मुख्यतः स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानी में ही मिलता है। इस युग के पूर्व यह शैली अपने भिन्न रूप में उपलब्ध होती है, जो लोककथात्मक शैली से स्वरूपात्मक नैकट्य रखती है। इस शैली से इसमें मुख्य अन्तर यह होता है कि इसमें कथात्मकता के स्थान पर वातावरण चित्रण पर विशेष रूप से बल दिया जाता है। किसी प्रदेश अथवा स्थान विशेष की क्षेत्रीय परिस्थितियों का स्थानीय रंगों से युक्त चित्रण इसी के अन्तर्गत किया जाता है। यह चित्रण जितना ही अधिक सरल, सहज और विश्वसनीय होता है, कहानी भी उतनी ही अधिक प्रभावात्मक हो जाती है। लोककथात्मक पृष्ठभूमि में लिखी गयी कहानियों की शैली में आंचलिकता का गुण अपेक्षाकृत अधिकता से समाविष्ट हुआ है। यहां प्रेमचन्द की लिखी हुई 'पछतावा' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है—'दस बजे दिन का समय था। न्यायालय के सामने मेला सा लगा हुआ था। जहां तहां श्याम वस्त्राच्छादित देवताओं की पूजा हो रही थी। चांदपुर के किसान झुंड के झुंड एक पेड़ के नीचे आकर बैठे। उनसे कुछ दूर पर कुंवर साहब के मुख्तारआम, सिपाहियों और गवाहों की भीड़ थी। ये लोग अत्यन्त विनोद में थे। जिस प्रकार मछलियां पानी में पहुंचकर कलोलें करती हैं, उसी भांति ये लोग भी आनन्द में चूर थे। कोई पान खा रहा था। कोई हलवाई की दूकान से पूरियों की पत्तल लिये चला आता था। उधर बेचारे किसान पेड़ के नीचे चुपचाप उदास बैठे थे कि आज न जाने क्या होगा, कौन आफत आयेगी। भगवान का भरोसा है।...'[१६]

इस प्रकार से, उपर्युक्त कतिपय गुणों के समावेश से कहानी की शैली का स्वरूप

१५. श्री विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', 'रक्षाबन्धन', पृ० १८२।

१६. मुंशी प्रेमचन्द, 'मानसरोवर', भाग ६, पृ० २३५।

कलात्मक हो जाता है। आलंकारिता से युक्त शैली कहानी के सौन्दर्य में वृद्धि कर देती है। यह गुण हिन्दी कहानी के प्रायः सभी विकास युगों में प्रयुक्त शैलियों में समाविष्ट हुआ है। प्रतीकात्मकता से युक्त शैली हिदी कहानी के परिष्कृत और वैचारिक स्वरूप की द्योतक है। इसका समावेश उत्तर प्रेमचन्द काल की कहानियों में अपेक्षाकृत अधिकता से मिलता है। रोचकता कहानी की शैली का एक आवश्यक गुण है, जिसके अभाव मे सपूर्ण कहानी प्रभावहीन और नीरस हो जाती है। भावात्मकता युक्त शैली कहानी की पात्र योजना को सजीव बना देती है तथा उसकी यथार्थता को भी विश्वसनीय रूप प्रदान करती है। आंचलिकता से युक्त शैली लोककथात्मक शैली का ही वैचारिक परिपक्वता और कलात्मक सौष्ठव से युक्त रूप है। अपने नवीन रूप में इसका प्रयोग स्वातन्त्र्योत्तर कालीन कहानी मे ही मिलता है। इसके पूर्व यह स्थानीय रंगों के चित्रण तक ही सीमित थी। व्यंग्यात्मकता के गुण से युक्त शैली भी प्रथम विकास काल से हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रयुक्त हुई है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी :- कुछ आपबीती, कुछ जगबीती' में ही इसका समावेश आंशिक रूप में मिलता है। परवर्ती युगों में समस्याप्रधान कहानियों में भी इसका प्रयोग विविध कहानी लेखकों द्वारा किया गया है।

कहानी की प्रमुख शैलियां

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में अनेक शैलियो का प्रचार है। ये शैलियां अपने स्वरूपगत वैविध्य के माध्यम से जहां एक ओर कहानी की कलात्मक परिपक्वता का द्योतन करती हैं, वहां दूसरी ओर इनसे समकालीन प्रवृत्तियों का भी परिचय मिलता है। वर्णनात्मक शैली हिन्दी कहानी के परम्परागत स्वरूप की ओर इंगित करती है, जब कि मनोविश्लेषणात्मक शैली उसके वर्तमान स्वरूप की परिचायक है। डा० रामकुमार वर्मा ने कहानी लेखन की वर्णनात्मक शैली को ही सुविधाजनक बताया है। उनके विचार से 'इसमें विचार बहुत विशद रूप से प्रकाशित किये जा सकते है और घटनाओं का वर्णन बड़े स्वतंत्र रूप से हो सकता है। कहानियों में जीवनी और पत्रों का ढंग रोचकता बढ़ाकर पाठकों की सहानुभूति अपनी ओर कर लेता है। ऐसी रचना पाठकों के हृदय को अपने आप आकर पकड़ लेती है और पाठकों का मन बड़ी तेजी के साथ पात्रों और घटनाओं की ओर आकर्षित हो जाता है।'[१७] यहां हिन्दी कहानी के विविध विकास

१७. डा० रामकुमार वर्मा, 'साहित्य समालोचना', पृ० ५४।

युगों में प्रयुक्त प्रमुख शैलियों की सोदाहरण व्याख्या संक्षेप में प्रस्तुत की जा रही है।

वर्णनात्मक शैली

कहानी लिखने की यह शैली ही सर्वाधिक प्रचलित है। इस शैली में जो कहानियां लिखी जाती हैं, वे कहानी कला के परिपक्व स्वरूप का समग्रता और सम्यक्ता से परिचय देती हैं। इस शैली में कहानी के सभी मूल उपकरणों के विकास की सम्भावनाएं विद्यमान रहती हैं। इसमें कथावस्तु में संग्रथित घटनाओं के प्रभावाभिव्यंजक रूप में वर्णित होने के लिए स्थान रहता है। पात्रों के स्वाभाविक चित्रांकन के लिए भी यह उपयुक्त है, कथोपकथन अथवा संवादतत्व का भी आनुपातिक समावेश इसमें हो सकता है। देश-काल अथवा वातावरण के चित्रण के लिए भी इस शैली में उचित स्थान रहता है। उद्देश्य तत्व की भी पूर्ति के विचार से इसी शैली में लिखी गयी कहानी उत्कृष्ट सिद्ध होती है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि केवल यही एकमात्र ऐसी कहानी शैली है, जिसमें कहानी के सभी उपकरण आनुपातिक और संतुलित रूप में समाविष्ट होते हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यदि हिन्दी कहानी में प्रयुक्त विविध शैलियों पर विचार किया जाय, तो इस तथ्य की अवगति होगी कि कहानी लेखन की वर्णनात्मक शैली ही सबसे अधिक प्राचीन है। अन्य शैलियों की तुलना में इस शैली का प्रयोग कहानीकार को अपेक्षाकृत सुविधाजनक रहता है। इसमें समस्त घटना तत्वों को वर्णित किया जा सकता है और शैलीगत सीमा की बाधा नहीं होती। जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'रूप की छाया' शीर्षक कहानी से इस शैली का एक सामान्य उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें लेखक ने इसके माध्यम से कथावस्तु के एक विशिष्ट अंश, एक चरित्र के अन्तर की भावनाओं, कहानी के वातावरण तथा प्रकृति चित्र आदि को प्रस्तुत किया है---'काशी के घाटों की सौध श्रेणी जाह्नवी के पश्चिमी तट पर धवल शैलमाला सी खड़ी है। उनके पीछे दिवाकर छिप चुके। सीढ़ियों पर विभिन्न वेश-भूषा वाले भारत के प्रत्येक प्रान्त के लोग टहल रहे हैं। कीर्तन, कथा और कोलाहल से जाह्नवी तट पर चहल पहल है। एक युवती भीड़ से अलग एकान्त में ऊंची सीढ़ी पर बैठी हुई भिखारी का गीत सुन रही है। युवती कानों से गीत सुन रही है, आंखों से सामने का दृश्य देख रही है। हृदय शून्य था, तारा मंडल के विराट गगन के समान शून्य और उदास। सामने गंगा

के उस पार चमकीली रेत बिछी थी। उसके बाद वृक्षों की हरियाली और ऊपर नील आकाश, जिसमें पूर्णिमा का चन्द्र, फीके चावल के गोल टुकड़े के सदृश, अभी दिन रहते ही गंगा के ऊपर दिखाई दे रहा है। जैसे मन्दाकिनी में जल विहार करने वाले किसी देवद्वन्द्व की नौका का गोल पाल।...'[१८]

वर्णनात्मक शैली का एक अन्य उदाहरण यहां जैनेन्द्र कुमार लिखित 'रत्नप्रभा' शीर्षक कहानी से प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें लेखक ने सामान्य वर्णन के द्वारा कहानी के आरम्भ में ही आवश्यक सूत्रों का परिचय दिया है—'प्रातः ब्राह्म बेला से इस नगरी में यमुना स्नानार्थियों का तांता लग जाता है। उनमें स्त्रियों की संख्या ज्यादा होती है।...इधर कोई एक महीने से एक बड़ी नई मोटर गाड़ी नियत समय पर यमुना आती है। सब पहचानते हैं कि गाड़ी सेठानी जी की है। प्रसिद्ध सेठ लक्ष्मीनिवासजी का हाल में तीसरा विवाह हुआ है। विवाह में परम योग्य, विदुषी, सुन्दरी पत्नी उन्हें प्राप्त हुई है। उनका नाम रत्नप्रभा है।..वह परदा नहीं करती है। रूप अनिंद्य सुन्दर है।'[१९]

विश्लेषणात्मक शैली

कहानी लेखन की एक शैली विश्लेषणात्मक भी होती है। यह शैली विवेचना अथवा तर्क प्रधान होती है। इस शैली में कहानी में प्रस्तुत घटना, पात्र, संवाद अथवा वातावरण का सम्यक् स्वरूप वैचारिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया जाता है। आधुनिक युग में इसी शैली का एक रूप मनोवैज्ञानिकता का आधार लेकर भी विकसित हुआ है। इलाचंद्र जोशी आदि कहानीकारों की रचनाओं में इसका यही रूप मिलता है। बौद्धिक आधार पर इसका नियोजन सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की कहानियों मे तथा दार्शनिक आधार पर जैनेन्द्र कुमार की रचनाओं में हुआ। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की लिखी हुई 'तमाशा' शीर्षक कहानी से इस शैली का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'बैजनाथ उन लोगों में से हैं, जो इस जीवन को महज तमाशा समझते हैं। अपने आपको साधु-सन्यासी समझकर इस तमाशे से मुंह नहीं मोड़ते, न ही दार्शनिकों की भांति निर्लिप्त भाव से इसे देखते हैं, बल्कि तमाशाई बनकर इसमें रस लेते हैं।

१८. श्री जयशंकर 'प्रसाद',, 'आकाशदीप', पृ० १६३।

१९. श्री जैनेन्द्र कुमार, 'जैनेन्द्र की कहानियां', भाग ५, पृ० ८२।

बैजनाथ का यह बोध समझिए कि उसे भलाई बुराई से मतलब नहीं, तमाशे से मतलब है। दुखद से दुखद स्थिति में भी वह रस ले लेता है।'[20]

विश्लेषणात्मक शैली का एक अन्य उदाहरण यहां अमृतलाल नागर लिखित 'एटम बम' शीर्षक कहानी से भी प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें कहानी में नियोजित पात्र की वर्तमान मनःस्थिति का सम्यक् विश्लेषण हुआ है, जो वस्तुतः युद्ध की विभीषिका के कारण है—'कोबायाशी सोच रहा था, 'मैंने ऐसा कौन सा अपराध किया था जिसकी यह सजा मझे मिल रही है? अमीरों और अफसरों को छोड़कर कौन ऐसा आदमी था, जो यह लड़ाई चाहता था? दुनिया अगर दुश्मनी निकालती, तो उन लोगों से। हमने उनका क्या बिगाड़ा था? हमें क्यों मारा गया? . . .प्यास लग रही है। पानी न मिलेगा। ऐसी बुरी मौत मुझे क्यों मिल रही है? ईश्वर! मैंने ऐसा क्या अपराध किया था?'[21]

आत्मकथात्मक शैली

इस शैली में जो कहानियां लिखी जाती हैं, वे अन्य शैलियों में लिखी गयी कहानियों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक मर्मस्पर्शी होती हैं। इसमें कहानी लेखक आत्मचरित अथवा आत्मकथा की भांति प्रथम पुरुष के रूप में कथा का वर्णन करता है। कहानी का कोई प्रमुख अथवा सहायक पात्र ही मानो लेखक का स्थान ग्रहण कर लेता है और वह पाठकों को प्रत्यक्ष रूप में संबोधित करता हुआ उनसे सीधा संपर्क स्थापित करता है। परन्तु इस प्रकार की कहानी अपनी इसी शैलीगत सीमा के कारण सम्यक् स्वरूप नहीं ग्रहण कर पाती। केवल एक ही पात्र विशेष का पर्यवेक्षण क्षेत्र सीमित होता है। फलतः कहानी के अनेक पक्ष अविकसित और कभी कभी अवर्णित रह जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष वर्णन प्रणाली के कारण कभी कभी यह अतिशय रूप से नाटकीय और कृत्रिम भी प्रतीत होने लगती है। आत्मकथात्मक शैली में लिखी गयी कहानी में घटनात्मक चित्रण की सीमाएं भी स्पष्ट हैं। इस कोटि की कहानियों में सभी प्रकार की घटनाओं का चित्रण केवल एक पात्र विशेष के माध्यम से होता है। वह पात्र किसी भी दशा में स्वयं कहानीकार की

२०. श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क', 'छींटे', पृ० २४१।
२१. श्री अमृतलाल नागर, 'एटम बम', पृ० ५।

भांति सर्वदर्शी नहीं हो सकता है। इसलिए वह केवल अपने द्वारा देखी हुई और स्वयं ही अनुभव की गई घटनाओं और बातों का वर्णन कर सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि इस शैली में लिखी गई कहानियों में उस प्रधान अथवा सहायक पात्र का चित्रांकन तो प्रभावशाली बन जाता है, जो स्वयं अपनी ओर से कथा का वर्णन करता है, परन्तु शेष पात्र-पात्रियों का चरित्र चित्रण कलात्मक नहीं बन पाता। साथ ही उन पात्र-पात्रियों से सम्बन्धित घटनाएं भी कहानी में समाविष्ट नहीं हो पातीं। इसलिए इस शैली में लिखी गयी कहानी सम्यक्ता और समग्रता का बोध कराने में असफल रहती है। हिन्दी कहानी के प्रथम विकास काल से ही इस शैली का प्रयोग होता रहा है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आपबीती, कुछ जगबीती' इसी शैली में लिखी गयी है। प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती समय में इसका श्लाघात्मक स्वरूप विकसित हुआ। इस शैली के वर्तमान रूप का अधिकांशतः अनुभूत्यात्मक स्तर पर ही विकास हुआ है। आत्मविश्लेषण का आधार लेकर भी यह शैली विकसित हुई है। इसमें लेखक और पाठक में पर्याप्त नैकट्य होता है, क्योंकि कहानीकार ही इसमें पात्र का स्थान ग्रहण करके पाठक को प्रत्यक्षतः संबोधन करता है। इसीलिए इसकी प्रभावात्मकता में भी वृद्धि हो जाती है। इस शैली में लिखी गयी सफल कहानियों में प्रेमचन्द लिखित 'चोरी', 'डपोरसंख', 'विद्रोही', 'रामलीला' तथा 'प्रेरणा', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'अमरवल्लरी', 'सांप', 'विपथगा', तथा 'मेजर चौधरी की वापसी', यशपाल लिखित 'सआदत', 'पहाड़ का छल', 'हिंसा' तथा 'शर्त', जैनेन्द्र कुमार लिखित 'नादिरा' तथा 'सुदर्शन' लिखित 'परिवर्तन' एवं 'बचपन की घटना' आदि उल्लिखित की जा सकती हैं। भगवतीचरण वर्मा लिखित 'विवशता' शीर्षक कहानी से इसका एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'मैं पुरुष हूं, इसलिए कभी कभी मैं यह विश्वास कर लेने का दम भर लेता हूं कि मैं स्त्री के प्रति पुरुष के प्रेम को समझता हूं, पर मैं आज तक पुरुष के प्रति स्त्री के प्रेम को नहीं समझ सका। स्त्री के प्रेम में कितना त्याग है, कितना आत्मसमर्पण है और कितनी विवशता है! मैं सच कहता हूं कि स्त्री के इस रूप को देखकर मुझे आश्चर्य होने लगता है। मैं कभी कभी पूछ बैठता हूं—क्या स्त्री ने प्रेम करने के लिए ही जन्म लिया है?'[२२]

२२. श्री भगवतीचरण वर्मा, 'दो बांके', पृ० १७।

आत्मकथात्मक शैली का एक अन्य उदाहरण सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'द्रोही' शीर्षक कहानी से भी यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें इसके माध्यम से पात्र की मनःस्थिति का मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से अंकन किया गया है—'मैं बहुत गिर चुका हूं, इतना कि शायद अब उठ नहीं सकूंगा। पर कमला, एक काम अवश्य करूंगा, एक काम, जिससे मैं इतना डरता था, एक काम, जिससे मेरी सब एकत्रित उमंगें टूटकर बिखर जायंगी। मेरे पास एक ही साधन रह गया है। प्रायश्चित्त का नहीं, प्रतिकार का नहीं, तुम्हारे मुख पर से वह घोर कलंक का टीका मिटाने का नहीं, तुम्हारे योग्य बनने का नहीं, केवल यह दिखा देने का कि मैं प्रायश्चित्त करना चाहता था, तुम्हारे मुख से वह कलंक मिटाकर तुम्हारे योग्य बनना—तुम्हारे योग्य बनने का प्रयत्न करना चाहता था। संसार शायद फिर भी मेरे नाम पर थूकता रहेगा, रहे। अब मैं उसका ध्यान नहीं करूंगा—केवल तुम्हारा और तुम्हारे श्रीहीन मुख का।'[२१]

संवादात्मक शैली

कहानीलेखन की इस शैली में नाटकीयता की सम्भावनाएं अपेक्षाकृत अधिक होती हैं। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, संवाद अथवा कथोपकथन मूलतः नाटक का तत्व है, परन्तु कथात्मक विधाओं के क्षेत्र में भी इसका आधुनिक स्वरूप महत्वपूर्ण है। हिन्दी में कथोपकथन का आंशिक रूप में समावेश तो प्रायः सभी कहानियों में मिलता है, परन्तु कुछ कहानियां ऐसी भी मिलती हैं, जो आरम्भ से अन्त तक केवल कथोपकथन में ही लिखी गयी हैं। प्रेमचन्द की लिखी हुई 'निर्वासन' आदि कहानियां पूर्ण रूप से इसी शैली में मिलती हैं, जिनमें कथावस्तु का आरम्भ, मध्य और अन्त दो चरित्रों के वार्तालाप से ही होता है। इसके माध्यम से कथा में नियोजित पात्रों का भी चरित्रांकन हुआ है। परन्तु कहानी लिखने की कथोपकथनात्मक अथवा संवादात्मक शैली की सीमाएं भी स्पष्ट हैं। इसमें भी कहानी के अन्य तत्वों की सफलता की सम्भावनाएं कम हो जाती हैं। केवल कथोपकथन अथवा संवाद तत्व का सुविकसित और परिपक्व रूप ही इस शैली में लिखी गई कहानियों में मिलता है, अन्यथा शेष तत्वों का आनुपातिक और संतुलित रूप इसमें नहीं मिलता है। इसके अतिरिक्त केवल

२१. श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', 'कोठरी की बात', पृ० ५।

कथोपकथन प्रधान होने के कारण इस कोटि की कहानी में नाटकीयता का अनिवार्य रूप से समावेश हो जाता है। पात्रों के चरित्रांकन की दृष्टि से ऐसी कहानियां अवश्य प्रभावपूर्ण हो जाती हैं, क्योंकि सैद्धान्तिक रूप से कथोपकथन का उद्देश्य कहानी में घटनात्मक विकास तथा लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करने के साथ साथ पात्रों का चरित्र चित्रण करना भी है। परन्तु ऐसा तभी होता है जब कहानी के संवाद रोचक, स्वाभाविक और प्रभावपूर्ण हों। इस शैली के सफल प्रयोग की दृष्टि से प्रेमचन्द लिखित 'कानूनी कुमार' तथा 'जादू', जैनेन्द्रकुमार लिखित 'बीट्रिस' तथा 'क्या हो ?', तथा चतुरसेन शास्त्री लिखित 'वीर वधू' आदि कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। यहां जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'व्रत भंग' शीर्षक कहानी से इस शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जो इसके माध्यम से चरित्रांकन की दृष्टि से उल्लेखनीय है—'तो तुम न मानोगे ?'

'नहीं, अब हम लोगों के बीच इतनी बड़ी खाई है, जो कदापि नही पट सकती।'

'इतने दिनों का स्नेह ?'

'उंह, कुछ भी नहीं। उस दिन की बात आजीवन भुलाई नही जा सकती नन्दन ! अब मेरे लिए तुम्हारा और तुम्हारे लिए मेरा कोई अस्तित्व नहीं। वह अतीत के स्मरण, स्वप्न हैं, समझे ?'

'यदि न्याय नहीं कर सकते, तो दया करो मित्र ! हम लोग गुरुकुल में. . .'

'हां हां, मैं जानता हूं, तुम मुझे दरिद्र युवक समझ कर मेरे ऊपर कृपा रखते थे, किन्तु उसमें कितना तीक्ष्ण अपमान था, उसका मुझे अब अनुभव हुआ।'[२४]

नाटकीय शैली

कहानी लेखन की नाटकीय शैली स्वरूपगत साम्य की दृष्टि से भावात्मक शैली के पर्याप्त निकट है। अन्य शैलियों की भांति यह भी प्राय: दो रूपों में हिन्दी कहानी के क्षेत्र में उपलब्ध होती है। एक तो पूर्णात्मक रूप में, जहां कहानी में इसका प्रयोग आरम्भ से लेकर अन्त तक किया जाता है, और दूसरे आंशिक रूप में, जहां यह एक पूरक अथवा सहायक शैली के रूप में प्रयुक्त होती है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस शैली का प्रयोग हिन्दी कहानी के प्रथम विकास काल से लेकर वर्तमान युग तक मिलता

२४. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'आंधी', पृ० ७६।

है। इसका एक रूप अभिनयात्मक आधार पर विकसित हुआ है, जिसमें कोई पात्र किसी अन्य प्रस्तुत अथवा अप्रस्तुत पात्र को सम्बोधित करके अपने उद्गार व्यक्त करता है। चतुरसेन शास्त्री लिखित 'द्वितीया' शीर्षक कहानी से इस शैली का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें अपनी दूसरी पत्नी आनन्दी की सुप्तावस्था में उसका पति चन्द्रनाथ अपने भाव व्यंजित कर रहा है—'ओह् तपस्विनी ! तुमने भूख, प्यास, क्रोध, निद्रा को जीत लिया था, तुम अपने साधारण वेश और साधारण आकृति मे किस दायित्व को छिपाए मेरे जैसे प्रकांड पुरुष के साथ आधी आयु तक चली। कैसी सरलता, कैसे सुख, कैसे आनन्द के साथ ! तुम इतने जोर से कभी न हंसती थीं, पर तुम्हारे साथ उतने ही जोर से मैं भी तो हँसता था। वह कितना हंसती है, पर मैं उस हंसी से इतना भयभीत होता हूं, जितना बच्चा बिजली की तड़प से। सदैव इसकी आत्मा हंसती है और मेरी रोती है। मेरे जीवन में घाव है, मेरे निर्वाह में किरकिरी है, पर इसका जीवन तो अभी सोकर उठा है, अपने जीवन के प्रभात में यह गरीब मुझ घायल के साथ कहां तक कृत्रिम वेदना सहन करेगी।'[२५]

इस शैली का एक रूप प्रथम पुरुष के रूप मे स्वगत कथन के रूप में भी मिलता है, जिसका आधार कहानी के किसी पात्र की स्मृतियां और अतीत जीवन की घटनाएं है। इसका विकास मनोवैज्ञानिक आधारभूमि पर हुआ है। भगवतीचरण वर्मा लिखित 'रुपया तुम्हें खा गया' शीर्षक कहानी से इस प्रकार की शैली का एक उदाहरण यहा प्रस्तुत किया जा रहा है—'उफ ! ममता, प्रेम और सहानुभूति ! इन्हे मैंने उसी दिन तिलाजंलि दे दी थी, जिस दिन मैंने अमीर बनने की सोची थी। मुझे याद है—मेरे बच्चे मुझसे बात करने को तरस जाते थे और मैं रुपया पैदा करने में व्यस्त था ! मैं लखपती बन रहा था, मैं करोड़पती बन रहा था। और धीरे धीरे वैभव के सर्वग्राही पिशाच . . .नही, नही—लक्ष्मी ने मेरे घर मे प्रवेश किया। वे सब कमजोरियां, जिन्हें लोग दया, त्याग, प्रेम, सहानुभूति के नाम से पुकारते है, मेरे घर से निकल गयी। मेरी पत्नी, मेरे बच्चे—ये सबके सब उतने ही कठोर बन गये जितना मैं था। सामर्थ्य और शक्ति के हम स्वामी हो गये, हम कर्ता हो गये।'[२६]

२५. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, 'बाहर भीतर', पृ० १९२।
२६. श्री भगवतीचरण वर्मा, 'राख और चिनगारी', पृ० ९१।

डायरी शैली

कहानी लेखन की डायरी शैली हिन्दीकहानी के अपेक्षाकृत परिपक्व और कलात्मक रूप की द्योतक है। आरम्भिक युगीन कहानी में इस शैली का प्रयोग नहीं हुआ है। प्रेमचन्द के परवर्ती काल में यह शैली कहानीकारों द्वारा प्रयुक्त की गयी है। परन्तु इस शैली को अन्य शैलियों के समान लोकप्रियता नहीं प्राप्त हुई। इस शैली में लिखी गयी कहानियों में संपूर्ण कथा का प्रस्तुतीकरण प्रथम पुरुष के रूप में किया जाता है। कहानी के एक पात्र अथवा अधिक पात्रों की डायरी के रूप में कथावस्तु का विकास होता है। यह शैली आत्मकथात्मक तथा पत्र शैलियों से स्वरूपगत निकटता रखती है। इसीलिए इस शैली में लिखी गयी कहानियों मे प्रभावात्मकता अधिक मिलती और कहानी के पात्र पाठक से अनुभूत्यात्मक नैकट्य के कारण उसकी सहानुभूति भी प्राप्त करने में सफल होते है। प्रेमचंद लिखित 'मोटेराम शास्त्री की डायरी', 'सुदर्शन' लिखित 'एक स्त्री की डायरी' तथा इलाचन्द्र जोशी लिखित 'मेरी डायरी के कुछ नीरस पृष्ठ' आदि कहानियों में इस शैली का सफल प्रयोग हुआ है। श्रीमती उषादेवी मित्रा लिखित 'ललिता की डायरी' शीर्षक कहानी से इस शैली का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'ललिता की डायरी से...१६३६–दीपावली की प्रथम रात्रि। गत वर्ष की वह दीपावली रात, आज जैसी जीवनी मे भरी—भारत वर्ष को वह दीपावली रात्रि। सहस्रों दीप की माला पहिने हुए वह दीपावली रात्रि आज की जैसी थी, वह वर्ष भर की एक ही दीप-शिखर में बैठी हुई रात्रि। जन-विरल केवल मेरी ही इस एकान्त कुटिया के चारो ओर अन्धकार की नदी उमड़ रही थी।'[२७]

डायरी शैली का एक अन्य उदाहरण यहां सुश्री लीला प्रकाश लिखित 'जीने का सहारा' शीर्षक कहानी से प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमे इसके माध्यम से कहानी की पात्र योजना को पुष्ट मनोविश्लेषणात्मक पृष्ठभूमि प्रदान करते हुए चारित्रिक विवृति की गयी हैं—'जनवरी, १६३८....कितना कहती हूं पर कोई समझता ही नहीं। पता नही क्यों मा भी मेरी बात नही समझ पातीं। कहती है अगर किसी और को पसंद करती हो तो बताओ, वही बात करें। पर मै उन्हें कैसे बताऊं कि मैं शादी ही नहीं करना चाहती।...मैं उन्हे कैसे समझाऊं कि मेरे मन मे जीवन के प्रति कोई उत्साह नहीं रहा।...इतना शून्य मन, इतना शुष्क हृदय लेकर क्या मैं किसी

२७. श्रीमती उषादेवी मित्रा, 'मेघ मल्लार', पृ० ११०।

का जीवन सुखी कर सकूंगी ? मुझे विश्वास नहीं होता। भगवान, मैं क्या करूं ?'...[२८]

पत्र शैली

पत्र शैली में लिखी गयी कहानियों में एक या अनेक पात्रों के एक या अधिक पत्रों के माध्यम से कहानी की सारी कथा प्रस्तुत की जाती है। इसमें पत्रों के माध्यम से ही कहानी के पात्रों और घटनाओं का क्रमबद्ध रूप में विकास दिखाया जाता है। सैद्धान्तिक रूप से कहानी लिखने की यह प्रणाली आत्मकथात्मक शैली से पर्याप्त साम्य रखती है। इसमें भी कहानी का कोई प्रधान या अप्रधान पात्र एक पत्र के रूप में प्रत्यक्ष संबोधन के द्वारा ही कहानी की कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण करता है। इसमें भी अन्य पात्रों के चारित्रिक विकास के लिए अधिक संभावनाएं नहीं रहती। इसके अतिरिक्त कथावस्तु में संग्रथित घटनाएं भी अपनी संपूर्ण प्रभावात्मकता के साथ इस शैली में लिखी गयी कहानियों में नही आ पाती। इस शैली में लिखी गयी कहानी भी अपने सम्यक् और समग्र स्वरूप का बोध नही करा पाती। इस शैली में लिखी हुई सफल कहानियों में प्रेमचन्द लिखित 'दो सखियां', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'देवदासी', 'सुदर्शन' लिखित 'प्रताप के पत्र' तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'सिगनेलर' आदि उल्लेखनीय हैं। 'सुदर्शन' की लिखी हुई '२१ अगस्त १६०३' शीर्षक कहानी से इस शैली का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'माई डियर लालचन्द। ...कब तक लौटोगे ? मेरा जी तो अभी से घबराने लगा। जब तक तुम यहां थे तब तक मै तुम्हें न समझ सका था। परन्तु अब पता लगा कि तुम्हारे और हरदयाल के बिना जीवन नीरस हो गया है, जैसे निमक मिर्च के बिना भाजी बेस्वाद हो जाती है। अब न सवेरे घूमने का आनन्द आता है, न सांझ को बोटिंग का। सारे दिन चित्त उदास रहता है, जैसे कोई कीमती वस्तु गुम हो गयी हो। पता नही यह लम्बा समय कैसे बीतेगा।'[२९]

पत्र शैली का एक अन्य उदाहरण जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'देवदासी' शीर्षक कहानी से यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें इस शैली के माध्यम से कथात्मक विकास

२८. श्री विश्वनाथ, 'अनखे प्रश्न', पृ० १२७।
२९. श्री सुदर्शन, 'सुदर्शन सुधा', पृ० १२५।

की सम्भावनाएं निर्दिष्ट हुई हैं—'रमेश! . . . कल संगीत हो रहा था। मंदिर आलोक माला से सुसज्जित था, नृत्य करती हुई पद्मा गा रही थी—'नाम समेत कृत संकेतं वादयते मृदु वेणुम् . . .''ओह! वे संगीत मदिरा की लहरें थीं। मैं उसमें उभ चुम होने लगा। उसकी कुसुम आभरण से भूषित अंगलता के संचालन से वायु मंडल सौरभ से भर जाता था। वह विवश थी, जैसे कुसुमिता लता तीव्र पवन के झोंके में। रागों के स्वर का स्पंदन उसके अभिनय में था।' . . .[३०]

काव्यात्मक शैली

कहानी लेखन की काव्यात्मक शैली के विषय में पीछे यह संकेत किया जा चुका है कि यह स्वरूपगत साम्य की दृष्टि से नाटकीय शैली से पर्याप्त निकटता रखती है। यह शैली भी हिन्दी कहानी के प्रथम विकास काल से ही कहानीकारों द्वारा प्रयुक्त की जाती रही है। भावना प्रधान कहानियों में इसका व्यवहार अपेक्षाकृत अधिक होता है। डा० रांगेय राघव लिखित 'देवदासी' शीर्षक कहानी से इस प्रकार की शैली का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'सिन्धुनाद इस समय वीणा के तारो पर उंगलियां फेरकर यौवन के खोये हुए स्वर का उत्ताल ढूंढ़ रहे थे। उनके शरीर पर बहुमूल्य रेशम मन्द मन्द वायु मे फहरा रहा था। उनके प्रकोष्ठ की दीवारों पर सुदूर ताम्रलिप्ति के प्रसिद्ध चित्रकारों ने अदभुत चित्र अंकित किये थे। स्फटिक के स्तम्भों पर दीपों का झिलमिल प्रकाश प्रतिध्वनित हो रहा था, जैसे बादलो में बिजली चमक रही थी। मादक सुरभि-वाही समीर जब अगरु-धूम की कवरी खोलकर नृत्य करने लगता था, तो दीवारों पर छायाएं मुद्रा बनाने लगतीं और वीणा के करुण स्वर रुमझुम करते वायु की लहर लहर पर गा उठते।'[३१]

काव्यात्मक शैली का एक अन्य उदाहरण चंडीप्रसाद 'हृदयेश' की लिखी हुई 'मौन व्रत' शीर्षक कहानी से भी यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें प्रकृति चित्रण की पृष्ठभूमि में कोमल कल्पनाओ की व्यंजना है—'वर्षा बीत गई। शरद ऋतु आ गई। आकाश में चंद्रदेव, शांत सरिताओं के सरोज सुवासित बिमल जल में, अपने परम लावण्य को देखकर हंसने लगे। पृथ्वी के यौवन का वह प्रथम वेग अब नहीं है। इस समय का

३०. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'आकाशदीप', पृ० १०।
३१. डा० रांगेय राघव, 'देवदासी', पृ० ५।

सौन्दर्य स्थिर, शांत और अधिकतर स्निग्ध है। यौवन वाटिका में बाल चापल्य का वह उच्च हास्य अब नहीं सुनाई पड़ता, अब सौम्य भाव की केवल मधुर मुस्कान ही समस्त सौन्दर्य वन को अत्युज्ज्वल बनाती है। इस समय पृथ्वी, सलज्जा कुल वधू की भांति, केवल घूंघट पट ही में किंचित् मुसकाती है।'[३२]

लोककथात्मक शैली

लोककथात्मक शैली का प्रयोग हिन्दी कहानी में प्राचीन कथा साहित्य के प्रभाव स्वरूप मिलता है। इस शैली में प्रायः अनेक कथासूत्रों को अन्तःसम्बद्ध करके प्रस्तुत किया जाता है। इसका सफल प्रयोग कहानी की अपेक्षा उपन्यास में अधिकता से मिलता है। यह शैली कहानी के परम्परागत स्वरूप की द्योतक होने के कारण प्रायः ग्राम कथाओं का आधार लेकर विकसित हुई है। इस कोटि की रचनाओं में या तो किसी नैतिक उपदेश की प्रधानता मिलती है और या कथाक्षेत्र में प्रचलित किसी काल्पनिक मान्यता का निरूपण होता है।[३३] आधुनिक हिन्दी कहानी में बौद्धिक आधार भूमि पर इसी शैली का एक रूप आंचलिक शैली के रूप में विकसित हुआ है जिसका उल्लेख आगे किया जायगा। परम्परागत लोककथात्मक शैली बालोपयोगी कहानियों में भी प्रयुक्त की जाती है। यहां पर श्री शिवसहाय चतुर्वेदी लिखित 'स्वर्णकेशी' नामक कहानी से इस प्रकार की शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—'चलते चलते वह एक नदी के किनारे पहुंचा। नदी के दूसरे किनारे पर एक आलीशान महल बना हुआ था। उसके चारों तरफ कोसों तक सूना मैदान और जंगल था। उस पार जाने के लिए नदी पर पुल भी था। राजकुमार पुल को पार कर महल के सामने पहुंचा तो देखता क्या है कि सामने बाग में एक अत्यन्त रूपवती युवती खड़ी है। वह कैसी है—बार बार मोती गुहे, सोलह शृंगार करे, बारह आभूषण पहने, सिंदूर सुरमा लगाये, बिछिया अनूठा पहने, मोतियों से मांग भरे, केसर कस्तूरी का लेप करे, पान खाये, अतर लगाये, लौंग इलायची का बटुआ कमर में खोंसे! और उसका शरीर था कि पान खाय तो गले से

३२. श्री चंडीप्रसाद 'हृदयेश', 'नन्दन निकुंज', पृ० १२०।

३३. उन्नीसवीं शताब्दी के रूसी कथाकार निकोलाई वसीलेविच गोगल ने अपनी अनेक कहानियों में यूक्रेनियन और कज्जाकी ग्राम जीवन के मनोरंजक और सजीव चित्रांकन किये हैं। ये कहानियां लोक-कथात्मक शैली में लिखी गयी हैं।

पीक दिखाय, मक्खन जैसा लोंदा, पूनो जैसा चन्दा, दिवाली जैसा दिया, कनेर जैसी डार... लफ लफ दूबर हो जाय।'[३४]

स्मृतिपरक शैली

कहानी लेखन की स्मृतिपरक शैली का प्रयोग मुख्यतः स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानीकारों ने किया है। यह शैली अधिकांश कहानियों में अंश रूप में समाविष्ट हुई है। इसमें कथावस्तु का चुनाव वर्तमान से आरम्भ किया जाता है, और फिर किसी पात्र की स्मृति को अतीत में लौटाकर विगत जीवन की कथा प्रस्तुत की जाती है। इस शैली में भावात्मकता अधिक होती है। इसमें पात्रों की वे प्रतिक्रियाएं अभिव्यक्त की जाती हैं, जिनका सम्बन्ध पहले घट चुकी घटनाओं से होता है। फिर उसके वर्तमान भाग तक विकास को चित्रित करने के पश्चात् अन्त में कथा के भावी भाग का प्रस्तुतीकरण होता है। अनुभूति प्रधान होने के कारण यह शैली भी चमत्कारिता की सृष्टि करके पाठकों के हृदय पर प्रभाव डालने में सफल होती है। अपेक्षाकृत अभिनव शिल्प रूप की द्योतक होने के कारण इसके समावेश से कहानी की कलात्मकता मे भी वृद्धि हो जाती है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' लिखित 'नमक ज्यादा है' शीर्षक कहानी से इसका एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'मैं उन दिनों एक दैनिक के दफ्तर मे चालीस रुपये मासिक पर सहायक संपादक था और दफ्तर के पास एक तन्दूर पर खाना खाया करता था। ...एक दिन मे तन्दूर पर खाना खाने गया, तो अभी आकर मैं दीवार के साथ लगी लोहे की कुर्सी पर बैठा ही था कि एक महाशय के पीछे एक भिखारी आया।'[३५]

स्मृतिपरक शैली का एक अन्य उदाहरण अमृतराय लिखित 'अन्धकार के खंभे' शीर्षक कहानी से भी यहां उद्धृत किया जा रहा है, जिसमें मनोविश्लेषणात्मक पृष्ठभूमि में कहानी में नियोजित पात्र की मनःस्थिति का परिचय इस शैली के माध्यम से दिया गया है—'वह कौन सा अभिशाप था जो सदा एक प्रेत की छाया की तरह हमारा पीछा करता रहा, जिसकी तृषा थी कि वह हमारे बीच एक दुर्लंघ्य दीवार की तरह खड़ा हो जाय, जिसने कभी हमको खुलकर मिलने नहीं दिया; वह कौन सा अभिशाप था चित्रा, जिसने चुपके चुपके हमारे जीवन का बहुत सा रस सोख लिया, जिसने संकेत से प्रेम को

३४. श्री शिवसहाय चतुर्वेदी, 'बुन्देलखंड की ग्राम्य कहानियाँ', पृ० ७८-७९।
३५. श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क', 'छींटे', पृ० २६७।

पाथाचार कहा और उसके यह कहते ही प्रकाश के लोक से स्खलित होकर प्रेम का राजहंस जड़ अंधकार का चमगादड़ बन गया . . .।'[३६]

स्वप्न शैली

कहानी लेखन की एक शैली स्वप्नपरक भी होती है। इसमें कहानी में नियोजित किसी पात्र की स्वप्नावस्था में घटनाओं का विकास दिखाया जाता है। यह शैली भी कहानी लेखन की अन्य प्रमुख शैलियों की भांति मूलतः दो रूपों में मिलती है। एक तो पूर्णात्मक, जहाँ इसका प्रयोग कहानी के आरम्भ से लेकर अन्त तक मिलता है। और दूसरे आंशिक रूप में, जहाँ इसका प्रयोग कहानी के प्रसंग विशेष में किया जाता है। प्रथम कोटि की कहानियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' आदि का उल्लेख किया जा सकता है। द्वितीय कोटि में अनेक रचनाएँ आती हैं, जिनमें सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'नई कहानी का प्लाट' शीर्षक कहानी से यहाँ इस शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है--'लतीफ ऊंघने लगे। उन्होंने एक स्वप्न देखा। देखा कि सबेरे छः बजे घर पहुंच रहे है। सब लोग सो गये हैं, शायद भूखे ही सो गये हैं, क्योंकि पहले दिन सबेरे लतीफ घर से चले थे, तब उनके शाम तक कुछ प्रबन्ध करने की बात थी। किवाड़ बन्द है। लतीफ ने किवाड़ खटखटाया, फिर दुबारा खटखटाया। आखिर उनकी पत्नी ने आकर दरवाजा खोला और उन्हे देखते ही बन्दूक की गोली की तरह कहा---'खाना खा आये ?' फिर क्षण भर रुककर---'नही, कहाँ खा आये होगे ; मिला ही नहीं होगा। भरा पेट होता, तो भला घर आते ? लेकिन यहां क्या रखा है ? यहां रोटी नही है। जाओ, हमें मरने दो।' फिर वह किवाड़ बन्द करने को हुई, लेकिन न जाने क्या सोचकर रह गयी और एक हाथ से मुंह ढांपकर भीतर चली गयी, मियां लतीफ स्तब्ध रह गये, देखते रह गये। . . .तभी एक झोंके से स्वप्न टूट गया। वे चौंककर उठ बैठे। . . . .'[३७]

स्वप्न शैली के प्रयोग के माध्यम से बाल मनोविज्ञान के निरूपण तथा कहानी के पात्रों के चरित्रांकन की दृष्टि से यहां डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'लतीफ' शीर्षक कहानी से एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें इस शैली का आंशिक

३६. श्री अमृतराय, 'कस्बे का एक दिन', पृ० ४४।

३७. श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', 'परम्परा', पृ० ६७।

रूप से समावेश हुआ है—'उसी रात को उसने एक ख्वाब देखा। उसने अपने आपको दो भयानक जिनों से घिरा हुआ पाया। उनमें से एक के धड़ के ऊपर अब्बा की खोपड़ी थी और दूसरे के ऊपर साहब की। अब्बा के सिर वाला जिन अपने डरावने दांत निकालकर उससे कह रहा था, 'क्यों रे नालायक, तू मेरा बेटा होकर मुझी से चोरी करता है? तीन आने का एक अंग बेचता है और मुझे उसके दाम दो आने देता है। जा, इस धोखेबाजी का नतीजा यह होगा कि तुझे जहन्नुम में भी जगह न मिलेगी।' ..और साहब के सिर वाला जिन कह रहा था, 'क्यों बे, मेरा ही नमक खाता है और मुझी से दगा करता है। जा, पाप का यह पैसा तेरे बदन मे कोढ बनकर फूटेगा। अल्लाह, तेरा बेडा गर्क करेगा।' ...लतीफ को पसीना फूटने लगा, मारे डर के उसकी नींद टूट गयी।'[३८]

मनोविश्लेषणात्मक शैली

प्रेमचन्द युग से लेकर वर्तमान काल तक हिन्दी कहानी के क्षेत्र में जिन शैलियों का व्यवहार हुआ है, उनमें एक प्रमुख शैली मनोविश्लेषणात्मक शैली भी है। आधुनिक साहित्य पर मनोविज्ञान का प्रभाव बढ़ने के साथ ही साथ इस शैली का प्रयोग भी अधिकता से हुआ है। जैसा कि पीछे सकेत किया जा चुका है, पाश्चात्य मनोविश्लेषण शास्त्री सिगमंड फ्रायड ने इस क्षेत्र में कतिपय ऐतिहासिक मान्यताए प्रस्तुत की, जिन्होंने मानव-मन के वैज्ञानिक विश्लेषण में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। फ्रायड तथा उसके परवर्ती मनोविश्लेषण शास्त्रियों ने मनुष्य के मस्तिष्क का विश्लेषण करते हुए उसकी तीन प्रमुख स्थितियो की व्याख्या की और चेतन, अर्धचेतन तथा अचेतन अवस्थाओं के रूप में उन्हें मान्य किया। व्यक्ति अपनी जाग्रत और सुप्त अवस्थाओं में इन्ही से प्रभावित और परिचालित होता है। मनोविश्लेषण शास्त्र के सैद्धान्तिक रूप ने कथा क्षेत्रीय व्यापक सम्भावनाओ का निदर्शन किया। जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' आदि ने अपनी कहानियों मे मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग कर उस नयी दिशाए प्रदान की। इस शैली में लिखी गयी सफल कहानियों में इलाचन्द्र जोशी लिखित 'केस हिस्ट्री', 'रोगी', 'रात्रिचर', 'परित्यक्ता' तथा 'शराबी', सिया-

३८. डा० प्रतापनारायण टंडन, 'बदलते इरादे', पृ० ४४।

रामशरण गुप्त लिखित 'पथ में से', 'काकी', 'मुंशीजी' तथा 'झूठ सच', भगवतीचरण वर्मा लिखित 'वह फिर नहीं आई' तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'पुरुष का भाग्य', 'नम्बर दस' एवं 'रोज' आदि उल्लिखित की जा सकती हैं। इलाचन्द्र जोशी लिखित 'मिस एल्किन्स' शीर्षक कहानी से इस शैली का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है--'दूसरे दिन मैंने सहसा अपने प्रति मिस एल्किन्स के भाव में बहुत परिवर्तन पाया। वह भरसक जैसे मुझ से कतराकर चलने लगी। यदि कभी सहसा दोनों एक दूसरे के निकट आमने सामने हो जाते तो वह मेरे अभिवादन का उत्तर तक न देती और साफ कतराकर निकल जाती। ऐसा आकस्मिक आमूल भाव परिवर्तन जीवन में कम देखने में आता है। मैंने समझा, शायद मेरे किसी व्यवहार से असंतुष्ट है, जल्दी ही फिर अपने पुराने ढंग पर आ जायगी। पर दिन बीतते चले गये और उसके नये रूप में कण मात्र का अंतर न आया। मैं दंग रह गया . . . .।'[३९]

मनोविश्लेषणात्मक शैली का एक अन्य रूप भी मिलता है, जिसमें लेखक अपनी कहानी मे आयोजित पात्रों की विभिन्न मनःस्थितियों के परिचय के साथ साथ उ की स्वभावगत प्रतिक्रियात्मकता का भी विवेचन करता है, जो अन्ततः उसके मनोजगत के परिचालन सूत्रों का द्योतन करती है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार लिखित 'याद' शीर्षक कहानी से इस प्रकार एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'परन्तु सुलोचना भी पत्थर की नही बनी है। वह एक अनुभूतिशील नारी है। उसके भी हृदय है। क्या अच्छा है और क्या बुरा है, इसे वह पहचानती है। वह इस प्रतिभाशाली कवि के प्रति अविनीत हुई थी, इसका उसे खेद है। सुलोचना का भाई विनायक को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखता है, और जब कभी सम्भव होता है, उसे अपने घर तक चलने के लिए बाधित करता है। अपने कमरे के भीतर से सुलोचना ने अनेक बार देखा है कि निराशा का मूर्तिमान् अवतार सा एक युवक बड़ी झिझक के साथ उसकी कोठी के द्वार तक पहुंचता है और उसके बाद कोई न कोई बहाना कर सदा बाहर ही से वापस लौट जाता है।'[४०]

इस प्रकार से हिन्दी कहानी के क्षेत्र में विविध युगों के अन्तर्गत परम्परागत

३९. श्री इलाचन्द्र जोशी, 'खंडहर की आत्माएँ', पृ० ५३।
४०. श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, 'वापसी', पृ० २७।

शैलियों के विकास के साथ ही नवीन शैलियों का भी आविर्भाव होता रहा है। इन शैलियों में प्रचलन की दृष्टि से वर्णनात्मक शैली ही प्रमुख है। इसका प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से लेकर स्वातंत्र्योत्तर युग तक लिखी गयी अधिकांश कहानियों में हुआ है। इसी के साथ विश्लेषणात्मक शैली का भी उल्लेख किया जा सकता है, जो अपेक्षाकृत सूक्ष्म दृष्टिकोण का बोध कराती है। आत्मकथात्मक शैली भी प्रथम विकास युग से लेकर वर्तमान युग तक समान रूप से विकसित हुई है, जिसमें समस्त कथावस्तु का वर्णन प्रथम पुरुष के रूप में किया जाता है। संवादात्मक शैली का समावेश आंशिक रूप से तो भारतेन्दु युग से ही मिलता है, परन्तु संपूर्णात्मक रूप से मात्र इसी शैली में लिखी गयीं पूर्ण कहानियां प्रेमचन्द युग से उपलब्ध होती है। नाटकीय शैली आंशिक रूप में प्रायः भाव प्रधान कहानियों में व्यवहृत की जाती है। डायरी शैली का प्रयोग भी स्वतंत्र रूप से प्रेमचन्द काल से ही आरम्भ हुआ है। आंशिक रूप से इसका प्रयोग अन्य शैलियों के साथ भी किया जाता है। पत्र शैली हिन्दी कहानी के अपेक्षाकृत नवीन स्वरूप की द्योतक है। प्रेमचन्द युग तक इसका समावेश आंशिक रूप में ही मिलता है, परन्तु इसके उपरान्त यह एक स्वतंत्र शैली के रूप में कहानीकारों द्वारा प्रयुक्त की गयी है। काव्यात्मक शैली हिन्दी कहानी के सभी विकास युगों में प्रसगानुसार प्रयोग मे लायी गयी है। चंडीप्रसाद 'हृदयेश' जैसे कुछ कहानीकारो ने इसका विशेष रूप से प्रयोग किया है। लोककथात्मक शैली का सफल प्रयोग शिवसहाय चतुर्वेदी की कहानियों में मिलता है। मनोविश्लेषणात्मक शैली स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी के क्षेत्र में उपलब्ध सर्वप्रमुख शैली है। यह हिन्दी कहानी पर मनोविज्ञान के बढ़ते हुए प्रभाव की भी द्योतक है। स्मृतिपरक शैली का आंशिक रूप मे समावेश चरित्र प्रधान कहानियों में हुआ है। स्वप्न शैली भी अपने आंशिक और संपूर्णात्मक रूप में भारतेन्दु काल से लेकर वर्तमान काल तक की हिन्दी कहानी में समाविष्ट मिलती है।

शैली का महत्व

आधुनिक दृष्टिकोण से शैली कहानी का एक विशिष्ट उपकरण है। अनेक विचारकों ने शैली के महत्व का निरूपण करते हुए उसे रचनाकार के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बताया है। शैली का वैशिष्ट्य कहानी लेखक के व्यक्तित्व की मौलिक प्रतिभा सम्पन्नता का द्योतक होता है। हिन्दी के अनेक कहानीकार केवल शैली की

पृथक्ता के विचार से ही पहचाने जा सकते हैं। प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', चंडीप्रसाद 'हृदयेश', यशपाल, जैनेन्द्र कुमार, भगवतीचरण वर्मा तथा अमृतलाल नागर आदि कहानीकार शैलीगत भिन्नता की दृष्टि से विशेष रूप से उल्लिखित किये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, आधुनिक दृष्टिकोण से शैली को कहानी का न केवल प्रमुख वरन् प्राथमिक उपकरण भी माना जा सकता है। इसका कारण यह है कि शैली ही कहानी के अन्य तत्वों की अपेक्षा पाठक का ध्यान सर्वाधिक रूप में आकृष्ट करती है। आत्मकथात्मक, डायरी तथा पत्र शैलियां तो तुरन्त पाठक को आकर्षित करने में सफल होती हैं। सफल और उपयुक्त शैली अपेक्षाकृत अशक्त कथावस्तु से युक्त कहानी को भी आकर्षण प्रदान कर सकती है। इसका कारण यह है कि न केवल कथावस्तु वरन् कहानी के अन्य सभी उपकरणों से शैली तत्व अनिवार्य रूप में अन्तः-सम्बद्ध रहता है। यही नही, शैली ही वह तत्व है जो कहानी के अन्य उपकरणों की रूपात्मक निर्मिति में सहायक होता है। कहानी में शैली तत्व की क्षेत्रीय प्रयोगात्मकता, इसके अभिनव रूपों का जन्म तथा अन्य तत्वों की अपेक्षा इसकी आनुपातिक महत्ता में वृद्धि आदि तथ्य आधुनिक कहानी में शैली के महत्व के परिचायक हैं।

अध्याय ११

कहानी में वातावरण

वातावरण का स्वरूप

कहानी के सातवें मूल तत्व के रूप में देश-काल अथवा वातावरण को मान्य किया जाता है। इस तत्व की आयोजना कहानी को विश्वसनीय एवं यथार्थात्मक पृष्ठभूमि प्रदान करने के लिए की जाती है। कहानी में संग्रथित घटना व्यापार तथा पात्र योजना के अनुकूल वातावरण के चित्रण से उसकी सफलता की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। यदि किसी कहानी में इस तथ्य की उपेक्षा रहती है, तो पाठक कहानी की सामाजिक, राजनीतिक तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अपरिचित रहता है। कहानी में देश-काल अथवा वातावरण तत्व के अन्तर्गत उसकी उपर्युक्त पृष्ठभूमि के साथ ही सांस्कृतिक परम्पराओं, सामाजिक आचार विचार, रहन सहन तथा रीति रिवाज आदि का भी चित्रण किया जाता है। इसका नियोजन कहानी की कलात्मक पृष्ठभूमि, रचना काल, घटनात्मक आधार तथा पात्रों के वर्ग और स्तर के अनुकूल किया जाता है।

हिन्दी के अनेक प्रमुख साहित्यालोचकों ने कहानी में देश-काल का स्वरूप स्पष्ट किया है। डा० गुलाब राय के विचार से 'कहानी में उपन्यास की भांति वातावरण के चित्रण के लिए अधिक गुंजाइश नहीं होती है, फिर भी कहानी में देश-काल की स्पष्टता लाने के लिए तथा कार्य से परिस्थिति की अनुकूलता व्यंजित करने के अर्थ इसका चित्रण आवश्यक हो जाता है। वातावरण भौतिक और मानसिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है और भौतिक वातावरण भी प्रायः ऐसा होता है कि जो पात्रों की स्थिति की व्याख्या में सहायक हो।' डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने कहानी में वातावरण अथवा परिस्थिति योजना का स्वरूप स्पष्ट करते हुए बताया है कि 'इसका प्रधान उद्देश्य होता है संपूर्ण कथानक के भीतर आयी हुई क्रियाओं और परिणामों का तर्कसंगत क्रमन्यास। यथार्थता को कल्पना की सीढ़ियों से ऐसा सजाना चाहिए कि

किसी घटना अथवा कर्म के पूर्व की समस्त परिस्थितियां कड़ी के रूप में संघठित मालूम पड़ें। पाठक को यह विदित होना चाहिए कि अमुक कार्य के पहले उसके मूलभूत कारण किस रूप में उपस्थित थे। परिस्थितियों की सीढ़ी चढ़कर ही कोई परिणाम-शिखर पर पहुँचता है और चमत्कृत हो सकता है।' प्रो० देवमिश्र ने कहानी में वातावरण के माध्यम से प्रभावात्मकता की वृद्धि की ओर संकेत करते हुए बताया है कि 'वातावरण कहानी का मुख्य साधन है, जिसके द्वारा पाठक को रस की स्थिति तक पहुँचाया जाता है। कविता के क्षेत्र का उद्दीपन विभाव गद्य के प्रमुख अंग कहानी में, वातावरण के रूप में, अवतरित होता है। वातावरण द्वारा ही पाठक अभिभूत होता है। इसी के द्वारा कहानी की मुख्य संवेदना को अधिक तीव्र और गहरा बनाया जाता है। गीत में जैसे संगीत, तुक, लय अथवा शब्द चयन आदि के द्वारा गीत के प्रभाव को अधिक तीव्र और गहरा बनाया जाता है, ठीक उसी तरह कहानी में वातावरण के माध्यम से कहानी की प्रभावमयता को तीव्र एवं गहरा किया जाता है।' डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने कहानी मे देश-काल और वातावरण चित्रण के विषय में विचार करते हुए लिखा है कि 'वास्तविक जीवन देश, काल और जीवन की विभिन्न सत्-असत् परिस्थितियों से निर्मित होता है। अतएव इन तत्वों का एक स्थान पर संचयन और चित्रण करना कहानी में वातावरण उपस्थित करना है। कहानी की कथावस्तु और उसके संचालक पात्रों का सम्बन्ध उक्त स्थितियों से होता है, अर्थात् इनका उद्गम सूत्र और सम्बन्ध किसी देश में होगा या किसी विशिष्ट स्थान अथवा प्रदेश में होगा।'

पाश्चात्य साहित्यालोचकों ने भी कहानी के स्वरूप पर विचार करते हुए देश, काल और वातावरण के चित्रण की आवश्यकता पर बल दिया है। डब्लू० बी० पिटर्सन ने इस तथ्य का निरूपण किया है कि प्रायः कहानी के इस तत्व के विषय में भ्रांतिपूर्ण धारणा का पाठकों में प्रचार रहता है। उसने बताया है कि तथ्यतः वातावरण और परिस्थिति योजना दो भिन्न वस्तुएँ हैं। उसने यह भी संकेत किया है कि दृश्यचित्रण के माध्यम से कहानी में अपेक्षित वातावरण का प्रभाव नहीं उत्पन्न किया जा सकता। ए० एम० ग्लेन क्लार्क ने कहानी में वातावरण के स्वरूप पर विचार करते हुए स्थानीय रंग से उसका अन्तर स्पष्ट किया है। उसके मतानुसार सफल वातावरण कहानी के पाठक पर संवेदनात्मक प्रभाव डालता है। स्थानीय रंग से जहाँ एक ओर किसी स्थल विशेष की अपनी विशेषताएं स्पष्ट होती हैं, वहाँ वातावरण कहानी में नियोजित पात्र की भावनाओं को प्रभावित करता है।

इस प्रकार से कहानी में देश, काल अथवा वातावरण के अन्तर्गत युगीन परि-स्थितियों और उनके नियामक वैचारिक आन्दोलनों की भूमिका प्रस्तुत की जाती है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से समाज की स्थिति निरन्तर परिवर्तनशील रहती है। विभिन्न युगों में सामाजिक मान्यताओं में भी परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन बहुधा समाज की विकासशीलता का भी द्योतक होता है। इसके समानान्तर ही मनुष्य की वैयक्तिक धारणाएं भी बदलती रहती हैं। कलात्मक दृष्टिकोण से कहानी में सफल वातावरण के चित्रण के लिए लेखक को अपने वर्ण्य विषय के अनुसार उन सभी आन्दोलनों की सम्यक पृष्ठभूमि भी निरूपित करनी चाहिए, जिन्होंने विभिन्न पात्रों के व्यक्तित्व के निर्धारण में योग दिया है। यदि कहानीकार किसी पात्र के माध्यम से समकालीन विचारधारा का परिचय देता है, तो उसे विश्वसनीय बनाने के लिए उसके आधारभूत विचारान्दोलन का परिचय भी अपेक्षित है। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द के कहानी साहित्य में जो वातावरण चित्रित किया गया है, उसका आधार बीसवीं अर्द्ध शताब्दी के भारतीय जीवन का समग्र स्वरूप है। प्रेमचन्द ने इस काल की सामाजिक समस्याओं, समाज सुधार विषयक आन्दोलनों, राजनीतिक समस्याओं, राष्ट्रीय चेतना, स्वाधीनता के लिए किये गये आन्दोलनों, मार्क्सवाद, गांधीवाद, शोषण, औद्योगिक क्रान्ति आदि के माध्यम के जन जीवन का विशद इतिहास अपनी रचनाओं में देश, काल अथवा वातावरणके रूप में प्रस्तुत किया है।

वातावरण प्रधान कहानी

जिस रचना में कहानी के सभी मूल उपकरणों में आनुपातिक दृष्टि से देश, काल अथवा वातावरण के चित्रण को अपेक्षाकृत अधिक महत्व प्रदान किया गया हो, उसे वातावरण प्रधान कहानी की कोटि में रखा जाता है। कहानी की आकारगत सीमा के कारण उसमें किसी भी क्षेत्र के अन्तर्गत अधिक विस्तार अनपेक्षित होता है। इसीलिए देश-काल और वातावरण तत्व का निरूपण भी कहानी में यथासम्भव संक्षिप्त रूप में ही मिलता है। परन्तु फिर भी अनेक कहानियाँ ऐसी मिलती हैं, जिनमें न केवल कहानी की पृष्ठभूमि को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए देश-काल अथवा वातावरण का चित्रण किया जाता है, वरन् यही तत्व कहानी की रचना का मूल आधार भी होता है। इस वर्ग की वातावरण प्रधान कहानी में अन्य तत्वों का सम्यक् निर्वाह भी अपेक्षाकृत कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिए यहां किशोरीलाल गोस्वामी लिखित

'इन्दुमती' तथा रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' शीर्षक कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें वातावरण की प्रभावपूर्ण व्यंजना करने का यत्न किया गया है, परन्तु तात्विक असन्तुलन कलात्मक अपरिपक्वता का द्योतक है। इनके विपरीत प्रेमचन्द लिखित 'शतरंज के खिलाड़ी' तथा जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पुरस्कार' शीर्षक कहानियों में अन्य तत्वों के सम्यक् निर्वाह के साथ वातावरण की सफल योजना हुई है। इसी प्रकार से चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था', भगवतीचरण वर्मा लिखित 'दो बांके', यशपाल लिखित 'मक्रील', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'रोज', राहुल सांकृत्यायन लिखित 'बड़ी रानी', विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' लिखित 'विद्रोही', चन्द्रगुप्त विद्यालंकार लिखित 'कामकाज', उपेन्द्रनाथ 'अश्क' लिखित 'कहानी लेखिका और झेलम के सात पुल' तथा डा० प्रभाकर माचवे लिखित 'टीका' आदि कहानियो मे इस तत्व को प्रधानता देते हुए इसकी सफल अभिव्यंजना हुई है।

देश-काल का स्वरूपात्मक विकास

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी कहानी में नियोजित देश-काल अथवा वातावरण तत्व के स्वरूपात्मक विकास का अध्ययन करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि प्रथम विकास युग से ही इस तत्व की ओर कहानी लेखकों द्वारा समुचित ध्यान दिया गया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती' तथा 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' में समकालीन जीवन की पृष्ठभूमि में सामाजिक वातावरण का यथार्थपरक चित्रण हुआ है। राधाचरण गोस्वामी लिखित 'यमपुर की यात्रा' शीर्षक कहानी मे भी सामाजिक वातावरण का बहुपक्षीय चित्रण किया गया है। किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' शीर्षक कहानी मे ऐतिहासिक वातावरण का चित्रण हुआ है। रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय', केशव प्रसाद सिंह लिखित 'आपत्तियों का पहाड़', पार्वतीनन्दन लिखित 'प्रेम का फुव्वारा' तथा गंगाप्रसाद अग्निहोत्री लिखित 'सच्चाई का शिखर' आदि कहानियों मे चित्रित वातावरण अधिकांशतः काल्पनिक है और उसमें यथार्थता का अभाव है। सामाजिक तथा ऐतिहासिक वातावरण के अतिरिक्त इस युग में रुद्रदत्त भट्ट लिखित 'अजीबदास की जासूसी' जैसी रचनाओं में जासूसी वातावरण का भी चित्रण हुआ है। समकालीन सामाजिक जीवन की पृष्ठभूमि में धार्मिक वातावरण और उसके क्षेत्र में व्याप्त अंध-

विश्वासों तथा मिथ्या प्रदर्शन की भावनाओं का भी सम्यक् चित्रण हुआ है। इससे यह स्पष्ट है कि इस युग के कहानीकारों ने इस तत्व की उपेक्षा तो नहीं की है, परन्तु इसके क्षेत्र में अधिक सजगता भी नहीं दिखायी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि इस काल में लिखी गयी कहानियों में देश-काल और वातावरण चित्रण का परिष्कृत स्वरूप नहीं दृष्टिगत होता है।

द्वितीय विकास कालीन हिन्दी कहानी में देश-काल और वातावरण तत्व का भली प्रकार से नियोजन हुआ है। इस युग में प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का कलात्मक रूप में चित्रण किया है। सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत प्रेमचन्द ने न केवल नागरिक सामाजिक वातावरण का चित्रण किया है, वरन् ग्रामीण सामाजिक वातावरण का भी विस्तृत क्षेत्रीय अंकन उनकी रचनाओं में हुआ है। 'आत्माराम', 'क़फ़न', 'पूस की रात', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'बड़े घर की बेटी' तथा 'न्याय' आदि कहानियों में प्रेमचन्द ने विविध क्षेत्रीय वातावरण का सफल अंकन किया है। 'उन्माद' जैसी कतिपय कहानियों में प्रेमचन्द ने विदेशी पृष्ठभूमि में सामाजिक वातावरण का चित्रण किया है, जो पौर्वात्य और पाश्चात्य सामाजिक दृष्टिकोण के वैषम्य का द्योतक है। इसी प्रकार से 'जिहाद' शीर्षक कहानी में प्रेमचन्द ने इस्लामी तीर्थ स्थलों की पृष्ठभूमि में वातावरण का प्रभावपूर्ण नियोजन किया है। इस काल मे चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने भी 'उसने कहा था' कहानी में प्रादेशिक विशेषताओं के साथ विदेश में युद्ध की पृष्ठभूमि का सजीव चित्रण किया है। विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' की कहानियों में सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत पारिवारिक स्थितियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। जयशकर 'प्रसाद' ने अपनी विविध विषयों पर आधारित कहानियों में सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक वातावरण का सफल चित्रण किया है। 'ममता', 'पुरस्कार', 'आकाशदीप', 'मधुआ', 'गुडा' तथा 'देवदासी' आदि कहानियों के नाम इस दृष्टि से उल्लिखित किये जा सकते हैं। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने अपनी कहानियों में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक वातावरण का चित्रण किया है। चतुरसेन शास्त्री ने सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक वातावरण प्रधान कहानियों की रचना की है। 'सोया हुआ शहर', 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी', 'क्रान्तिकारिणी' तथा 'मुखबिर' आदि कहानियाँ वातावरण के सफल चित्रण की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपनी

कहानियों में अधिकांशतः सामाजिक वातावरण का यथार्थपरक दृष्टिकोण से अंकन किया है। जैनेन्द्र कुमार ने विभिन्न विषयों पर बहुसंख्यक कहानियों की रचना की है। उनकी कहानियों में सामाजिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, पौराणिक, धार्मिक तथा राजनीतिक वातावरण के चित्रण की दृष्टि से 'देवी देवता', 'वह सांप', 'नीलम देश की राजकन्या', 'फांसी', 'जयसन्धि' तथा 'अभागे लोग' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचन्दोत्तर काल में देश-काल और वातावरण के चित्रण के क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्मता दृष्टिगत होती है। पूर्ववर्ती युग में इस तत्व के क्षेत्र में वैविध्य की दृष्टि से पर्याप्त विकास हुआ था। इस युग में देश-काल और वातावरण के सभी परम्परागत रूपों के विकास के साथ उनका स्वरूप भी परिष्कृत हुआ। राजनीतिक चेतना के इस विशिष्ट युग में राजनीतिक वातावरण प्रधान कहानियां भी बड़ी संख्या में लिखी गयीं। सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत पारिवारिक मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का अंकन हुआ। भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कहानियों में मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन का बहुपक्षीय वातावरण की पृष्ठभूमि में चित्रण किया गया है। 'सुदर्शन' की 'हार की जीत' आदि कहानियों में भी आदर्शपरक दृष्टिकोण से सामाजिक वातावरण चित्रित हुआ है। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने भी राजनीतिक, सामाजिक वातावरण का चित्रण 'गांधी टोपी' आदि कहानियों में आदर्शपरक दृष्टिकोण से ही किया है। सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत नारी समाज और पारिवारिक चित्रण की दृष्टि से उषादेवी मित्रा का नाम उल्लेखनीय है। भगवतीचरण वर्मा की 'प्रायश्चित्त', 'दो बांके' तथा 'वह फिर नहीं आई' कहानियों में सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का सूक्ष्म चित्रण हुआ है। इलाचन्द्र जोशी ने सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत व्यक्ति की मूलतः मनोवैज्ञानिक विकृतियों और विरूपताओं का चित्रण किया है। 'होली और दीवाली', 'क्रान्तिकारिणी महिला' तथा 'मैं' आदि कहानियां इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने 'चिड़ियाघर', 'कैसेंड्रा का अभिशाप', 'रोज' तथा 'विपथगा' आदि कहानियों में सामाजिक, राजनीतिक वातावरण का अंकन किया है। उपेन्द्र नाथ 'अश्क' ने 'डाची', 'गोखरू', 'कहानी लेखिका और झेलम के सात पुल' तथा 'छींटे' आदि कहानियों में सामाजिक, राजनीतिक वातावरण का यथार्थपरक चित्रांकन किया है। यशपाल ने भी अपनी कहानियों में सामाजिक, राजनीतिक वातावरण का

यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने 'वह दुनिया', 'फूलों का कुर्ता' तथा 'धर्मयुद्ध' आदि कहानी संग्रहों में इस सन्दर्भ में जीवन के विपर्यय सूचक चित्र प्रस्तुत किये हैं। डा० वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक व सामाजिक कहानियों में स्थानीय रंगों का भी सफलतापूर्वक समावेश किया है। बुंदेलखंड की प्रादेशिक विशेषताओं, स्थानीय रहनसहन, आचार विचार, ग्रामीण भाषा शैली, प्राकृतिक सौन्दर्य, भौगोलिक विशेषताओं आदि का आधिकारिक चित्रण उनकी कहानियों की विशेषता है। राय कृष्णदास की कहानियों में चित्रित सामाजिक वातावरण सांस्कृतिक विशेषताओं से युक्त है। शिवपूजन सहाय तथा रामवृक्ष बेनीपुरी ने बिहार प्रदेश की पृष्ठभूमि में सामाजिक वातावरण का आदर्शपरक चित्रण किया है। आदर्शवादी दृष्टिकोण से सामाजिक वातावरण का प्रस्तुतीकरण करने वाले इस युग के अन्य कहानीकारों में मोहनलाल महतो 'वियोगी', श्रीमती होमवती देवी, विनोदशंकर व्यास, कमलाकान्त वर्मा, गोविन्दवल्लभ पन्त, वाचस्पति पाठक, विश्वंभरनाथ जिज्जा, कमलादेवी चौधरी तथा देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सामाजिक वातावरण का यथार्थपरक दृष्टिकोण से चित्रण करने वाले कहानीकार चन्द्रगुप्त विद्यालंकार तथा मन्मथनाथ गुप्त हैं। इनकी कहानियों में राजनीतिक वातावरण भी चित्रित हुआ है।

स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिन्दी कहानी में वातावरण चित्रण का सर्वाधिक व्यापक क्षेत्रीय और वैविध्यपूर्ण रूप मिलता है। स्वतंत्रता प्राप्ति तथा भारत विभाजन के उपरान्त उत्पन्न होने वाली जटिल परिस्थितियों ने जन चेतना को जाग्रत किया। वैचारिक आन्दोलनों ने भी नवीन सामाजिक संरचना की भूमिका प्रस्तुत की। राजनीतिक गतिविधि में भी तीव्रता आयी। फलतः हिन्दी कहानी के क्षेत्र में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का विशद और प्रभावशाली चित्रांकन हुआ। अमृतलाल नागर ने अपनी कहानियों में जहां एक ओर शहरी वातावरण का विशिष्ट आंचलिक विशेषताओं से युक्त चित्रण किया, वहां दूसरी ओर युद्ध की विभीषिका और उसके फलस्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थितियों का भी यथार्थपरक चित्रण किया। सांस्कृतिक वातावरण के अन्तर्गत उन्होंने नवाबी संस्कृति के अवशिष्ट स्वरूप का प्रभावशाली चित्रण किया है। रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' ने मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में समाज के विविध पक्षों का चित्रण किया है। सत्यजीवन वर्मा 'भारतीय' ने आदर्शपरक दृष्टिकोण से सामाजिक वातावरण के

अन्तर्गत पारिवारिक परिस्थितियों का अंकन किया है। राजनीतिक, सामाजिक वातावरण का यथार्थपरक आधारभूमि पर चित्रण करने वाले कहानी लेखकों में अमृतराय, बलवन्त सिंह, विष्णु प्रभाकर तथा नरेश मेहता आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मनोवैज्ञानिक और बौद्धिक दृष्टिकोण से सामाजिक वातावरण का बहुपक्षीय चित्रण करने वाले कहानीकारों के अन्तर्गत राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, निर्मल वर्मा, कमल जोशी, उषा प्रियंवदा तथा रमेश बक्षी के नाम उल्लिखित किये जा सकते हैं। फणीश्वर नाथ 'रेणु' तथा अमरकान्त आदि की कहानियों में आंचलिक विशेषताओं से युक्त ग्रामीण वातावरण का यथार्थपरक चित्रण मिलता है। इस काल के अन्य कहानीकारों ने भी विविध क्षेत्रीय वातावरण का चित्रण कथावस्तु की पृष्ठभूमि और घटना क्षेत्र के औचित्य का निर्वाह करते हुए प्रस्तुत किया है।

देशकाल और स्थानीय रंग

देश-काल और वातावरण के चित्रण के अन्तर्गत स्थानीय रंग अथवा 'लोकल कलर' की भी योजना की जाती है। स्थानीय रंग की निहिति से कहानी में प्रस्तुत कथावस्तु को सम्यक् पीठिका नियोजित हो जाती है। सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक अथवा राजनीतिक वातावरण प्रधान कहानियों में स्थानीय रंग का विशेष औचित्य होता है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री की लिखी हुई 'हल्दी घाटी' शीर्षक कहानी में जो ऐतिहासिक वातावरण चित्रित किया गया है, वह स्थानीय रंग से युक्त है। इस कहानी का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है, जो हल्दी घाटी के प्रसिद्ध मैदान और उस पर खड़ी सेनाओं का प्रभावपूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है—'तीस हजार योद्धा उपत्यका के समतल मैदान में व्यूहबद्ध खड़े थे। घोड़े हिनहिना रहे थे और योद्धाओं की तलवारें झनझना रही थीं। उस समय धूप कुछ तेज हो गयी थी। बादल फट गये थे। सुनहरी धूप में योद्धाओं के जिरह बख्तर और उनके भालों की नोकें बिजली की तरह चमक रही थीं। वे सब लौह पुरुष थे—सच्चे युद्ध के व्यवसायी, जो मृत्यु के साथ खेलते थे और जिन्होंने जीवन को विजय कर लिया था। वे देश और जाति के पिता थे। वे वीरों के वंशधर और स्वयं वीर थे। वे अपनी लौहे की छाती की दीवारें बनाये निश्चल खड़े हुए थे। चारण और बंदीगण कड़खे की ताल पर

विरद गा रहे थे। धौंसे बज रहे थे। घोड़े और सिपाही सब कोई उतावले हो रहे थे।"[1]

स्थानीय रंग का एक रूप मुगल कालीन ऐतिहासिक कहानियों में चित्रित वातावरण के अन्तर्गत भी मिलता है। यह अतीत युगों के वैषम्यपूर्ण स्वरूप का भी परिचायक है। डा० वृन्दावनलाल वर्मा लिखित 'गवैये की सूबेदारी' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में दिल्ली की विरूपता का चित्रण है-–'जुलाई सन् १७१२ में दिल्ली अकाल के मारे कराह रही थी, परन्तु बादशाह जुलाई की वर्षा में भी दिवाली मना रहा था, क्योंकि कठिनाइयों को पार करके आराम की जिंदगी पायी थी। महीने में तीन बार शान के साथ चिराग़ जलाये जायं—यह फ़रमान जारी हो चुका था। दो रोशनियों में ही दिल्ली का तेल खतम हो गया, और भाव रुपये का आध सेर। तीसरी रोशनी २५ जुलाई को होनी थी। तेल था नहीं, इसलिए घी की बारी आयी। घी के दिये जले। दिल्ली जगमगा उठी।"[2]

देशकाल और आंचलिक चित्रण

कहानी में देश-काल और वातावरण के अन्तर्गत आंचलिक चित्रण प्रथम विकास काल में लिखी गयी रचनाओं से ही मिलता है। प्रेमचन्द काल में लिखी गयी कहानियों में इसके अन्तर्गत सामान्य रूप से ग्रामांचलों का चित्रण मिलता है। परवर्ती युगों में आंचलिक चित्रण की अपेक्षाकृत भिन्न परम्परा प्रशस्त हुई। इसका आधार लोकस्तरीय है, जिसमें विशिष्ट क्षेत्र की भाषा, सभ्यता, संस्कृति और मान्यताओं आदि का विशद चित्रण होता है। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में एक नवीनता यह भी मिलती है कि पूर्ववर्ती कहानी में आंचलिक चित्रण की पृष्टभूमि में प्रायः लेखक का आदर्शपरक दृष्टिकोण विद्यमान रहता था, जब कि वर्तमान कहानी में आंचलिक चित्रण का आधार यथार्थपरक दृष्टिकोण है। प्रेमचन्द की कहानियों में उत्तरी भारत के ग्रामांचलों का व्यापक चित्रण मिलता है। ग्रामों में जन स्तर पर जाग्रत होने वाली चेतना का भी सम्यक् निरूपण प्रेमचन्द ने किया है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने बिहार के पूर्णिया

१. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, 'मेरी प्रिय कहानियाँ', पृ० १२४।
२. डा० वृन्दावनलाल वर्मा, 'कलाकार का दंड', पृ० ४७।

आदि जिलों के अन्तर्गत कतिपय ग्रामांचलों का विस्तृत चित्रण किया है। डा० वृन्दावनलाल वर्मा ने बुन्देलखंड प्रदेश के विविध ग्रामों का समुचित आंचलिक चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। यहां पर वर्माजी की लिखी हुई 'अपनी बीती' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—"मैं श्यामसी में था, जहां रेल, तार, डाक, सड़क वड़क कोसों तक कुछ नहीं। झांसी जाना था। बैलगाड़ी ही एकमात्र साधन। बेतवा बीच में। नाव खेने वालों की मर्जी, जब चाहे लगावें, न लगावें। दस ग्यारह घंटे झांसी जाने के लिए चाहिए। उतरती मई का महीना। दिन में तेज लू। पर झांसी पहुंचना था—बुंदेलखंडी के लिए लू और जंगल एक सामान्य बात है। गाड़ी ऐसी कि जिसके पहियों की पुठियां टूटी फूटी और कुछ झकोली भी। उस पर लोहे की हाल जजर पजर। पर जाना तो उसी पर था। पहियों पर सांझ को ही पानी की ढलाई करवाई, जिसमें उनके अर्रे और पुठियां फूलकर तन जायें और लोहे की हाल ढीली न रहे।...."[3]

देशकाल और लोक तत्व

काहनी में देशकाल और वातावरण के अन्तर्गत लोक तत्वों का भी समावेश किया जाता है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, प्राचीन भारतीय लोक कथा साहित्य का व्यापक प्रभाव आधुनिक कहानी पर मिलता है। आधुनिक हिन्दी कहानी की कुछ प्रवृत्तियों का विकास भी लोक तत्वों के आधार पर हुआ है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में जहां एक ओर ऐसी कहानियां बड़ी संख्या में उपलब्ध होती है, जो प्राचीन लोक कथा साहित्य के अनुवाद रूप में प्रस्तुत की गयी हैं, वहां दूसरी ओर ऐसी रचनाओं की संख्या भी कम नहीं है, जो इनका अनुवाद हैं। इन कथाओं में अत्यन्त रोचक ढंग से नीति तत्वों का सार प्रस्तुत किया गया है। इन कथाओं का देश विदेश में पर्याप्त प्रचार भी हुआ है। इनसे पाठकों को नीति की शिक्षा मिलने के साथ साथ उनका मनोरंजन भी होता है। इन कथाओं में से अधिकांश पशु-पक्षियों को आधार बनाकर लिखी गयी हैं। मानव पात्रों के समान ही इनमें पशु और पक्षी पात्रों की भी योजना की गयी है। इसलिए ये कथाएं जन जीवन के समकालीन स्वरूप का व्यापक क्षेत्रीय बोध कराने में समर्थ हैं। अनेक नवीन शिल्प रूपों के उद्गम और विकास के

३. डा० वृन्दावनलाल वर्मा, 'शरणागत', पृ० ६४।

समानान्तर ही ये कथाएं भी अपने रूपगत वैशिष्ट्य के कारण आज भी लोकप्रिय हैं। यहाँ पर डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'गीदड़ राजा' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—'पुराने समय में एक जंगल में एक गीदड़ रहता था। एक बार उसे कई दिनों तक खाने के लिए कुछ न मिला। इसलिए अपने भोजन की तलाश में वह शहर की तरफ चला गया। शहर में इस अजनबी पशु को देखकर तमाम कुत्ते भौंकते हुए उसके पीछे लग गये। उन कुत्तों से भयभीत होकर वह गीदड़ अपनी दुम दबाकर तेजी से भागा। संयोग की बात कि उसे एक रंगसाज के घर का दरवाजा खुला मिल गया। बस, वह उसी में से होकर भीतर चला गया और पीछा करने वाले कुत्तों से अपनी जान बचायी।"[४]

देशकाल के गुण

कहानी में देशकाल और वातावरण के सफल चित्रण के लिए उसमें कतिपय गुणों का समाविष्ट होना आवश्यक है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से देशकाल का चित्रण कहानी की कथावस्तु तथा पात्र योजना के अनुरूप होना चाहिए। इसलिए देशकाल के सफल नियोजन के लिए कतिपय नियमों का पालन भी आवश्यक है, जिनका अनुसरण करके ही कहानीकार इसे स्वरूपात्मक परिपूर्णता प्रदान कर सकता है। यदि ऐसा नहीं होता तो देशकाल के चित्रण से कहानी में विश्वसनीयता और प्रभावात्मकता आने के स्थान पर नीरसता और कृत्रिमता आ जाती है। देशकाल के गुणों अथवा विशेषताओं के अन्तर्गत संक्षिप्तता, वास्तविकता, आलंकारिकता, चित्रात्मकता, वर्णन की सूक्ष्मता तथा तत्वगत सन्तुलन आदि की गणना की जाती है, जिनकी सोदाहरण व्याख्या संक्षेप में यहां प्रस्तुत की जा रही है।

संक्षिप्तता—आकारगत लघुता के कारण कहानी में देशकाल और वातावरण के चित्रण को संक्षिप्त होना चाहिए। कथावस्तु और घटना क्षेत्र की पृष्ठभूमि का निरूपण करते हुए यदि कहानीकार विस्तृत वातावरण प्रस्तुत करेगा, तो कहानी के अन्य तत्वों से उसका पारस्परिक सन्तुलन नष्ट हो जायगा तथा उसमें नीरसता भी आ जायगी। इसलिए कहानी में चित्रित वातावरण को संक्षिप्त और प्रसंग के अनुकूल होना चाहिए तथा उसी से सम्बद्ध होकर कथावस्तु का भावी विकास भी दिखाया

४. डा० प्रतापनारायण टंडन, 'नीति की कहानियां', पृ० ९।

जाना चाहिए। इस दृष्टि से प्रेमचन्द की कहानियों में चित्रित वातावरण को सर्वथा औचित्यपूर्ण कहा जा सकता है, जिसमें देशकाल के संक्षिप्त परिचयात्मक उल्लेख के उपरान्त कथासूत्र का विकास होता है। उदाहरण के लिए यहां प्रेमचन्द लिखित 'उन्माद' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक अंश प्रस्तुत किया जा रहा है, जो कथा-वस्तु और पात्रों के अनुकूल और संक्षिप्त है—'रात के नौ बजे थे। मनहर लंदन के एक फैशनेबुल रेस्ट्रां में बना ठना बैठा था। उसका रंग रूप और ठाठ बाट देखकर सहसा यह कोई नहीं कह सकता था कि वह अंगरेज नहीं है। लंदन में भी उसके सौभाग्य ने उसका साथ दिया था। उसने चोरी के कई गहरे मुआमलों का पता लगा दिया था, इसलिए उसे धन और यश दोनों ही मिल रहा था।....'[५]

वास्तविकता—कहानी में चित्रित देशकाल अथवा वातावरण तत्व में वास्तविकता होनी चाहिए। कहानीकार अपनी रचना में युग जीवन के चाहे जिस पक्ष का चित्रण करे, वह पाठक को तभी प्रभावित कर सकता है, जब उससे वास्तविकता का बोध हो। विशुद्ध कल्पना पर आधारित वातावरण चित्रण पाठक पर कोई प्रभाव नहीं डालते। जासूसी अथवा तिलिस्मी कहानियों में चित्रित वातावरण पाठक की कौतूहल वृत्ति का अस्थायी रूप से अवश्य शमन कर देते हैं, परन्तु उन्हें वह विश्वसनीय अथवा यथार्थ नहीं समझता। यद्यपि साहित्य में कल्पना तत्व का अनिवार्य रूप में समावेश होता है, परन्तु वह इस रूप में अभिव्यंजित होना चाहिए कि पाठक को यथार्थ आभासित हो। इस दृष्टिकोण से कहानी में प्रस्तुत युग, समाज अथवा प्रकृति के चित्रण में इस गुण का समावेश आवश्यक है। श्रीमती उषादेवी मित्रा लिखित 'प्रथम छाया' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—'शिव शिव, सृष्टि के परे वह गंभीर निनाद आकाश पाताल को एकाकार कर रहा था।...श्यामल पर्वत के अन्तःस्थल में गुप्तेश्वर महादेव के मन्दिर के सिरहाने बादल का एक हलका सा टुकड़ा झूम पड़ा था, शायद मन्दिर का आलिंगन करने की नीयत से।....पुराने वृक्षों की सबल शाखाएं असीम स्पर्द्धा, अति आशा से अपने चिर नूतन वलेश्वर को बढ़ाती चली जा रही थीं। कदाचित् गगन के उस लोभनीय अंश को वे अपने बाहुओं में बन्दी करना चाहती हों, अनन्त काल के लिए। मन्दिर पथ के दोनों ओर घुंघचियों की डालें पके फलों की डाली

५. मुंशी प्रेमचन्द, 'मानसरोवर', भाग २, पृ० ११७।

साजे, सिर नवाये खड़ी थी—अधीर प्रतीक्षा की आकुल सिरहन हुए पत्तों की आड़ में दाबे, शायद मन्दिर खोह के देवता को रस-भरे फल लुटाना चाहती हों।'[६]

आलंकारिकता—कहानी में चित्रित देशकाल और वातावरण के चित्रण में कहानी के वर्ण्य विषय तथा प्रसंग के अनुसार आलंकारिकता का समावेश भी होता है। यह गुण प्रायः भावपरक कहानियों में अधिक मिलता है, क्योंकि उनमें चित्रित वातावरण का आधार अधिकांशतः प्राकृतिक दृश्य होते हैं। रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'पुरस्कार', प्रेमचन्द लिखित 'दो कब्रें', चंडीप्रसाद 'हृदयेश' लिखित 'प्रणय परिपाटी', कमलादेवी चौधरी लिखित 'साधना का उन्माद' तथा विनोदशंकर व्यास लिखित 'कल्पनाओं का राजा' आदि कहानियों में चित्रित वातावरण इसी गुण से युक्त है। विष्णु प्रभाकर लिखित 'जिन्दगी के थपेड़े' शीर्षक कहानी से इस प्रकार के वातावरण चित्रण का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है--
'...उसके सामने कलकल, छलछल करती हुई पहाड़ी नदी थी, जिसका जल पत्थरों से टकराता, शोर मचाता और नाचता हुआ आगे बढ़ रहा था। उस नदी के एक किनारे पर धर्मशाला थी। उसी के ठीक सामने पुल पार करके सहस्र-धारा की काली गुफा दिखाई दे रही थी, जिसकी छाती को चीरकर पानी की असंख्य बूंदें टपक रही थी, मानो कोई शापग्रस्त वरुण वहां आ बसा है और यक्ष के समान अपनी प्रियतमा के विरह में रुदन कर रहा है। यह विधाता का वैचित्र्य है कि देवता का रुदन आदमी के रुदन को शान्त करता है। और यही नहीं, अनजाने ही उन अनन्त वर्षों में शापग्रस्त देवता के आंसुओ ने उन बेजात पत्थरों को कला के अनेक रूपों में पलट दिया था।'[७]

चित्रात्मकता—कहानी में प्रस्तुत वातावरण की एक विशेषता उसकी चित्रात्मकता भी होती है। यह गुण प्रायः उन कहानियों में विद्यमान होता है, जिनमें प्राकृतिक वातावरण का विशेष रूप से चित्रण किया जाता है। कहानी की कथावस्तु तथा पात्र योजना के अनुकूल प्रसंग में वर्णित प्राकृतिक वातावरण प्रायः चित्रात्मक हो जाता है। यहां पर जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'गुलाम' शीर्षक कहानी से इस

६. श्रीमती उषादेवी मित्रा, 'मेघ मल्लार', पृ० ९।
७. श्री विष्णु प्रभाकर, 'जिन्दगी के थपेड़े', पृ० ३४।

प्रकार का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—'फूल नहीं खिलते हैं, बेले की कलियाँ मुरझाई जा रही हैं। समय में नीरद ने सींचा नहीं, किसी माली की भी दृष्टि उस ओर नहीं घूमी, अकाल में बिना खिले कुसुम कोरक म्लान होना चाहता है। अकस्मात् डूबते सूर्य की पीली किरणों की आभा से चमकता हुआ एक बादल का टुकड़ा स्वर्ण वर्षा कर गया। परोपकारी पवन, उन छीटों को ढकेल कर उन्हें एक कोरक पर लाद गया। भला इतना भार वह कैसे सह सकता है। सब ढुलक कर धरणी पर गिर पड़े। कोरक भी कुछ हरा हो गया।'[८]

वर्णन की सूक्ष्मता—कहानी में देशकाल अथवा वातावरण चित्रण सम्बन्धी वे ही प्रसंग प्रभावपूर्ण सिद्ध होते हैं, जिनमें वर्णन की सूक्ष्मता का गुण विद्यमान हो। किसी देश-प्रदेश के अंचल विशेष का बोध कराने वाले विशिष्ट वर्णन कहानी को वातावरणगत सम्यक् पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं। इस प्रकार के स्थूल वर्णन कहानी में कोई अर्थ नहीं रखते, जिनमें विविध विषयक सामान्य चित्र प्रस्तुत किये गये हों। इसलिए कहानी में चित्रित प्राकृतिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक वातावरण के माध्यम से पाठक को उसके रचना काल तथा युग वैशिष्ट्य का निश्चित संकेत मिलना चाहिए। जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'समुद्र सन्तरण' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है —'क्षितिज में नील जलधि और व्योम का चुंबन हो रहा है। शांत प्रदेश में शोभा की लहरियां उठ रही हैं। गोधूली का करुण प्रतिबिम्ब बेला की बालुकामयी भूमि पर दिगन्त की प्रतीक्षा का आवाहन कर रहा है।...नारिकेल के निभृत कुंजों में समुद्र का समीर अपना नीड़ खोज रहा है। सूर्य लज्जा, क्रोध से नही, अनुराग से लाल, किरणों से शून्य, अनन्त रस निधि में डूबना चाहता है। लहरियां हट जाती हैं। अभी डूबने का समय नहीं है, खेल चल रहा है।....'[९]

तत्वगत सन्तुलन—कहानी में नियोजित देशकाल और वातावरण का एक गुण उसका तत्वगत सन्तुलन भी है। जैसा कि अन्यत्र संकेत किया जा चुका है कि कहानी के प्रायः सभी मूल उपकरण किसी अन्य तत्व विशेष से अपेक्षाकृत नैकट्य रखते हुए भी प्रायः सभी से अन्तःसम्बद्ध रहते हैं। इस दृष्टि से देशकाल अथवा वातावरण तत्व

८. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'छाया', पृ० ८३।

९. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'आकाशदीप', पृ० ११०।

का सम्बन्ध भी कहानी के शेष सभी तत्वों से है। कथावस्तु और पात्र योजना को सम्यक् स्वरूप प्रदान करने में उसका विशेष योग होता है। कहानी की कथावस्तु की पृष्ठभूमि में यदि सम्यक् वातावरण चित्रित हो, तो वह यथार्थात्मक प्रतीत होती है। पात्रों के व्यवहार तथा चिन्तन को भी स्वाभाविकता प्रदान करने के लिए उनकी चारित्रिक पृष्ठभूमि में देशकाल का अंकन होता है। इसलिए देशकाल अथवा वातावरण चित्रण में तत्वगत सन्तुलन आवश्यक होता है। यहां पर डा० रांगेय राघव लिखित 'मुर्दे' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है-- 'डूबते सूर्य की किरणें नदी पर फिसल रही थीं। पानी के भीतर से प्रकाश पीला होकर बाहर फूटने का प्रयत्न कर रहा था। चारों ओर निस्तब्धता छाई थी। केवल कुत्तों के भूंकने से कभी कभी सन्नाटे की पर्तें हटती थीं, चटक जाती थीं और फिर काली काई की तरह आ जुड़ती थी। मरघट की उस वीभत्स छाया में न जाने किस किसकी चिता जल रही थीं।...बाबा की चरन पादुका के चौतरे पर अब कोई न थी। थोड़ी देर पहले ही वहां कुछ बाबू लोग बैठे थे। उनके मुख पर उदासी थी, संसार के प्रति विरक्ति, जैसे इस संसार में कुछ न हो। और वह चिता भी अब ठंडी हो चली थी, जिसकी लपटों के कारण बीस बीस हाथ दूर बैठना दुश्वार हो गया था।''[१०]

इस प्रकार से, कहानी में देशकाल अथवा वातावरण चित्रण मे उपर्युक्त विशेषताओं के समावेश से प्रभावपूर्ण और विश्वसनीयता आती है। देशकाल सम्बन्धी संक्षिप्त विवरण कहानी को नीरस बनने से रोकते हैं, तथा उनसे कथा के विकास की गति नही अवरुद्ध होती है। यदि देशकाल के चित्रण में वास्तविकता होती है, तो पाठक कहानी में वर्णित घटना को विश्वसनीय समझने लगता है और वह उसे विशुद्ध कल्पनात्मक नही प्रतीत होती। कहानी के वर्ण्य विषय तथा प्रसंग के अनुसार देशकाल और वातावरण के चित्रण में आलंकारिकता का समावेश भी किया जा सकता है, जिससे उसकी भावात्मकता में वृद्धि होती है। वातावरण के अंकन में चित्रात्मकता का समावेश होने से उसकी पृष्ठभूमि कलात्मक हो जाती है। सूक्ष्म और सांकेतिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया वातावरण चित्रण पाठक को कहानी के रचना काल और युग वैशिष्ट्य का निश्चित संकेत देता है। साथ ही कहानी के इस तत्व का उसके

१०. डा० रांगेय राघव, 'समुद्र के फेन', पृ० १।

अन्य उपकरणों से आनुपातिक सन्तुलन भी होना चाहिए, क्योंकि तभी कहानी में उसकी योजना का औचित्य सिद्ध होता है।

देशकाल के भेद

कहानी की विषय-वस्तु और घटना काल के अनुसार ही देशकाल और वातावरण की योजना की जाती है। यदि कहानी की कथावस्तु का सम्बन्ध किसी अतीत युग से होता है, तो उसमें ऐतिहासिक वातावरण का चित्रण किया जाता है। इसी के साथ सांस्कृतिक वातावरण का भी उल्लेख किया जाता है, जो उन कहानियों में चित्रित होता है, जो ऐतिहासिक घटनाओं के स्थान पर तत्कालीन सभ्यता और संस्कृति का निरूपण करती हैं। समकालीन जीवन के किसी पक्ष का प्रस्तुतीकरण करने वाली कहानी में सामाजिक वातावरण का चित्रण होता है। इसी के साथ ग्रामीण सामाजिक चित्रण के अन्तर्गत ग्राम्य वातावरण प्रस्तुत किया जाता है। ऐतिहासिक अथवा सामाजिक कहानी में ही धार्मिक वातावरण का चित्रण भी कथा प्रसंग के अनुसार किया जाता है। राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित कहानियों में विविध विचारान्दोलनों तथा क्रान्तियों की पृष्ठभूमि में राजनीतिक वातावरण का चित्रण होता है। भौगोलिक वातावरण का चित्रण कहानी के कथा क्षेत्र को समुचित पृष्ठभूमि प्रदान करने के लिए किया जाता है। जादुई, तिलिस्मी अथवा जासूसी वातावरण का चित्रण रहस्य और रोमांच से युक्त कहानियों में किया जाता है।[11] वैज्ञानिक विषयों पर आधारित रचनाओं मे भी असंभाव्यता युक्त वातावरण रोमांचकारी प्रभाव के साथ चित्रित होता है।[12] प्राकृतिक वातावरण का आंशिक अथवा पूर्णात्मक रूप में समावेश कहानी के प्रसंग के अनुसार किया जाता है। यहाँ पर देशकाल और वातावरण के प्रमुख भेदों के अन्तर्गत ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ग्राम्य,

११. रुडयार्ड किपलिंग ने 'प्लेन टेल्स फ्राम दि हिल्स', 'जस्ट सो स्टोरीज', 'ट्रैफिक्स ऐंड डिस्कवरीज', 'पक आफ पुक्स हिल्स' तथा 'रिवार्ड्स ऐंड फेरीज' आदि रचनाओं में वन-खंडों के साहसिकता युक्त वातावरण का प्रभावशाली चित्रण किया है।

१२. हर्बर्ट जार्ज वेल्स ने अपनी वैज्ञानिक कथात्मक रचनाओं, विशेष रूप से 'दि वार इन दि एयर' 'दि व्हील्स आफ चांस', तथा 'टाइम्स' आदि में इसी प्रकार का वातावरण चित्रित किया है।

धार्मिक, राजनीतिक, भौगोलिक, जादुई, तिलिस्मी, जासूसी तथा प्राकृतिक वातावरण की संक्षिप्त सोदाहरण व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है।

ऐतिहासिक वातावरण—कहानी में ऐतिहासिक वातावरण का चित्रण प्रायः इतिहास पर आधारित कथावस्तु के सन्दर्भ में किया जाता है। सामान्य रूप से यह वर्णन या तो विशुद्ध इतिहास पर आधारित होता है और या कल्पना से युक्त होता है। प्रथम कोटि का वर्णन प्रायः नीरस होता है, जबकि द्वितीय कोटि के वर्णन से कहानी को सम्यक् पृष्ठभूमि मिल जाती है। हिन्दी कहानी के प्रथम विकास काल में किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' शीर्षक कहानी ऐतिहासिक वर्ग की प्रथम रचना कही जा सकती है, परन्तु उसमें ऐतिहासिक वातावरण का चित्रण सजगता के साथ न होकर केवल घटनात्मकता पर बल दिया गया है। वास्तव मे ऐतिहासिक वातावरण के चित्रण में कहानीकार को विशेष रूप से जागरूक रहना पड़ता है, क्योंकि एक ओर शुष्क वर्णन से कहानी के नीरस हो जाने का भय रहता है और दूसरी ओर कल्पना के अतिरेक से काल दोष तथा इतिहास विरुद्ध वर्णन की सम्भावना भी बनी रहती है। प्रेमचन्द लिखित 'रानी सारंधा', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'ममता' तथा चतुरसेन शास्त्री लिखित 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी' आदि कहानियों में सफल ऐतिहासिक वातावरण चित्रित हुआ है। यहां पर चतुरसेन शास्त्री लिखित 'भिक्षुराज' शीर्षक कहानी से ऐतिहासिक वातावरण का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें इतिहास के एक युग विशेष से सम्बन्धित महत्वपूर्ण संकेत मिलते हैं—'मसीह के जन्म से ढाई सौ वर्ष प्रथम। ग्रीष्म की ऋतु थी और सन्ध्या का समय, जबकि एक तरणी कंबोज के समुद्र तट से दक्षिण दिशा की ओर धीरे धीरे अनन्त सागर के गर्भ में प्रविष्ट हो रही थी।. . . .इस क्षुद्रा तरणी के द्वारा अनन्त समुद्र की यात्रा करना भयंकर दु:साहस था। वह तरणी हलके, किन्तु दृढ़ काष्ठफलकों को रज्जु से बांधकर और बीच में बांस का बंध देकर बनाई गई थी, और ऊपर चर्म मढ़ दिया गया था। वह बहुत छोटी और ह की थी, पानी पर अचर तैर रही थी, और पक्षी की तरह समुद्र की तरंगों पर तीव्र गति से उड़ी चली जा रही थी। तरणी में एक ओर कुछ खाद्य पदार्थ मृद्‌भांडों में धरा था, जिनका मुख वस्त्र से बंधा हुआ था। निकट ही बड़े बड़े पिटारों में भूर्जपत्र पर लिखित ग्रन्थ भर रहे थे।'[13]

१३. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, 'बाहर भीतर', पृ० ६६।

कहानी में ऐतिहासिक वातावरण के चित्रण के सन्दर्भ में लेखक को इस बात का विशेष ध्यान रखना होता है कि वह इतना यथार्थ और सम्यक् हो कि पाठक को इतिहास के उस युग विशेष की अनुभूति होने लगे। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, ऐतिहासिक विषय वस्तु प्रधान कहानी में प्रामाणिक ग्रन्थों, ताम्रपट्टों, शिला-लेखों, मुद्राओं तथा अन्य तथ्यपरक सूत्रों का उल्लेख करने की अपेक्षा इनके द्वारा सम्मत कल्पनात्मक सृष्टि अधिक प्रभावाभिव्यंजक होती है। इस दृष्टि से ऐतिहासिक तथा अन्य विषयों पर आधारित कहानी का स्वरूप वातावरण की दृष्टि से पर्याप्त भिन्न हो जाता है। यशपाल लिखित 'ओ भैरवी !' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'भगवान तथागत की अजस्र करुणा के प्रभाव से राजगृह और उसके समीपवर्ती प्रदेशों के जन समुदाय में परिग्रह की प्रवृत्ति क्षीण होकर निर्वाण की कामना बढ़ रही थी। निर्वाण की कामना से जन-गण की भी भावना वैराग्य की ओर हो रही थी। नगर में चैत्य के समीप बने विहार में अनेक भिक्षु निवास कर रहे थे। नगर से पांच योजन दूर नालंदा महाविहार से भी अनेक भिक्षु आकर नागरिकों को अभिधर्म के मार्ग से दुख के कारणों और दुख से त्राण की प्रणाली का उपदेश देते रहते थे।'[१४]

सांस्कृतिक वातावरण—सांस्कृतिक वातावरण का चित्रण प्रायः ऐतिहासिक कथावस्तु पर आधारित कहानियों में अधिक मिलता है। भारतेन्दु युग में किशोरी-लाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' जैसी कहानियों में सांस्कृतिक वातावरण का अभाव है। प्रेमचन्द युग में कलात्मक प्रौढता से युक्त लिखी गयी ऐतिहासिक कहानियों में सफल सांस्कृतिक वातावरण चित्रित हुआ है। स्वयं प्रेमचन्द की लिखी हुई 'शतरंज के खिलाड़ी' शीर्षक कहानी मे समकालीन सांस्कृतिक परिस्थितियों का सम्यक् चित्रण हुआ है। इसी कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—'वाजिदअली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे बड़े, गरीब अमीर सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था, तो कोई अफ़ीम की पीनक ही में मजे लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद प्रमोद का प्राधान्य था। शासन विभाग में, सामाजिक अवस्था में, कला कौशल में, उद्योग धन्धों में, आहार व्यवहार में, सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही

१४. श्री यशपाल, 'ओ भैरवी', पृ० ९।

की। राजकर्मचारी विषय वासना में, कविगण प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने में, व्यवसायी सुरमे, इत्र, मिस्सी और उबटन का रोजगार करने में लिप्त थे। सभी की आँखों में विलासिता का मद छाया हुआ था।"[15]

सांस्कृतिक वातावरण का एक अन्य उदाहरण यहां पर उषादेवी मित्रा लिखित 'मन का यौवन' शीर्षक कहानी से प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें ऐतिहासिक युगीन सूत्र और कल्पना तत्व के योग से पात्रों की मनःस्थिति के सन्दर्भ में वातावरण का चित्रण हुआ है--'युवराज चन्द्रापीड़ की प्रशंसा से देश छा सा जाता। राजा प्रजा सुखी रहते। वीर राजकुमार की जय घोषणा से देश की वायु हलकी होती, निर्भावना से प्रजा सोती। कुमार के चित्त विनोद के लिए नित्य नये आमोद की व्यवस्था होती। फिर भी कुमार चित्त में शान्ति न पाता। जब तक सहचरी पत्रलेखा कादम्बरी-वार्ता लेकर देश न लौटती, पत्रलेखा की प्रतीक्षा में कुमार के दिन घड़ी पलों का कटना कठिन होता। सहचरी के अभाव से आमोद प्रमोद विरक्ति-कर होते।"[16]

सामाजिक वातावरण--कहानी में सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत प्रायः सामाजिक परिस्थितियों का विविध रूपात्मक चित्रण किया जाता है। इसमें समाज की संरचना से सम्बन्धित वर्तमान दशा, वेश भूषा, भाषा बोली, रीति रिवाज, वर्ग भेद, शिक्षा, अर्थ व्यवस्था आदि का वर्णन होता है। सामाजिक कथावस्तु से सम्बन्धित कहानी में इस प्रकार का वातावरण जितना विशद, सूक्ष्म और विश्वसनीय होगा कहानी की प्रभावात्मकता उतनी ही बढ़ जायगी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आपबीती, कुछ जगबीती', राधाचरण गोस्वामी लिखित 'यमपुर की यात्रा', प्रेमचन्द लिखित 'बड़े घर की बेटी', जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'मधुआ', चतुरसेन शास्त्री लिखित 'विधवाश्रम', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'सुकुल की बीबी' भगवतीचरण वर्मा लिखित 'वह फिर नहीं आई', यशपाल लिखित 'तुमने क्यों कहा था मैं सुंदर हूं' तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'रोज' आदि कहानियो में सामाजिक वातावरण का प्रभावशाली चित्रण मिलता है।

आरम्भिक युगीन हिन्दी कहानी मे जो सामाजिक वातावरण चित्रित हुआ है, वह समकालीन सुधारवादी विचारधारा का द्योतक है। उससे समाज में व्याप्त

१५. मुंशी प्रेमचंद, 'मानसरोवर', भाग ३, पृ० २७०।
१६. श्रीमती उषादेवी मित्रा, 'मेघ मल्लार', पृ० ३८।

अशिक्षा, अज्ञान और अन्ध विश्वास का भी परिचय मिलता है। प्रेमचन्द युगीन हिन्दी कहानी में चित्रित वातावरण आन्दोलनों का बोध कराता है।"[१७] इस युग में तथा इसके परवर्ती काल में सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत स्त्री शिक्षा की समस्या, वैवाहिक जीवन की समस्या, दहेज की समस्या, वेश्या समस्या, स्वच्छंद प्रेम की समस्या, स्त्री स्वातंत्र्य की समस्या, विधवा समस्या, वृद्ध विवाह, बाल विवाह अथवा अनमेल विवाह की समस्याएं, अन्ध विश्वास, पाखंड, घूसखोरी, बेरोजगारी, प्रदर्शन भावना, शोषण की समस्या आदि से सम्बन्धित विस्तृत वर्णन मिलते हैं। प्रेमचन्द की कहानियों में समाज में व्याप्त यथार्थ समस्याओं को उठाया गया है, परन्तु उनका निदाम प्रस्तुत करने में लेखक ने अपने आदर्शपरक दृष्टिकोण का आश्रय लिया है। प्रेमचन्द लिखित 'उपदेश' शीर्षक कहानी से ग्रामीण जीवन की पृष्ठभूमि में चित्रित सामाजिक वातावरण का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'वहां आम के वृक्षों के नीचे, किसानों की कमाई के सुनहरे ढेर लगे हुए थे। चारों ओर भूसे की आंधी सी उड़ रही थी। बैल अनाज ढोते थे, और मन चाहते भूसे में मुंह डालकर अनाज को एक गाल खा लेते थे। गाँव के बढ़ई और चमार, धोबी, कुम्हार अपना वार्षिक कर उगाहने के लिए जमा थे। एक ओर नट ढोल बजा-बजाकर अपना करतब दिखा रहा था। कवीश्वर महाशय की अतुल काव्य-शक्ति आज उमड़ पड़ी थी।'[१८]

सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत हिन्दी कहानी में नागरिक और ग्रामीण दोनों ही प्रकार के चित्रण मिलते हैं। नागरिक सामाजिक जीवन में बढ़ती हुई यांत्रिकता, कृत्रिमता तथा व्यस्तता आदि का वर्णन अनेक कहानीकारो ने अपनी रचनाओं में किया है। बड़े बड़े नगरो मे सामान्य जीवन इतना सन्त्रस्त हो गया है कि मनुष्य की मानवीय भावनाओं का धीरे धीरे लोप होता जा रहा है। आर्थिक विषमता समाज मे जो स्पर्धा और प्रतिद्वन्द्विता उत्पन्न कर रही है, वह अनेक विरूपताओं और विडम्बनाओं को जन्म देती है। यहां पर इलाचन्द्र जोशी लिखित 'मैं' शीर्षक कहानी से ऐसा

१७. आधुनिक युग के प्रसिद्ध अमरीकी कथाकार हैमलिन गारलैंड ने अपनी 'मेन ट्रैवेल्ड रोड्स' नामक कृति में छः कहानियाँ प्रस्तुत की हैं जो वातावरण के चित्रण की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। सन् १८९१ में प्रकाशित इन कहानियों में निराशा, कुहासा, उदासी और हताशा का वातावरण सजीव होकर मूर्तिमान् हुआ है।

१८. मुंशी प्रेमचन्द, 'मानसरोवर', भाग ८, पृ० २८५-८६।

ही एक अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें लेखक ने कलकत्ता महानगरी का सामाजिक वातावरण चित्रित किया है—'कलकत्ता आये मुझे पूरे अड़तालीस महीने हो चुके। यहां के विपुल जन संघात के संघर्ष से जीवन-संग्राम में निरन्तर इतने दिनों से पिसते रहने पर भी मैं अकेला का अकेला ही हूं। केलावागान की मुसलमान तथा हरिजन बस्ती की झोपड़ी के बीच एक मारवाड़ी भाई के भाड़े वाले मकान में एक कमरा मैंने लिया है। इस बस्ती में मुसलमान मजूर, कुली कबाड़ी, बीड़ी के दूकानदार तथा अन्यान्य प्रोलातेरियन तथा हरिजन श्रेणी के लोग रहा करते हैं। कानों में दिन रात मुसलमान स्त्रियों की गाली गलौज, मियां भाइयों का नग्न अश्लीलता से भरा वार्तालाप, फेरीवालो के कर्कश कंठ का कर्णवेधी चीत्कार तथा इसी प्रकार के अन्यान्य शब्दों का झंकार मुखरित होता रहता है। यहां नित्य दंगा-फसाद, चोरी डकैती और खून-खराबी का हाहाकार मचा रहता है।'[१९]

ग्राम्य वातावरण—हिन्दी कहानी के क्षेत्र में ग्राम्य वातावरण के अन्तर्गत दो प्रकार के वर्णन मिलते हैं। एक तो वे, जो भारत के किसी भी ग्राम से सम्बन्धित सामान्य विवरण से युक्त होते है तथा दूसरे वे, जिनमें किसी स्थान विशेष की पृष्ठ-भूमि में वातावरण का चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। हिन्दी कहानी के इतिहास में द्वितीय विकास काल से ग्रामीण कथावस्तु को आधार बनाकर एक बड़ी संख्या में रचनाए प्रस्तुत की गयी हैं। स्वयं प्रेमचन्द ने अपनी अनेक कहानियों में ग्रामीण जीवन के विविध पक्षों का विस्तृत चित्रण किया है। उन्होंने ग्रामों के विरूपात्मक चित्र भी प्रस्तुत किये हैं। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द लिखित 'उपदेश' शीर्षक कहानी का एक अंश यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'छोटा सा गांव था, पर सफाई का कहीं नाम न था। चारों ओर से दुर्गन्ध उड़ रही थी। किसी के दरवाजे पर गोबर सड़ रहा था, तो कहीं कीचड़ और कूड़े का ढेर ही वायु को विषैली बना रहा था। घरों के पास ही घूरे पर खाद के लिए गोबर फेंका हुआ था, जिससे गांव में गन्दगी फैलने के साथ साथ खाद का सारा अंश धूप और हवा के साथ गायब हो जाता था। गांव के मकान तथा रास्ते बेसिलसिले, बेढंगे तथा टूटे फूटे थे। मोरियों में गन्दे पानी के निकास का कोई प्रबन्ध न होने की वजह से दुर्गन्ध से दम घुटता था।....'[२०]

१९. श्री इलाचन्द्र जोशी, 'दीवाली और होली', पृ० २३।
२०. मुंशी प्रेमचन्द, 'मानसरोवर', भाग ८, पृ० २८६-८७।

कहानी में चित्रित ग्राम्य वातावरण का एक अन्य उदाहरण यहां उषादेवी मित्रा लिखित 'रहस्यमयी' शीर्षक कहानी से भी प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें ग्राम्य श्री का काव्यात्मक वर्णन है--'संगीत की मूर्च्छना सी सोमवती नदी ग्राम की गोद में उच्छ्वसित गीत गाया करती। उसके भंवरों में शंखनाद ध्वनि गुंजना करती। सोम के तीरवर्ती वृक्षों पर और अधटूटे मन्दिरों के गुम्बजों पर सहस्रों का पक्षियों का नित्य मेला सा लगा रहता। प्रातः-सन्ध्या गायें जलपान करतीं, उनके तृप्त उद्गारों से जैसे सोम का हृदय भर उठता।...कभी वह कूदती फांदती पत्थरों की सीढ़ियों तक चली जाती और तब सीढ़ियों पर बैठे हुए श्वेत बगुलों को मन में एक आतंक उपस्थित होता। और कदाचित् उस आतंक को देखकर पनिहारिन की कलसियां सूनी ही लौट जातीं। तब उसके तीरवर्ती झाड़झुरमुटों में दबकी सारिका चहचहाने लग जाती।'[21]

धार्मिक वातावरण—कहानी में धार्मिक वातावरण का चित्रण या तो आंशिक रूप से प्रसंग के अनुसार किया जाता है और या धर्म भावना प्रधान रचनाओं में आरम्भ से लेकर अन्त तक मिलता है। उत्तर भारतेन्दु काल में जब समस्या प्रधान कहानियों की रचना अपेक्षाकृत अधिक होने लगी, तब भी इस प्रकार के वातावरण का चित्रण विविध लेखकों द्वारा किया गया। धार्मिक वातावरण के अन्तर्गत प्रायः किसी धर्म स्थान, देवी देवता की महिमा, पर्व के महत्व तथा भक्ति भावना आदि का विवरण दिया जाता है। यहां पर यशपाल लिखित 'मन की पुकार' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है--'हमारे यहां मेवाड़-मारवाड़ में 'जयमाता' बहुत जाग्रत देवी हैं। जैसे कामाख्या का मंदिर शिखर पर है, वैसे ही जय-माता का मंदिर है। शिखर पर खड़े होकर जहाँ तक दृष्टि जा सकती है, अरावली पर्वतमाला की विस्तृत श्रेणियों में जय-माता के शिखर से ऊंचा कोई शिखर नहीं है। देवी अपने इस आसन से दृष्टि की सीमा से भी बहुत दूर तक, अपनी चर-अचर संतान पर कृपा की दृष्टि रखती है। देवी की कृपादृष्टि की सीमा चर्मचक्षुओं की भांति सीमित नहीं। सौ या सहस्र कोस और उससे भी दूर, जहां भी मनुष्यों के हृदयों में देवी के प्रति भक्ति समाई हुई है, देवी का वरदान उनकी मनःकामना पूर्ण करता है और उनकी रक्षा करता है।'[22]

२१. उषादेवी मित्रा, 'मेघ मल्लार', पृ० ७७।
२२. श्री यशपाल, 'ओ भैरवी', पृ० १०२।

ऐतिहासिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में भी धार्मिक वातावरण हिन्दी कहानी के क्षेत्र में उपलब्ध होता है। इस प्रकार के वातावरण में इतिहास के युग-विशेष से सम्बन्धित धर्म भावना आदि का परिचय दिया जाता है। जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'गुंडा' शीर्षक कहानी से ऐतिहासिक सांस्कृतिक सन्दर्भ में धार्मिक वातावरण का एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'ईसा की अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में वही काशी नहीं रह गई थी, जिसमें उपनिषद् के अजातशत्रु की परिषद् में ब्रह्मविद्या सीखने के लिए विद्वान् ब्रह्मचारी आते थे। गौतम बुद्ध और शंकराचार्य के धर्म-दर्शन के वाद-विवाद, कई शताब्दियों से लगातार मंदिरों और मठों के ध्वंस और तपस्वियों के वध के कारण प्रायः बन्द से हो गये थे। यहाँ तक कि पवित्रता और छुआछूत में कट्टर वैष्णव धर्म भी उस विशृंखलता के नवागंतुक धर्मोन्माद में अपनी असफलता देखकर काशी में अघोर रूप धारण कर रहा था।'[२३]

राजनीतिक वातावरण—राजनीतिक वातावरण के अन्तर्गत कहानी में मुख्य रूप से राजनीति से सम्बन्धित विविध आन्दोलनों, क्रान्तियों तथा व्यक्तियों का प्रस्तुतीकरण होता है। आंशिक रूप से राजनीति से सम्बन्धित टीका-टिप्पणियां तो अनेक कहानियों मे प्रथम विकास काल से ही मिलती हैं, परन्तु समग्र रूप से राजनीतिक तत्वों पर ही आधारित वातावरण का चित्रण प्रेमचन्द युगीन हिन्दी कहानी से आरम्भ हुआ है। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के मध्यकालीन भारत की राजनीतिक अवस्था तथा इस काल के विचारान्दोलनों का परिचय प्रेमचन्द की रचनाओं मे मिलता है। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत भारतीय स्वतंत्रता, भारत विभाजन तथा विविध राजनीतिक दलों की विचारधाराओं से सम्बन्धित चित्रण वर्तमान कहानी में विस्तार से मिलता है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, विष्णु प्रभाकर, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन तथा अमृतलाल नागर आदि कहानीकारों ने राजनीतिक वातावरण प्रधान कहानियों की भी रचना की है। यहां पर सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' लिखित 'चतुरी चमार' शीर्षक कहानी से राजनीतिक वातावरण का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें जन स्तर पर क्रान्तिकारी चेतना के जागरण और आन्दोलन का चित्रण है—'इन्हीं दिनों देश में आन्दोलन जोरों का चला, यही, जो चतुरी आदिकों के कारण फिस्स हो गया है। होटल में रहकर, देहात से आने

२३. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'इन्द्रजाल', पृ० ९१।

वाले शहरी युवक मित्रों से सुना करता था, गढ़ाकोला में भी आन्दोलन जोरों पर है। छै सात सौ तक का जोत किसान लोग इस्तीफा देकर छोड़ चुके हैं—वह जमीन अभी तक नहीं उठी—किसान रोज इकट्ठे होकर झंडा गीत गाया करते हैं। साल भर बाद, जब आन्दोलन में प्रतिक्रिया हुई, जमींदारों ने दावा करना और रियाया को बिना किसी रियायत के दबाना शुरू किया. . . मेरे गांव की कांग्रेस ऐसी थी कि जिले के साथ उसका कोई तअल्लुक न था—किसी खाते में वहां के लोगों के नाम दर्ज न थे। . . . कच्चे रंगों से रंगा तिरंगा झंडा महावीर स्वामी के सामने एक बड़े बांस में गड़ा, बारिश से धुलकर धवल हो रहा था।'[२४]

कहानी में चित्रित राजनीतिक वातावरण का एक अन्य उदाहरण यहाँ यशपाल लिखित 'खुदा की मदद' शीर्षक कहानी से प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें श्रमिक वर्ग के आन्दोलनों और हड़तालों का विवरण है—'सरकार चाहती थी कि हड़ताल किसी तरह न हो, इसलिए शहर मे दफ़ा १४४ लगी हुई थी। हुक्म था कि जलसा न हो, जुलूस न निकले। कांग्रेस के नेता कलक्टर साहब की इजाजत से सब कुछ कर सकते थे। मनाही थी सिर्फ मजदूरों को भड़काने वाले लोगों के लिए, जिनसे सरकार को हड़ताल और शांति भंग का अंदेशा था। फिर भी बस्तियों में, पुरवों में, मकानों की दीवारों पर, सड़को पर चूने से, कोयले से और गेरू से मजदूरों के नारे लिखे दिखाई देते—'चोर बाजारी बंद करो। मुनाफाखोरों को फांसी दो। मजदूरों को मंहगाई भत्ता दो। रोजी रोटी दो। बिजली पानी दो। जालिम कानून हटाओ। मजदूर नेताओं को छोड़ो।'[२५]

भौगोलिक वातावरण—कहानी में देश-काल के अन्तर्गत भौगोलिक वातावरण का चित्रण भी किया जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से प्रत्येक कहानी का कथाक्षेत्र किसी न किसी प्रदेश से सम्बन्धित रहता है। उसकी घटनाएँ भी उसी स्थान पर घटित होती हैं। इसलिए ऐसे स्थलों पर यदि कहानीकार उस स्थान का संक्षिप्त भौगोलिक चित्रण प्रस्तुत कर देता है, तो कहानी में प्रस्तुत कथावस्तु और पात्रयोजना अधिक विश्वसनीय प्रतीत होने लगती है। कभी कभी कहानी के अन्तर्गत भौगोलिक वातावरणों के चित्रण को इसलिए अनुमोदनीय नहीं माना जाता, क्योंकि वे प्रायः

२४. श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'चतुरी चमार', पृ० १४-१५।
२५. श्री यशपाल, 'फूलों का कुरता', पृ० ५५-५६।

शुष्क और नीरस होते हैं। परन्तु यदि आनुपातिक और सन्तुलित रूप में इसका समावेश किया जाय, तो किसी क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित भौगोलिक विवरण कहानी को अवश्य ही विश्वसनीय और प्रभावशाली बना देते हैं। कहानी में भौगोलिक वातावरण के अन्तर्गत प्राय: किसी स्थान के जलवायु, सीमा, कृषि, नदी, नाले, पहाड़, जंगल, मैदान, निवासी, उनकी प्रकृति आदि सभी का समावेश होता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में इस प्रकार के वातावरण का चित्रण अपेक्षाकृत कम मिलता है। यहां पर यशपाल की लिखी हुई 'दास धर्म' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—'यवन सामुद्रिक वणिकों के सार्थ ने सिंहल द्वीप में मुक्ताओं का भंडार क्र : कर भारत के पूर्वी सागर में प्रवेश किया। सैनिक और नाविक दूने सतर्क रहने लगे। उस समय कलिंगपत्तन से गंगासागर तक का भारत का पूर्वीय समुद्र तट, चक्रवर्ती दुर्दान्त सीमुक सातवाहन से अभय प्राप्त, विक्रान्त जल-दस्युओं के आतंक से यवन सामुद्रिक वणिकों के लिए श्मशान की भांति भयावह हो रहा था। इन दस्युओं द्वारा ध्वंसि : नावों के अंजर-पंजर और मस्तूलों से भारत का पूर्वी तट बिछ गया था। गौर वर्ण, पिंगल केश, स्वस्थ और बलिष्ठ यवन दास-दासिया आंध्र के कृष्ण वर्ण नागरिकों की विशेष रुचि की वस्तु बन गयी थीं।'[२६]

जादुई, तिलिस्मी-जासूसी वातावरण—कहानियों में चित्रित जादुई, तिलिस्मी और जासूसी कोटि का वातावरण अधिकांशत: कल्पना पर आधारित होता है। इन कहानियों में यद्यपि घटना तत्वों की प्रधानता होती है, परन्तु फिर भी वातावरण का विशेष महत्व होता है। जादुई वातावरण मुख्य रूप से उन कहानियों में मिलता है, जो बच्चों के लिए लिखी जाती हैं और जादू-टोनों पर आधारित होती हैं। तिलिस्मी वातावरण विशेष कोटि की भवन रचना पर आधारित होता है। यह भारतेन्दु युगीन उपन्यासो में विशद रूप में चित्रित हुआ है। जासूसी वातावरण अन्य युगीन कहानियों में भी समान रूप से मिलता है। 'जादू का चिराग', 'जादू की अंगूठी' तथा 'जादू नगरी' जैसी रचनाओं में जादुई वातावरण चित्रित हुआ है। भारतेन्दु युग में रुद्रदत्त भट्ट लिखित 'अजीबदास की जासूसी' जैसी कहानियों में जासूसी वातावरण चित्रित हुआ है। गोपालराम गहमरी, निजाम शाह तथा सुरेन्द्र वर्मा ने भी इस कोटि की रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। जादुई और तिलिस्मी

२६. श्री यशपाल, 'अभिशप्त', पृ० १३।

वातावरण जहां एक ओर अद्भुत और चमत्कारिक तत्वों पर आधारित होता है, वहां दूसरी ओर जासूसी वातावरण रहस्य, रोमांच, चोरी तथा डकैती आदि के आधार पर चित्रित किया जाता है।[२७] परन्तु इन दोनों ही कोटियों की रचनाओं का उद्देश्य पाठक की उत्कंठा को जाग्रत करके कथा के अन्त तक बनाये रखना होता है। जादुई, तिलिस्मी और जासूसी कोटि की कहानियों को वैचारिक साहित्यिक दृष्टि से स्तरीय नहीं समझा जाता। यद्यपि इनकी लोकप्रियता बहुत अधिक होती है। यूरोप के प्रसिद्ध जासूसी कथाकार आर्थर कानन डायल की कृतियां तो विश्व प्रसिद्ध हैं और संसार की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं में इनका अनुवाद हो चुका है। एडगर एलन पो की कहानियों में भी जासूसी वातावरण का सफल चित्रण हुआ है।[२८] आधुनिक युग में भी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जासूसी कहानियों का व्यापक प्रचार और मांग है, यद्यपि अब इन्हें अधिक विश्वसनीय बनाने का प्रयत्न हो रहा है। यहां पर डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'फिल्म का षड्यंत्र' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—'थोड़ी ही देर में राय साहब के मुंह पर पसीने की बूंदें साफ झलकने लगीं। पर अब उन्होंने अपने आपको सम्हालने की कोशिश की और हिम्मत से काम लिया। वह कुछ करते, इसके पहले ही उन्होंने यह महसूस किया कि उनका खून जैसे जमने लगा है। उन्हें दरवाजे से हैंडिल के घुमाने की हलकी सी आवाज फिर सुनाई दी। साथ ही उन्होंने किसी के पैरों की आवाज भी फिर सुनी। और यही नहीं, इस बार उन्होंने साफ साफ देखा। गैलरी के सामने वाले शीशे की खिड़की पर पड़ा हुआ शीशा चमका। ऐसा लगा कि जैसे कोई छाया उस पर पड़ी हो और फिर हट गयी हो, जैसे कोई हलके से परदा हटाकर धीरे से भीतर झांका हो, या जैसे परदा अपने आप ही उड़ा हो और उधर गैलरी में से गुजरता हुआ कोई व्यक्ति उन्हें दिखाई पड़ गया हो।'[२९]

२७. अपनी 'लाइक वाचेज', 'ए मास्टर आफ क्राफ्ट' तथा 'दि बेल ऐंड दि डांकीज' आदि कहानियों में विलियम वाई मार्क जैकब्स ने समुद्री वातावरण का साहसिक और रोमांचक चित्रण किया है।

२८. पाश्चात्य कथाकार आर्थर मेचन (१८६३-१९४७) की कहानियों में भयावह और रोमांचकारी वातावरण का सफल चित्रण हुआ है।

२९. डा० प्रतापनारायण टंडन, 'बदलते इरादे', पृ० ९७।

प्राकृतिक वातावरण—सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से प्राकृतिक वातावरण के सम्यक् चित्रण को कहानी में सर्वथा औचित्यपूर्ण माना जाता है। इस प्रकार का वातावरण या तो कहानी की कथावस्तु को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रस्तुत किया जाता है और या फिर कहानी में नियोजित पात्रों की विभिन्न मनःस्थितियों को अधिक भाव-पूर्ण बनाने के लिए होता है। वस्तुतः प्राकृतिक वातावरण भौतिक सृष्टि का विशुद्ध नैसर्गिक भाग है। मनुष्य अपने दुख के क्षणों में प्रकृति से अकृत्रिम समवेदना और सहानुभूति पाता है। प्रकृति के अकलंक रूप से सुन्दर रूप उसके हृदय में सहज आह्लादकारी भावनाओं को जन्म देते हैं। मानवीय वितृष्णा से छला हुआ व्यक्ति प्रकृति के अंक में शीतलता, शांति और संतोष का अनुभव करता है। व्यावहारिक दृष्टि-कोण से कहानी में प्रकृति चित्रण के वे ही रूप अनुमोदनीय होते हैं, जो कहानी के प्रसंग तथा पात्रों की मनःस्थिति के अनुकूल हों। प्रेमचंद की कहानियों में कथा व पात्रों के अनुकूल ही प्राकृतिक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। यहां प्रेमचंद लिखित 'नाग-पूजा' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—'प्रातः-काल था। आषाढ़ का पहला दोंगड़ा निकल आया था। कीट पतंग चारों तरफ रेंगते दिखाई देते थे। तिलोत्तमा ने वाटिका की ओर देखा तो वृक्ष और पौधे ऐसे निखर गये थे जैसे साबुन से मैले कपड़े निखर जाते हैं। उन पर एक विचित्र आध्या-त्मिक शोभा छायी हुई थी, मानो योगीवर आनन्द में मग्न पड़े हों। चिड़ियों में असाधारण चंचलता थी। डाल डाल, पात पात चहकती फिरती थीं। तिलोत्तमा बाग में निकल आयी। वह भी इन्ही पक्षियों की भांति चंचल हो गयी थी। कभी किसी पौधे को देखती, कभी किसी फूल पर पड़ी हुई जल की बूंदों को हिलाकर अपने मुंह पर उनके शीतल छींटे डालती। लाल बीरबहूटियां रेंग रही थीं। वह उन्हें चुनकर हथेली पर रखने लगी।'[३०]

कहानी मे चित्रित प्राकृतिक वातावरण का एक रूप वह होता है, जो कहानी का आधार भी होता है। इस कोटि की कहानियों में वर्णित सभी घटनाएं आदि उसी विशिष्ट वातावरण में घटित होती हैं। इस प्रकार की रचनाओं में प्राकृतिक वाता-वरण का चित्रण यत्र तत्र स्फुट रूप में तो होता है, परन्तु वे अपने समग्र रूप में भी कहानी के मूल सन्दर्भ में महत्व रखती हैं। जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'वैरागी' शीर्षक

३०. मुंशी प्रेमचंद, 'मानसरोवर', भाग ७, पृ० २८६।

कहानी इसी कोटि की है। इस कहानी से एक ऐसा ही उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'पहाड़ की तलहटी में एक छोटा सा समतल भूमि खंड था। मौलसिरी, अशोक, कदम और आम के वृक्षों का एक हरा भरा कुटुम्ब उसे आबाद किये हुए था। दो चार छोटे छोटे फूलों के पौधे कोमल मृत्तिका के थालों में लगे थे। सब आर्द्र और सरस थे। तपी हुई लू और प्रभात का मलय पवन, एक क्षण के लिए इस निभृत कुंज में विश्राम कर लेते। भूमि लिपी हुई, स्वच्छ, एक तिनके का कहीं नाम नहीं, और सुन्दर वेदियों और लताकुंजों से अलंकृत थी।'[३१]

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में मनोविश्लेषणात्मक पृष्ठभूमि में लिखी गयी रचनाओं में प्राकृतिक वातावरण का जो रूप मिलता है, उसमें कल्पनात्मकता, आलंकारिकता तथा भावात्मकता आदि गुण विद्यमान हैं। इस प्रकार के प्रकृतिचित्र लेखक की सूक्ष्म दृष्टि के बोधक होने के साथ कहानी को भी पृष्ठभूमिगत परिपूर्णता प्रदान करते हैं। सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' लिखित 'एकाकी तारा' शीर्षक कहानी से ऐसा ही एक उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—'ऐसा भी सूर्यास्त कहां हुआ होगा।....उस पहाड़ की आड मे से सूर्य का थोड़ा सा अंश देख पड़ रहा है और उसके ऊपर आकाश में, बहुत दूर तक फैली हुई एक लम्बी वारिद माला लाल लाल दीख रही है। मानो प्रकृति के बालों की लाल लटें....। या जैसे सूर्य को फांसी पर लटका दिया गया हो और किसी अज्ञात कारण से फांसी की रस्सी खून से रंगी गयी हो।...प्रतीची की विशाल कोख को भी तो मानो कोई लील लिये जा रही हो।'[३२]

कहानी में प्राकृतिक वातावरण का एक रूप विशुद्ध कल्पना पर आधारित मिलता है। यह प्रकृति-श्री का प्रभावशाली चित्रण अवश्य प्रस्तुत करता है, परन्तु यह चित्रण किसी प्रदेश की विशिष्टता से युक्त न होकर किसी भी स्थल का हो सकता है। इसका आधार प्रकृति के सामान्य कार्य व्यापार और सौन्दर्य वर्णन होते हैं। कभी कभी इन्हें आलंकारिक भाषा शैली की सहायता से भी प्रभावपूर्ण बनाया जाता है। इनमें अपेक्षाकृत कृत्रिमता लक्षित होती है। इस प्रकार का एक उदाहरण यहाँ जयशंकर 'प्रसाद' लिखित 'समुद्र सन्तरण' शीर्षक कहानी से प्रस्तुत किया जा रहा है—'चांदी का थाल लिये रजनी समुद्र से कुछ अमृत भिक्षा लेने आयी। उदार

३१. श्री जयशंकर 'प्रसाद', 'आकाशदीप', पृ० ११८।

३२. श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', 'विपथगा', पृ० २१७।

सिन्धु देने के लिए उमड़ उठा। लहरियाँ सुदर्शन के पैर चूमने लगीं। उसने देखा, दगंत विस्तृत जलराशि पर कोई गोल और धवल पाल उड़ाता हुआ अपनी सुन्दर तरणी लिये हुए आ रहा है। उसका विषय-शून्य हृदय व्याकुल हो उठा। उत्कट प्रतीक्षा--दिगंत गामिनी अभिलाषा—उसकी जन्मान्तर की स्मृति बनकर उस निर्जन प्रकृति मे रमणीयता की—समुद्र गर्जन मे संगीत की—सृष्टि करने लगी। धीरे धीरे उसके कानो में एक कोमल अस्फुट नाद गूजने लगा। उस दूरागत स्वर्गीय संगीत ने उसे अभिभूत कर दिया। नक्षत्र-मालिनी प्रकृति हीरे-नीलम से जड़ी पुतली के समान उसकी आँखो का खेल बन गयी।"[३३]

कहानी मे प्राकृतिक वातावरण के अन्तर्गत प्रकृति के रमणीय, मोहक और सौन्दर्यात्मक स्वरूप के साथ साथ उसके भयावह रूप का चित्रण भी मिलता है। इस प्रकार का चित्रण कहानी मे प्रस्तुत पृष्ठभूमि अथवा पात्रो की भावात्मक स्थिति के सन्दर्भ मे भी किया जाता है। यह प्रकृति की विनाशकारी लीला और तांडव नृत्य के रोमाचकारी विवरण से युक्त होता है। उषादेवी मित्रा लिखित 'उन्नीस सौ पैंतीस' शीर्षक कहानी से इस प्रकार का एक उदाहरण यहा प्रस्तुत किया जा रहा है-- 'निशाचरों के मल्ल-युद्ध से गहरी रात ध्वस्त, त्रस्त, मथित हो रही थी। मेघ के रन्ध्रों से बिजली कभी हंस दिया करती और गरुड़ की पीठ पर बैठा मस्ताना पवन उस अनोखी सारंगी मे ध्वस के राग अलाप उठता। तरु पल्लव श्यामल मिट्टी के अंचल मे सो रहते, बूढे पेड़ जड से उखड पडते, पर्ण कही दूर जा गिरते, पक्षी एक दूसरे के आलिगन में बद्ध हो रहते और गृहस्थ इस प्रलय की ओर भीत नेत्र से देखते, शिशु विस्फारित। होली मची थी—प्रलय की होली।"[३४]

इस प्रकार से, कहानी मे देशकाल अथवा वातावरण के चित्रण के उपर्युक्त प्रमुख भेदों का समावेश मिलता है। कहानी मे ऐतिहासिक वातावरण की योजना काल्पनिक अथवा यथार्थात्मक आधारभूमि पर की जाती है। इसी के अन्तर्गत सांस्कृतिक वातावरण का चित्रण भी मिलता है, जिसका आधार कथाकालीन सभ्यता व संस्कृति होती है। सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत समकालीन जीवन का समग्र रूपात्मक चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। विविध विषयक समस्याओं का निरूपण भी वातावरण

३३. श्री जयशंकर 'प्रसाद',, 'आकाशदीप', पृ० ११५।
३४. श्रीमती उषादेवी मित्रा, 'मेघ मल्लार', पृ० १००।

के इसी भेद के अन्तर्गत किया जाता है। नागरिक सामाजिक वातावरण के अतिरिक्त ग्राम्य वातावरण के अन्तर्गत ग्रामीण जीवन की पृष्ठभूमि में वातावरण का प्रस्तुतीकरण होता है, जिसमें ग्रामीण जीवन का विभिन्न रूपात्मक चित्रण होता है। नागरिक और ग्रामीण सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत ही धार्मिक वातावरण का भी चित्रण होता है। इसकी आयोजना ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विषयों की कहानियों में भी की जाती है। राजनीति से सम्बन्धित आन्दोलनों, क्रान्तियों एवं विचारधाराओं की पृष्ठभूमि में राजनीतिक वातावरण का चित्रण किया जाता है। कहानी के कथाक्षेत्र की भौगोलिक पृष्ठभूमि पर आधारित वातावरण से उसकी विश्वसनीयता में वृद्धि हो जाती है। जादुई, तिलिस्मी और जासूसी वातावरण प्रायः साहसिक और रोमांचक कहानियों में होता है। प्राकृतिक वातावरण की योजना कहानी को भावात्मक पृष्ठभूमि प्रदान करने की दृष्टि से अपेक्षित होती है।

देशकाल का महत्व

कहानी मे देशकाल और वातावरण के चित्रण का महत्व निर्विवाद है। कहानी की कथावस्तु का सम्बन्ध किसी भी विषय अथवा काल से हो, देशकाल के चित्रण से उसकी पृष्ठभूमि सुनियोजित हो जाती है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से इस तत्व की योजना सभी कोटियों की कहानियों में की जाती है, परन्तु आंचलिक वर्ग की रचनाओं में इस तत्व की विशेष रूप से प्रधानता होती है। अन्य प्रकार की कहानियों में देशकाल का समावेश आंशिक रूप मे होता है, जबकि आंचलिक कहानियों में इसकी समग्र रूपात्मक योजना होती है। कहानी के कथा-काल और घटना क्षेत्र के अनुरूप वातावरण के चित्रण से उसकी विश्वसनीयता और प्रभावात्मकता में वृद्धि हो जाती है। सर्वथा कल्पना पर आधारित कहानी को भी प्रभावाभिव्यंजक वातावरण से युक्त बनाकर यथार्थपरक बनाया जा सकता है। आधुनिक कहानी कथावस्तु तथा पात्र योजना की दृष्टि से अनेक प्रयोगात्मक श्रेणियों से होती हुई अपने वर्तमान स्वरूप तक विकसित हुई है। इसके फलस्वरूप कहानी के सभी तत्व प्रभावित हुए हैं। वातावरण के क्षेत्र में इसके फलस्वरूप यह परिवर्तन हुआ है कि जहां प्राचीन कथा साहित्य मे वातावरण के चित्रण में मात्र चमत्कारिक तत्वों का योग रहता था, वहां वर्तमान कहानी मे वातावरण का सर्वथा स्वाभाविक रूप चित्रित होता है। स्थानीय रंग, लोक-तत्व तथा प्रादेशिक विशेषताओं से युक्त वातावरण विशेष रूप से प्रभाव की सृष्टि करने में सक्षम होता है।

अध्याय १२

कहानी का उद्देश्य

उद्देश्य का स्वरूप

कहानी का आठवां और अन्तिम मूल उपकरण उद्देश्य है। प्राचीन युगीन कथा-साहित्य से लेकर वर्तमान कालीन कहानी तक उद्देश्य-तत्व का स्वरूप भी परिवर्तित और विकसित होता रहा है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से प्रत्येक कहानी की रचना का एक उद्देश्य होता है। यह उद्देश्य पाठको के मनोरंजन से लेकर गम्भीर समस्या का निरूपण तक हो सकता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यदि प्राचीन कथा साहित्य में उद्देश्य के तात्विक स्वरूप पर विचार किया जाय, तो यह ज्ञात होगा कि उसकी रचना मूलतः मनोरंजन तथा उपदेशात्मकता की दृष्टि से की जाती थी। जो रचनाएं मनोरंजन के उद्देश्य से लिखी जाती थीं, वे प्रायः कल्पनात्मक होती थी। इनकी रचना का आधार उत्सुकता तथा कौतूहल की वृत्तियां होती थी। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी में उत्सुकता का होना आवश्यक है, क्योंकि कहानी का कल्पनामय भाव-जगत पाठक के हृदय मे निरन्तर आवेग उत्पन्न करता रहता है। कहानी की घटनाएं क्रमबद्ध रूप से परस्पर संघटित होते हुए भी एक चमत्कारिक शिल्प रूप में संयोजित होनी चाहिए, क्योंकि वैसा होने से पाठक के हृदय में निरन्तर कौतूहल की भावना बनी रहती है। कौतूहल-सृष्टि के माध्यम से पाठकों का मनोरंजन करने की प्रवृत्ति किसी न किसी रूप मे वर्तमान युग तक चली आ रही है। उपदेशात्मकता की वृत्ति प्राचीन नीति-कथा साहित्य मे मिलती है। ये कथाएं प्रायः दार्शनिक अथवा धार्मिक सूत्रों को आधार बनाकर लिखी जाती थी। आधुनिक कहानी के आरम्भिक रचना काल से उद्देश्य तत्व के क्षेत्र मे विस्तार हुआ। अब विविध प्रकार की बौद्धिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक कोटियों की समस्याओं का निदर्शन भी कहानी में किया जाने लगा। उद्देश्य तत्वगत इस क्षेत्र विस्तार के कारण ही आधुनिक कहानीकार इसके प्रति विशेष रूप से आग्रहशील दिखाई देता है। वह अपने अभीष्ट की व्यंजना प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में करके उसका वैशिष्ट्य निरूपित करता है।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अनेक विचारकों ने कहानी के उद्देश्य तत्व के स्वरूप के विषय में अपने विविध मत अभिव्यक्त किये हैं। डा० श्यामसुन्दर दास ने बताया है कि 'कहानी एक निश्चित लक्ष्य को आधार बनाकर लिखी जाती है तथा उसी की पूर्ति के लिए उसमें अन्य तत्वों की योजना होती है। यदि ये तत्व उस लक्ष्य की पूर्ति में सहायक नहीं होते और उनकी स्वतंत्र सत्ता होती है, तो कहानी सफल नहीं कही जा सकती। इस रूप में एक ही मुख्य लक्ष्य या भाव की अभिव्यक्ति करना, आख्यायिका कला की अनिवार्य और प्राथमिक विशेषता है।'[1] डा० गुलाबराय के विचार से 'प्रत्येक कहानी मे कोई उद्देश्य या लक्ष्य अवश्य रहता है। कहानी का ध्येय केवल मनोरंजन या लम्बी रातों को काटकर छोटा करना नहीं है, वरन् जीवन सम्बन्धी कुछ तथ्य देना या मानव-मन का निकट परिचय कराना है। किन्तु वह उद्देश्य या तथ्य हितोपदेश या ईसप की कहानियों की भांति व्यक्त नहीं किया जाता है। वह अधिकांश में व्यंजित ही रहता है। कहानी के अध्ययन में उसका उद्देश्य समझना एक आवश्यक बात होती है।'[2] श्री राय कृष्णदास ने बताया है कि कहानी मे मनोरंजन के साथ ही किसी अन्य उद्देश्य की भी निहिति अनिवार्य रूप में रहती है। उनके विचार से 'आख्यायिका चाहे किसी लक्ष्य को सामने रखकर लिखी गयी हो या लक्ष्य विहीन हो, मनोरंजन के साथ साथ अवश्य किसी न किसी सत्य का उद्घाटन करती है।'[3] प्रो० देवमित्र ने कहानी के उद्देश्य तत्व पर विचार करते हुए बताया है कि 'कहानी के तत्वों में उद्देश्य तथा रस का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्य के अन्य अंगों की तुलना में कहानी ही वह अकेला अंग है, जिसमें सोद्देश्यता स्वाभाविक ठहरायी जाती है। सबसे पहले हमें यह समझ लेना चाहिए कि सोद्देश्यता और उपदेशात्मकता में बहुत अन्तर है। सोद्देश्य होने का तात्पर्य इतना ही है कि उसका अपना कुछ लक्ष्य होता है, प्रयोजन होता है। यों तो साहित्य के प्रत्येक अंग का अपना कुछ प्रयोजन होता है, किन्तु वह प्रयोजन कुछ इस तरह उसमे घुला मिला होता है कि उसको पृथक् करके अलग नाम नहीं दिया जा सकता।'[4]

१. डा० श्यामसुन्दर दास, 'साहित्यालोचन', पृ० १८५।
२. डा० गुलाबराय, 'काव्य के रूप', पृ० २२४।
३. श्री राय कृष्णदास, 'इक्कीस कहानियाँ', आमुख, पृ० ५।
४. प्रो० देवमित्र, 'कहानी के रूप और तत्व', पृ० ६।

पाश्चात्य साहित्य विचारकों ने भी कहानी में उद्देश्य तत्व के स्वरूप पर विभिन्न दृष्टियों से विचार किया है। फोर्ड एम० व्हेफर ने बताया है कि कहानी का उद्देश्य केवल घटना व्यापार का चित्रण है। उसमें उपदेशात्मकता अथवा किसी प्रकार की शिक्षा का दिग्दर्शन औचित्यपूर्ण नहीं है।[५] ए० एम० सी० क्लार्क ने कहानी के उद्देश्य तत्व पर विचार करते हुए इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि कहानी में जीवन का जो रूप प्रस्तुत किया जाता है, उसमें यथार्थ के साथ उद्देश्य का भी योग होता है। लेखक मानव जीवन के किसी क्षेत्र विशेष का पर्यवेक्षण करता है और फिर उन्हीं को अपनी कल्पना की सहायता से एक ऐसा स्वरूप प्रदान करता है, जो उसका अभीष्ट होता है। इस दृष्टिकोण से क्लार्क ने इस मन्तव्य की स्थापना की है कि कहानी का आधारभूत उद्देश्य यथार्थ का चित्रण करना नही है।[६] रोम्या रोलां ने साहित्य के उद्देश्य तत्व के सम्बन्ध मे सामान्य रूप से अपने विचार व्यक्त करते हुए बताया है कि उसके माध्यम से जब तक लेखक अपनी जीविका नही अर्जित करेगा, तब तक उसे गम्भीरता नहीं प्रदान करेगा। उसने अपने इस मन्तव्य का प्रतिपादन किया है कि यदि कोई लेखक जीविका की दृष्टि से किसी अन्य व्यवसाय पर आश्रित रहता है, और केवल शौक, व्यसन अथवा मनोरंजन के लिए साहित्य सृजन करता है, वह साहित्य का सच्चा आराधक नहीं है। सच्चे कलाकार के लिए कला ही उसका जीवन और आत्मा होती है। यह भावना तभी उसमे आ सकती है, जब वह पूर्ण रूप से उसी पर आश्रित हो। फ्रांसिस विवियन ने कहानी के उद्देश्य को उसका एक ऐसा तत्व निर्दिष्ट किया है, जो उसमे आदि से लेकर अन्त तक व्याप्त रहता है।[७] ए० जे० स्मिथ तथा डब्लू० एच० मैसन ने कहानी के परंपरागत उद्देश्य पर विचार करते हुए बताया है कि आज का पाठक कहानी से मनोरंजन से अधिक कुछ और भी अपेक्षा करता है।[८]

५. श्री फोर्ड एम० व्हेफर, 'स्टोरीज फ्राम गाई डी मोपासां', भूमिका।

६. श्री ए० एम० सी० क्लार्क, 'ए मैनुअल आफ शार्ट स्टोरी', पृ० ११८।

७. श्री फ्रांसिस विवियन, 'क्रियेटिव टैक्नीक इन फिक्शन', पृ० ६२।

८. श्री ए० जी० स्मिथ तथा श्री डब्लू० एच० मैसन, 'शार्ट स्टोरी स्टडी : ए क्रिटिकल एंथालोजी', प्राक्कथन, पृ० ३।

उद्देश्य-तत्त्व की विशिष्टता

सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से उद्देश्य को कहानी के एक विशिष्ट तत्व के रूप में मान्य किया जा सकता है, क्योंकि इसकी सम्यक् परिपूर्णता ही कहानी रचना की मूलप्रेरणा होती है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से कहानी में मानव जीवन का विविध पक्षीय चित्रण होता है, जिसके माध्यम से लेखक अपने अभीष्ट को अभिव्यंजित करता है। प्रत्येक कहानी का एक स्वरूप होता है, जिसकी निर्मिति उसके उद्देश्यगत वैशिष्ट्य के अनुसार होती है। सामाजिक जीवन में मानव चरित्र की विरूपता अनेक प्रकार की विडम्बनात्मक परिस्थितियों को जन्म देती है। इसके अतिरिक्त समाज में होनेवाली वैज्ञानिक उन्नति एवं यान्त्रिक उपलब्धियों ने भी अनेक प्रकार की नवीन स्थितियां उत्पन्न की हैं। इन्हीं से सम्बन्धित समस्याओं के निर्मूलन अथवा मान्यताओं के नियमन से कहानी के उद्देश्य का निर्धारण तथा स्वरूप का स्थिरीकरण होता है। प्रेमचन्द ने सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से आत्मतुष्टि का उद्देश्य ही साहित्य में वांछनीय बताया है, क्योंकि इसमें साहित्यकार की स्वतंत्रता निर्बाध रहती है। उनका यह विचार है कि प्राचीन कथा साहित्य के सृजन के पीछे नैतिक उपदेश का उद्देश्य था। आगे चलकर कथा-वैचित्र्य के माध्यम से अद्भुत वस्तुओं का वर्णन कहानी में किया जाने लगा। प्रेमचन्द के विचार से 'वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है। इतना ही नहीं, बल्कि अनुभूतियां ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है।"[१]

आधुनिक कहानी के विविध तत्वों के क्षेत्र में इतना विस्तार और व्यापकता मिलती है कि उसके रचना-उद्देश्य का स्वरूपगत वैशिष्ट्य स्वतः स्पष्ट हो गया है। आधुनिक जीवन की जटिलता ने भी कहानी तथा रचनात्मक साहित्य की अन्य विधाओं को उद्देश्यमूलक स्वरूप प्रदान किया है। अब कला या साहित्य की रूढ़िपरक धारणाएं समाप्त हो गयी हैं और उनके स्थान पर इनकी गम्भीर उद्देश्य-मूलकता मान्य हो गयी है। आज का पाठक कहानीकार से एक जीवन्त प्रेरणा की अपेक्षा करता है। सामाजिक विकास के लिए जो प्रखर चेतना आवश्यक होती है, उसका आवाहन आज का साहित्यकार करता है। अब कहानी में अनुभूत्यात्मकता पर भी बल दिया जाता है। आधुनिक

१. मुंशी प्रेमचंद, 'कुछ विचार', पृ० ३२।

समाज में बौद्धिकता की बढ़ती हुए प्रवृत्ति ने पाठक वर्ग को अपेक्षाकृत प्रबुद्ध और अहम् भावना युक्त बना दिया है। इसलिए कहानी का उद्देश्य मानव-मन का सम्यक् विश्लेषण करना भी हो गया है। यांत्रिक जीवन की भावशून्यता ने मानव को असहिष्णु बना दिया है। फलतः कहानी का यह भी दायित्व हो गया है कि वह मानववादी संदेश का प्रसारण करे। इस प्रकार से, कहानी का उद्देश्यगत वैशिष्ट्य और विस्तार सम-कालीन परिस्थितियों की एक आवश्यकता और मांग है, जिसने उसे एक गम्भीर साहित्यिक माध्यम का दायित्व प्रदान किया है।

उद्देश्य-प्रधान कहानी

उद्देश्य प्रधान कहानी में लेखक का अभीष्ट ही मुख्य रहता है तथा वह उसी की सिद्धि को केन्द्र में रखकर उसके अनुरूप अन्य तत्वों का नियोजन करता है। उदाहरण के लिए हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी 'उदयभान चरित' या 'रानी केतकी की कहानी' की रचना के पीछे इंशाअल्ला खां का दृष्टिकोण यह था कि वे खड़ी बोली की कथा-त्मक सामर्थ्य का परिचय दें। यद्यपि इस कहानी में सभी सैद्धान्तिक उपकरणों के यथासम्भव सम्यक् रूप से निर्वाह करने का प्रयत्न किया गया है, परन्तु उद्देश्य तत्व के मूल प्रेरक सूत्र होने के कारण इसे उद्देश्य-प्रधान कहानी के अन्तर्गत ही रखा जायगा। डा० श्यामसुन्दर दास ने उद्देश्य-प्रधान कहानी का स्वरूप निर्धारण करते हुए उसका उपदेशात्मक अथवा शिक्षा-प्रधान होना ही आवश्यक नहीं बताया है। उनके विचार से 'एक निश्चित उद्देश्य या लक्ष्य लेकर लिखी गयी आख्यायिका यद्यपि निर्णय प्रधान होती है, परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि उसका निर्णय सदैव उपदेशात्मक नहीं होता। कुछ विद्वानों का यह मत है कि आरम्भ में ही एक निश्चित विचार बना लेने और उसके निदर्शनार्थ कथा का सूत्र पिरो देने का लक्ष्य रखने के कारण आख्यायिका की कला उपदेश प्रधान होने को बाध्य है। परन्तु यह मत सर्वथा सत्य नहीं प्रतीत होता। एक ही भाव या विचार की प्रधानता होते हुए भी कथा की रचना ऐसी की जा सकती है, जिसमें घटनाएं और चरित्र अत्यन्त स्वाभाविक रीति से अग्रसर हों और अत्यन्त अनि-वार्य रूप से उक्त भाव को ध्वनित करें।"[१०] नीति-शिक्षा ही इस प्रकार की रचनाओं का आधारभूत तत्व नहीं हो सकता। इसके विपरीत उद्देश्य-तत्व-गत क्षेत्र-विस्तार और

१०. डा० श्यामसुन्दर दास, 'साहित्यालोचन', पृ० १८४-८५।

वैविध्य इस कोटि की कहानी को व्यापक सम्भावनाएं प्रदान करता है। भारतेन्दु तथा उनके परवर्ती विकास युगों में भी जो उद्देश्य प्रधान कहानियां लिखी गयी हैं वे भी इस तथ्य की द्योतक हैं कि केवल उपदेशात्मकता अथवा नीति शिक्षा ही इस प्रकार की रचनाओं का आधारभूत तत्व नहीं हो सकता। इसके विपरीत उद्देश्य-तत्वगत क्षेत्र विस्तार और वैविध्य इस कोटि की कहानी को व्यापक सम्भावनाएं प्रदान करता है।

उद्देश्य तत्व का स्वरूपात्मक विकास

आरम्भिक युगीन हिन्दी कहानी में उद्देश्य-तत्व का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है, वह प्राचीन कथा-साहित्य से प्रभावित है। प्राचीन कथा-साहित्य की भांति उसमें भी विशेष रूप से मनोरंजन तथा नीति शिक्षा को आधार बनाकर कहानी रचना हुई। जो रचनाएं मनोरंजन के उद्देश्य से लिखी गयीं, उनमें कौतूहल सृष्टि को प्रमुखता दी गयी तथा जो कहानियां नीति शिक्षा के उद्देश्य से लिखी गयीं, उनमें उपदेशात्मकता के तत्व प्रधान रहे। हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी 'रानी केतकी की कहानी' में भी इंशाअल्ला खां का उद्देश्य भाषा की रचनात्मक सामर्थ्य का परिचय देने के साथ साथ पाठकों का मनोरंजन करना भी था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक कहानी : कुछ आपबीती, कुछ जगबीती' तथा 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' में भी मनोरंजन का ही उद्देश्य निहित है। मनोरंजन के ही उद्देश्य से इस युग में जो अन्य कहानियां प्रस्तुत की गयी हैं, उनमें अधिकांश लेखकों का दृष्टिकोण आदर्शपरक हो गया है, जिसकी परिणति कहीं कहीं उपदेशात्मकता के रूप में भी मिलती है। कुछ कहानियां ऐसी भी हैं, जिनमें मनोरंजन के उद्देश्य के साथ यथार्थपरक पृष्ठभूमि उपलब्ध होती है। इनमें से प्रथम कोटि में किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती', रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' तथा गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पति का पवित्र प्रेम' आदि कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। द्वितीय कोटि की कहानियों में राधाचरण गोस्वामी लिखित 'यमपुर की यात्रा', केशवप्रसाद सिंह लिखित 'आपत्तियों का पहाड़' तथा गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पंडित और पंडितानी' आदि उल्लेखनीय हैं। कौतूहल सृष्टि के माध्यम से विशुद्ध मनोरंजन के उद्देश्य से लिखी गयी कहानियों में मधुमंगल लिखित 'भुतही कोठरी' तथा रूद्रदत्त भट्ट लिखित 'अजीबदास की जासूसी' आदि की रचना इस युग में हुई। समाज सुधार की भावना का आधार समकालीन समस्याएं

रहीं, जिनके निर्मूलन के लिए शिक्षा का प्रचार, अंध विश्वास की समाप्ति तथा विविध क्षेत्रीय चेतना के जागरण का आवाहन किया गया।

प्रेमचन्द युग में कहानी के उद्देश्य-तत्त्व के क्षेत्र में प्रसार हुआ। इस काल में मात्र कौतूहल सृष्टि के माध्यम से मनोरंजन करने वाली कहानियों की रचना की तुलना में वे कहानिया अधिक लोकप्रिय हुईं जिनमे यथार्थपरक आधारभूमि पर समाज सुधार का उद्देश्य निहित था। द्वितीय विकास कालीन कहानी के सर्वप्रमुख लेखक प्रेमचन्द ने स्वयं अपनी कहानियों में इसी दृष्टिकोण को प्रश्रय दिया। उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों में व्याप्त रूढियों का तीव्र विरोध किया। आर्थिक वैषम्य को वर्ग-संघर्ष का मूल आधार संकेतित करते हुए प्रेमचन्द ने किसी न किसी रूप में आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की है। 'आत्माराम' 'पंच परमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी', 'मन्त्र' तथा 'नमक का दरोगा' आदि कहानियों मे आदर्शवादी उद्देश्य ही प्रधान है। इसके विपरीत 'कफन', 'नेउर',. 'सवा सेर गेहूं' तथा 'डिग्री के रुपये' आदि कहानियो मे प्रेमचन्द ने सामाजिक यथार्थ के विभिन्न रूपों का उद्घाटन करते हुए स्वार्थ एवं शोषण का विरोध किया है। 'आभू-षण', 'दो सखियां', 'प्रेम का उन्माद', 'लांछन' तथा 'दो बहिनें' आदि कहानियों में प्रेमचन्द ने नारी जीवन के प्राचीन आदर्शों को ही अनुकरणीय बताया है, क्योंकि उनके विचार में नवीन जागरण जहां एक ओर समाज मे सुधार की भावना का प्रचार करता है, वहां दूसरी ओर उसके फलस्वरूप अनेक विकृतियो को भी जन्म देता है, जो व्यावहारिक दृष्टिकोण से वांछनीय नही है। प्रेमचन्द के साहित्य मे विविध विचारधाराओं का समा-वेश मिलने का सबसे बडा कारण यह है कि प्रेमचन्द का साहित्यिक व्यक्तित्व निरन्तर विकासशील रहा था। प्रथम और द्वितीय विश्व महायुद्धों के मध्य भारत में जो जन जागरण हुआ, उसका सूक्ष्म परिवीक्षण करते हुए प्रेमचन्द ने समकालीन चेतना को अपने साहित्य मे अभिव्यक्ति दी। प्रेमचन्द ने आदर्शवाद से लेकर यथार्थवाद तक की जो मंजिल तय की, उसके मध्य साम्यवाद, प्रगतिवाद, समाजवाद, अध्यात्मवाद आदि अन्य अनेक विचारधाराएं भी हैं, जिनकी ओर प्रेमचन्द का न्यूनाधिक मात्रा में झुकाव मिलता है, यद्यपि प्रेमचन्द का व्यक्तित्व इनमें से किसी भी विचार-दर्शन से आक्रान्त नहीं हुआ।

द्वितीय विकास काल में चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने 'उसने कहा था', 'बुद्धू का कांटा' तथा 'सुखमय जीवन' में आदर्शवादी उद्देश्य को ही प्रधानता दी है। विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने भी अपने 'मणिमाला' तथा 'चित्रशाला' संग्रहों में प्रकाशित कहानियों में सुधारभावना को ही प्रमुख रखा है। उन्होंने समाज में व्याप्त शोषण, पर्दा प्रथा, बाल

विवाह तथा पारिवारिक विघटन आदि का विरोध करते हुए शिक्षा के प्रचार तथा सुधारपरक दृष्टिकोण पर विशेष रूप से बल दिया। जयशंकर 'प्रसाद' ने जहां एक ओर 'ममता', 'अशोक' तथा 'सिकन्दर की शपथ' आदि कहानियों के माध्यम से प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक आदर्शों को प्रस्तुत किया है, वहां दूसरी ओर 'मधुआ' जैसी कहानियों में युग जीवन के यथार्थ को भी उद्‌घाटित किया है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने समाज में व्याप्त रूढ़िवादिता को ही सामाजिक ह्रासोन्मुखता का मूल कारण बताते हुए उसके निर्मूलन का सन्देश दिया है। 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी', 'ज्योतिर्मयी', 'चतुरी चमार' तथा 'दो दाने' आदि कहानियों में उन्होंने इन्हीं समस्याओं की पृष्ठभूमि में सामाजिक जीवन के विडम्बनात्मक चित्र प्रस्तुत किये हैं, जो उनके समाज सुधार विषयक दृष्टिकोण के परिचायक हैं। चतुरसेन शास्त्री ने 'अम्बपालिका', 'सिंहगढ़ विजय' तथा 'हठी हम्मीर' आदि कहानियों में अपना आदर्शवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है, जबकि 'विधवा आश्रम', 'पतिता' तथा 'प्रणय पथ' जैसी कहानियों में यथार्थपरक पृष्ठभूमि पर समाज सुधार की भावना दृष्टिगत होती है। 'मुखबिर', 'क्रान्तिकारिणी', 'वारंट' तथा 'लौह पुरुष' आदि कहानियां राजनीतिक उद्देश्य व्यक्त करती हैं। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने देश प्रेम के उदात्तपरक आदर्श प्रस्तुत करने के साथ साथ सामाजिक यथार्थ के विडम्बनात्मक चित्र भी अंकित किये हैं। जैनेन्द्र कुमार की लिखी हुई विविध विषयक कहानियों में आदर्श के प्रस्तुतीकरण के साथ साथ राजनीतिक उद्देश्य भी दृष्टिगत होते है।

द्वितीय विकास काल में समाज सुधार के साथ साथ राजनीतिक उद्देश्य से लिखी गयीं कहानियां भी बड़ी संख्या मे उपलब्ध होती हैं। इस युग मे सुधारवादी उद्देश्य प्रधान कहानियों की रचना का आधार शोषण, अंधविश्वास, दहेज, हरिजन समस्या, नारी जीवन की समस्याएं, वैवाहिक जीवन की समस्याएं, पारिवारिक समस्याएं, पर्दा प्रथा, स्वच्छंद प्रेम की समस्या, वेश्या समस्या तथा आर्थिक समस्याएं आदि रही। द्वितीय विश्व युद्ध, अकाल तथा क्रान्तिकारी आन्दोलनों नेजनता की सुप्त राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत किया। इसलिए राजनीतिक उद्देश्यप्रधान कहानियों की रचना भी अनेक लेखकों द्वारा की गयी। परम्परावादी आदर्शपरक उद्देश्यप्रधान कहानी रचना करने वालों में भगवती प्रसाद वाजपेयी, सुदर्शन, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, उषादेवी मित्रा, राय कृष्णदास, डा० वृंदावनलाल वर्मा, शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, सियाराम शरण गुप्त, मोहनलाल महतो 'वियोगी', श्रीमती होमवती देवी,

कमलाकान्त वर्मा, विनोदशंकर व्यास, गोविन्दवल्लभ पंत, कमलादेवी चौधरी तथा विश्वंभरनाथ जिज्जा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। राजनीतिक उद्देश्यप्रधान कहानी रचना करने वाले लेखकों में मन्मथनाथ गुप्त, भगवतीचरण वर्मा तथा यशपाल आदि प्रमुख हैं। मनोवैज्ञानिक और बौद्धिक पृष्ठभूमि में सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' तथा उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने कहानी रचना की। मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि से मानसिक विकृतियों के चित्रण की प्रधानता इलाचन्द्र जोशी की कहानियों में मिलती है। देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' तथा जी० पी० श्रीवास्तव ने हास्य सृष्टि के उद्देश्य को प्रमुखता देते हुए इस युग में कहानी रचना की।

स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानी में वैचारिकता और बौद्धिकता का आग्रह विशेष रूप से बढ़ा हुआ मिलता है। आधुनिक समाज में यान्त्रिक जीवन के बढ़ते हुए प्रभाव के फलस्वरूप मानवतावादी भावनाओं का जो विलोप होता जा रहा है, उसने आधुनिक जीवन को अत्यन्त संकुल बना दिया है। आज का कहानीकार विविध क्षेत्रीय चेतना के साथ साथ इस दिशा में भी पूर्ण जागरूकता का परिचय दे रहा है। इस युग में परम्परावादी आदर्शपरक, सुधारपरक तथा विशुद्ध मनोरंजन के उद्देश्य से लिखी गयी कहानियों की संख्या अधिक नहीं है। स्वतंत्रता की प्राप्ति तथा भारत विभाजन के उपरान्त उत्पन्न हुई परिस्थितियों ने हिन्दी कहानी को व्यापक विषय-क्षेत्र प्रदान किया। अमृतलाल नागर ने जहां एक ओर अपनी 'डाक्टरी साइन बोर्ड' जैसी कहानियों में सामाजिक वैरूप्य का अंकन किया है, वहां दूसरी ओर 'एटम बम' जैसी रचनाओं में युद्ध की विभीषिका का मार्मिक चित्रण किया है। रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी', अमृतराय, बलवन्त सिंह, विष्णु प्रभाकर तथा नरेश मेहता आदि कहानीकारों ने राज-नीतिक उद्देश्य को भी अपनी कहानियों में प्रश्रय दिया है। बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा, रमेश बक्षी तथा कमलेश्वर ने कहानी रचना की है। इस युग की कहानी में परिवर्तनशील सामाजिक परिस्थितियों, सामाजिक, राष्ट्रीय चेतना, शिक्षा के प्रचार, नैतिक तथा बौद्धिक समस्याओं को आधार बनाकर कहानी को भावी विकास की व्यापक पृष्ठभूमि प्रदान की गयी है।

उद्देश्य-विषयक धारणाएं

कहानी के उद्देश्य के विषय में प्राचीन काल से ही विभिन्न प्रकार की धारणाओं

का प्रकार रहा है। इन धारणाओं में युग जीवन के अनुकूल वैविध्य भी आया है। यह कहानी के इस तत्व की क्रमिक विकासशीलता का द्योतक है। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, प्राचीन कथा साहित्य का उद्देश्य प्रधानतः मनोरंजन अथवा उपदेशात्मकता ही थी। भारतेन्दु युग में मनोरंजन के उद्देश्य से कौतूहल प्रधान रचनाएं तथा उपदेशात्मकता के विचार से समस्यामूलक कहानियां प्रस्तुत की गयीं। ये कहानियां विभिन्न सामाजिक समस्याओं को आधार बनाकर लिखी गयी थीं, और इनकी पृष्ठभूमि में समाज सुधार की भावना थी। उपदेशात्मकता के ही दूसरे पक्ष के रूप में नीति की शिक्षा देने वाली कहानियां उपलब्ध होती हैं। ये कहानियां मुख्य रूप से समकालीन धार्मिक भावनाओं को आधार बनाकर लिखी गयी थीं। भारतेन्दु युग स ही कहानी की पृष्ठभूमि पूर्ण कल्पना से पृथक् होकर यथार्थपरक बनी। तभी कहानी की उद्देश्य सम्बन्धी धारणाओं का और भी प्रसार हुआ। यहां पर कहानी की उद्देश्य सम्बन्धी, विविध युगों में प्रचलित धारणाओं की संक्षिप्त परिचयात्मक व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है।

मनोरंजन—कहानी के मूल और प्राथमिक उद्देश्य के रूप में मनोरंजन को प्राचीन काल से ही आज तक मान्य किया जाता है। विविध युगीन कहानी साहित्य में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों का विकास हुआ है। पाठकों का मनोरंजन करने के लिए कहानी में हास्य तत्वों की आयोजना भी की जाती है, क्योंकि हास्य रुचि भी मनुष्य की एक स्वाभाविक वृत्ति है। पूर्व भारतेन्दु युग में उपलब्ध 'सालिगा सदाब्रज का वृत्तान्त' शीर्षक कथा कृति की रचना का उद्देश्य मनोरंजन ही था। यह कथा गणेशीलाल तथा भेदीराम द्वारा पृथक् पृथक् रूप में प्रस्तुत की गयी थी, जिसमें यह स्पष्ट संकेत किया गया है कि 'यह पुस्तक सालिगा की अति उत्तम और अति प्रिय ललित भाषा में रसिक जनों के मन बहलाने के लिए पं० भेदीराम ने बनाकर निज छापेखाने में छापी।''[11] इस रचना में एक प्रेमकथा प्रस्तुत की गयी है, जिसका आधार आध्यात्मिक है और जो कई जन्मों तक चलती है। यह पूर्णतः काल्पनिक कथा है। भारतेन्दु युग से लेकर वर्तमान काल तक लिखी गयी कहानियों में हास्य-प्रधान रचनाएं एक बड़ी संख्या में मिलती हैं। ये रचनाएं प्रायः दो वर्गों में उपलब्ध होती हैं। एक तो वे रचनाएं जिनमें हास्य तत्व की ही बहुलता है और जो हास्य प्रधान कहानियों के

११. पं० भेदीराम, 'सालिगा सदाब्रज का वृत्तान्त', पृ० १२।

अन्तर्गत रखी जा सकती हैं तथा दूसरी वे रचनाएं, जिनमें हास्य तत्व का समावेश अंशतः हुआ है। हिन्दी में प्रथम कोटि की रचनाएं प्रेमचन्द, भगवतीचरण वर्मा, जी० पी० श्रीवास्तव तथा अमृतलाल नागर आदि ने प्रस्तुत की हैं। द्वितीय कोटि की रचनाओं के उदाहरण जयशंकर 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', यशपाल तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' आदि के साहित्य में उपलब्ध होते हैं। केवल मनोरंजन के उद्देश्य से साहित्य रचना करने का विरोध आधुनिक युग के अनेक लेखकों ने किया है। स्वयं मुंशी प्रेमचन्द ने इस मत का खंडन किया है कि साहित्य का काम केवल मन बहलाव का सामान जुटाना अथवा मनोरंजन करना है। आधुनिक साहित्य प्रत्यक्ष रूप से जीवन और समाज से सम्बन्ध रखता है। उसके दायित्व गम्भीरतर हो गये हैं। अब वही मनुष्य की चेतना का प्रतीक है।

मनोरंजन को प्रधान लक्ष्य बनाकर लिखी गयी कहानियो में एक वर्ग ऐसी रचनाओं का भी है, जिनका आधार अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पनात्मकता है। इस कोटि की रचनाओं में पाठक की कौतूहल वृत्ति को ध्यान में रखकर अलौकिक कल्पनाएं की जाती हैं। इनमें साधारण घटनाओ और सामान्य पात्रों का ही अंकन अतिरंजित रूप में किया जाता है, जिससे पाठक की रुचि उनमें जाग्रत हो। प्रायः साहसिक और रोमांचयुक्त कहानियो में मनुष्य की सहज जिज्ञासा वृत्ति की ही विलक्षण परिणति का निदर्शन किया जाता है। इन रचनाओं का आधार यथार्थपरक न होने के कारण इनमें कल्पनात्मकता का अतिरेक और विश्वसनीयता का अभाव मिलता है।[१२] विविध प्रकार की प्रेम कहानियां, युद्ध वृत्तांत, रोमांचकारी यात्राएं तथा परियों के वृत्तान्त[१३] आदि इनका प्रधान आधारसूत्र होते हैं। शिवसहाय चतुर्वेदी ने लोककथाओं का उद्देश्य बताते हुए लिखा

१२. (क) उन्नीसवीं शताब्दी के अमरीकन कहानीकार नथेनियल हाथार्न ने जादू से सम्बन्धित कहानी रचना की है। इस विषय पर आधारित उनकी लिखी हुई कहानियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध 'यंग गुडमैन ब्राउन' है।

(ख) प्राचीन रूसी कथा साहित्य में 'राजकुमार इवान' आदि पात्रों पर आधारित कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ उपलब्ध होती हैं जिनमें जादुई कार्य कलाप का रोचक वृत्तांत मिलता है।

१३. उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध जर्मन लेखक लुडविग ग्रिम ने 'ग्रिम्स फेयरी टेल्स' में विश्वप्रसिद्ध लोककथाएँ प्रस्तुत की हैं।

है कि 'इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है, उपदेश देना नहीं। मानवीय भावों के घात-प्रतिघात और उनके उतार-चढ़ाव के चित्रण से उन्हें कोई मतलब नहीं और न बुद्धि और तर्क के ऊहापोह के लिए वहां कोई स्थान है। उनकी तो अपनी एक अलग दुनिया है। जहां सभी कुछ असम्भव सम्भव है, सभी कुछ वहां आसानी से बिना किसी प्रयास के घटित हो सकता है। तोता मैना, हाथी घोड़े, शेर चीते, यहां तक कि जड़ पदार्थ भी मनुष्यों की तरह बातें करते हैं। दीवारों या पटों पर खिंचे हुए चित्र भी आवश्यकता पड़ने पर सजीव हो जाते हैं, साधु या फकीरों की दी हुई झोली, लाठी या माला से मनोवांछित पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं।'[१४] . . .

उपदेशात्मकता—कहानी का यह उद्देश्य प्राचीन युग से ही मान्य रहा है। प्राचीन कथा साहित्य में नीति और धर्म क्षेत्रीय उपदेशात्मकता की भावना विद्यमान है। विभिन्न पौराणिक सूत्रों पर आधारित कथाएं भी मुख्यत: नीति और धर्म की ही शिक्षा देने के लिए लिखी गयी हैं। ए० बी० कीथ ने परवर्ती उपदेशात्मक कथा-साहित्य का मूल उद्‌गम प्राचीन महाकाव्यों से बताया है।[१५] संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् कृष्णमाचारी का मत भी इसी प्रकार का है।[१६] नीति सम्बन्धी साहित्य के प्रतिनिधि ग्रन्थों मे 'पंचतंत्र' तथा 'हितोपदेश' विशेष रूप से उल्लिखित किये जा सकते हैं। इन ग्रन्थों में नैतिकता के आदर्शों के प्रति जो आग्रह मिलता है, वह प्राचीन भारतीय नैतिक मान्यताओं का परिचायक है। ये मान्यताएं प्राचीन काल से लेकर वर्तमान युग तक किसी न किसी रूप में प्रचलित हैं और इनको आधार बनाकर विविध युगों में विशद साहित्य रचा गया है। धर्मक्षेत्रीय उपदेशात्मकता की भावना का आधार मुख्यत: रामायण, महाभारत तथा पौराणिक कथा ग्रन्थ रहे हैं। इनकी कथाएं भी प्राचीन काल से लेकर आज तक अनेक रूपों में परम्परागत रूप से प्रचलित रही हैं। प्रथम विकास काल के पूर्व ही राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' ने 'राजा भोज का सपना' शीर्षक कहानी के अन्त में पाठकों को सद्‌बुद्धि जाग्रत होने का आशीर्वाद दिया है—'हे पाठक जनों! क्या तुम भी भोज की तरह ढूढ़ते हो और भगवान से उसके मिलने की प्रार्थना करते हो। भगवान तुम्हें शीघ्र ऐसी बुद्धि दे और अपनी राह पर चलावे यही हमारे अंतःकरण का

१४. श्री शिवसहाय चतुर्वेदी, 'बुन्देलखंड की ग्राम्य कहानियां', पृ० १४।
१५. श्री ए० बी० कीथ, 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर', पृ० २४२।
१६. श्री कृष्णमाचारी, 'हिस्ट्री आफ क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर', पृ० ४१३।

आशीर्वाद है।..जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ।'[१७] प्रेमचन्द ने बताया है कि सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से साहित्य और नीतिशास्त्र के उद्देश्य में कोई भेद नहीं है। केवल इनमें उपदेश की विधि की दृष्टि से पारस्परिक भेद है। नीतिशास्त्र तर्क तथा उपदेश के माध्यम से मनुष्य की बुद्धि और मन को प्रभावित करने की चेष्टा करता है, जबकि साहित्य व्यक्ति की मानसिक अवस्थाओं और भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है। डा० श्यामसुन्दर दास के विचार से 'यह रचनाकार की निपुणता का द्योतक होगा कि वह स्वाभाविक कथानक का तन्तु तानकर उसमें कथा के लक्ष्य को इस प्रकार लपेट ले, जिस प्रकार माता अपने बालक को गोद में छिपा लेती है। परन्तु यदि आख्यायिका लेखक उतना कला कुशल नहीं है, तो आख्यायिका में उपदेश का पुट दूर से ही दिखाई देगा। ऐसी आख्यायिकाएं किसी व्याख्यान के अंश सी प्रतीत होंगी। उनमें उच्च कला का स्वरूप स्फुटित होता न देख पड़ेगा।'[१८]

कौतूहल सृष्टि—कौतूहल सृष्टि के उद्देश्य से लिखी गयी कहानियों की कथावस्तु का आधार जासूसी एवं रहस्यात्मक सूत्र होते हैं। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में भारतेन्दु युग से ही इस प्रकार की रचनाएं उपलब्ध होती हैं। ये कहानियां एक ओर मानवीय चरित्रों की विविध स्तरों पर प्रतिक्रियाओं का निदर्शन करती हैं, जिनमें अपराध वृत्ति, षडयंत्र रचना तथा साहसिकता आदि प्रधान हैं। दूसरी ओर इनमें अलौकिक और आश्चर्यजनक सूत्रों की विवृति की जाती है। इन दोनों ही प्रकार की रचनाओ में विविध प्रकार के घटना नियोजन के द्वारा कौतूहल की सृष्टि की जाती है। बहुधा सफल घटना संगठन के परिणाम स्वरूप ये कहानियां कथात्मक सम्भावनाओं की दृष्टि से विश्वसनीय होने का भी भ्रम उत्पन्न करती हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि पूर्ण रूप से कल्पना तत्वों पर आधारित होने पर भी इन रचनाओं में कहीं-कहीं कथासूत्रों तथा पात्र योजना आदि की दृष्टि से असम्भाव्यता नहीं लक्षित होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी घटना विन्यास की वक्रता अथवा वैचित्र्य को आधुनिक कहानियों की प्रत्यक्ष विशेषता बताया है।[१९] आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने कौतूहल

१७. राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द, 'राजा भोज का सपना', प्रका० नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, सन १८८८।

१८. डा० श्यामसुन्दर दास, 'साहित्यालोचन', पृ० १८५।

१९. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० ६०२।

सृष्टि के माध्यम से पाठकों का मनोरंजन करना कहानी का उद्देश्य निर्दिष्ट किया है। उनके विचार से 'कहानी का लक्ष्य घटनाचक्र होता है, उसमें आकर्षण का विधान आवश्यक होता है। फलतः कहानी में पाठक की कुतूहल वृत्ति जाग्रत की जाती है। इसी से अंगरेजी के समीक्षक कहानी का प्रधान तत्व 'कुतूहल' (एलीमेंट आफ सस्पेंस) को ही मानते हैं। यह ठीक भी है। किसी कहानी के पढ़ने में 'आगे क्या हुआ या होने वाला है' की जिज्ञासा के रूप में कुतूहल बराबर जगा रहता है। कविता की भांति किसी विशेष भाव में रमाए रखना उसका प्रयोजन नहीं, किसी निबंध की भांति नूतन ज्ञानोपलब्धि उसका फल नहीं। उसका मुख्य उद्देश्य होता है 'रंजन'। इस रंजन के लिए वह कुतूहल का सहारा लेती है। वह अनुसंधानात्मक चित्तवृत्ति की परितुष्टि करती है।'[२०]

हास्य सृष्टि—हास्य सृष्टि के उद्देश्य से जो कहानियां लिखी जाती हैं, उनमें एक तो वे रचनाएं आती हैं, जो पूर्ण रूप से हास्य को प्रधानता देकर रची गयी है, तथा दूसरी वे कहानियां होती हैं, जिनमे अन्य तत्वों के साथ ही हास्य तत्व का भी समावेश आंशिक रूप में होता है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भारतेन्दु युग से ही इस प्रकार की रचनाएं उपलब्ध होती हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' तथा केशव प्रसाद सिंह लिखित 'आपत्तियों का पहाड़' आदि कहानियो में हास्य तत्व का समावेश आंशिक रूप में हुआ है। द्वितीय विकास काल मे प्रेमचन्द लिखित 'मोटेराम शास्त्री की डायरी' तथा 'बड़े भाई साहब' जैसी कहानियां हास्य प्रधान हैं। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', चतुरसेन शास्त्री तथा पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कहानियों मे भी हास्य तत्व का समावेश आंशिक रूप में हुआ है। तृतीय विकास काल में भगवतीचरण वर्मा लिखित 'दो बांके' तथा 'प्रायश्चित्त' आदि हास्यप्रधान कहानियां लिखी गयीं। इसी काल में जी० पी० श्रीवास्तव ने हास्य तत्वों को प्रधानता देते हुए अनेक कहानियों की रचना की जो 'लम्बी दाढ़ी' नामक कहानी संग्रह में संगृहीत हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में अमृतलाल नागर ने 'तुलाराम शास्त्री', 'गोरखधंधा', 'मुंशी बख्तावर अली', 'नवाबी चक्कर' तथा 'पढ़े लिखे बराती' आदि कहानियां प्रस्तुत कीं, जिनमें हास्य सृष्टि ही प्रधान उद्देश्य है। आंशिक रूप से हास्य तत्व का समावेश इस काल के प्रायः सभी कहानीकारों की रचनाओं में मिलता है।

२०. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, 'हिन्दी का सामयिक साहित्य', पृ० १४८।

स्वास्थ्य लाभ---पूर्व भारतेन्दु युगीन कथा साहित्य का अवलोकन करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि कहानी की रचना का एक उद्देश्य पाठक को रोग से मुक्त करके स्वस्थ बनाये रखना भी माना जाता था। इस काल में उपलब्ध 'किस्सा चहार दरवेश' में कथा रचना के इसी उद्देश्य की ओर संकेत किया गया है---"जो साहब दाना और हिन्दुस्तान की जबान बोलने वाले हैं, उनकी खिदमत में गुजारिश करता हूं कि यह किस्सा चहार दरवेश का इब्तदा में अमीर खुसरो देहलवी ने इस तरकीब से कहा कि हजरत निजामुद्दीन औलिया जरीजरबख्श जो उनके पीर थे और दरगाह उनकी दिल्ली मे किलअ से तीन कोस लाल दरवाजे के बाहर मटिया दरवाजे के आगे लाल बंगले के पास है उनकी तबियत मांदी हुई तब मुरशद का दिल बहलाने के वास्ते अमीर खुशरो यह किस्सा हमेशः कहते और तीमारदारी में हाजिर रहते अल्लाह ने चंद रोज में शफ़ा दी तब उन्होंने गुसल सेहत के दिन यह दुआ दी कि जो कोई इस किस्से को सुनेगा खुदा के फ़जल से तन्दुरुस्त रहेगा।"

आदर्शवादी उद्देश्य---आदर्शवादी उद्देश्यों को प्रधानता देकर विविध विकास युगो मे हिन्दी के अनेक लेखको द्वारा कहानी रचना की गयी है। भारतेन्दु युग मे विभिन्न क्षेत्रीय सामाजिक समस्याओं का निरूपण करते हुए निष्कर्ष रूप मे कहानीकार किसी आदर्श की स्थापना करता था। प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती कालों के आदर्शवादी कहानी लेखकों ने भी इसी दृष्टिकोण का प्रस्तुतीकरण किया है। प्रेमचन्द ने भी साहित्य के इसी आदर्श की प्रतिष्ठा का अनुमोदन किया है। उनकी धारणा है कि मनुष्य की स्वाभाविक विशेषता उसका देवत्व ही होता है। समाज में उत्पन्न होने वाली परिस्थितियां उसे इस गुण से हीन बना देती हैं। साहित्य इसी की पुनःप्रतिष्ठा के लिए यत्नशील रहता है। परन्तु इसके लिए वह कोरी उपदेशात्मकता का आश्रय नहीं लेता, वरन् मनुष्य की भावनाओं की मर्मस्पर्शी अभिव्यंजना के आधार पर इसका आदर्श उपस्थित करता है। प्रेमचंद ने अपने 'प्रेम द्वादशी' नामक कहानी संग्रह की भूमिका में इस आदर्श का समर्थन करते हुए आधुनिक यूरोपीय विचारधाराओं, विशेषतः यथार्थवाद का विरोध भी किया है---'यूरोप की दृष्टि सुन्दरता पर पड़ी है, पर भारत की सत्य पर। संपूर्ण यूरोप में मनोरंजनार्थ गल्पें लिखी गयीं, परन्तु भारत इस आदर्श से सहमत नहीं। नीति और धर्म हमारे जीवन के प्राण है। पराधीन होते हुए भी हमारी सभ्यता उनसे ऊंची है। यथार्थ पर दृष्टि रखने वाला यूरोप आदर्शवादियों से जीवन संग्राम में बाजी क्यों न

ले जाय, पर हम अपने परंपरागत संस्कारों को त्याग नहीं सकते।'[२१] 'सुदर्शन' ने भी कहानी के इसी उद्देश्य का समर्थन किया है। उनके विचार से 'दुनियां में बुरे आदमी हैं, मगर दुनियां का उद्देश्य बुरा नहीं। इसी तरह कहानी का कोई पात्र गुनाह का ग्राहक और पाप का प्यासा हो सकता है, मगर कहानी का उद्देश्य पाप को मधुर मनोहर बनाना नहीं।'[२२]

समस्या चित्रण—समस्या चित्रण के उद्देश्य से लिखी गयी कहानियाँ अपेक्षाकृत *गम्भीर विषय वस्तु पर आधारित होती हैं। भारतेन्दु युग से समाज के विविध क्षेत्रों* में व्याप्त समस्याओं का चित्रण करने वाली कहानियों का लेखन आरम्भ हुआ है। ये कहानियाँ जहाँ एक ओर उद्देश्य तत्व के स्वरूपात्मक विकास की द्योतक हैं, वहाँ दूसरी ओर एक गम्भीर साहित्यिक माध्यम के रूप में भी कहानी की प्रतिष्ठा करती हैं। हिन्दी कहानी के विविध विकास युगों में समस्या प्रधान कहानी लेखक हुए हैं, जिन्होंने मानव जीवन और समाज की विभिन्न समस्याओं का प्रभावशाली चित्रण अपनी रचनाओं मे प्रस्तुत किया है। सामाजिक विकास के साथ साथ इन समस्याओं के स्वरूप में परिवर्तन भी हुआ है। भारतेन्दु युग में विभिन्न क्षेत्रीय जिन सामाजिक समस्याओं को आधार बनाकर कहानी रचना हुई थी, उन्हें वर्तमान काल तक की कहानियों में चित्रित किया गया है। आज का कहानीकार परम्परावादी आदर्शपरक दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक समस्या का समाधान कहानी के उद्देश्य के रूप में नहीं चित्रित करता, वरन् केवल समस्या के प्रस्तुतीकरण द्वारा व्यक्ति को जागरूक और सचेतन बनाता है। प्रेमचंद ने भी कहानी के इस उद्देश्य के औचित्य का प्रतिपादन करते हुए बताया है कि 'जिस साहित्य में हमारे जीवन की समस्याएं न हों, हमारी आत्मा को स्पर्श करने की शक्ति न हो, जो केवल जिंसी भावों में गुदगुदी पैदा करने के लिए या भाषा चातुरी दिखाने के लिए रचा गया हो, वह निर्जीव साहित्य है, सत्य-हीन, प्राणहीन....वह साहित्य जो हमें विलासिता के नशे में डुबा दे, जो हमें वैराग्य, पस्तहिम्मती, निराशावाद की ओर ले जाय, जिसके नजदीक संसार दुख का घर है और उससे निकल भागने में हमारा कल्याण है, जो केवल लिप्सा और भावुकता में डूबी हुई कथाएं लिखकर कामुकता को भड़काए, निर्जीव है।'[२३] जैनेन्द्र कुमार ने

२१. मुंशी प्रेमचंद, 'प्रेम द्वादशी', भूमिका, पृ० २।
२२. श्री 'सुदर्शन', 'चार कहानियाँ', भूमिका, पृ० ४।
२३. मुंशी प्रेमचंद, 'साहित्य का उद्देश्य', पृ० १९९।

अपने 'एक रात' नामक कहानी संग्रह की भूमिका में लिखा है, 'समाधान मुझसे न मांगें, मैं इनकार कर दूंगा। इसलिए नहीं कि समाधान के नाम पर मैं उन्हें बहुत कुछ नहीं दे सकता, प्रत्युत इसलिए कि मैं मानता हूँ कि मन में शंका, उद्वेलन पैदा करना भी मेरी कहानियों का एक इष्ट है।'[२४]

सुधार भावना—प्राचीन कथा साहित्य में नीति-धर्म शिक्षा अथवा उपदेशात्मकता का जो उद्देश्य था, वह अपने परिवर्तित रूप में आधुनिक हिन्दी कहानी के क्षेत्र में सुधार भावना के रूप में मिलता है। भारतेन्दु युग से ही कुरीति निवारण अथवा समाज सुधार की भावना से युक्त कहानियों की रचना आरम्भ हो गयी थी। समाज में व्याप्त विविध क्षेत्रीय समस्याएं इस दृष्टिकोण का आधार थी। सुश्री जैनमती ने 'किस्सा मर्द औरत का' नामक रचना पुरुषों के सुधार के उद्देश्य से लिखी थी। लेखिका ने अपनी कृति के रचना उद्देश्य का स्पष्टीकरण भी किया है—'हालांकि जितने ऐब मर्दों में भरे हुए हैं औरतों मे उसका दसवां हिस्सा भी नहीं है. हजारों ऐसी दास्तान हैं जिनसे औरतों की भलाई और मर्दों की बेवफाई जाहिर होती है। मगर मर्दों ने जब कोई किताब लिखी है उसमें औरतो ही को बुरा कहा है, इस वास्ते मैं एक दास्तान मर्द-औरत की लिखती हूँ, उसके देखने से मर्द अपने दिल में इंसाफ करे कि कौन बुरा और कौन अच्छा है।'[२५]

इस युग में नारी समाज के सुधार की दृष्टि से भी अनेक कृतियों की रचना हुई है। उदाहरण के लिए यहां गौरीदत्त लिखित 'देवरानी जेठानी की कहानी' का उल्लेख किया जा सकता है। इसमे नारी शिक्षा की उपयोगिता का निदर्शन है। लेखक ने रचना का उद्देश्य बताते हुए लिखा है कि 'इस पुस्तक मे मैंने स्त्रियों ही की बोलचाल लिखी है और इस पुस्तक में यह भी दर्शा दिया है, दिखा दिया है कि पढ़ी हुई स्त्री जब एक काम को करती है उससे क्या लाभ होता है और कुपढ़ स्त्री जब उसी काम को करती है उससे क्या हानि होती है।....जो स्त्रियां इसको पढ़ेंगी या ध्यान देकर सुनेंगी वे सुशील होकर अपनी सन्तान का पालन पोषण अच्छी रीति से करेंगी और कुरीतियों से बचकर गृहस्थ के प्रबन्ध में उनकी रुचि होगी, पति की सेवा और विद्या की तरफ उनका स्नेह बढ़ेगा और यह ही उनके सुख भोगों का कारण होगा।'[२६]

२४. श्री जैनेन्द्र कुमार, 'एक रात', भूमिका, पृ० ४।
२५. श्रीमती जैनमती, 'किस्सा मर्द और औरत का', पृ० २।
२६. पं० गौरीदत्त, 'देवरानी जेठानी की कहानी', पृ० २८।

भारतेन्दु युगीन कथाकारों ने विविध क्षेत्रीय सामाजिक समस्याओं के निर्मूलन के लिए सुधारवादी दृष्टिकोण को प्रश्रय दिया। वैचारिक संकीर्णता का विरोध भी इनकी रचनाओं में मिलता है। धार्मिक रूढ़ियों के विरोध की भावना भी इस युग के रचनाकारों में मिलती है। राजनीतिक चेतना को जाग्रत करने के लिए भारतेन्दु युग के कहानीकारों ने राष्ट्रीय भावाभिव्यक्ति पर गौरव दिया। आगे चलकर यही प्रवृत्ति शोषण के विरोध में भी कार्यशील दिखाई देती है। प्रेमचन्द युग में समाज के विविध वर्गों में व्याप्त समस्याओं का चित्रण कहानी साहित्य में किया गया। स्त्री-शिक्षा की समस्या, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह आदि की समस्याएं, शोषण की समस्या, दहेज की समस्या, विधवा समस्या, वेश्या समस्या, पारिवारिक विश्रृंखलन की समस्या, अछूत समस्या तथा आर्थिक वैषम्य की समस्याएं इस काल के तथा परवर्ती युग के कहानीकारों द्वारा चित्रित की गयीं।

राजनीतिक उद्देश्य— विशुद्ध राजनीतिक उद्देश्य को आधार बनाकर लिखी गयी कहानियों में किसी राजनीतिक विचारधारा को समुचित प्रश्रय देते हुए उसके व्यावहारिक अनुमोदन पर बल दिया जाता है। इस प्रकार की कहानियां भी प्रायः दो वर्गों में उपलब्ध होती हैं। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत वे कहानियां आती हैं, जिनमें राजनीतिक तत्वों की ही बहुलता होती है तथा द्वितीय कोटि में वे कहानियां आती हैं, जिनमें राजनीतिक तत्वों का समावेश आंशिक रूप में किया जाता है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से विशुद्ध राजनीतिक दर्शन का निरूपण करने वाली कहानियों की तुलना में वे कहानियां अधिक कलात्मक सिद्ध होती हैं, जिनमें उन मानवीय भावनाओं और संवेदनाओं का भी चित्रण किया जाता है, जो राजनीतिक घटनाओं अथवा तत्वों से व्यापक रूप में प्रभावित होती हैं। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द युग में राजनीतिक उद्देश्य से कहानी लेखन आरम्भ हुआ था। यही समय प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त का है। इसी के साथ राजनीतिक गतिविधियों में तीव्रता भी आयी तथा राजनीति ने किसी न किसी रूप में मनुष्य के जीवन को अनिवार्य रूप से प्रभावित भी किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा चलाये गये आन्दोलनों ने भी जनता की राजनीतिक चेतना को जाग्रत किया। सशस्त्र क्रान्ति तथा अहिंसावादी क्रान्ति के पक्ष विपक्ष में भी अनेक प्रकार का विचार विमर्श तथा वाद विवाद हुआ, जिसने समकालीन कहानी की विषय वस्तु को प्रभावित किया। गांधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन का भी प्रसार नागरिक और ग्रामीण स्तर पर हुआ। प्रेमचन्द ने साहित्य को राजनीति का अनुगामी नहीं,

वरन् उसका निदर्शक बताया है। उनका विचार है कि साहित्य, समाज तथा राजनीति का पारस्परिक सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। ये तीनों ही एक दूसरे की श्रेष्ठता का आधार होते हैं। साहित्य इन दोनों का नियामक होता है। उनके मतानुसार जिस भाषा का साहित्य अच्छा होगा, उसका समाज भी अच्छा होगा। समाज के अच्छा होने पर मजबूरन राजनीति भी अच्छी होगी। ये तीनों साथ साथ चलने वाली चीजें हैं. . . .इन तीनों का उद्देश्य ही जो एक है। साहित्य इन तीनों की उत्पत्ति के लिए एक बीज का काम देता है। साहित्य और समाज और राजनीति का सम्बन्ध बिल्कुल अटल है। समाज आदमियों के समूह को ही तो कहते हैं। समाज में जो हानि लाभ तथा सुख दुख होता है, वह आदमियों पर ही होता है। राजनीति में जो सुख दुख होता है, वह आदमियों ही पर पड़ता है। साहित्य से लोगों को विकास मिलता है। साहित्य से आदमी की भावनाएं अच्छी और बुरी बनती हैं। इन्हीं भावनाओं को लेकर आदमी जीता है और इन सब चीजों की उत्पत्ति का कारण आदमी ही है।

आधुनिक युग के अन्य भी अनेक कहानीकारों ने साहित्य और राजनीति के पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या की है। श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने तो एक साहित्यकार और एक राजनीतिज्ञ को समानधर्मा बताया है। उनके विचार से ये दोनों परस्पर विरोधी कभी नहीं होते और संघर्षशील युग मे तो इनमें और भी नैकट्य होता है। उन्होंने लिखा है कि 'साहित्य और राजनीति का असर एक दूसरे पर होने से रोका भी नही जा सकता—चाहे राजनीति का युग हो, चाहे साहित्य का। नीत्शे 'साहित्यिक' था, लेकिन आधुनिक राजनीति पर उसके प्रभाव की उपेक्षा नहीं हो सकती। लेनिन को कोई भी साहित्यिक नहीं कहता, फिर भी आधुनिक साहित्य पर उसकी गहरी छाप है।'[२७] 'कोई भी युग-साहित्य कभी भी चिर-साहित्य नही हो सकता। कितने ही राजनीतिक मतवाद और सामाजिक अनुशासन संसार में आये और गये, जो जो साहित्यिक रचनाएँ उन मतवादों के प्रचार के लिए लिखी गयीं, वे भी उन्हीं के संग विलीन हो गयीं। पर अमृत के वर पुत्र विश्व-कवियों और मनीषियों ने शाश्वत विश्व जीवन के मर्म में अपनी अंतरात्मा को निमग्न करके जो अमर रचनाएँ अपने युग के विचारों के प्रचार के लिए नहीं, बल्कि समग्रकालीन

२७. श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', 'त्रिशंकु', पृ० ७४।

मानवता के आनंद और कल्याण के लिए लिखीं, केवल वे ही शताब्दियों के चक्र-संघर्षों के पेषण से बचकर स्थायी रह पायी हैं।'[28]

यथार्थ चित्रण—यथार्थ चित्रण के उद्देश्य से कहानी रचना का आरम्भ प्रेमचन्द युग से मिलता है। प्रेमचन्दोत्तर युग में इस पर विशेष रूप से बल दिया गया। आधुनिक युग में मार्क्सवाद तथा साम्यवाद आदि विचारधाराओं के प्रभावस्वरूप हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद तथा यथार्थवाद आदि प्रवृत्तियों का प्रसार हुआ। इन विचारधाराओं में निरूपित 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद एक ऐसा जीवन दर्शन है, जिसके अनुसार साम्य भावना का विशेष महत्व है। यह एक भौतिकवादी दृष्टिकोण प्रधान विचारधारा है, जिसमें आदर्शवाद अथवा अध्यात्मवाद के लिए कोई स्थान नहीं है।'[29] इस विचारधारा के अनुसार संसार में व्याप्त अशांति और असंतोष का मूल कारण अर्थ-व्यवस्था का सदोष होना है। प्रेमचन्द युग से हिन्दी में इस प्रवृत्ति का प्रभाव बढ़ा। प्रेमचन्द ने स्वयं कहानी मे यथार्थ चित्रण पर विशेष बल दिया। उन्होंने इसी कोटि के साहित्य को वांछनीय भी बताया। प्रेमचंद के विचार से साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सचाई प्रकट की गयी हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो। और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप में उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सचाइयां और अनुभूतियाँ व्यक्त की गयी हों। प्रेमचन्द ने बताया है कि कहानी में यथार्थ चित्रण का आधार काल्पनिक कथावस्तु भी हो सकती है—'इसमें सन्देह नहीं कि मानव प्रकृति का मर्मज्ञ साहित्यकार राजकुमारों की प्रेम-गाथाओं और तिलिस्माती कहानियों में भी जीवन की सचाइयां वर्णन कर सकता है और सौन्दर्य की सृष्टि कर सकता है, परन्तु इससे भी इस सत्य की पुष्टि ही होती है कि साहित्य में प्रभाव उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि वह जीवन की सचाइयों का दर्पण हो। फिर आप उसे जिस चौखट में चाहें, लगा सकते हैं—चिड़े की कहानी और गुलोबुलबुल की दास्तान भी उसके लिए उपयुक्त हो सकती है।'[30]

जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति—आधुनिक युग में कहानी की मान्यता एक गम्भीर

२८. श्री इलाचन्द्र जोशी, 'विवेचना', पृ० ३५।
२९. द्रष्टव्य, एल० हैरी गाउल्ड, 'मार्क्सिस्ट ग्लासरी', पृ० २६।
३०. मुंशी प्रेमचंद, 'साहित्य का उद्देश्य', पृ० २१

साहित्यिक माध्यम के रूप में होने के साथ ही इसके उद्देश्य तत्व को भी क्षेत्रीय व्यापकता मिली है। वर्तमान कहानी में जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति को एक अनिवार्य उद्देश्य भी माना जाता है। यह उद्देश्य केवल उन्हीं कहानियों के माध्यम से परिपूर्ण हो सकता है, जो विचार-प्रधान होती हैं। मात्र कौतूहल सृष्टि तथा मनोरंजन के लिए लिखी गयी कहानियां इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकतीं, भले ही व्यावहारिक क्षेत्र में उन्हें कितनी भी लोकप्रियता क्यों न प्राप्त हुई हो। जो कहानी किसी विशिष्ट जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति की दृष्टि से लिखी जाती है, वह पाठक के साथ ही लेखक से भी अपेक्षाकृत अधिक बौद्धिकता एवं विवेक की अपेक्षा करती है। जब कथा साहित्य का उद्देश्य चमत्कार सृष्टि के द्वारा मनोरंजन करना ही समझा जाता था, तब कहानी से जीवन दर्शन की आशा भी नहीं की जाती थी। परन्तु आज जब कहानी क्रमशः विचार प्रधान होती जा रही है, तब वह अवश्य एक संपूर्ण जीवन दृष्टि का मार्मिक और सशक्त चित्रण करने में समर्थ है। यहां पर इस तथ्य की ओर संकेत करना असंगत न होगा कि जीवन दर्शन का यह आशय नहीं है कि कहानी में दर्शन अथवा अध्यात्म-शास्त्र के गूढ़ सिद्धान्तों का निदर्शन हो, क्योंकि वैसा होने से कहानी सर्वथा रसहीन और असफल रचना बनकर रह जायगी। इसके विपरीत जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति का आशय यह है कि वह कहानी के सभी तत्वों में सन्तुलन करता हुआ, उसे एक सुस्पष्ट वैचारिक स्वरूप प्रदान कर सके। इलाचन्द्र जोशी ने कहानी के इस उद्देश्य पर विशेष रूप से बल देते हुए कहा है कि 'जीवन से विच्छिन्न होकर कोई भी भाव धारा, चाहे वह कैसी ही सुन्दर क्यों न हो, अंत में कभी कल्याणकारी सिद्ध नहीं हो सकती, और न कभी वास्तविक उच्च कोटि की कला की श्रेणी में स्थान पा सकती है।'[३१] डा० गुलाबराय ने इस विषय में अपने मन्तव्य का प्रतिपादन करते हुए बताया है कि 'कहानी के उद्देश्य में जीवन मीमांसा तो नहीं, किन्तु प्रायः जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण का भी परिचय मिल जाता है। कुछ लेखक समझौते को पसन्द करते हैं, तो कुछ संघर्ष को। कुछ लोग संसार को जैसा का तैसा स्वीकार कर लेते हैं, तो कुछ उसमें आमूल चूल परिवर्तन चाहते हैं। प्रगतिवादी कहानियों में क्रान्ति द्वारा आमूल परिवर्तन की व्यंजना रहती है। कुछ कहानीकार उद्देश्य को महत्व देते हैं तो कुछ केवल जीवन के विश्लेषण और मन की अन्धतम गुफाओं में प्रकाश की रेखा

३१. श्री इलाचन्द्र जोशी, 'विवेचना', पृ० ४९।

पहुंचाने को। मनुष्य को भली प्रकार समझा देना ही उनका उद्देश्य हो जाता है।'[१२]

प्रभावात्मकता—कहानी की रचना का उद्देश्य उसके माध्यम से प्रभाव सृष्टि करना भी है। विविध युगीन हिन्दी कहानी में प्रभावात्मकता की दृष्टि से कहानी में अनेक प्रकार के तत्वों की योजना की जाती रही है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से प्रभावात्मकता के उद्देश्य से लिखी गयी कहानियों में उनके संपूर्ण प्रभाव का निर्धारण उनके द्वारा निर्दिष्ट मूल्यों के सन्दर्भ में किया जाता है। प्रेमचन्द के विचार से 'जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौन्दर्य प्रेम न जाग्रत हो—जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहाने का अधिकारी नहीं।'[१३] सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने कहानी में प्रभाव सृष्टि को एक उद्देश्य के रूप में मान्य करते हुए यह संकेत किया है कि 'इतना ही कहा जा सकता है कि कहानी नामक साहित्य प्रकार में एकांत प्रभाव ही साहित्यकार का उद्देश्य होता है और उसके द्वारा चुनी गयी वस्तु उस उद्देश्य की प्राप्ति का साधन। वह प्रभाव और उस प्रभाव की एकांतिकता ही मुख्य है।'[१४]

मनोवैज्ञानिकता—प्रेमचन्द युग से लेकर आज तक की हिन्दी कहानी मे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रवृत्ति का क्रमशः विकासशील रूप दृष्टिगत होता है। इसलिए मनोवैज्ञानिक चित्रण को भी कहानी का एक प्रमुख उद्देश्य माना जाने लगा है। प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री, भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' तथा अमृतलाल नागर आदि कहानीकारों की रचनाओं में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का समावेश विशेष रूप से हुआ है। वस्तुतः कहानी के इस उद्देश्य को आधुनिक युग में पाश्चात्य विचारधाराओं के प्रभाव स्वरूप ही हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भी महत्व दिया गया है। आधुनिक काल में यूरोप में मनोविश्लेषणवादी आन्दोलनों को जो व्यापक ख्याति

१२. डा० गुलाबराय, 'काव्य के रूप', पृ० २२५।
१३. मुंशी प्रेमचंद, 'साहित्य का उद्देश्य', पृ० ५।
१४. श्री स० ही० वा० 'अज्ञेय', 'हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ', पृ० २२।

मिली और उनका जो सर्वदेशीय प्रचार हुआ, उसी के फलस्वरूप हिन्दी साहित्य पर भी उसका प्रभाव विशद रूप में पड़ा। यूरोप में फ्रायड, एडलर, युंग, वाटसन तथा गेस्टाल्ट आदि ने मनोविश्लेषणशास्त्र की नवीन व्याख्या करने के साथ उस पर आधारित विविध सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण तथा प्रवर्तन किया। फ्रायड मानव के समस्त कार्य कलाप में काम भावना को मूल प्रेरणा के रूप में आधारित मानता है। उसकी धारणा है कि मनुष्य के उपचेतन में ये भावनाएँ दमित रूप में स्थिर रहती हैं, क्योंकि विविध नैतिक तथा धार्मिक अवरोध इनकी पूर्ति में बाधक होते हैं। व्यावहारिक रूप से पूर्ण न हो पाने के कारण ये कुंठाग्रस्तता के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं तथा इनकी अतृप्ति ही उसकी विविध अनुभूतियो तथा प्रतिक्रियाओं की जन्मदात्री होती है। इस कारण काममय भावनाओं की अभिव्यंजना साहित्य में सर्वथा स्वाभाविक होती है तथा इनके सम्यक् मूल्यांकन के लिए मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आवश्यक होता है। प्रेमचन्द ने भी कहानी के मनोवैज्ञानिक पक्ष के महत्व की ओर इंगित करते हुए बताया है कि 'मनुष्य जाति के लिए मनुष्य सबसे विकट पहेली है। किसी न किसी रूप में वह अपनी ही आलोचना किया करता है, अपने ही मनोरहस्य खोला करता है। वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में ही अपनी सफलता समझती है और सबसे उत्तम वह कहानी होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।....वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक रहती है। बल्कि अनुभूतियां ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती हैं।....'[३५]

प्रचारवाद---आधुनिक युग मे कहानी का एक उद्देश्य प्रचारवाद भी है। अनेक कहानी लेखक विभिन्न क्षेत्रीय विचारधाराओं और मतों के प्रचार के लिए कहानी रचना करते हैं। प्रेमचन्द युग से इस प्रकार की उद्देश्यगत धारणा का आविर्भाव हुआ। स्वयं प्रेमचन्द ने साहित्य के प्रचार के लिए प्रयोग करने का विरोध किया है, परन्तु उनका विचार है कि युगीन परिस्थितियां साहित्य को बहुधा प्रचारवादी बना देती हैं। उन्होंने बताया है कि 'जब साहित्य की रचना किसी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक मत के प्रचार के लिए की जाती है, तो वह अपने ऊंचे पद से गिर

३५. मुंशी प्रेमचंद, 'मानसरोवर', भाग १, पृ० ५-६।

जाता है—इसमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन आजकल परिस्थितियाँ इतनी तीव्र गति से बदल रही हैं, इतने नये नये विचार पैदा हो रहे हैं कि कदाचित् अब कोई लेखक साहित्य के आदर्श को ध्यान में रख ही नहीं सकता। यह बहुत मुश्किल है कि लेखक पर इन परिस्थितियों का असर न पड़े, वह उन से आन्दोलित न हो।'[३६] आधुनिक युग के अन्य अनेक लेखकों ने भी साहित्य और प्रचारवाद की समस्या पर विचार किया है। देवेन्द्र इस्सर ने इस विषय मे अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है कि 'बिना किसी आलोचना और परीक्षा के, साहित्य विचारों एव घटनाओं को स्वीकार करने पर बल देता है। प्रचार बंद मस्तिष्क की नींव पर आश्रित है। इसमें व्यक्ति के लिए कोई सम्मान नही होता और व्यक्ति का एक काल्पनिक और बनावटी चित्र जनता के सामने आता है, भिन्न भिन्न विधियों से अपने वास्तविक लक्ष्य को छिपाने का यत्न किया जाता है।'[३७] अमृतराय ने साहित्य मे प्रचारवाद के सीमा निर्धारण और सन्तुलन पर बल देते हुए इस मन्तव्य का प्रतिपादन किया है कि उसमें साहित्यिकता ही प्रधान रहनी चाहिए, प्रचारवादिता नही। उनके विचार से 'यदि कोरा वाद या कोरी सिद्धान्त चर्चा साहित्य मे रहेगी तो वह जीवन्त साहित्य न होगा, यानी अगर वाद किसी लेखक पर इतना हावी हो गया है कि उसने स्वतंत्र चिंतन की सभी राहे रूँध दी हैं या जीवन की विशाल, फैली हुई भूमि पर एक स्वतंत्र संवेदनशील मनुष्य की तरह घूमने की सारी स्फूर्ति छीन ली है, तो निश्चय ही उसमे जीवन का स्पदन न होगा। ऐसे साहित्य को हम वादाक्रांत साहित्य कह सकते हैं।'[३८]

इस प्रकार से कहानी की उद्देश्य सम्बन्धी धारणाओ में निरन्तर विकास होता रहा है। आरम्भ मे इसके मूल और प्राथमिक उद्देश्य के रूप में केवल मनोरंजन को ही मान्य किया जाता था और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विविध प्रकार की कल्पनात्मक रचनाएं प्रस्तुत की जाती थीं। फिर उपदेशात्मकता को आधार बनाकर धर्म और नीति शिक्षा ही कहानी का उद्देश्य बन गया। पूर्व भारतेन्दु युग में उपलब्ध कथा साहित्य में कौतूहल सृष्टि का उद्देश्य प्रधान रहा। भारतेन्दु युग से हास्य सृष्टि

३६. मुंशी प्रेमचंद, 'साहित्य का उद्देश्य', पृ० ५८-५९।
३७. श्री देवेन्द्र इस्सर, 'चिन्तन और साहित्य', पृ० ४६।
३८. श्री अमृतराय, 'नयी समीक्षा', पृ० २२३।

के उद्देश्य से भी कहानियों का सृजन किया जाने लगा। एक विचित्र अपवाद के रूप में स्वास्थ्य लाभ के उद्देश्य से भी कथा रचना का उदाहरण उपलब्ध होता है। भारतेन्दु युग तथा प्रेमचन्द काल में आदर्शवादी उद्देश्य से भी बहुसंख्यक कहानियों की रचना हुई। इन्हीं युगों में विभिन्न सामाजिक समस्याओं के चित्रण का उद्देश्य भी अनेक कहानियों में मिलता है। कुरीति निवारण अथवा समाज सुधार का उद्देश्य भी इसी के समानान्तर विकसित हुआ। प्रेमचन्द तथा उनके परवर्ती युगों में राजनीतिक उद्देश्य को प्रधान मानकर भी कहानी रचना हुई है। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त यथार्थ चित्रण का उद्देश्य कहानी में विशेष रूप से मान्य हुआ। विचार-प्रधान कहानी में जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति भी की जाने लगी। प्रभावात्मकता, मनोवैज्ञानिकता तथा प्रचारवाद को भी कहानी के उद्देश्य के रूप में मान्यता मिली, जो कहानी के उद्देश्य तत्व के क्षेत्र में विकासशीलता के द्योतक है।

उद्देश्यतत्व का महत्व

आधुनिक युगीन साहित्यिक विधाओं में एक गम्भीर माध्यम के रूप मे मान्यता प्राप्त होने के कारण कहानी में उद्देश्य तत्व का महत्व अपेक्षाकृत बढ़ गया है। आज कहानी का उद्देश्य केवल उपदेशात्मकता अथवा मनोरंजन ही नहीं रह गया है, आज की कहानी वैचारिक अभिव्यंजना का एक गम्भीर रूप है। कहानी के उद्देश्यगत वैविध्य और विस्तार के कारण ही यदि एक ओर उसके माध्यम से मानव जीवन और समाज की समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण किया जाता है, तो दूसरी ओर उसे प्रचार का भी प्रभावशाली साधन माना जाता है। आज का कहानी लेखक अपनी रचना के माध्यम से सामाजिक रूढ़ियों और विकृतियों का चित्रण करने के साथ दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्वों का भी निरूपण करता है। आज की कहानी का उद्देश्य पाठक का मनोरंजन करने के साथ साथ उसे मानसिक परितृप्ति भी प्रदान करना है। विगत युगों में भले ही कहानी को एक हलका-फुलका साहित्यिक माध्यम माना जाता रहा हो, परन्तु आज उससे भी गहन दायित्व के निर्वाह की अपेक्षा की जाती है। अब कहानी को केवल निष्क्रिय मानसिक रसास्वादन की वस्तु नहीं माना जाता ; व्यक्ति, परिवार, समाज, धर्म, राजनीति, दर्शन आदि के प्रति उसके गम्भीर दायित्व माने जाते हैं। कहानी के विषय क्षेत्र में विस्तार और वैविध्य के फलस्वरूप

उसके उद्देश्य तत्व में भी क्षेत्रीय व्यापकता आ रही है। अब कहानी एक निरुद्देश्य उद्‌गार अथवा उच्छ्‌वास मात्र नहीं है, अब वह सामाजिक विकास की प्रेरणा का स्रोत भी हो सकती है। आधुनिक समाज में बढ़ती हुई यांत्रिकता और बौद्धिकता ने कहानी को भावी विकास की एक नवीन आधारभूमि प्रदान की है, जिसके फलस्वरूप कहानी में उद्देश्य तत्व का आपेक्षिक महत्व और भी अधिक बढ़ गया है।

अध्याय १३

उपसंहार

हिन्दी कहानी कला का सिंहावलोकन

इस कृति के पिछले अध्यायों में हिन्दी कहानी कला का उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में जो सैद्धान्तिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है, वह इस साहित्यिक विधा की प्राचीनता, उन्नतिशीलता और कलात्मक परिपक्वता का द्योतक है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से कहानी साहित्य की प्राचीनतम और सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। इसके वर्तमान स्वरूप का जो विकास हुआ है, उसकी पृष्ठभूमि में सुदीर्घ परम्पराएं और विविध क्षेत्रीय प्रभाव हैं। प्राचीन संस्कृत साहित्य में विभिन्न कथात्मक माध्यमों की व्याख्या गद्य काव्य के अन्तर्गत की गयी है। भामह, दंडी, आनंदवर्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट, हेमचंद्र तथा विश्वनाथ ने जिन कथा-रूपों का शास्त्रीय निरूपण किया है, उन्हीं की परंपरा में वर्तमान कहानी का विकास हुआ है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में डा० श्यामसुन्दरदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० गुलाब राय, मुंशी प्रेमचंद, जयशंकर 'प्रसाद', आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, सुदर्शन, राय कृष्णदास, यशपाल, डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, विनोदशंकर व्यास, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, डा० श्रीकृष्णलाल, प्रकाशचन्द्र गुप्त, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', उपेन्द्रनाथ 'अश्क' तथा भैरवप्रसाद गुप्त आदि ने कहानी के स्वरूप की व्याख्या करते हुए उसके विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला है। अनेक पाश्चात्य विचारकों ने भी आधुनिक कहानी के विविध तत्वों का सम्यक् विश्लेषण करते हुए उसका स्वरूप स्पष्ट किया है। इन विद्वानों में जे० डब्लू० लिन, एडगर एलन पो, एच० जी० वेल्स, विलियम हैनरी हडसन, एलब्राइट, ह्यू वाकर, ऐंटन चैखव, ओ० ब्रायन, सामरसेट माम, जे० टी० शिप्ले, अपहम, एल० ए० जी० स्ट्रांग, एस० ओ० फाउलेन, बुलेट, एलरी, पोकाक, बैंडर मैथ्यू, जान फास्टर, एच० ई० बीट्स तथा सर ह्यू वालपोल आदि प्रमुख हैं।

प्राचीन भारतीय कथा साहित्य ने आधुनिक हिन्दी कहानी के कलात्मक स्वरूप की विकासात्मक पृष्ठभूमि में महत्वपूर्ण कार्य किया है। प्राचीन भारतीय कथा साहित्य में वैदिक साहित्य (संहिता ग्रन्थ, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक ग्रन्थ, उपनिषद् साहित्य), पुराण साहित्य, महाभारत, रामायण, जातक कथाएँ, पंचतंत्र, हितोपदेश, बृहत्कथा तथा कथासरित्सागर आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें विद्यमान कथा सूत्रों और कथात्मक तत्वों से युक्त रचनाओं को कथा, कथानक, आख्यान, आख्यानक, उपाख्यान, आख्यायिका, खंड कथा, परिकथा, सकल कथा, कथानिका, निदर्शन, उपकथा, गल्प तथा बृहत्कथा आदि शीर्षकों के अन्तर्गत उल्लिखित किया जाता है। इनमें से कहानी और कथा प्रायः समानार्थक हैं। आख्यायिका, गल्प और कहानी भी एक ही पर्याय का बोध कराते हैं। अन्य कथा रूप भी कथात्मक तत्व की प्रधानता के कारण पारस्परिक साम्य रखते हैं। उपकरणात्मक आधार पर आधुनिक साहित्य के अन्य रूप, विशेषतः उपन्यास, संस्मरण, आत्मकथा, डायरी, जीवनी, रिपोर्ताज, रेखा-चित्र और निबन्ध कहानी से पर्याप्त निकटता रखते हैं। आधुनिक युग के पूर्व अपभ्रंश-कालीन वीर गाथाओं, मध्ययुगीन प्रेमाख्यानों, रीति-युगीन वीर गाथाओं तथा हिन्दी गद्य की आविर्भाव कालीन रचनाओं के रूप में यह कथा परम्परा विकासशील रही। आधुनिक हिन्दी कहानी का आरम्भ भारतेन्दु युग से हुआ। इस युग के कहानीकारों की रचनाओं में कहानी कला के आधुनिक स्वरूप के प्रारम्भिक संकेत मिलते हैं। इस युग के कहानीकारों ने विविध विषयक रचनाओं में विभिन्न प्रवृत्तियों का निरूपण किया। अधिकांश कहानी लेखकों ने समस्या चित्रण और सुधारपरक दृष्टिकोण पर बल दिया। कल्पनात्मक तत्वों तथा घटना वैचित्र्य की प्रधानता भी कुछ कहानियों में रही। ऐतिहासिक कहानी का प्रारम्भिक स्वरूप भी इसी काल की रचनाओं में दृष्टिगत होता है। यह इस कारण से है, क्योंकि इस काल के कहानी लेखकों ने कथावस्तु तत्व को ही प्रधानता दी तथा अन्य तत्वों के सम्यक् निरूपण की दिशा में उपेक्षा भाव का परिचय दिया।

द्वितीय विकास काल में हिन्दी कहानी का प्रौढ़ और परिष्कृत स्वरूप दृष्टिगत होता है। कहानी के विषय-क्षेत्र में भी इस काल में विकास हुआ। परम्परागत विषय-सूत्रों में वर्ण व्यवस्था, आर्थिक वैषम्य, धर्माडम्बर, शिक्षा प्रसार, नारी जागरण तथा कुरीति निवारण आदि को इस काल में भी प्रश्रय दिया गया। प्रेमचन्द ने कहानी की प्रतिष्ठा अपेक्षाकृत व्यापक पृष्ठभूमि पर की और नागरिक तथा ग्रामीण समाज का

समग्र रूपात्मक चित्रण अपनी विविध विषयक कहानियों में प्रस्तुत किया। इस युग के अन्य कहानीकारों ने कहानी कला के क्षेत्र में उल्लेखनीय आदर्श प्रस्तुत किये, जिनमें चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', जयशंकर 'प्रसाद', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा जैनेन्द्र कुमार के नाम प्रमुख हैं। इस युग में होने वाले सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों ने भी कहानी साहित्य को प्रभावित किया। युगीन चेतना का निरूपण भी उपर्युक्त कहानीकारों की रचनाओं में मिलता है, जिसका मूल स्वर जन-स्तर पर नव जागरण और आवाहन का है। राष्ट्रीय चेतना और एकता के गौरवपूर्ण आदर्शों की निहिति भी इस युग के कहानी साहित्य में प्रभावशाली रूप में हुई है।

तृतीय विकासकाल में हिन्दी कहानी के कलात्मक स्वरूप का विकास कतिपय नवीन प्रवृत्तियों और विचारान्दोलनों का आधार ग्रहण करके हुआ। इस युग में लिखी गयी हिन्दी कहानी के क्षेत्र में सामाजिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि प्रवृत्तियों के साथ ही मनोविश्लेषणात्मक तथा बौद्धिक प्रवृत्तियों का भी समावेश हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के फलस्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थितियों ने भारतीय जनता की सामाजिक और राजनीतिक चेतना के जागरण में योग दिया। गांधीवादी, मार्क्सवादी तथा पूंजीवादी विचारधाराओं के प्रमुख सिद्धान्तों का व्यावहारिक आरोपण भी इस युग के अनेक कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में किया। पाश्चात्य जगत में होने वाले मनोविश्लेषणवादी विचारान्दोलन ने भी इस युग के कहानी साहित्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया। भगवतीप्रसाद वाजपेयी, सुदर्शन, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, उषादेवी मित्रा, भगवतीचरण वर्मा, इलाचंद्र जोशी, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', उपेन्द्रनाथ 'अश्क', यशपाल, डा० वृन्दावनलाल वर्मा, राय कृष्णदास, शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, सियाराम शरण गुप्त, मोहनलाल महतो 'वियोगी', होमवती देवी, विनोदशंकर व्यास, कमलाकांत वर्मा, जी० पी० श्रीवास्तव, गोविन्दवल्लभ पंत, वाचस्पति पाठक, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, कमला देवी चौधरी, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', विश्वंभरनाथ जिज्जा तथा मन्मथनाथ गुप्त आदि कहानीकारों ने उपर्युक्त प्रवृत्तियों के विकास में विशेष रूप से योग दिया।

चतुर्थ विकास काल के अन्तर्गत स्वातन्त्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानी को रखा जा सकता है। इस काल में जहां एक ओर कहानी के परम्परागत स्वरूप का विकास

हुआ, वहां दूसरी ओर नयी कहानी के विविध रूपों के क्षेत्र में सक्रियता रही। इस युग की कहानी मुख्यतः बौद्धिकता से आगृहीत मिलती है। इस काल की कहानी के विविध रूप अमृतलाल नागर, रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी', सत्यजीवन वर्मा 'भारतीय', अमृत राय, बलवन्त सिंह, विष्णु प्रभाकर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, डा० प्रतापनारायण टंडन, कमलेश्वर, फणीश्वरनाथ 'रेणु', मन्नू भंडारी, निर्मल वर्मा, नरेश मेहता, कमल जोशी, अमरकान्त, नन्दकिशोर, राधाकृष्ण, उषा प्रियंवदा तथा रमेश बक्षी आदि की रचनाओं में उपलब्ध होते हैं। इनमें भारतीय स्वतंत्रता तथा भारत विभाजन के फलस्वरूप उपस्थित हुई सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक समस्याओं का विशद रूप में चित्रण हुआ है। नवीन सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना, भारतीय समाज के विविध वर्गीय नवीन रूप, नारी समाज में चेतना के जागरण, शिक्षा के प्रचार, साम्प्रदायिक समस्याएँ, नवीन नैतिक मूल्य, यांत्रिक जीवन की सभ्यता के विरूपात्मक रूप तथा विभिन्न वैचारिक आन्दोलनों का भी सम्यक् निरूपण इस काल की कहानी में उपलब्ध होता है।

आधुनिक कहानी के कलात्मक रूप के विकास की पृष्ठभूमि में नीति शास्त्र का योगदान भी उल्लेखनीय है। नीति शिक्षा प्राचीन काल से ही कहानी के एक उद्देश्य के रूप में मान्य है। वर्तमान कहानी में नवीन नैतिक मूल्यों की स्थापना का एक माध्यम कहानी भी है। आज की कहानी की एक प्रमुख समस्या समाज में प्रचलित रूढ़िपरक नैतिक मानदंडों और धारणाओं का खंडन करके नीति के नवीन मूल्यों की स्थापना है। नैतिक मर्यादाओं की अर्थहीनता आज के युग में एक प्रकार के विरोधाभास को जन्म देती है। इस रूप में नीति-शास्त्र ने न केवल प्राचीन कथा साहित्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया था, वरन् आधुनिक कहानी में उसका तात्त्विक समावेश उल्लेखनीय रूप में होता है। अन्तर केवल इतना अवश्य आ गया है कि प्राचीन कथा साहित्य में जहां नीति-शिक्षा का स्वरूप स्पष्ट और सहज था, वहां आज की कहानी में नैतिक मूल्यों का अपेक्षाकृत जटिल रूप दृष्टिगत होता है। यही नहीं, आधुनिक युग में गांधीवादी आदि कतिपय आदर्शपरक विचारधाराओं का आधार लेकर भी नीति तत्वों का निरूपण कहानी साहित्य में किया गया है। इससे हिन्दी कहानी में क्षेत्रगत विस्तार के साथ दृष्टिगत व्यापकता भी आयी है।

आधुनिक कहानी के प्रवृत्तिगत विकास में इतिहास का भी उल्लेखनीय योग रहा है। इतिहास ने आधुनिक कहानी को इस सीमा तक प्रभावित किया है तथा कहानी में

ऐतिहासिक तत्वों का समावेश इतनी बहुलता से हुआ है कि कहानी की एक स्वतंत्र प्रवृत्ति ही 'ऐतिहासिक कहानी' के रूप में विकसित हुई है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस प्रवृत्ति का सर्वप्रथम रूप भारतेन्दु युगीन कहानी साहित्य में उपलब्ध होता है। परवर्ती युगों में यह कहानी प्रवृत्ति अपेक्षाकृत कलात्मक परिपक्वता के साथ विकासशील मिलती है। भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों को आधार बनाकर हिन्दी कहानी की इस प्रवृत्ति के माध्यम से प्राचीन आदर्शों की गौरवशाली परम्पराओं का परिचय दिया गया है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी में ऐतिहासिक तत्वों के समावेश का आधार कल्पना और यथार्थ का सन्तुलित समन्वय होता है। शुष्क ऐतिहासिक विवरण कहानी के रूप और उद्देश्य की दृष्टि से वांछनीय नहीं होते, भले ही वे कितने ही प्रामाणिक हों। यही सिद्धान्त ऐतिहासिक कहानी की कथावस्तु और पात्र योजना के सन्दर्भ में भी मान्य है।

हिन्दी कहानी कला के विकास में मनोविज्ञान का भी विशेष योगदान रहा है। प्रेमचन्द युग से हिन्दी कहानी पर मनोविज्ञान का प्रभाव निरन्तर बढ़ता रहा है और इसी कारण मनो वैज्ञानिक और मनोविश्लेषणात्मक कहानियों की परम्पराओं का प्रसार हुआ है। सैद्धान्तिक रूप से मनोविज्ञान के अन्तर्गत मनुष्य के स्वभाव, व्यवहार और प्रकृति का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। कहानीकार भी अपनी रचना में आयोजित पात्रों का चारित्रिक विवेचन इसी आधार पर करता है। विभिन्न मनोविज्ञान वेत्ताओं और मनोविश्लेषण शास्त्रियों ने मनुष्य के अवचेतन और स्वप्नावस्थाओं का जो वैज्ञानिक विवेचन किया और शिशु मनोविज्ञान, बाल मनोविज्ञान तथा पुरुष एवं नारी मनोविज्ञान का जो समग्र रूपात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया, उसने भी कहानी के विकास को नवीन दिशाएं प्रदान कीं। उन्होंने इस तथ्य का भी निदर्शन किया कि समस्त मानव व्यापार मनोजगत के मूल भावों द्वारा ही संचालित होते हैं। उन्होंने मनुष्य की चेतना और अचेतना को उसके अस्तित्व के दो भिन्न पक्षों के रूप में मान्य किया। मानव की अहम् भावना, कुंठा-ग्रस्तता, विकृतियों और विरूपताओं का जो सैद्धान्तिक विवेचन इन मनोवैज्ञानिको ने किया, उन्हीं का व्यावहारिक आरोपण हिन्दी कहानी साहित्य में विविध युगों में विभिन्न लेखकों के द्वारा सफलतापूर्वक किया गया।

शीर्षक तत्व का विकास

कहानी के सर्वप्रथम उपकरण शीर्षक के क्षेत्र में होने वाली कलात्मक प्रगति स्पष्ट है। आधुनिक हिन्दी कहानी के सभी विकास युगों में शीर्षक की प्राथमिकता तथा

अनिवार्यता स्वीकार की गयी है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी के शीर्षक का स्वरूप विविधात्मक होता है। उससे कहानी की विषय-वस्तु, रचना काल, घटना स्थल, पात्र अथवा भावना का द्योतन होता है। पूर्व भारतेन्दु युगीन हिन्दी कथा साहित्य में 'उदय-भान चरित' अथवा 'रानी केतकी की कहानी' जैसे शीर्षक प्राचीन प्रभाव का सूचन करते हैं। वर्तमान कहानी के शीर्षक में स्पष्टता, विषयानुकूलता, लघुता, आकर्षण, अर्थपूर्णता तथा नवीनता आदि विशेषताओं का समावेश मिलता है। हिन्दी कहानियों के शीर्षक प्रायः एक शब्द से लेकर एक वाक्य तक के आकार में उपलब्ध होते हैं। उर्दू तथा अंग्रेजी शब्दों वाले शीर्षक भी विभिन्न युगों में प्रयुक्त हुए हैं। वैविध्य की दृष्टि से हिन्दी कहानी में स्थान सूचक शीर्षक, घटना व्यापार सूचक शीर्षक, कौतूहलजनक शीर्षक, व्यंग्यपूर्ण शीर्षक, हास्योद्भावक शीर्षक, नायक-नायिका के नाम पर शीर्षक, मनोवृत्ति पर आधारित शीर्षक, भावना पर आधारित शीर्षक, संबंध सूचक शीर्षक, कालावधि सूचक शीर्षक तथा मुहावरों-कहावतों पर आधारित शीर्षक मिलते हैं। 'रानी केतकी की कहानी' से लेकर 'भविष्य के आसपास मंडराता अतीत' तक शीर्षक तत्व का विकास स्वयं में अपनी महत्ता का प्रतीक है।

कथावस्तु का वैशिष्ट्य

कहानी में कथावस्तु के तात्त्विक समावेश की दृष्टि से यद्यपि हिन्दी कहानी में निरन्तर ह्रासोन्मुखता लक्षित होती है, परन्तु कथावस्तु तत्व के कलात्मक विकास के क्षेत्र में जो प्रगति हुई है, वह विपुल है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कथावस्तु कहानी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण है। प्राचीन कथा साहित्य में इस तत्व के अन्तर्गत प्रायः असम्भव और काल्पनिक घटनाएं नियोजित की जाती थीं, परन्तु आगे चलकर कहानी की कथावस्तु मे निरन्तर सहजता, स्वाभाविकता और यथार्थता की वृद्धि होती गयी। व्यावहारिक दृष्टिकोण से कहानी मे कथावस्तु एक प्रधान तथा अनिवार्य तत्व के रूप में मान्य है। जिस कहानी में कथावस्तु की प्रधानता होती है, उसे एक पृथक् वर्ग के अन्तर्गत घटनाप्रधान कहानी के रूप में उल्लिखित किया जाता है। सैद्धान्तिक दृष्टि-कोण से हिन्दी कहानी में नियोजित कथावस्तु में संक्षिप्तता, मौलिकता, रोचकता, क्रमबद्धता, विश्वसनीयता, उत्सुकता, शिल्पगत नवीनता तथा प्रभावात्मक एकता आदि गुण समाविष्ट मिलते हैं। कहानी में कथावस्तु का आरम्भ चरित्रांकन, वर्णन, घटना, वार्तालाप अथवा पत्र द्वारा किया जाता है। उसके मध्य भाग में मूल कथा का

संतुलित रूप में विकास होता है। अन्तिम चरण में कथावस्तु की मर्मस्पर्शी, अप्रत्याशित, अनिश्चयात्मक अथवा चरम परिणति के रूप में समाप्ति होती है। वर्तमान कहानी में कथावस्तु का सांकेतिक रूप ही मिलता है, जो प्राचीन अथवा परम्परागत रूप से पृथकत्व के साथ ही वैशिष्ट्य और प्रौढ़ता का भी द्योतक है।

चरित्र चित्रण का उन्नत रूप

हिन्दी कहानी कला के स्वरूपात्मक अध्ययन में जहां एक ओर कथावस्तु तत्व का निरन्तर ह्रास लक्षित होता है, वहां दूसरी ओर चरित्र चित्रण तत्व के क्षेत्र में विकासशीलता दृष्टिगत होती है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी के प्रमुख तत्वों में कथावस्तु के उपरान्त पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण को ही महत्व दिया जाता है। वस्तुतः इसी तत्व के माध्यम से कहानीकार अपनी रचना में जीवन के विविध पक्षों की पृष्ठभूमि की विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्य के चरित्र की प्रतिक्रियात्मक संभावनाओं का निदर्शन करता है। इस दृष्टि से कहानी में कथावस्तु और चरित्र चित्रण एक दूसरे पर आश्रित होते हैं और इन दोनों का पारस्परिक संतुलन ही कहानी को सफल बना सकता है। चरित्र चित्रण की प्रधानता के आधार पर कहानी का एक स्वतंत्र वर्ग चरित्र-प्रधान कहानी के रूप में मान्य किया जाता है। पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण के क्षेत्र में प्रथम विकासकालीन कहानीकारों का दृष्टिकोण मुख्यतः परम्परानुगामी और आदर्शवादी रहा है। रामचंद्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' तथा गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पति का पवित्र प्रेम' आदि कहानियों में इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। द्वितीय विकास कालीन कहानियो मे पात्रों के चरित्रांकन में कलात्मकता का समावेश बढ़ने के साथ ही उनमें वैविध्य का भी परिचय मिलता है। इस युग में पूर्वकाल की भांति केवल काल्पनिक और सामाजिक ही नहीं वरन् पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक वर्गों के पात्रों का नियोजन भी मिलता है। 'रानी सारंधा', 'पुरस्कार', 'कफ़न', 'मधुआ' तथा 'ताई' आदि कहानियों में इनके उदाहरण उपलब्ध होते हैं। प्रेमचंदोत्तर काल में चरित्र चित्रण के तात्विक विकास का आधार मनोवैज्ञानिक तथा बौद्धिक प्रवृत्तियां रही। 'रोज', 'रोमी' तथा 'अभिशाप' आदि कहानियों में पात्र योजना की पृष्ठभूमि में ये ही तत्व हैं। स्वातंत्र्योत्तर युग में यांत्रिक सभ्यता द्वारा उत्पन्न परिस्थितियों में मानव चरित्र की प्रतिक्रियात्मक विशेषताओं का निदर्शन हुआ है। सिद्धान्ततः चरित्र चित्रण की सफलता के लिए उसमें कथात्मक अनुकूलता, मौलि-

मत्ता, स्वाभाविकता, सजीवता, यथार्थता, सहृदयता, अंतर्द्वन्द्वात्मकता, बौद्धिकता तथा कलापूर्णता आदि गुणों का समावेश आवश्यक होता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में पात्रों की दृष्टि से जो रूप वैविध्य मिलता है, उसके आधार पर उनके प्रमुख पात्र, सहायक पात्र, पुरुष पात्र, स्त्री पात्र, खल पात्र, आदर्शवादी पात्र, यथार्थवादी पात्र, व्यक्तिवादी पात्र, मनोवैज्ञानिक पात्र, सामाजिक पात्र, राजनीतिक पात्र, प्रतीकात्मक पात्र, ऐतिहासिक पात्र, पौराणिक पात्र तथा बौद्धिक पात्र आदि भेद किये जा सकते हैं। सामान्य रूप से हिन्दी कहानी में नियोजित पात्रों के चरित्रांकन के लिए अभिनयात्मक, स्वगत कथनात्मक, आत्मकथात्मक, विश्लेषणात्मक, विवरणात्मक, परिचयात्मक, मनोवैज्ञानिक, संवादात्मक तथा संकेतात्मक विधियों का आश्रय लिया जाता है। आधुनिक कहानी में पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण तत्व के महत्व की वृद्धि का एक कारण उसका रूप वैविध्य एवं कलात्मक परिष्कार भी है।

कथोपकथन की परिपक्वता

कहानी के चौथे मूल तत्व कथोपकथन अथवा संवाद योजना के क्षेत्र में भी स्पष्ट विकासशीलता लक्षित होती है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी के सभी तत्व परस्पर अंतःसम्बद्धता रखते हैं, परन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से कथोपकथन का सम्बन्ध पात्रों से अधिक घनिष्ठ होता है। जिस कहानी में कथोपकथन की तात्विक प्रधानता होती है, उसे एक पृथक् भेद के अन्तर्गत रखा जाता है, जिसे कथोपकथन-प्रधान कहानी कहते हैं। हिन्दी में प्रथम विकासकालीन क्षेत्र में कथोपकथन का जो स्वरूप उपलब्ध होता है, उसमें कलात्मक परिपक्वता का अभाव और नाटकीयता की प्रधानता ही दिखाई देती है। रामचंद्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' तथा किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इंदुमती' आदि कहानियों में नियोजित कथोपकथन इसी प्रकार के हैं। द्वितीय विकास काल में चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'पुरस्कार' आदि में कथोपकथन की प्रभावशाली व्यंजना मिलती है। तृतीय विकास काल में कथोपकथन के विकास का आधार मनोवैज्ञानिक तत्व रहे। जैनेन्द्र कुमार, इलाचंद्र जोशी, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा तथा 'अज्ञेय' की कहानियों में मनोवैज्ञानिक संवाद आयोजित हुए हैं। स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानियों में जो कथोपकथन उपलब्ध होते हैं, उनमें मनोवैज्ञानिकता के साथ ही सोद्देश्यता तथा बौद्धिकता भी दृष्टिगत होती है। अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर, राजेन्द्र यादव, निर्मलवर्मा तथा उषा प्रियंवदा की कहानियों में इसी प्रकार के कथोपकथन

मिलते हैं। सिद्धान्ततः कहानी में कथोपकथन की आयोजना के उद्देश्य कथावस्तु का विकास करना, पात्रों की चारित्रिक व्याख्या करना, देशकाल का बोध कराना अथवा लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करना आदि हैं। विविध विकासकालीन हिन्दी कहानी में भावात्मक, सांकेतिक, नाटकीय, व्यंग्यात्मक, मनोवैज्ञानिक तथा उद्देश्यपूर्ण कथोपकथन नियोजित हुए हैं। कहानी में आयोजित संवाद योजना अथवा कथोपकथन की सफलता के लिए उसमें संक्षिप्तता, स्वाभाविकता, उपयुक्तता, अनुकूलता, सम्बद्धता तथा मार्मिकता आदि गुणों का समावेश अनुमोदित किया जाता है। हिन्दी कहानी में इन विशेषताओं से युक्त कथोपकथन तात्विक कलात्मकता का बोध कराते हैं।

भाषाक्षेत्रीय प्रौढता

कहानी के पांचवें मूल उपकरण भाषा के क्षेत्र में भी विभिन्न कलात्मक रूपों का विकास स्पष्टतः लक्षित किया जा सकता है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से सरल, सहज, मुहावरों और कहावतों से युक्त भाषा ही कहानी को व्यावहारिक विश्वसनीयता प्रदान करती है। निरर्थक शब्द-योजना, अकलात्मक शब्दाडंबर तथा दुरूह वाक्य-जाल कहानी की प्रभावात्मकता को नष्ट कर देते हैं। कहानी में प्रयुक्त भाषा का व्याकरणिक पक्ष तात्विक शुद्धता की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से उसमें सम्यक् सन्तुलन अपेक्षित है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से कहानी की भाषा के क्षेत्र में कतिपय समस्याएं भी आ जाती हैं, परन्तु श्रेष्ठ कथाकार के मार्ग में वे बाधा नहीं सिद्ध होतीं। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में भाषा तत्व के स्वरूपात्मक विकास का विश्लेषण करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि आरम्भिक-युगीन कहानी की भाषा के कलात्मक न होने का एक कारण इस तत्व की तत्कालीन अप्रौढ और अविकसित स्थिति भी थी। परवर्ती विकास युगों में कहानी की भाषा का समुन्नत रूप उपलब्ध होता है। प्रेमचंद, 'प्रसाद', 'कौशिक', 'गुलेरी', चतुरसेन शास्त्री, जैनेन्द्र कुमार, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल तथा 'अज्ञेय' की भाषा में प्रौढता और कलात्मकता दृष्टिगत होती है। सिद्धान्ततः कहानी की भाषा में सफलता की सम्भावनाएं उत्पन्न करने के लिए उसमें प्रवाहात्मकता, आलंकारिकता, चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता, व्यंग्यात्मकता, नाटकीयता तथा भावात्मकता आदि गुणों का समावेश होना आवश्यक है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में भाषा के जो रूप उपलब्ध होते हैं, उनमें व्यावहारिक, संस्कृत-प्रधान, उर्दू-प्रधान लोकपरक, क्लिष्ट तथा समन्वित भाषारूप प्रमुख हैं। आनुपातिक दृष्टिकोण से वर्तमान कहानी-

कार भाषा तत्व पर अपेक्षाकृत अधिक गौरव देता है और भाषा के प्रयोग में भी पूर्ण सफलता व्यक्त करता है।

शैलीगत अभिनवता

हिन्दी कहानी के मूल तत्वों में शैली के क्षेत्र में ही सर्वाधिक विकास और प्रयोगात्मकता विभिन्न युगों में दृष्टिगत होती है। वर्तमान कहानी में तो शैली को ही सर्वप्रमुख तत्व के रूप में मान्य किया जाता है यद्यपि पूर्ववर्ती कहानी में इस तत्व के प्रति उपेक्षा भाव दिखाया गया है। कहानी में अधिकांशतः वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग हुआ है, जिसमें संपूर्ण कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण तृतीय पुरुष के रूप में किया जाता है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से शैली-तत्वगत अभिनवता कहानी के प्रभाव की वृद्धि की दृष्टि से उपयोगी होती है। जिस कहानी में शैली-तत्व को अन्य सभी तत्वों की तुलना में प्रमुखता प्रदान की जाय, उसे एक स्वतंत्र भेद 'शैली प्रधान कहानी' के अन्तर्गत मान्य किया जाता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भारतेन्दु युगीन कहानी में वर्णनात्मक तथा आत्मकथात्मक शैलियों का प्रयोग रामचंद्र शुक्ल लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' तथा कार्तिक प्रसाद खत्री लिखित 'दामोदर राव की आत्मकहानी' आदि में उपलब्ध होता है। प्रेमचन्द युग में पत्र शैली, डायरी शैली तथा संवादात्मक शैलियों का भी प्रयोग प्रेमचंद लिखित 'दो सखियां', 'पंडित मोटेराम की डायरी' तथा 'जादू' जैसी कहानियों में मिलता है। प्रेमचंदोत्तर युग में मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग अधिकता से किया गया है। इस क्षेत्र में भगवतीचरण वर्मा, 'अज्ञेय', 'अश्क', जैनेन्द्र कुमार तथा इलाचंद्र जोशी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में अमृतलाल नागर, 'पहाड़ी', राजेन्द्र यादव, 'रेणु', रमेश बक्षी तथा उषा प्रियंवदा आदि ने कहानी के शैलीतत्व के क्षेत्र में प्रयोगात्मकता का परिचय दिया है। सिद्धांततः कहानी में शैलीतत्व के समुचित नियोजन के लिए उसमें आलंकारिकता, प्रतीकात्मकता, प्रवाहात्मकता, रोचकता, भावात्मकता, व्यंग्यात्मकता तथा आंचलिकता आदि गुणों का समावेश आवश्यक है। हिन्दी कहानी के विविध विकास युगों में मुख्य रूप से वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, आत्मकथात्मक, संवादात्मक, नाटकीय, डायरी, पत्र, काव्यात्मक, लोककथात्मक, स्मृतिपरक, स्वप्न तथा मनोविश्लेषणात्मक शैलियों का प्रयोग मिलता है। वर्तमान कहानी के कलात्मक स्वरूप का आधार उसका शैलीगत स्वरूप भी माना जाता है।

वातावरण-क्षेत्रीय विकास

हिन्दी कहानी कला के स्वरूपात्मक विकास में कहानी के सातवें मूल तत्व देश काल अथवा वातावरण की क्षेत्रीय उपलब्धि का महत्व भी स्पष्ट है। कहानी में इस उपकरण का आयोजन घटनात्मक पृष्ठभूमि को विश्वसनीय एवं यथार्थात्मक बनाने के लिए किया जाता है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी में संग्रथित घटना-व्यापार तथा पात्र योजना के अनुकूल वातावरण के चित्रण से उसकी सफलता की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं। इस तत्व के अन्तर्गत व्यवहारतः कहानी की पृष्ठभूमि में सांस्कृतिक परम्पराओं, सामाजिक आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि का भी चित्रण किया जाता है। जिस रचना में कहानी के सभी मूल उपकरणों में आनुपातिक दृष्टि से देश-काल अथवा वातावरण के चित्रण को अपेक्षाकृत अधिक महत्व प्रदान किया गया हो, उसे वातावरण-प्रधान कहानी की कोटि में रखा जाता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यदि वातावरण तत्व के स्वरूपात्मक विकास का अध्ययन किया जाय, तो इस तथ्य की अवगति होती है कि प्रथम विकास युग से ही इस तत्व की ओर कहानी लेखकों ने समुचित ध्यान दिया है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र, राधाचरण गोस्वामी, किशोरीलाल गोस्वामी तथा केशव प्रसाद सिंह आदि कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में विविध प्रकार के वातावरण का समुचित चित्रण किया है, यद्यपि वह अधिकांशतः काल्पनिक है और उसमें यथार्थता का अभाव है। द्वितीय विकास काल में सामाजिक, धार्मिक राजनीतिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का समुचित चित्रण प्रेमचन्द, 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री तथा जैनेन्द्र कुमार आदि की कहानियों में हुआ है। प्रेमचंदोत्तर काल में देश-काल और वातावरण के चित्रण के क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्मता लक्षित होती है। स्वातंत्र्योत्तर युग में वातावरण चित्रण का सर्वाधिक व्यापक क्षेत्रीय और वैविध्यपूर्ण रूप मिलता है। इस काल में वैचारिक आन्दोलनों के फलस्वरूप सामाजिक संरचना में परिवर्तन तथा राजनीतिक गतिविधि में तीव्रता आयी। नागरिक तथा ग्रामीण समाज की पृष्ठभूमि में विविध स्थलीय आंचलिक विशेषताओं का चित्रण भी किया गया। देशकाल के ही अन्तर्गत स्थानीय रंग की योजना की जाती है, जिससे कहानी में प्रस्तुत कथावस्तु की सम्यक् पीठिका नियोजित हो जाती है। प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा तथा फणीश्वर नाथ 'रेणु' की रचनाओं में ग्रामांचलों की पृष्ठभूमि में वातावरण का प्रभावशाली अंकन हुआ है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से कहानी में देशकाल और वातावरण तत्व के सफल चित्रण के लिए उसमें संक्षिप्तता, वास्तविकता, आलंकारिकता, चित्रात्मकता, अनौच

की सूक्ष्मता तथा तत्वगत संतुलन आदि होना आवश्यक है। कहानी की विषय वस्तु के अनुसार उसमें ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ग्राम्य, धार्मिक, राजनीतिक, भौगोलिक, जादूई, तिलिस्मी, जासूसी अथवा प्राकृतिक वातावरण का चित्रण किया जाता है। आधुनिक कहानी में विभिन्न विशेषताओं से युक्त वैशिष्ट्यपूर्ण वातावरण चित्रण का महत्व कलात्मक दृष्टि से सर्वमान्य है।

उद्देश्यगत विस्तार

हिन्दी कहानी के उद्देश्य तत्वगत अध्ययन से इस तथ्य की अवगति होती है कि आधुनिक युग में ज्यों ज्यों कहानी के कलात्मक रूपों का विकास होता रहा है, त्यों त्यों उसके समानांतर ही उसके उद्देश्य तत्व का भी विस्तार होता रहा है। प्राचीन कथा साहित्य मे नीति शिक्षा अथवा मनोरंजन का ही उद्देश्य प्रमुख रूप से निहित होता था। आधुनिक युग में उद्देश्यप्रधान कहानी का जो स्वरूप विकसित हुआ है, उसमें प्रायः सुधारपरक अथवा उपदेशात्मक दृष्टिकोण का ही आग्रह है। आज का कहानीकार समकालीन जीवन के संघर्षपूर्ण रूपों के प्रति इतना जागरूक है कि वह अब केवल हलके फुलके मनोरंजन के उद्देश्य से ही कहानी रचना नहीं करता। भारतेन्दु काल में लिखी गयी कहानियों में मनोरंजन और उपदेशात्मकता के साथ ही कौतूहल सृष्टि, हास्य सृष्टि, समस्या चित्रण तथा सुधार भावना के आदर्शपरक उद्देश्य की भावना मिलती है। प्रेमचन्द काल से उद्देश्य तत्व का और भी अधिक क्षेत्रीय विस्तार हुआ। अब राजनीतिक और वैचारिक उद्देश्यों से भी कहानी रचना की जाने लगी। आज का कहानीकार यथार्थ चित्रण, जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति तथा प्रचारवादी उद्देश्य से भी कहानी रचना करता है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में उद्देश्य विषयक प्रचलित धारणाओं में मनोरंजन, उपदेशात्मकता, कौतूहल सृष्टि, हास्य सृष्टि, स्वास्थ्य लाभ, आदर्शवादी उद्देश्य, समस्या चित्रण, सुधार भावना, राजनीतिक उद्देश्य, यथार्थ चित्रण, जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति, प्रभावात्मकता, मनोवैज्ञानिकता तथा प्रचारवाद आदि हैं। आधुनिक युग में कहानी की मान्यता एक गम्भीर साहित्यिक माध्यम में होने के कारण उद्देश्य तत्व का महत्व और क्षेत्रीय विस्तार अपेक्षाकृत बढ़ गया है।

प्रवृत्तिगत वैविध्य

आधुनिक हिन्दी कहानी की कलात्मक समृद्धि का द्योतन उसके क्षेत्र में विकसित-

शील प्रवृत्तियों की बहुरूपता से भी होता है। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, समस्या प्रधान, भाव प्रधान, आदर्शवादी, यथार्थवादी, अति यथार्थवादी, प्रगतिवादी, राजनीतिक, गांधीवादी, दार्शनिक, प्रतीकवादी, मनोवैज्ञानिक, पौराणिक, नीति प्रधान, साहसिक, वैज्ञानिक, शिकार सम्बन्धी, जासूसी, बालोपयोगी, जादूई तथा हास्य-व्यंग्य प्रधान कहानियों की प्रवृत्तियां लगभग एक शताब्दी में समुचित रूप से विकसित हुई हैं। ऐतिहासिक कहानी भारतेन्दु युग से आरम्भ हो गयी थी और प्रेमचन्द युग में उसका कलात्मक रूप उपलब्ध होता है। प्रेमचंद, जयशंकर 'प्रसाद' तथा चतुरसेन शास्त्री ने इसके विकास में विशेष योग दिया है। सांस्कृतिक कहानी लेखकों में राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव तथा भगवतीचरण वर्मा प्रमुख हैं। सामाजिक कहानी के विविध रूपों के विकास मे योग देने वाले लेखकों में प्रेमचंद, 'कौशिक', 'प्रसाद', 'निराला', भगवती प्रसाद बाजपेयी तथा 'गुलेरी' आदि हैं। राजनीतिक कहानी के क्षेत्र में प्रेम-चंद, यशपाल तथा उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के नाम उल्लेखनीय हैं। दार्शनिक कहानी के विकास मे सियारामशरण गुप्त, 'पहाड़ी' तथा जैनेन्द्र कुमार ने योग दिया है। प्रतीक-वादी कहानी लेखकों में जयशंकर 'प्रसाद', राय कृष्णदास तथा कमलाकांत वर्मा प्रमुख हैं। मनोवैज्ञानिक कहानी के विकास में प्रेमचंद, इलाचन्द्र जोशी, सच्चिदानन्द हीरा-नन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' तथा जैनेन्द्र कुमार ने विशेष रूप से योग दिया। पौराणिक कहानियां लिखने वालों मे बलदेव उपाध्याय, रामनिरंजन पांडेय तथा हनुमान प्रसाद पोद्दार प्रमुख हैं। नीति प्रधान कहानियों का विकास प्राचीन कथा परम्परा की पृष्ठ-भूमि मे ही हुआ है। साहसिक, वैज्ञानिक, शिकार सम्बन्धी तथा जासूसी कहानियां प्रायः रोमांचकारी तत्वों से युक्त हैं और अधिकांशतः प्रेमचंदोत्तर युग में लिखी गयी हैं। बालोपयोगी तथा जादूई कहानियां चमत्कारिक तत्व प्रधान हैं। हास्य-व्यंग्य-प्रधान कहानी लेखकों में प्रेमचंद, 'निराला', यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, जी० पी० श्रीवास्तव तथा अमृतलाल नागर के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी कहानी का वर्तमान स्वरूप

वर्तमान हिन्दी कहानी का रूप विविधात्मक है। उसमें यदि एक ओर साहित्यिक कहानी के नाम पर विशुद्ध व्यावसायिक रचनाएं प्रस्तुत की जा रही हैं, तो दूसरी ओर ऐसी रचनाएं भी अवश्य लिखी जा रही हैं, जिनकी वैचारिक उत्कृष्टता में किसी भी प्रबुद्ध व्यक्ति को कोई संदेह नहीं हो सकता। परन्तु इन दोनों की संख्या और अनु-

पात में भारी अन्तर है। यों इस प्रवृत्ति का किसी भी समृद्ध भाषा में सामान्यतः विद्यमान होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि जन-रुचि में पर्याप्त पारस्परिक वैभिन्य होता है। परन्तु यह प्रवृत्ति अवश्य घातक है कि साहित्यिक कहानी के नाम पर संस्कार-हीन व्यावसायिक रचनाएं भ्रम उत्पन्न कर रही हैं। वस्तुतः आज का समाज यांत्रिक सभ्यता के प्रभाव में इतनी अधिक सीमा तक आ चुका है और साहित्य के क्षेत्र में भी व्यावसायिक दृष्टिकोण इतना कूट कूट कर भरा जा चुका है कि उसका निदान एक साधारण हल के रूप में नहीं प्रस्तुत किया जा सकता। वस्तुतः उत्कृष्ट रचनात्मक प्रतिभा और बौद्धिक शक्ति से संपन्न साहित्यकार को भी जब दैनंदिन जीवन की अनिवार्य सुविधाएं उपलब्ध नहीं होतीं, तब वह समाज में व्याप्त इस व्यापक व्यावसायिक व्यवस्था का यंत्र बनने को बाध्य हो जाता है।

कहानी क्षेत्रीय नवीन आन्दोलन

स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानी के क्षेत्र में वस्तु और शिल्पगत अनेक नवीन आन्दोलन हुए हैं, जो साहित्य की इस विधा की रचनात्मक क्रियाशीलता के द्योतक हैं। आज का कहानीकार कहानी को एक गम्भीर साहित्यिक माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करता हुआ उसे वैचारिक अभिव्यंजना का सशक्त माध्यम स्वीकार करता है। व्यवहारतः हिन्दी कहानी का वर्तमान स्वरूप अपने व्यापक क्षेत्र में विषयगत वैभिन्य और विचारगत वैविध्य को आबद्ध किये हुए है। उसमें यदि एक ओर आज भी प्रेमचंद की परम्परा में परिगणित किये जाने वाले कहानीकार आते हैं, तो दूसरी ओर नयी कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी, विकथा तथा भूखी पीढ़ी की कहानी लिखने वाले कहानीकार भी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विषय तथा विचार तत्व की दृष्टि से यदि एक बड़ी संख्या परम्परावादी कहानीकारों की है, तो उन कहानीकारों की संख्या भी कम नहीं है, जो कहानी क्षेत्रीय नवीनतम रूपों का परिचय दे रहे हैं। इसलिए स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानी को उसके स्वरूपगत विस्तार के बावजूद स्थूलतः इन दो ही वर्गों में विभाजित करना औचित्यपूर्ण होगा। इन दोनों वर्गों के कहानीकारों में नयी-पुरानी वैचारिक मान्यताओं, जीवन मूल्यों, संस्कारों, परिवर्तनशील सन्दर्भों और समग्र जीवन-दृष्टि का अन्तर है। परम्परावादी कहानीकार आज भी उदात्तपरक जीवन के आदर्श स्वप्न प्रस्तुत कर रहा है, जब कि नया कहानीकार यथार्थ जीवन को उसकी समस्त विकृतियों और सीमाओं के साथ अंगीकार करने को कटिबद्ध है।

नयी कहानी

नयी कहानी का आन्दोलन पिछले दशक से ही चलाया गया है। इसके पूर्व बीसवीं शताब्दी की प्रथम छै दशाब्दियों में लिखी गयी कहानी केवल कहानी ही थी। उसके साथ नया पुराना कुछ भी न था। स्थूल रूप से यह तथ्य हिन्दी कहानी साहित्य के इतिहास की एक घटना मात्र है, यद्यपि सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर इसकी पृष्ठभूमि में अनेक महत्वपूर्ण संकेत और सूत्र विद्यमान मिलेंगे। वस्तुत: नयी और परम्परागत अथवा पुरानी कहानी के मध्य केवल शिल्प रूप अथवा प्रयोगात्मकता का ही अन्तर नहीं है, इन दोनों में व्यापक वैचारिक एवं दृष्टिकोणगत विरोध भी है। नयी कहानी के प्रवर्तक और पोषक पुरानी पीढ़ी की साहित्यिक मान्यताओं को खोखला समझते हैं। उनके विचार से कहानी का परम्परागत स्वरूप नवीन युग की वैचारिक चेतना और रचनात्मक दृष्टि के अभिव्यक्तिकरण के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। आज के नये कहानीकार के सामने जो परिस्थिति है, वह प्राय: अंतर्द्वन्द्वात्मक है, जिसके विकल्प में वह किसी प्रकार के समझौते के लिए प्रस्तुत नहीं है और इस प्रकार से संघर्ष करने को विवश है। यदि हिन्दी की नयी कहानी के स्वरूप विकास पर ऐतिहासिक दृष्टि डाली जाय, तो इस तथ्य की अवगति होगी कि आरम्भ में कहानी के साथ 'नयी' शब्द का प्रयोग केवल प्राचीन और परम्परावादी कहानी से पृथक् अर्थ का बोध कराने के लिए सहज और स्वाभाविक रूप में जोड़ा गया था, परन्तु बाद में यह धीरे-धीरे रूढ़ हो गया और इससे कहानी क्षेत्रीय एक आन्दोलन विशेष का आशय समझा जाने लगा।

व्यावसायिक कहानी

व्यावसायिक कहानी भी वस्तुत: आज के यंत्रग्रस्त सामाजिक जीवन की एक शैक्षिक आवश्यकता है। अपनी रुचि और बौद्धिक स्तर के अनुरूप समाज का एक बहुत बड़ा पाठक वर्ग ऐसा है, जो व्यावसायिक कहानी से ही अपनी मानसिक परितृप्ति अनुभव करता है। शिक्षित समाज का बड़ा भाग ऐसा होने के कारण व्यावसायिक कहानी की भारी मांग है। बेरोजगारी तथा अन्य अभिशापों से ग्रस्त समाज में यदि इस मांग को पूरा करने के लिए एक बड़ा वर्ग ऐसे लेखकों का तैयार हो जाय, जो केवल व्यावसायिक लेखन करता हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह भी कोई बड़े आश्चर्य की बात न होगी यदि साहित्यिक लेखन करने वाले प्रबुद्ध लेखकों में से भी कुछ व्यक्ति

दैनंदिन आवश्यकताओं के लिए आर्थिक संघर्ष से मुक्ति पाने के लिए व्यावसायिक लेखन करने लगें। परंतु आश्चर्य की बात यह अवश्य है कि सर्वथा संकीर्णतावादी दृष्टिकोण और रूढ़िवादी नैतिकता की पोषक, सस्ती, मनोरंजक और निपट व्यावसायिक रचनाएं महान् जीवनदर्शन, स्वातंत्र्य चेतना, बौद्धिक उत्कृष्टता और विशुद्ध साहित्यिकता के नाम पर प्रस्तुत की जायें।

अकहानी

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का एक रूप अथवा आन्दोलन 'अकहानी' भी है। 'अकहानी' शीर्षक से ही श्याममोहन श्रीवास्तव तथा सुरेन्द्र अरोड़ा द्वारा सम्पादित एक कहानी संकलन भी प्रकाशित हुआ है। इसमें 'अकहानी' को किसी प्रकार का वाद अथवा आन्दोलन नहीं बताया गया है; केवल कथारूढ़ियों को तोड़ने वाली कहानियों को संकलित करने का उद्देश्य रहा है। संपादकीय वक्तव्य में केवल साहित्यिक कहानी और व्यावसायिक कहानी के पृथक्करण पर बल दिया गया है, 'अकहानी' के रूप वैशिष्ट्य पर बल नहीं है। 'अकहानी' के विकल्प के रूप में 'विकहानी', 'प्रति-कथा' या 'साहित्यिक कहानी' नाम भी दिये गये हैं। निर्मल वर्मा, ममता कालिया, योगेश गुप्त, रवीन्द्र कालिया तथा ज्ञानप्रकाश आदि कहानीकारों की रचनाएं कहानीकार की अभिव्यक्तिगत प्रयोगात्मकता तथा निष्ठता के साम्य पर इसमें संकलित की गयी हैं। इन कहानियों की पृष्ठभूमि में दृष्टिकोणगत यही अन्तर तथा शिल्पगत प्रयोगात्मकता विद्यमान है। आज के जीवन मूल्यों के क्षेत्र में जो संक्रमण, अस्थिरता, यांत्रिकता तथा द्वन्द्वात्मकता मिलती है, उसने कहानीकार की चेतना को विभिन्न स्तरों पर तीव्रता से प्रभावित किया है। बृहद् आकार वाली साहित्यिक विधाओं की तुलना में कहानी पर यह प्रभाव अधिक स्पष्टता से देखा जा सकता है, क्योंकि वह साहित्यांग सामाजिक विकास के समानान्तर ही उससे निरन्तर नैकट्य स्थापित किये हुए है। 'अकहानी, में संकलित 'बेड़ हुंच ऊपर', 'अंधेरा', 'दूसरे के पैर', 'चिपचिपाहट', 'बीच तराशे हुए, 'एक समुद्र भी', 'तोता', 'उदासी के टुकड़े' तथा 'लाशें' आदि कहानियां उपर्युक्त दृष्टिकोण से अव्यावसायिक अर्थात् विशुद्ध साहित्यिक कहानियों के प्रतिनिधि उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की गयी हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी की प्रमुख विशेषताएँ

मानव की प्रतिष्ठा

स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानी का वर्तमान स्वरूप विश्लेषित करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि अनेक विरोधाभासों के मध्य भी उसमें अनुभूत्यात्मक स्तर पर मानव की प्रतिष्ठा की भावना निहित है। विविध क्षेत्रीय संघर्ष तथा प्रखर चेतना के बीच आज का कहानीकार जिस मानव को अपनी रचना में प्रतिष्ठित करना चाहता है, वह विशुद्ध मानवीयता की अनुभूति से अनुप्राणित है। यह मानव वर्तमान युग की यान्त्रिक विडम्बनात्मकता से अप्रभावित होने के साथ साथ विभिन्न प्रकार की मानसिक विकृतियों से भी युक्त है। वास्तव में व्यक्ति की चेतना का विकास समकालीन युगजीवन की पृष्ठभूमि में ही होता है। इसलिए इन्हें पृथक्-पृथक् रूप से समझने के फलस्वरूप अनेक भ्रम उत्पन्न होते हैं। इसलिए आज का कहानीकार इन्हें सम्बद्ध करके देखता है और उन मूल्यों की प्रतिष्ठा पर बल देता है जो वस्तुतः मानवीयता के सच्चे अर्थों में निरूपक हैं। यह तथ्य जहां एक ओर उसकी जागरूकता का सूचक है, वहां दूसरी ओर उसके उन प्रयत्नों की सार्थकता का भी प्रतीक है, जो मानवीय चेतना के इस रूप में आस्था रखते हैं।

संघर्ष और चेतना

स्वातंत्र्योत्तर युग में आविर्भूत कहानी की पृष्ठभूमि में साहित्यक्षेत्रीय बौद्धिकता का बढ़ता हुआ आग्रह है। यह कहानी व्यावसायिक कहानी के विरुद्ध एक बौद्धिक और कलात्मक प्रतिक्रिया के रूप में जन्मी थी और अन्ततः स्वयं भी इन्हीं सीमाओं से अवरुद्ध हो गयी। इसमें कलात्मक साधना और संवेदनात्मक अभिव्यक्ति को आधुनिक यान्त्रिक जीवन के बृहत्तर सन्दर्भ में महत्ता प्रदान की गयी है। वस्तुतः व्यावहारिक दृष्टिकोण से वही कहानी समकालीन जीवन की यथार्थ चेतना का वहन कर सकती है, जिससे युगीन समस्याओं की प्रतिक्रियात्मक अवगति हो सके। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इस काल मे मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन में एक ऐसी संघर्ष युक्त परिस्थिति विद्यमान रही है, जिसने स्वार्थपरता और अवसरवादिता को ही सफलता का आधार बना दिया है। इसका परिणाम यह दिखाई पड़ता है कि सामान्य स्तर का व्यक्ति प्रत्यक्ष संघर्ष से कतराकर विद्यमान परिस्थितियों से समझौता करता हुआ

आगे बढ़ जाना चाहता है। जीवन की सर्वसामान्य स्तर पर मान्य और अपेक्षित सुवि-धाओं की प्राप्ति को ही वह एक असाधारण उपलब्धि मान लेता है। इस प्रकार की उपलब्धि के लिए भी उसे संघर्ष करना पड़ता है परन्तु यह संघर्ष ऐसा नहीं होता, जो उसकी चेतना की परतों को झकझोर सके अथवा उसे इस मार्ग से विमुख कर सके। यदि किसी दशा में इसकी संभावना होती भी है तो वह इसके विकल्प के रूप में दूसरे मार्ग अर्थात् अवसरवादिता और स्वार्थपरता का ही अनुगमन करता है, भले ही वह उच्च-तर मूल्यों के विरोध में ही क्यों न सिद्ध हो।

विचार-स्वातंत्र्य

हिन्दी के नये प्रबुद्ध कहानीकारों मे एक वर्ग ऐसा है, जो लेखन के क्षेत्र में किसी भी सिद्धान्त अथवा परिस्थिति से समझौता करने के पक्ष में नहीं है । वह प्रत्येक कोटि के व्यावसायिक लेखन का भी विरोधी है, फिर चाहे वह सस्ता साहित्य लेखन हो अथवा पाठ्य पुस्तकीय प्रणयन। वह जानता है कि यदि वह किसी भी निश्चित व्यवसाय अथवा सेवन कार्य में लग जायगा तो फिर कुछ समय बाद उसका जीवन भी सुव्यवस्थित हो जायगा और तब वह इस साधारण स्तर पर आर्थिक संघर्ष करने को बाध्य नही रह जायगा। परन्तु वह यह समझकर भी ऐसा नही करता, क्योकि उसकी दृष्टि में वैचा-रिक स्वातंत्र्य का मूल्य इससे कही अधिक है। इसलिए उसके सामने प्राय: ये ही दो विकल्प बने रहते हैं।

यथार्थ का आग्रह

परम्परागत कहानी के विपरीत वर्तमान कहानी यथार्थ के तथ्यपरक स्वरूप का आभास देती है। प्राचीन साहित्य शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुरूप नयी कहानी में उन सभी उपकरणों का निर्वाह रूढ रूप में नहीं मिलता है। कथावस्तु, चरित्र चित्रण, कथोपकथन, भाषा, शैली, देशकाल तथा उद्देश्य आदि तत्वों के समावेश के स्थान पर नयी कहानी में सांकेतिकता को स्थान दिया जाता है। परम्परागत शैली में प्रस्तुत विविध वर्णनों और विस्तृत विवरणों के स्थान पर नयी कहानी में संवेदनात्मक अभि-व्यक्ति पर अधिक बल दिया जाता है। नयी कहानी ने भी अपने विकास की नयी दिशायें पूर्ववर्ती कहानी से ही ग्रहण की हैं, परन्तु उसके रूढ स्वरूप को अस्वीकार कर नयी कहानी ने अपना तत्वगत परिष्कार किया है। नयी कहानी परम्परागत कहानी की भांति

किसी आदर्शवादी जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति अथवा सुधारपरक दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा के लिए नहीं लिखी जाती है। उसकी सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक मान्यताएं भी परम्परानुगामी नहीं हैं। दार्शनिक कुहासे से भरे हुए आवरण में आध्यात्मिक तत्वों के निरूपण का भाव भी उसमें नहीं है। नये कहानीकार की बौद्धिक परिकल्पनाएं भी पूर्ववर्ती कहानी लेखकों से भिन्न हैं। वह किसी विचार दर्शन से आक्रांत पात्र-सृष्टि भी नहीं करता। वैचारिक दार्शनिक आरोपण का यह भार कहानी के पात्रों को प्राण-विहीन बना देता है।

यन्त्रयुग की सभ्यता

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लिखी गयी विविध प्रवृत्तियों वाली कहानी में यन्त्र युग की सभ्यता की पृष्ठभूमि में मानवीय संवेदनाओं के परिवर्तित रूपों की भी अभिव्यक्ति हुई है। युग जीवन में होने वाले परिवर्तनों और नवीनतर परिस्थितियों ने मनुष्य की प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं को विचित्र परिणतियां प्रदान की हैं। आज का युग यांत्रिकता का युग है। इसमें एक नयी सभ्यता के सूत्रों का आविर्भाव हो रहा है। यह सभ्यता मनुष्य की सहज संवेदनशीलता को भी भावना-शून्य बना देती है। वर्तमान कहानीकार इसी भावना-शून्य मनुष्य को आधुनिक यन्त्रयुग की उपज मानता है। यह मनुष्य न केवल रागात्मक वृत्तियों से अप्रभावित रहता है, वरन् यथार्थ के विविध रूपों की द्वन्द्वात्मकता से भी पूर्ण मुक्त रहता है। परन्तु उसके इस स्वरूप की निर्मिति मे उसका स्वयं कोई दोष नहीं है। आज के जीवन की अपरिहार्य व्यस्तताओं और जटिल परिस्थितियों ने विविध क्षेत्रीय संघर्षशीलता को इस रूप में अनिवार्य बना दिया है कि उसके सामने कोई अन्य विकल्प शेष नहीं रह गया है। यही नहीं, उसकी समस्त प्रतिक्रियाएं भौतिक संघर्ष का अनुभूत्यात्मक परिणाम हैं, केवल मानसिक अन्तर्द्वन्द्व ने ही उन्हें जन्म नहीं दिया है। इसीलिए उसके स्वरूप का निर्माण आकस्मिक रूप मे नहीं हुआ मानना चाहिए, वरन् वह युगजीवन की अनिवार्य परिस्थितियों की उपज है।

अस्तित्व का संघर्ष

आर्थिक विषमताओं ने आज के मनुष्य को स्वप्निल आदर्श से पृथक् सर्वथा व्यावहारिक धरातल पर अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करने को बाध्य कर दिया है। सामा-

जिक संरचना के परिवर्तनशील रूपों में परम्परागत रूढ़ियों को सहज ही समाप्त कर दिया है। अब मनुष्य के सामने वही कटु यथार्थ है, जिसमें जीते रहकर उसे जीते रहने के लिए ही संघर्ष करना है। इस रूप में अस्तित्व का संघर्ष ही उसके लिए प्रधान है। यह संघर्ष देश की नब्बे प्रतिशत से अधिक जनता कर रही है। रूढ़िवादी परिवारों में भी अब पुरुष और स्त्रियां समान रूप से शिक्षा प्राप्त करके नौकरियां कर रहे हैं और इस संघर्ष में रत हैं जो काल्पनिक न होकर यथार्थ है। विघटन, संक्रान्ति, विशृंखलन और अस्थिरता ने आज मनुष्य को इस संघर्ष से सुपरिचित बना दिया है। आज वह उन कृत्रिम भेदों को भूल गया है, जो धर्म और जाति के आधार पर किये गये हैं। आर्थिक विवशता ने उन सभी लोगों को एक ही वर्ग में लाकर रख दिया है, जो आज अपनी सारी शक्ति से केवल अपने अस्तित्व के लिए ही संघर्ष कर रहे हैं। यह संघर्ष-शीलता अस्तित्व की रक्षा की दृष्टि से एक अनिवार्यता है। इसकी पृष्ठभूमि में भी एक अस्पष्ट सी आस्था भावना है, जो आज मनुष्य को बिल्कुल ही टूट जाने अथवा बिखरने से बचाये हुए है। वह आज प्रत्येक स्तर पर संघर्ष कर रहा है, व्यक्ति से, समाज से, पुरानी पीढ़ी से और यहां तक कि स्वयं से भी।

आंचलिक तत्व

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यदि हिन्दी कहानी में समाविष्ट आंचलिक तत्वों पर विचार किया जाय, तो इस तथ्य की अवगति होगी कि प्रेमचन्द के युग से ही इसके उदाहरण उपलब्ध होने लगते हैं। स्वयं प्रेमचंद ने अपनी कहानियों का विषय अधिकांशतः ग्राम्य कथासूत्रों को बनाया, जिनके माध्यम से घटना क्षेत्र की आंचलिक विशेषताओं का निरूपण अपेक्षाकृत अधिक सरलता से हो सकता है। स्वातंत्र्योत्तर युगीन कहानीकारों ने आंचलिक चित्रण का सूक्ष्म अंकन अपनी कहानियों में किया और इसे एक व्यापक पृष्ठभूमि भी प्रदान की। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से आंचलिक चित्रण के फलस्वरूप कहानी के समग्र स्वरूप में विश्वसनीयता आ जाती है। आज का लेखक आंचलिक तत्वों का समावेश अपनी कहानी में करके मुख्यतः समकालीन यथार्थ की चेतना का आकलन करता है। इस रूप में आंचलिकता का आग्रह वस्तुतः युग जीवन के यथार्थ का ही आग्रह कहा जा सकता है। अब आंचलिकता का आशय केवल ग्राम्य कथानक और उसकी स्थूल पृष्ठभूमि ही नहीं है, वरन् कहानी के घटना क्षेत्र की समग्र सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक मान्यताओं और विशेषताओं का चित्रण

भी इसके अन्तर्गत किया जाता है। वर्तमान हिन्दी कहानीकारों में उपेन्द्रनाथ 'अश्क', फणीश्वर नाथ 'रेणु', शेखर जोशी तथा अमरकान्त आदि ने अपनी रचनाओं में विविध ग्रामांचलों का उनकी विविध क्षेत्रीय विशेषताओं से युक्त चित्रण प्रस्तुत किया है।

सांकेतिक चित्रण

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी की एक विशेषता उसमें सांकेतिक चित्रण की प्रवृत्ति भी है। सांकेतिक चित्रण पूर्ववर्ती कहानी में भी आंशिक रूप से उपलब्ध होता था। आज की कहानी में उसका समावेश न केवल कहानीकारों की दृष्टिगत सूक्ष्मता का परिचायक है, वरन् वह विशेष अर्थपूर्णता का भी द्योतन करता है। वर्तमान कहानी में सांकेतिक अर्थवत्ता का उपयोग अनेक स्तरों पर किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अब सांकेतिक चित्रण गूढ़ व्यापारों अथवा क्लिष्ट अभिव्यक्ति के लिए ही नहीं किया जाता, वरन् उसका उद्देश्य सामान्य वर्णनों को अनावश्यक विस्तार से बचाना भी है। मानवीय चरित्र की विशद व्याख्या के स्थान पर अब कहानी में किसी स्थल पर पात्र विशेष की मन:स्थिति की मर्मस्पर्शी व्यंजना सांकेतिक रूप में कर देना ही पर्याप्त हो सकता है। यही नहीं, कहानियों में आयोजित पात्रों की विकृतियों, कुंठाओं तथा प्रतिक्रियाओं का भी सांकेतिक चित्रण कहानी को स्वरूपगत आधुनिकता के साथ साथ शैलीगत परिष्कार प्रदान करता है।

प्रतीकात्मकता

प्रतीक योजना भी स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का एक उल्लेखनीय तत्व है। सैद्धान्तिक रूप से प्रतीक का प्रयोग चिह्न अथवा प्रतिरूप के अर्थ में किया जाता है। व्यावहारिक क्षेत्र में एक सत्य के स्तर पर उसके समान दूसरे सत्य का उल्लेख ही प्रतीक योजना है। स्थूलधारणा के अनुसार भाषा और शब्द तक प्रतीक ही कहे जायंगे, क्योंकि प्रत्येक शब्द अपने आप में किसी न किसी भावनात्मक अथवा दृश्यात्मक सत्य की निहिति रखता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रतीक व्यंजनात्मक रूप से किसी विशिष्ट अर्थ की अभिव्यंजना करने वाला विशिष्ट शब्द समूह है। वस्तुत: किसी भी प्रत्यक्ष, जड़ अथवा चेतन पदार्थ को देखने पर हमारे हृदय में कोई न कोई भावना जन्म लेती है। यह भावना स्वाभाविक रूप में हमारा ध्यान किसी ऐसी वस्तु की ओर ले जाती है, जो गुण में उसी वस्तु के समान होती है, परन्तु वह एक प्रकार से भावनात्मक

रूप में ही अपना अस्तित्व रखती है। इस प्रकार के प्रतीक प्रचलित रूप में किसी भी अव्यक्त की अभिव्यक्ति होता है। उदाहरण के लिए हम उषा को किसी भी प्रकार के उत्साह, आशा, नवीनता तथा नवजीवन का संकेत मानते हैं और इसी कारण उसको प्रतीक के रूप में इन सबके लिए प्रयुक्त करते हैं। इसी प्रकार से किसी ऊंचे पर्वत को देखकर हमें उसकी दृढ़ता, स्थिरता तथा गम्भीरता का बोध होता है तथा इनके लिए हम उसका प्रयोग प्रतीक के रूप में करते हैं। साहित्य में जिन प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है, उनमें भावनात्मक तथा व्यंजनात्मक साम्य का भी ध्यान रखा जाता है। विभिन्न स्तरों पर विभिन्न कार्य-व्यापारों के लिए उपयुक्त प्रतीक योजना स्वातंत्र्योत्तर कहानी की शैलीगत परिपक्वता की भी द्योतक है।

वाद-मुक्तता

स्वातंत्र्योत्तर कहानी के विविधात्मक स्वरूप में यदि एक ओर प्रगतिवादियों की भांति समाजपरकता और सामाजिक यथार्थ की चेतना के साथ जागरूकता मिलती है, तो दूसरी ओर व्यक्तिवादियों की भांति व्यक्तिनिष्ठता तथा आत्मपरकता के साथ युगजीवन और युगसत्य के प्रति उदासीनता की भावना भी। परन्तु इस कथन का आशय यह समझना भूल होगी कि नयी कहानी का लेखक प्रगतिवाद अथवा व्यक्तिव से सैद्धान्तिक मतैक्य रखता है। वस्तुतः नया कहानीकार स्वयं को किसी भी प्रकार की सैद्धान्तिक परतंत्रता से मुक्त समझता है। वह कृत्रिम सिद्धान्तवाद मे किसी भी स्तर पर अपनी आस्था नहीं व्यक्त करता। यद्यपि नयी कहानी में भी चेतना, संवेदना तथा अनुभूति के साथ साथ निराशा, कुंठा और कुहासे का चित्रण है, परन्तु उसमें ये अभिव्यक्ति के सहज और स्वाभाविक स्तर पर उपलब्ध होते हैं।

नयी जीवनदृष्टि

स्वातंत्र्योत्तर कहानी की एक विशेषता नयी जीवन दृष्टि भी है, जो सन्दर्भ की नवीनता के परिप्रेक्ष्य में महत्त्व रखती है। आधुनिक जीवन में जो विशृंखलन, अस्थिरता, भटकन, उलझाव और असन्तुलन है, वह सामाजिक यथार्थ के कटु स्वरूप का द्योतक है। उससे विमुख होकर समकालीन जीवन का चित्रण कहानी में नहीं किया जा सकता। समाज में सक्रिय रूप से व्याप्त विघटनकारी परिस्थितियों ने मानवीय प्रतिक्रियात्मकता को अधिकांशतः यान्त्रिक सा बना दिया है। अपने अस्तित्व की

सार्थकता सिद्ध करने के लिए प्रबुद्ध श्रेणी आज अनुभूत्यात्मक सृजनात्मकता को अकुंठित बनाये रखने के लिए कृतसंकल्प है, क्योंकि यही उसकी आस्था का एक मात्र सूत्राधार है। आधुनिक कहानीकार की यह जीवन दृष्टि सन्दर्भ की नवीनता का भी परिणाम है। परम्परावादी साहित्यकार परिवर्तनशील सामाजिक आयाम में अपनी दृष्टिगत रूढ़िवादिता के कारण नये जीवनानुभव और नयी जीवन दृष्टि को अस्वीकारता है। जबकि नया कहानीकार इसे दृष्टिहीनता बताकर नये मूल्यों के प्रति आस्थावान् बना रहता है। वह युगसत्य को उसकी समस्त कटुताओं के साथ स्वीकारता है। आदर्श और उदात्त के प्रति एक प्रकार की वितृष्णा का भाव रखता हुआ वह जीवन की जटिलताओं और वेदनाओं को नये शिल्पावरण में अभिव्यंजित करता है।

हिन्दी कहानी, उपलब्धियाँ और भविष्य

हिन्दी कहानी के इतिहास और उसकी कलात्मक उपलब्धियों का सम्यक् शास्त्रीय विश्लेषण करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि उसके रूप-वैविध्य और विषय क्षेत्र की व्यापकता बहुत अधिक है। लगभग एक शताब्दी में विकसित आधुनिक हिन्दी कहानी का स्वरूप निर्धारण विविध साहित्यिक विधाओं की महान् और सुदीर्घ परंपराओं की तुलना में उसके वैशिष्ट्य का द्योतन करता है। इस लघु विकास कालीन हिन्दी कहानी की कलात्मक उपलब्धियां जहां एक ओर उसकी समृद्धि की परिचायक हैं, वहां दूसरी ओर उसकी भावी सम्भावनाओं का भी निदर्शन करती हैं। वस्तुत: आधुनिक कहानी के कलात्मक स्वरूप निर्धारण का एक कारण उसकी निरन्तर विकासशीलता भी रही है। जैसा कि अन्यत्र संकेत किया जा चुका है, कहानी का वर्तमान स्वरूप यद्यपि आधुनिक युग मे ही स्पष्ट हुआ है, परन्तु प्राचीनता की दृष्टि से इसका प्रसार सुदूर अतीत युगों तक है। इसके वर्तमान स्वरूप में वैविध्य और अनेकरूपता का कारण भी वाङ्मय की अन्य विधाओं से कहानी का उपकरणात्मक साम्य अथवा नैकट्य है। प्राचीन भारतीय साहित्य मे विविध कथात्मक रूपों में कथा, कथानक, आख्यान, आख्यानक, उपाख्यान, आख्यायिका, खंड कथा, परिकथा, सकल कथा, कथानिका, निदर्शन, प्रवह्लिका, मतल्लिका, मणिकुल्या, उपकथा, गल्प, बृहत्कथा तथा वृत्तान्त आदि का प्रचलन था। ये सभी कथा रूप न केवल कहानी से तात्विक समानता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं वरन् हिन्दी कहानी कला के विकास में भी इनका

योगदान रहा है। उपर्युक्त प्राचीन साहित्यिक विधाओं के अतिरिक्त आधुनिक युग में लघु उपन्यास, उपन्यास, रोमांस, बालकथा, डायरी, जीवनी, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, निबन्ध, नाटक, एकांकी, कविता, महाकाव्य, मनोविज्ञान, नीति शास्त्र तथा इतिहास आदि से अनेक दृष्टियों से कहानी की समता और निकटता दृष्टिगत होती है। इन विधाओं ने कहानी के आधुनिक स्वरूप को प्रभावित किया है। कहानी के शैली तत्व के क्षेत्र में जो वैविध्य और अनेकरूपता मिलती है, उसकी पृष्ठभूमि में भी इन विधाओं का शिल्पगत प्रभाव ही कारण है।

हिन्दी कहानी की अद्यतन प्रवृत्तियों का शास्त्रीय तत्वों की दृष्टि से विश्लेषण करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि वह वैचारिक दृष्टि से अत्यन्त विकासशील होने के साथ साथ कलात्मक स्वरूप की दृष्टि से भी परिवर्तनशील है। वर्तमान कहानी में शीर्षक, कथावस्तु, चरित्र चित्रण, कथोपकथन, भाषा, शैली, वातावरण तथा उद्देश्य तत्वों का संयोजन आनुपातिक सन्तुलन के साथ नहीं किया जाता। किसी एक सामान्य घटना, अनुभूति, मनःस्थिति, चरित्र विचार, मूल्य अथवा अन्य सूत्र को आधार बनाकर भी आज एक सफल कहानी लिखी जा रही है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि वर्तमान कहानी के अनेक रूप समान रूप से विकसित हो रहे हैं। वह कहीं तो रेखा-चित्रात्मक हो जाती है और कहीं संस्मरणात्मक होने का आभास देती है। अनेक शब्द चित्र, व्यंग्य चित्र तथा रिपोर्ताज भी कहानी के रूप में मान्य और प्रचलित हैं। वस्तु और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से उसका वर्तमान रूप बहुत परिवर्तित हो चुका है। शास्त्रीय दृष्टिकोण से यद्यपि ये सभी कहानियां वस्तु प्रधान, चरित्र प्रधान, कल्पना प्रधान अथवा भावना प्रधान वर्गों के अन्तर्गत उल्लिखित की जा सकती हैं। साथ ही, उसमें कथावस्तु का निरन्तर ह्रास भी होता जा रहा है। यांत्रिकता-संकुल युग में मानव की प्रतिष्ठा के आग्रह ने आज की कहानी को चरित्र प्रधान बना दिया है। आज की कहानी में चरित्र नियोजन का आधार भी विशुद्ध यथार्थपरक दृष्टिकोण है, आदर्शवाद अथवा भावनात्मकता नहीं। अब उसमें केवल एक केन्द्रीय भावसूत्र की व्यंजना रहती है।

हिन्दी कहानी का वर्तमान स्वरूप अपनी क्षेत्रीय क्रियाशीलता और वैचारिक जागरूकता के माध्यम से युग जीवन के समकालीन रूपों की सम्यक् अभिव्यंजना के एक सशक्त माध्यम के रूप में मान्य किया जाता है। वर्तमान कहानी के क्षेत्र में व्याप्त बौद्धिक प्रतिक्रियात्मकता समकालीन मानव-समाज में संक्रमणशील जीवन-मूल्य है।

इसलिए आज के युग में विभिन्न विचारधाराओं का पारस्परिक विरोध भी सजग चिंतन को नये आयाम प्रदान करता है। आज मानव-चरित्र की विभिन्न क्षेत्रीय प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाएं प्रखर रूप में सामने आ रही हैं। आज की हिन्दी कहानी का लेखक युग-सत्य के अंगीकरण के संदर्भ में अपने कर्तव्य के प्रति भी सतत जागरूक है। रूढ़िवादी जीवन-दृष्टि के प्रति कठोर एवं निर्मम बन जाने को भी वह बाध्य है। उसका विरोध अपने पुराने कहानीकारों से केवल आयु का ही नहीं है, वरन् वह उनके जड़ सिद्धान्तों के प्रति भी असहिष्णुता प्रकट करने को विवश है। व्यष्टि और समष्टि-मूलक चेतना की अनेक स्तरों पर अभिव्यक्ति से भी वर्तमान हिन्दी कहानी अनुप्राणित है। इस प्रकार से आधुनिक भाव-बोध, शिल्पगत प्रयोगात्मकता, विषय-वैविध्य, परिवेशगत विस्तार, उपकरणात्मक परिपक्वता, अनुभूत्यात्मक संपूर्णात्मकता तथा वैचारिक जागरूकता से युक्त वर्तमान हिन्दी कहानी अपनी विशिष्ट उपलब्ध्यात्मक पृष्ठभूमि में अपने को उज्ज्वल भविष्य के प्रति आशावान् बनाती है।

●